RNI-UPBIL/2011/38102

ISSN-2231-5837

# Indian Journal of Social Concerns

# इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल कन्सर्न्स

(मानविकी एवं समाज विज्ञान पर केन्द्रित अर्न्तराष्ट्रीय त्रैमासिक शोध पत्रिका)

Volume -10: Issue - 44 Oct. - Dec. 2021 Gaziabad

A RESEARCH JOURNAL OF HUMANITIES AND SOCIAL SCIENCES

*(An International Peer-Reviewed & Refereed Journal)*

Journal Impact Factor No. : 6.419

*Editor*
Dr. RAJ NARAYAN SHUKHLA

*Guest Editor*
Dr. Kiran Mishra

*Chief Editor*
Dr. HARI SHARAN VERMA

*Asstt. Editor*
MUKTA SONI

*Sub Editor*
Dr. PUSHPA
Dr. BEENA PANDEY (SHUKLA)

*Art Editor*
(MS) MANISHA VERMA

*Managing Editor*
Dr. SANGEETA VERMA

*Legal Advisor*
Dr. JASWANT SAINI
SHRI BHAGWAN VERMA

*Joint Editor*
Dr. PRIYANKA SINGH

*Office Assistant*
JITENDER GIRDHAR

*Computer Operator*
MS. NEHA VERMA

- The responsibility of the originality of the articles/papers shall be of the author.
- The editor does not owe any kind of responsibility in this regard

Dr. Kiran Mishra
*Guest Editor*

Dr. Hari Sharan Verma
*Chief Editor*

Dr. Raj Narayan Shukhla
*Editor*

Dr. Sangeeta Verma
*Managing Editor*

मानविकी शोध पीठ प्रारम्भ सोसायटी,
गाज़ियाबाद द्वारा संचालित

**प्रकाशक : डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक**
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ० प्र०)
**दूरभाष** : 9910777969
***E-mail :*** *harisharanverma1@gmail.com*
WWW.IJSCJOURNAL.COM

**सहयोग राशि (भारत में)**

(व्यक्तिगत) (आजीवन 4100 रुपये)
(संस्थागत) (आजीवन 6100 रुपये)

**विदेश में :–**

(व्यक्तिगत) 26 यू.एस. डॉलर (आजीवन) (संस्थागत) 32 यू.एस. डॉलर (आजीवन)

कृपया सहयोग राशि बैंक ड्राफ्ट से ही भेजें।

बैंक ड्राफ्ट, संपादक "इण्डियन जर्नल ऑफ सोशन कन्सर्न्स" के पक्ष में देय होगा। आजीवन सदस्यता केवल दस वर्षों के लिए मान्य होगी। यदि किसी कारणवश पत्रिका का प्रकाशन बन्द हो जाता है तो आजीवन सदस्यता स्वतः ही समाप्त हो जायेगी।

**संपादकीय कार्यालय :**

1. **डॉ० हरिशरण वर्मा, प्रधान सम्पादक**
F-120, सेक्टर–10, DLF, फरीदाबाद (हरियाणा)
*harisharanverma1@gmail.com* 09355676460
WWW.IJSCJOURNAL.COM

2. **डॉ० राजनारायण शुक्ला, सम्पादक**
SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०)

**क्षेत्रीय सम्पादक**

1. डॉ० वाई.आर. शर्मा, A-24, रेजिडेंसल कैम्पस, न्यू कैम्पस, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू–180001, फोन : 09419145967
2. डॉ0 सलमा असलम, ओल्ड टाउन बारामुला, कश्मीर पिन– 193101, मौ0 9682162934
3. डॉ0 आरती लोकेश P.o.Box 99846, Dubai, UAE 97150-4270752
4. श्री मोहनलाल, 11 अशोक विहार, संजय नगर, पो. इज्जत नगर बरेली (उ०प्र०) फोन : 09456045552
5. श्री जितेन्द्र गिरधर, कार्यालय सहायक 105/26 जवाहर नगर, कॉपरेटिव बैंक के पीछे, रोहतक 09896126686
6. डॉ0 विमला देवी, सहायक प्रोफेसर (इतिहास) स्वामी विवेकानन्द राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय लोहाघाट चंपावत (उत्तराखण्ड)–262524 – 9411900411
7. डॉ0 प्रिया कपूर, सहायक प्रोफेसर, डी0 ए0 वी शताब्दी कालेज, फरीदाबाद मौ0 9711196954
8. डॉ0 किरण मिश्रा, सहायक प्रोफेसर, हिन्दी, राम गुलाम राय पी0 जी0 कालेज, देवरिया गोरखपुर–273001 मौ0 :7007018819
9. डॉ0 ऊषा रानी, हिन्दी –विभाग हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला –5
10. डॉ0 रविन्द्र सिंह, सहायक अध्यापक, हिन्दी श्री हरिहर इंटर कांलेज पटवारा टोडी फतेहपुर (झाँसी) उत्तर–प्रदेश
11. विमला टोप्पो, एस0 आर0 इंटरप्राइसेस म्युनिसिपल काम्पलेक्स सोप न0 4, डेरी फार्म, पोर्ट बलेयर, पी0 ओ0 जंगली घाट –744103 साउथ अंडमान

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक एवं मुद्रक डॉ० राजनारायण शुक्ला द्वारा आदर्श प्रिंट हाऊस, बी–३२, महेन्द्रा एन्क्लेव, शास्त्री नगर, गाजियाबाद में मुद्रित कराकर, SH, A-5, कविनगर, गाजियाबाद (उ०प्र०) से प्रकाशित।
**सम्पादक** : डॉ० राजनारायण शुक्ला। **पंजीकरण संख्या** : ISSN-2231 - 5837

**संरक्षक मण्डल :**

1. **डॉ0 दिनेश मणी त्रिपाठी**, प्रधानाचार्य एन0 पी0 के0 आई कालेज, सरदार नगर बसडीला (गोरखपुर) उ0प्र0
2. **डॉ० राजेन्द्र सिंह,** (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय राहतक
3. **डॉ० रमेशचन्द लवानिया,** (पूर्व अध्यक्ष हिन्दी विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद
4. **डॉ० वाई.आर.शर्मा,** (राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू)
5. **डॉ0 सुंधांशु कुमार शुक्ल** चेयर हिन्दी, आई. सी. सी. वार्सा विश्वविद्यालय, वार्सा (पोलैन्ड) मौ0 48579125129

**परामर्शदात्री समिति :**

1. **डॉ० नरेश मिश्रा** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
2. **डॉ० सुधेश** (पूर्व आचार्य, हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली)
3. **डॉ० गिरिराजशरण अग्रवाल** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, वर्धमान कॉलेज, बिजनौर)
4. **डॉ० राजकुमारी सिंह,** प्रोफेसर एफ.टी.एम. विश्वविद्यालय लोधीपुर राजपूत मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश 9760187147
5. **डॉ० जंगबहादुर पाण्डेय,** (प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग) रांची विश्वविद्यालय, रांची–**834008**
फोन : 09431595318
6. **डॉ० माया मलिक,** (प्रोफेसर हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
7. **डॉ० ममता सिहल,** (एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा अंग्रेजी विभाग) जे०वी० जैन कॉलेज सहारनपुर

**संपादकीय विशेषज्ञ समिति :**

*हिन्दी विभाग:*

1. **डॉ० राजेश पाण्डे** (डी.वी. कॉलेज, उरई, जिला जालौन, उ०प्र०)
2. **डॉ० संजीव कुमार,** प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ० सुशील कुमार शर्मा** (अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय शिलांग, मेघालय)
4. **डॉ० शशि मंगला,** पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
5. **डॉ० के०डी० शर्मा,** एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म स्नातकोत्तर महाविद्यालय, पलवल
6. **डॉ० उत्तरा गुप्ता** (पूर्व रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, आर. एन. कॉलेज, मेरठ)
7. **मुकेश चन्द्र गुप्ता** (हिन्दी विभाग, एम.एच.पी.जी. कॉलेज, मुरादाबाद)
8. **डॉ० गीता पाण्डेय** (रीडर एवं अध्यक्षा, हिन्दी विभाग, एस.डी.

कॉलेज, गाजियाबाद)

9. **डॉ० प्रवीण कुमार वर्मा** (सह प्रोफेसर) हिन्दी विभाग, गोस्वामी गणेशदत्त सनातन धर्म महाविद्यालय, पलपल
10. **कु० महाविद्या उपाध्याय** (हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, आरोना (गुना) म०प्र०)
11. **डॉ० रूबी,** प्रोफेसर हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर (कश्मीर) 09419058585
12. **डॉ0 सुमन राठी,** सहायक प्रो0 हिन्दी विभाग, मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक
13. **डॉ० अनिल कुमार विश्वकर्मा** (जनता महाविद्यालय अजीतमल, औरेया, उ०प्र०)
14. **डॉ० एम. के. कलशेट्टी,** हिन्दी विभाग, श्री माधवराव पाटिल महाविद्यालय, मुरूम तह० अमरगा, जिला उस्मानाबाद (महाराष्ट्र)–413605
15. **डॉ० मनोज पंड्या,** व्याख्याता हिन्दी विभाग, श्री गोविन्द गुरु, राजस्थान महाविद्यालय, बांसवाड़ा–327001, मो० 09414308404
16. **डॉ. कृष्णा जून,** प्रो० हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
17. **डॉ. विपिन गुप्ता,** सहायक प्रोफेसर, वैश्य कॉलेज भिवानी
18. **डॉ० सीता लक्ष्मी,** पूर्व प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, आन्ध्र विश्वविद्यालय, विशाखापट्टनम, आन्ध्रप्रदेश
19. **डॉ० जाहिदा जबीन,** ( प्रो0 एवं अध्यक्षा, प्रो0, हिन्दी विभाग कश्मीर विश्वविद्यालय, श्रीनगर–६)
20. **डॉ० टी०डी० दिनकर,** (एसो० प्रो० एवं अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, अग्रवाल कॉलेज, बल्लभगढ़)
21. **डॉ० सुभाष सैनी,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग दयालसिंह कॉलेज, करनाल, हरियाणा
22. **डॉ० उर्विजा शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग शम्भु दयाल स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, गाजियाबाद
23. **डॉ० कामना कौशिक,** (सहायक प्रोफेसर हिन्दी विभाग एम.के. स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, सिरसा 09896796006
24. **डॉ० मधुकान्त,** (वरिष्ठ साहित्यकार) 211- L मॉडल टाऊन, रोहतक
25. **डॉ0 कंचन विभागध्यक्ष,** रघुनाथ गर्ल्स पी0 जी0 कालेज मेरठ
26. **डॉ0 प्रवेश कुमारी** , सहायक प्रो0 हिन्दी बाबा मस्तराथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर रोहतक

### *अंग्रेजी विभाग:*

1. **डॉ. ममता सिहल, अध्यक्षा,** अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन कॉलिज, सहारनपुर, उ.प्र.
2. **डॉ. रणदीप राणा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ. जयबीर सिंह हुड्डा, प्रोफेसर,** अंग्रेजी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
4. **डॉ० रविन्द्र कुमार,** एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष अंग्रेजी विभाग, चौ० चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ
5. **डॉ. अनिल वर्मा** (पूर्व रीडर, अंग्रेजी विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर)
6. **डॉ. जे.के. शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, अंग्रेजी विभाग, एस.जे.के कॉलेज, कलानौर (रोहतक)
8. **डॉ. पी.के. शर्मा,** (प्रो., अंग्रेजी–विभाग, राजकीय के.आर.जी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ग्वालियर)
9. **डॉ. गीता रानी शर्मा,** (सहायक प्रोफेसर) गो.ग.दत्त सनातन धर्म कॉलेज, पलवल
10. **डॉ. किरण शर्मा,** (एसोसिएट प्रोफेसर) राजकीय स्नातकोत्तर महिला महाविद्यालय रोहतक

### *वाणिज्य विभाग:*

1. **डॉ० नवीन कुमार गर्ग** (वाणिज्य विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० ए.के. जैन,** रीडर (वाणिज्य विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर)
3. **डॉ० दिनेश जून,** एसोसिएट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, फरीदाबाद
4. **डॉ० एम.एल. गुप्ता,** (पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, वाणिज्य एवं व्यवसायिक प्रशासन संकाय, एस.एस.वी. स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हापुड़ एवं संयोजक–शोध उपाधि समिति एवं संयोजक बोर्ड ऑफ स्टीडिज चौधरी चरणसिंह विश्वविद्यालय, मेरठ)
5. **डॉ० वजीर सिंह नेहरा,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
6. **डॉ० संजीव कुमार,** प्रोफेसर वाणिज्य विभाग, म.द.वि. रोहतक
7. **डॉ. गीता गुप्ता,** ( सहायक प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, वैश्य महिला महाविद्यालय, रोहतक)
7. **डॉ. नरेन्द्रपाल सिंह,** ( एसोसिएट प्रोफेसर) वाणिज्य विभाग, साहू जैन कॉलेज, नजीबाबाद, उ.प्र.)

### *राजनीति शास्त्र विभाग:*

1. **साकेत सिसोदिया,** (राजनीति शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
2. **डॉ० रोचना मित्तल** (रीडर एवं अध्यक्षा, राजनीति शास्त्र–विभाग, शम्भु दयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
3. **डॉ० कौशल गुप्ता,** एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, देशबन्धु महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली **Mob.: 09810938437**
4. **डॉ०पी.के. वार्ष्णेय**, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, जे.वी.जैन कॉलेज, सहारनुपुर
5. **डॉ० सुदीप कुमार,** सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, पेहवा (कुरुक्षेत्र) **Mob.: 9416293686**
6. **डॉ० वाई०आर० शर्मा,** एसो० प्रो०, राजनीति शास्त्र विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू (कश्मीर)
7. **डॉ. रेनू राणा,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीति शास्त्र विभाग, पं. नेकीराम शर्मा राजकीय महाविद्यालय रोहतक 124001
8. **डॉ. ममता देवी,** (सहायक प्रोफेसर, राजनीतिक शास्त्र विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

### *इतिहास विभाग:*

1. **डॉ० भूकन सिंह** (प्रवक्ता, इतिहास विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० मनीष सिन्हा,** पी.जी. विभाग, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार–824231
3. **डॉ० राजीव जून,** सहायक प्रो० इतिहास, सी.आर इन्स्टीट्यूट ऑफ ला, रोहतक
4. **डॉ० मीनाक्षी** (सहायक प्रोफेसर इतिहास विभाग) सी.आर. किसान कॉलेज, जीन्द

### *भूगोल विभाग:*

1. **डॉ० पी.के शर्मा,** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, भूगोल विभाग, जे.वी. जैन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सहारनपुर
2. **रश्मि गोयल** (भूगोल विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद)
3. **डॉ० भूपेन्द्र सिंह,** एसोसिएट प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजकीय पी.जी. कॉलेज, हिसार
4. **डॉ० विनीत बाला,** सहायक प्रो. भूगोल विभाग, वैश्य पी.जी. कॉलेज, रोहतक
5. डॉ0 प्रदीप कुमार शर्मा, सहायक प्रोफेसर, बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर, रोहतक

### *शिक्षा विभाग:*

1. **डॉ० उमेन्द्र मलिक,** एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, म.द.वि. , रोहतक
2. **डॉ० संदीप कुमार,** सहायक प्रो० शिक्षा विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
3. **डॉ० तपन कुमार बसन्तिया,** एसोसिएट प्रोफेस, सैंटर फॉर एजुकेशन, सैट्रल यूनिवर्सिटी ऑफ साउथ विहार, गया कैम्या, विनोभा नगर, वार्ड नं. **29**, **Behind ANMCH** मगध कालोनी, गया–**823001**बिहार**Mob.: 09435724964**
4. **डॉ० (प्रो०) अनामिका शर्मा,** प्राचार्या, एम.आर. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, फरीदाबाद
5. **डॉ० मनोज रानी,** सहायक प्रोफेसर (अंग्रेजी) एम.एल.आर.एस. कॉलिज ऑफ एजुकेशन, चरखी दादरी (भिवानी)
6. **डॉ० अनीता ढाका,** (प्राचार्या, आर.जी.सी.ई. कॉलेज, ग्रेटर, नोएडा।)
7. **डॉ० ममता देवी,** (सहा. प्रो. बी.आई.एम.टी. कॉलेज कमालपुर गढ़ रोड़, मेरठ)

### *शारीरिक शिक्षा विभाग:*

1. **डॉ० राजेन्द्र प्रसाद गर्ग,** एसोसिएट प्रोफेसर शारीरिक शिक्षा विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० सरिता चौधरी,** सहायक प्रोफेसर, शारीरिक शिक्षा विभाग, आर्य गर्ल्ज कॉलेज, अम्बाला कैंट, हरियाणा
3. **डॉ० वरुण मलिक,** सहायक प्रोफेसर, म.द.वि., रोहतक
4. **डॉ० सुनील डबास,** (पद्मश्री व द्रोणाचार्य अवार्ड) HOD in physical education"DGC Gurugram

### *समाज शास्त्र विभाग:*

1. **प्रवीण कुमार** (समाजशास्त्र विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)
2. **डॉ० कमलेश भारद्वाज,** समाज शास्त्र विभाग, एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद

### *मनोविज्ञान विभाग:*

1. **डॉ० चन्द्रशेखर,** सहायक प्रोफेसर साईक्लोजी विभाग, जम्मू विश्वविद्यालय, जम्मू
2. **डॉ. रश्मि रावत,** (मनोविज्ञान विभाग, डी.ए.वी. कॉलेज, देहरादून)
3. **अनिल कुमार लाल** (प्रवक्ता, मनोविज्ञान विभाग, शम्भुदयाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजियाबाद)

### *अर्थशास्त्र विभाग:*

1. **डॉ० जसवीर सिंह** (पूर्व रीडर अर्थशास्त्र विभाग, किसान स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मवाना)
2. **डॉ० सुशील कुमार** (एस.डी. कॉलेज, गाजियाबाद, उ०प्र०)
3. **डॉ० अखिलेश मिश्रा** (प्राध्यापक, अर्थशास्त्र–विभाग, एस.डी.पी.जी. कॉलेज, गाजियाबाद)
4. **डॉ० सत्यवीर सिंह सैनी,** एसो०प्रो० (अर्थ०वि०, गो०ग० सनातन धर्म पी०जी० कॉलेज, पलवल)
5. **डॉ० सारिका चौधरी,** अध्यक्ष अर्थशास्त्र विभाग, दयाल सिंह कॉलेज करनाल

### *विधि विभाग:*

1. **डॉ० नरेश कुमार,** (प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
2. **डॉ० विमल जोशी,**पूर्व प्रोफेसर, विधि–विभाग भगत फूलसिंह महिला विश्वविद्यालय खानपुर, सोनीपत)

3. **डॉ० जसवन्त सैनी,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
4. **डॉ० वेदपाल देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
5. **डॉ. अशोक कुमार शर्मा,** एसो. प्रोफेसर, विधि विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
7. **डॉ० सत्यपाल सिंह,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महाष दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
8. **डॉ० सोनू,** (सहायक प्रोफेसर, विधि–विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक)
9. **डॉ० अर्चना वशिष्ठ,** (सहायक प्रोफेसर, के०आर० मंगलम विश्वविद्यालय, सोहना रोड, गुरुग्राम)
10. **डॉ० आनन्द सिंह देशवाल,** (सहायक प्रोफेसर, सी०आर० कॉलेज ऑफ लॉ रोहतक)
11. **अनसुईया यादव,** (सहायक प्रोफेसर, विधि विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा)

### *गणित विभाग:*

1. **डॉ० विनोद कुमार,** रीडर एवं अध्यक्ष गणित विभाग, जे.वी. जैन कॉलेज, सहारनपुर
2. **डॉ० विरेश शर्मा,** लेक्चरर गणित विभाग, एन.ए.एस. कॉलेज, मेरठ
3. **डॉ0 सलौनी श्रीवास्तव** सहायक प्रो0, गणित विभाग आर0 बी0 एस0 कालेज आगरा

### *कम्प्यूटर विभाग:*

लेज, भरतपुर, राजस्थान

1. **प्रो० एस.एस. भाटिया** (अध्यक्ष, स्कूल ऑफ मैथमेटिक्स एण्ड कम्प्यूटर एप्लीकेशन, थापर विवि, पटियाला)
2. **सर्वजीत सिंह भाटिया** (प्रवक्ता, कम्प्यूटर साईंस, खालसा कॉलेज, पटियाला)
3. **डॉ० बालकिशन सिंहल,** सहायक प्रोफेसर, कम्पयूटर विभाग, म०द०विश्वविद्यालय, रोहतक

### *संस्कृत विभाग:*

1. **डॉ० रामकरण भारद्वाज** पूर्व रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)
2. **डॉ० सुनीता सैनी,** एसो0 प्रोफेसर संस्कृत विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
3. **डॉ० साधना सहाय** पूर्व प्राचार्या, नेशनल इस्माईल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मेरठ
4. **डॉ० सुमन,** (सहायक प्रोफेसर, संस्कृत–विभाग, आदर्श महिला महाविद्यालय, भिवानी ।)
5. **डॉ0 दिनेश मणि त्रिपाठी {प्रधानाचार्य}** एल ० पी ० के ० इंटर कॉलेज सरदार नगर बसडिला {गोरखपुर}
6. **डॉ0 दानपति तिवारी,** प्रोफेसर, एवं अध्यक्ष, साकेत पी0जी0 कालेज, अयोध्या, उत्तर–प्रदेश

### *रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग:*

1. **डॉ० आर०एस० सिवाच,** पूर्व प्रो० एवं अध्यक्ष, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, म०द०वि०, रोहतक

### *दृश्यकला विभाग:*

1. **डॉ० सुषमा सिंह,** पूर्व प्रोफेसर, दृश्यकला विभाग, म०द० विश्वविद्यालय, रोहतक

### *पंजाबी विभाग:*

1. **डॉ० सिमरजीत कौर,** सहायक प्रो० (पंजाबी), ईश्वरजोत डिग्री कालेज, पेहवा (कुरूक्षेत्र)

### *संगीत विभाग:*

1. **डॉ० संध्या रानी,** अध्यक्षा, संगीत विभाग, यूआरएलए, राजकीय पीजी कॉलेज, बरेली
2. **डॉ० हुकमचन्द,** पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष तथा डीन, संगीत विभाग महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक, हरियाणा
3. **डॉ. अनीता शर्मा,** (संगीत–गायन प्राध्यापिका, जयराम महिला महाविद्यालय लोहारमाजरा (कुरुक्षेत्र)
4. **डॉ. वन्दना जोशी,** (सहायक प्राध्यापक, विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग, एस.एस.जे. परिसर, अल्मोड़ा)

### *पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग:*

1. **डॉ० सरोजनी नंदल,** प्रोफेसर (पत्रकारिता एवं जन संचार विभाग) महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

### *उर्दू विभाग:*

1. **डॉ० मो. नूरूल हक,** (एसोसिएट प्रोफेसर, विभागाध्यक्ष, उर्दू, बरेली कॉलेज, बरेली)
2. **डॉ0 हुमा मसूद,** उर्दू विभागाध्यक्षा, इस्माईल नशनल महिला , पी0 जी0 कालिज, मेरठ, 94116433814

---

## An update on UGC - List Journals

The UGC List of Journals is a dynamic list which is revised periodically. Initially the list contained only journals included in Scopus, Web of Science and Indian Citation Index. The list was expanded to include recommendations from the academic community. The UGC portal wasa opended twice in 2017 to universities to upload their recommendations based on filtering criteria available at https://www.ugc.ac.in/journallist/methodology.pdf. The UGC approved list of Journals is considered for recruitment, promotion and career advancement not only in universities and colloges but also other institutions of higher education in India. As such, it is the responsibillity of UGC to curate its list of approved journals and to ensure the it contains only high-quality journals.

To this end, the Standing Committee on Notification on Journals removed many poor quality/ predatory/questionable journals from the list between 25th May 2017 and 19th Septemeber 2017. This is an ongoing process and since then the Committee has screened all the journals recommended by universities and also those listed in the ICI, which were re-evaluated and rescored on filtering criteria defined by the Standing Committee. Based on careful and analysis, 4,305 journals were removed from the current UGC-Approved list of Journals on 2nd May, 2018 because of poor quality/incorrect or insufficient information/ false claims.

The Standing Committee reiterates that removal/non-inciusion of a journal does not necessarily indicate that it is of poor quality, but it may also be due to non-availability of information such as details of editorial board, indexing information, year of its commencement, frequency and regularity of its publication schedule, etc. It may be noted that a dedicated web site for journals is once of the primary criteria for inclusion of journals. The websites should provide full postal addresses, e-mail addresses of chief editor and editors, and at least some of these addresses ought to be verifiable official addresses. Some of the established journals recommended by universities that did not have didicated websites, or websites that have not been updated, might have bee dropped from the approved list as of now. However, they may be considered for re-inclusion once they fulfil these basic criteria and are re-recommended by universities.

The UGC's Standing Committee on Notification on Journals has also decided that the recommendation portal will be opened once every year for universites to recommend journals. However, from this year onwards, every recommendation submitted by the universities will be reviewed under the supervision of Standing Committee on Notification of Journals to ascertain that only good-quality journals, with correct publication details, are included in the UGC approved list.

**The UGC would also like to clarity that 4,305 journals which have been removed on 2nd May, 2018 were UGC-approved journals till that date and, as such, articles published/accepted in them prior to 2nd May 2018 by applicants for recruitment/promotion may be considered and given points accordingly by universities.**

The academic community will appreciate that in its endeavour to curate its list of approved journals, UGC will enrich it with high-quality, peer-reviewed journals. Such a dynamic list is to the benefit of all.

## LIFE MEMBERS OF INDIAN JOURNAL OF SOCIAL CONCERNS

1. **Dr. Praveen Kumar Verma**
Associate Professor, Hindi Department, GGD Sanatan Dharam Post Graduate College, Palwal.

2. **Smt. Veena Pandey (Shukla)**
Hindi Teacher, Jawahar Navodya Vidyalya, Dhoom Dadri, Distt. Gautambudhnagar - 203207 (U.P.)

3. **Dr. Kiran Sharma**
Asso.Professor, English Department, Govt. P.G. College (Women), Rohtak (Haryana)

4. **Dr. Narayan Singh Negi**
H.No. 15, Umracoat, langasu-246446, Distt. Chamoli, Uttrakhand.

5. **Dr. Sarika Choudhary**
Head Department of Economics, Dyal Singh College, Karnal (Haryana)

6. **Dr. Suman**
H.No. 1001, Radha Swami Colony, Rohtak Road, Bhiwani (Haryana)

7. **Dr. Reshma Singh**
Assistant Professor, English Department, J.V. Jain College, Saharanpur (U.P.)

8. **Dr. Savita Budhwar**
Assistant Professor, K.V.M. Narsing College, Rohtak.
H.No. 196/29, Gali No. 9, Ram Gopal Colony, Rohtak.
Mob. 9996363764

9. **Principal**
Sat Jinda Kalyana College, Kalanaur (Rohtak, Haryana) 124113

10. **Dr. Renu Rana**
Assistant Professor Department of (Political Science) Pt. Nekiram Sharma Govt. College Rohtak-124001
H.No. 1355, Sect-2, Rohtak

11. **Dr. Mamta Devi**
Assistant Professor Department of Polt. Science Hindu Girls College, Sonepat (Haryana)
H. No. 2066, Sect. 2 (P), Rohtak 124001

12. **Dr. Subhash Chand Saini** (Hindi Department, Dyal Singh College, Karnal, Haryana

13. **Dr. Sarita Dahiya** (Department of Education, Maharshi Dayanand University, Rohtak 8222811312

14. **Dr. Vimla Devi,** Assistant Professor (History), Swami Vivekanand Govt. (PG) College, Lohaghat, Champawat (Uttrakhand)

15. **Princepal,** Associat Professor (Hindi), Aggarwal College, Ballabhgarh (Haryana)

16. **Dr. Dinesh Mani Tirpathi (Principal)** L-P=-K Inter College sardar Nagar, Basdila Gorkhpur

# सम्पादकीय

डॉ0 किरन मिश्रा

केंद्रीय मंत्रिमंडल ने आखिरकार नई शिक्षा नीति को मंजूरी देकर शिक्षा व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन की प्रक्रिया शुरु कर दी। अभी देश में 34 साल पहले बनी शिक्षा नीति लागू थी। इस बीच देश, दुनिया और समाज का पूरा ताना–बाना बदल गया, उद्योगों की संरचना बदल गई, जीवननई नीति में जितने व्यापक स्तर पर बदलाव की घोषणा की गई है, उसे देखते हुए कम से कम एक बात विश्वासपूर्वक कही जा सकती है कि सरकार ने बदलावों को लेकर किसी भी तरह की हिचक नहीं दिखाई है। चाहे शिक्षा व्यवस्था का दायरा बढ़ाते हुए उसमें तीन साल के प्री–स्कूलिंग पीरियड को शामिल करने की बात हो, या कम से कम पांचवीं तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या स्थानीय अथवा क्षेत्रीय भाषा को बनाने की, ऐसे तमाम बड़े–बड़े फैसले इसमें शामिल हैं जिन पर समाज में तीखी बहस होती रही है। व्यवहार बदल गया, सबकी जरूरतें बदल गईं। जाहिर है इन तमाम बदलावों के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था में भी सुधार की जरूरत थी। नई नीति में जितने व्यापक स्तर पर बदलाव की घोषणा की गई है, उसे देखते हुए कम से कम एक बात विश्वासपूर्वक कही जा सकती है कि सरकार ने बदलावों को लेकर किसी भी तरह की हिचक नहीं दिखाई है। चाहे शिक्षा व्यवस्था का दायरा बढ़ाते हुए उसमें तीन साल के प्री–स्कूलिंग पीरियड को शामिल करने की बात हो, या कम से कम पांचवीं तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या स्थानीय अथवा क्षेत्रीय भाषा को बनाने की, ऐसे तमाम बड़े–बड़े फैसले इसमें शामिल हैं जिन पर समाज में तीखी बहस होती रही है।नई नीति में जितने व्यापक स्तर पर बदलाव की घोषणा की गई है, उसे देखते हुए कम से कम एक बात विश्वासपूर्वक कही जा सकती है कि सरकार ने बदलावों को लेकर किसी भी तरह की हिचक नहीं दिखाई है। चाहे शिक्षा व्यवस्था का दायरा बढ़ाते हुए उसमें तीन साल के प्री–स्कूलिंग पीरियड को शामिल करने की बात हो, या कम से कम पांचवीं तक शिक्षा का माध्यम मातृभाषा या स्थानीय अथवा क्षेत्रीय भाषा को बनाने की, ऐसे तमाम बड़े–बड़े फैसले इसमें शामिल हैं जिन पर समाज में तीखी बहस होती रही है।केंद्रीय मंत्रिमंडल ने आखिरकार नई शिक्षा नीति को मंजूरी देकर शिक्षा व्यवस्था में आमूल–चूल परिवर्तन की प्रक्रिया शुरु कर दी। अभी देश में 34 साल पहले बनी शिक्षा नीति लागू थी। इस बीच देश, दुनिया और समाज का पूरा ताना–बाना बदल गया, उद्योगों की संरचना बदल गई, जीवन व्यवहार बदल गया, सबकी जरूरतें बदल गईं। जाहिर है इन तमाम बदलावों के अनुरूप शिक्षा व्यवस्था में भी सुधार की जरूरत थी।मातृभाषा में शिक्षा को ही लिया जाए, तो ऐसा कहने वालों की कमी नहीं है कि अंग्रेजी का ज्ञान 21वीं सदी के भारत की सबसे बड़ी ताकत रहा है। अपनी इसी क्षमता के बूते भारतीयों ने आईटी के क्षेत्र में दुनिया भर में अपने झंडे गाड़े, लेकिन विशेषज्ञ काफी पहले से कहते रहे हैं कि शुरुआती उम्र में मातृभाषा में पढ़ाई बच्चों के सहज व तेज मानसिक विकास में सहायक होती है। दूसरी बात यह कि अंग्रेजी मीडियम स्कूलों का जो क्रेज इस बीच बना है, उसने बच्चों के बीच खाई चौड़ी कर समाज को कई स्तरों पर नुकसान पहुंचाया है।

मातृभाषा में शुरुआती पढ़ाई का प्रचलन इस खाई को थोड़ा–बहुत भी पाटता है तो सबके लिए अच्छा होगा। इसी तरह कॉलेज स्तर पर भी अंडरग्रैजुएट कोर्स को तीन या चार साल का और एम.ए. को एक साल का करने से लेकर मल्टिपल एग्जिट की व्यवस्था करने तक ऐसे अनेक कदम उठाए गए हैं जो भारतीय शिक्षा व्यवस्था के लिए बाकी दुनिया से तालमेल बनाते हुए चलना आसान बनाएंगे। हां, इसमें कुछ ऐसी घोषणाएं भी कर दी गई हैं जो पहली नजर में रस्मी लगती हैं और जिनके अमल में आने को लेकर संदेह स्वाभाविक है। उदाहरण के लिए इसमें शिक्षा पर जीडीपी का छह फीसदी खर्च करने की बात है जो आजादी के बाद से ही दोहराई जाती रही है।

**डॉ0 किरन मिश्रा**
(शिक्षा विद. प्रवक्ता हिंदी)
राजकीय कॉलेज (बेदुपर) कुशीनगर मंडल
गोरखपुर यू 0 पी 0

# अतिथी सम्पादक परिचय

डॉ0 किरन मिश्रा

(शिक्षा विद. प्रवक्ता हिंदी)

राजकीय कॉलेज( बेदुपर) कुशीनगर मंडल

गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

शिक्षा –बी. ए. एम. ए. बी. एड. एम. एड.

पी. एच. डी. नेट (यू.जी.सी)

जन्म स्थान –कुशीगर (उत्तर प्रदेश)

सम्प्रति – दर्जनों हिंदी पत्र पत्रिकाए

राष्ट्रीय एवम् अंतर राष्ट्रीय शोध पत्रिकाओं में शोध लेख प्रकाशित

हिंदी साहित्य की 3 पुस्तक प्रकाशित

2001 से अध्यापन कार्य में कार्यरत

# अनुक्रमणिका


| क्र. | विषय | लेखक | पृष्ठ स. |
|---|---|---|---|
| 1. | माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में निरुपित राजनीतिक चेतना | नीलम देवी | 12–14 |
| 2. | कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रेम एवं अध्यात्म की सार्थकता | डॉ0 निर्भय शर्मा | 13–18 |
| 3. | दिनकर का नारी चिंतन | डॉ0 सुनीता कुमारी | 19–20 |
| 4. | A Study Into The Architectural Intricacies of The Nemesis of The Partition of India And The Genesis of The Islamic Republic of Pakistan | Dr. Laxmi Kant Tripathi | 21–24 |
| 5. | Light Music and Its Scope | Dr. Sarswati Negi | 25–28 |
| 6. | Grammar of Communal Politics During The National Movement of India (from 1757 To 1905) | Dr. Laxmi Kant Tripathi | 29–33 |
| 7. | Role of School in English Language Learning | Dr (Prof.) Punita Jha, Shibu V.R | 34–36 |
| 8. | समाज को आइना दिखाता–डॉ0 लक्ष्मण सिंह का काव्य | दिनेश | 37–38 |
| 9. | 90 का दशक और हिन्दी कविता | यतेन्द्र कुमार यादव | 38–42 |
| 10. | डॉ० लक्ष्मण सिंह के काव्य में चित्रित नारी व जन साधारण की समस्याएँ | दिनेश | 43–45 |
| 11. | साम्राज्यवाद की बुनियादी अवधारणा और साहित्य | यतेन्द्र कुमार यादव | 46–48 |
| 12. | मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' उपन्यास में नारी का सामाजिक संघर्षः– | सुमन | 49–51 |
| 13. | किसान जीवन से संबंधित हिन्दी कहानीकार | उषा देवी | 52–53 |
| 14. | भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण पर धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव | डॉ0 सविता मिश्र | 54–56 |
| 15. | स्वतंत्रता के पश्चात् किसान जीवन | उषा देवी | 57–58 |
| 16. | Impact and implications of Artificial Intelligence on Human Rights | Dr. Rajesh Hooda Dr. Mukesh Bala | 59–63 |
| 17. | जानकीजीवने प्रकृतिचित्रणम् | डिम्पल | 64–69 |
| 18. | I.Reason And Motor Provision In Motor Vehicles Amendment Amendment Bill,2019.. (safety of Pedestrians And Non-motorised Transport) | Dr. Santosh Kumar Sharma | 70–74 |
| 19. | जानकीजीवने मानवमूल्यानि | डिम्पल | 75–79 |
| 20. | अथर्ववेद में भूमि | डॉ. दानपति तिवारी | 80–82 |
| 21. | Stress-relieving effects of Yogic exercise by regulating respiratory rate | | 83–86 |
| 22. | शोध–प्रविधि (संस्कृत विषय के सन्दर्भ में) | डॉ0 दिनेशमणि त्रिपाठी | 87–89 |
| 23. | दलित साहित्य की अवधारण | समिता, डॉ0 जयशंकर तिवारी | 90–93 |
| 24. | आधुनिक भारत में सतत शिक्षा का एक मूल्यांकन | डॉ० नीरज कुमार, सुमन कुमारी | 94–97 |
| 25. | गवालियर घराने की संगीत परम्परा में राजा मानसिंह तोमर का योगदान | प्रियंका पाण्डेय | 98–100 |
| 26. | नारी व्यथा का दस्तावेज : डॉ. मुक्ता | मंजू, डॉ0 रामरती | 101–102 |
| 27. | मृदुला गर्ग की कहानियों में वृद्ध जीवन | डॉ0 प्रिया कुमारी | 103–106 |
| 28. | हिन्दी कहानी साहित्य में सांस्कृतिक युगबोध 21 वीं सदी का प्रथम दशक | डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा | 107–110 |
| 29. | डॉ0 मुक्ता के कथा साहित्य में सामाजिक संवेदना | मंजू, डॉ. रामरती | 111–113 |
| 30. | नाटक – सजीवता का पर्याय | मधु सिंगला | 114–115 |
| 31. | हिंदी की लोकप्रियता में विज्ञापन की भूमिका | प्रमिला देवी | 116–117 |
| 32. | मेवाती संस्कृति एवं लोक नाट्यः– | प्रो0 (डॉ0) जयकरण यादव | 118–119 |
| 33. | लोकगीत का स्वरूप और महत्त्व | डॉ0 कंचन पुरी | 120–122 |
| 34. | Title: Covid-19 Crisis and the Indian Economy | Dr. Deepa Juneja | 123–127 |
| 35. | प्राचीन हिन्दू विधि में दायभाग व्यवस्था | डॉ0 सुनीता देवी | 128–129 |
| 36. | बनारस घराने में तबले का उद्भव एवं क्रमिक विकास | डॉ0 गोविन्द सिंह बोरा, मेघा पन्त | 130–133 |
| 37. | डॉ0 हरिशरण वर्मा कृत नाटक संग्रह मंगलसूत्र में वृद्ध विमर्श | डॉ0 प्रवेश कुमारी | 134–136 |
| 38. | जनपद बदायूँ के विकास केन्द्रों एवं औद्योगिक सम्भाव्यता का भौगोलिक विश्लेषण | डॉ0 विवेक शर्मा | 137–141 |
| 39. | डॉ0 हरिशरण वर्मा के नाटकों में महिलाओं की स्थिति | डॉ0 सुमन राठी, पूनम | 142–143 |
| 40. | भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य में आधुनिक बोध | डॉ0 स्नेह लता गुप्ता | 144–147 |
| 41. | वर्तमान में समान नागरिक संहिता की उपादेयता | आकांक्षा पटेल | 148–150 |
| 42. | Universalisation of Commerce Education System Through Schooling Governance In Nep 2020 | Dr. Amit Agrawal and Dr. Vinai Kumar Sharma | 151–156 |
| 43. | दिल्ली घराने में गाई जाने वाली 200 प्रकार की तानें | डॉ0 जगदीश कुमार | 157–160 |
| 44. | Perspective for India: Post Reform Employment Experiences | Dr. Vinai Kumar Sharma, Dr. Pankaj Gambhir, Dr. Meenu Chaudhary | 161–167 |


अनुक्रमणिका

# अनुक्रमणिका

# अनुक्रमणिका


| क्र. | विषय | लेखक | पृष्ठ स. |
|---|---|---|---|
| 45. | ''बौद्ध धर्म दर्शन एवं वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता'' | डॉ0 रजत गंगवार | 168–171 |
| 46. | Ecotourism Industry In The World For Resources Conflicts And Environmental Preservation | Dr. Vinai Kumar Shanna and Dr. Amit Agrawal | 172–176 |
| 47. | ''फर्रुखाबाद के वंगश नबाब एवं 1857 की क्रान्ति में उनकी भूमिका'' | डॉ0 रजत गंगवार | 177–181 |
| 48. | Construction of Integrated Indian Market By Goods And Services Tax (gst) | Dr. Vinai Kumar Shanna and Dr. Amit Agrawal | 182–185 |
| 49. | काव्य में सौंदर्य विषयक दृष्टिकोण | डॉ0 अर्चना शर्मा | 186–189 |
| 50. | इस्माईल मेरठी की नज़्मों में आचार्य कौटिलय के नैतिक तत्त्वों का वर्णन | डॉ0 हुमा मसूद | 190–195 |
| 51. | Human Rights, Its Evolutions And Role of Human Rights Commission of India | Dr. Renu Chaudhary | 196–197 |
| 52. | वील्होजी की सामाजिक चेतना | सुषमा भारद्वाज | 198–199 |
| 53. | सादा जीवन उच्च विचार के विग्रह : देशरत्न | डॉ0 राजेंद्र प्रसाद<br>डॉ0 पुष्पा रानी | 200–201 |
| 54. | कालिदास के काव्यों में राजनीतिक संबंधी मंत्रिपरिषद् संगठन | सरोज | 202–203 |
| 55. | 'विवेकानन्द का जीवन–दर्शन एव संदेश | डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय | 204–206 |
| 56. | अभिज्ञानशाकुन्तलम और रघुवंश में विवाह | सरोज | 207–208 |
| 57. | कोशिश कहने की' गज़ल संग्रह की समीक्षा | डॉ० प्रवेश कुमारी | 209–210 |
| 57. | लेखिका–डॉ0 आरती लोकेश | डॉ0 निधि अग्रवाल–प्रस्तक समीक्षक | 211–211 |

1

# माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य में निरुपित राजनीतिक चेतना

नीलम देवी

**सारांश** –

कवि श्री माखनलाल चतुर्वेदी जी के काव्य में स्वतंत्रता संग्राम के प्रत्येक चित्र अपनी सम्पूर्ण जींवतता के साथ चित्रित है। चतुर्वेदी जी के काव्य में राष्ट्र स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाले नेताओं तथा समाज में घटित हो रही घटनाओं का जैसा चित्रण किया है, वैसा चित्रण उनके समकालीन व परवर्ती साहित्यकार नहीं कर पाए। इसका सबसे बड़ा कारण यही था कि समाज व राष्ट्र में जो घटित हो रहा था या जो घटनाएँ राष्ट्र को विचलित कर रही थी। श्री चतुर्वेदी जी उन सभी में प्रत्यक्ष रुप में जितनी प्रमाणिकता मिलती है वैसी किसी और कवि के काव्य में नहीं मिलती।

खींचो राम राज्य लाने को
भूमंडल पर त्रेता।
बनने दो आकाश छेद कर
उसको राष्ट्र विजेता [1]

इन पक्तियों के माध्यम से हम गाँधी जी के रामराज्य के स्वपन का श्री चतुर्वेदी ने अनुसरण किया है। तुलसीदास की रामराज्य की कल्पना गाँधी जी के मन में उदित हुई और गाँधी जी से प्रेरणा लेकर श्री चतुर्वेदी जी ने रामराज्य के लिए संधर्ष किया।

सत्ता और राजनीति जब–जब भी अपने लक्ष्य से भटकते है तब साहित्य उनका मार्गदर्शन करता है। स्वतंत्रता संग्राम के समय तक उत्थान के लिए संधर्शरत थी। लेकिन जैसे–जैसे देश स्वतंत्रत होता गया। विभिन्न संवैधानिक संगठनों का जन्म हुआ, वैसे–वैसे राजनीति सिर्फ सत्ता में लालच के लिए की जाने लगी। इस सत्ता और राजनीति की लालचभरी नीयति ने 1922 में पुष्प की अभिलाशा लिखने वाले कवि को इतना मजबूर कर दिया कि 1955–1960 तक आते–आते वह 'अन्धे तू परोस दे' की याचना करने लगा। [2]

संक्षेप में कहा जा सकता है कि राजनीतिक चेतना के अभाव में किसी भी राष्ट्र का विकास होना असंभव ही होता है। जैसे–जैसे राष्ट्र की राजनीतिक चेतना का विकास होता है वैसे–वैसे ही वह राष्ट्र प्रत्येक आयाम पर विकसित होता रहता है। साहित्यकार अपनी चेतना से शासक वर्ग के बारे में जैसा अनुभव करता है उसी को वह अपनी कलम से फिर आमजन में प्रस्तानिर करता है। ''साहित्य और राजनीति दो पृथक और विरोधी तत्त्व मान लेना किसी प्राचीन युग में उचित ना होता। आज के युग में वह मूर्खतापूर्ण तत्त्व सा ही है।'' साहित्यकार अपनी कलम की ताकत से शासक वर्ग को मज़बूर करता है कि वह लोककल्याणकारी योजनाएं बनाएं, समाज के अंतिम व्यक्ति तक को उसकी जीवन की मूलभूत सुविधाएं प्रदान करें।[3]

शब्दकुंज्जिका : राजनीतिक, साहित्य, प्रबुद्ध चिंतक, संधर्ष, आदर्शों, लोकतंत्र, वैयक्तिक्ता, आध्यात्मिक।

**राजनीतिक चेतना :**

राजनीति अपने आप में बहुत व्यापक शब्द है। 'राजनीति' शब्द का प्रथम प्रयोग 'अरस्तु' ने अपने पुस्तक 'पॉलिटिक्स' में किया था। 'पॉलिटिक्स' शब्द की उत्पत्ति पोलिश शब्द से हुई है, जिसका अर्थ होता है – नगर। मानक हिन्दी शब्दकोश में राजनीति के दो अर्थ दिए गए हैं :–

1. ''वह नीति या पद्धति विशेश जिसके अनुसार किसी राज्य का प्रशासन किया जाता है या होता है।
2. गुटों, वर्गों आदि की पारस्परिक स्पर्धा वाली स्वार्थपूर्ण नीति।''

अतः राजनीति के अंदर वो नीति–नियम होते हैं जिसके द्वारा शासन तंत्र चलाया जाता है। वहीं दूसरी ओर, ''राजनीतिक चेतना किसी देश अथवा राज्य विशेष के मानव–समाज की सुख–सुविधाओं का पर्याय है। किसी भी देश के नागरिक का यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वह अपने देश की शासन व्यवस्था, सामाजिक–आर्थिक उन्नति के विशय में सोच–विचार करे और तात्कालिक समस्याओं के संबंध में अपना मत व्यक्त करें।''

राजनीति और साहित्य का एक दूसरे पर व्यापक प्रभाव पड़ता है। हिन्दी साहित्य को भी राजनीतिक चेतना व्यापक स्तर पर प्रभावित करती रही है। ''भारत में राजनैतिक चेतना अंग्रेजी प्रशासन की प्रतिक्रिया स्वरूप उत्पन्न हुई थी। इस चेतना का स्पष्ट रुप हमें सन् 1857 की क्रांति में देखने को मिलता है। स्वाधीनता राजनीतिक चेतना का एकमात्र लक्ष्य भारत को पराधीनता की बेड़ियों से मुक्त करवाना था, किंतु यह भावना जन सामान्य की चेतना नहीं थी, ऐसे समय में नेताओं ने सर्वप्रथम राष्ट्रीय संघर्ष में भाग लेने के लिए जन–साधारण को आह्वान किया। इससे देश के सभी वर्गों में नवीन जागृति का संचार हुआ और लोग अपनी जान की परवाह किए बिना ही संघर्ष में कूद पड़े। राजनीतिक चेतना में समयानुसार परिवर्तन भी होता रहता है। यह परिवर्तन सकारात्मक या नकारात्मक किसी भी रुप में हो सकता है। सकारात्मक परिवर्तन के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि वह समाज को खुशहाल व विकसित बनाने में योगदान दें। इसके लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि समाज के प्रबुद्ध चिंतक राजनीतिक चेतना में सकारात्मक परिवर्तन के भागीदार बनें।

राजनीतिक परिस्थिति में युग चेतना का एक स्तर है, जो उसके निर्माण में सहयोग करती है। राजनीति से संबंध रखकर साहित्यकार किसी दल या विचारधारा विशेश का प्रचारक न बनकर युगीन प्रभावों, परिवर्तनों को आत्मसात्कर अपने साहित्य द्वारा सही उत्तरदायित्व का निर्वाह कर सकता है। युग के प्रति जागरुक सामाजिक, राजनीतिक परिवेश का सतरंगी चितेरा मानव मन का पारखी साहित्यकार भला राजनीतिक प्रभाव से अपने आप को कहीं मुक्त रख सकता है। इस प्रकार सजग साहित्यकार अपने साहित्य में राजनीतिक झांकी प्रस्तुत करता है। प्रेमचंद के शब्दों में राजनीतिक साहित्य के आगे चलने वाली मशाल है।

**राजनीति का अर्थ** –

'राजनीति' अर्थात् राज्य को चलाने वाली नीति! राजनीति क्या है ?तथा इसे कैसे समझा जा सकता है, यह प्रत्येक व्यक्ति के उपर निर्भर करता है। यहाँ कहने का सीधा सा तात्पर्य यह है कि हर व्यक्ति के लिए राजनीति का अर्थ एवं परिभाशा अलग–अलग होती है। अगर हम बात भारत के सन्दर्भ में करें तो हमें इसकी अलग ही छवि देखने को मिलती है।

स्वतत्रंता से पूर्ण जब भारत गुलामी की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था, तब अंग्रेजो ने 'फूट डालो व शासन करो' की नीति अपनाते हुए लोगों में फूट डालने का प्रयास किया तथा आपसी कलह को बढ़ावा दिया। अपना हित तथा अपना स्वार्थ पूरा करने के लिए गोरी हुकुमत किसी भी हद तक जाते थे। उन्हें किसी भी व्यक्ति की चिंता नहीं थी।

अपने लाभ को पूर्ण करना ही उनकी पहली प्राथमिकता होती थी। अंग्रेजो की क्रूरता पूर्ण नीतियाँ तथा अत्याचारों से भारतीय जनता का दम घुटता था। इसका एक कारण यह भी है कि तब हमारा देश स्वतत्रं नहीं था। यह बात सर्वसिद्ध तथा सर्वविदित है कि स्वतत्रंता सबके लिए महत्वपूर्ण है। आजादी की हवा में जो चैन, शांति तथा सुकून हमें मिलता है, वह अन्यत्र सभंव नहीं है।

पशु–पक्षियों तथा प्राणियों के लिए आजादी बेहद ही महत्वपूर्ण होती है। यही कारण है कि भारत को स्वतत्रं कराने में अनेकों क्रातिकारी तथा नेताओं ने अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया तथा देश को स्वतत्रं कराया।

भारतीय राजनीति का जो स्वरुप हमें आजादी से पहले देखने को मिलता था, वैसा स्वरुप आज सभंव नहीं है। इसका एक प्रमुख कारण यह है कि आज राजनीति का स्तर काफी ज्यादा गिर चुका है। भारतीय राजनीति की जो चमक पूरे विश्व में फैली हुई थी, वह चमक आज धूमिल हो चुकी है।

नैतिकता, सामाजिक मूल्य तथा आदर्शों की जो श्रेश्ठता हमें पहले की राजनीति में देखने को मिली थी, वह आज गायब है। राजनीति में अब सिर्फ सत्ता की चाह तथा पैसों का बाहुबल ही रह गया है। यह एक कड़वा सच है जो कि भारतीय राजनीति की सच्चाई को उजागर करता है। माखनलाल चतुर्वेदी ने राजनीति के क्षेत्र में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। राजनीति की जो छवि उनके युग में हमें देखने को मिलती है, वह आज दुर्लभ है।

साहित्य के साथ राजनीति का जो एक अद्भुत सगंम चतुर्वेदी जी के काव्य में हमें देखने को मिलता है, वह सर्वश्रेष्ठ है। दादा माखनलाल के आदर्श तथा नैतिक मूल्य उनकी राजनीतिक छवि को एक बेहतरीन छवि बनाती है। उनके वक्तव्य तथा फौलादी विचार लोगों में एक चेतना सी जगा देते थे।

आज राजनीति में दल–बदल, धर्म–जाति, मजहबी रंग तथा चुनावी धाधंली आदि समस्याएं हमें देखने को मिलती है। राजनीति में होने वाला भ्रश्टाचार तथा दल–बदल की नीति ने आम जनता का विश्वास चुनावों से हटा दिया है। आम जनमानस जो कि केवल मूलभूत सुविधाएँ तथा अपना विकास चाहता है, उसे केवल झूठे चुनावी वादे मिलते है।

राजनीति चेतना के अन्य पक्ष – राजनीति का अर्थ होता है किसी राज्य को चलाने की नीति यहाँ कहने का सीधा सा मतलब यह है कि राजनीति का अर्थ होता है – राज + नीति। किसी राज्य के तत्रं अर्थात् वहाँ के शासन व्यवस्था को चलाने वाली नीति। राजनीति के हमें कई पक्ष भी देखने को मिलते है जोकि निम्नलिखित है :–

1. धर्म – जाति तथा मजहबी रंग – अक्सर हमें एक बात सुनने को मिलती है, वो यह है कि – "मानवता का कोई धर्म नहीं होता है"।

लेकिन यह बात राजनीति में सटीक नहीं बैठती है। यह एक कड़वा सच है जोकि भारतीय राजनीति का एक अलग ही स्वरुप हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

भारतीय लोकतंत्र विश्व के सबसे बड़े लोकतंत्रो में एक है। भारतीय राजनीति व्यवस्था का विश्व में शायद ही कोई सानी हो। लेकिन इन सबके बावजूद हमें भारतीय राजनीति में अनेकों खामियां देखने को मिलती है। इनमें से एक प्रमुख खामी है – धर्म के नाम पर राजनीति करना। अगर हम बात चुनावों के समय पर नेताओं की करें तो नेताओं द्वारा धर्म जाति तथा मजहब का अधिक से अधिक प्रयोग हमें देखने का मिलता है। लोगों को धर्म एवं जाति के नाम पर बाँटने का प्रयास किया जाता है, लेकिन जनता नेताओं की इन कुटील नीतियों को हमेशा विफल कर देती है।

राजनीति का अपना एक अलग महत्व है। धर्म का कार्य मनुष्य में सद्भाव तथा नैतिकता का प्रसार करना है। राजनीति को धर्म से दूर रखना ही उचित है ताकि राजनीति में हमें धर्म के नाम पर टकराव हिंसा आदि घटनाएं देखने को ना मिलें।

2. भारतीय राजनीति में भाशा की भूमिका – भाषा की राजनीति करने वाले लोग भाशाई मतभेद उत्पन्न कर उसका राजनीतिक लाभ उठाते है। सामान्यतः भाषा की राजनीति राजनेताओं द्वारा की जाती है।

जिसमें कई नेता चाहे वे किसी अन्य भाषा में आमतौर पर बात करते हो, लेकिन जनता के सामने वो उनकी ही भाषा में बात करते है। जिससे जनता को विश्वास हो कि वह नेता उन्हीं का है। इस तरह का कार्य नेता अपना रिश्ता जनता से जोड़ने के लिए करते है। इसके अलावा भी कई प्रकार से भाषा की राजनीति की जाती है। किसी भी देश में उसकी भाशा के संरक्षण और विकास के लिए यह आवश्यक है कि उसी भाशा में सरकार कार्य करे और सभी सुविधाओं को भी उसी भाशा में प्राप्त किया जा सके।

भारतीय राजनीति के अनेक निहारिक तत्वों में से एक भाशा भी है। भाषागत आधार पर संकुचित भावनाएं, दबाव गुटों का उद्‌भव और भाषा के आधार पर राज्यों की मांग तथा राजनीतिक आंदोलन राश्ट्रीय एकता के लिए संकट उत्पन्न करते है।

भाषाई आधार पर समस्त विवादों के निवारण के लिए एक ऐसी सपंर्क भाशा की जरुरत है जो कि विभिन्न भाषा–भाषी व्यक्तियों को एकता के सूत्र में बांध सके।

माखनलाल की कविताओं में छायावादी रहस्य भावना का सगुण मधुरा भक्ति के साथ अजीब समन्वय दिखाई पड़ता है। उनका ईश्वर इतना निराकार नहीं है कि उसे वह नाना नाम रुप देकर उपलब्ध न कर सके।

वह खुदी को मिटाकर खुदा देखते हैं, इसी कारण उनकी रचनाओं में छायावादी वैयक्तिक्ता का एकांतिक स्वर तीव्र सुनाई नहीं पड़ता है, बीसवीं शती के प्रारंभिक दशक में ही चतुर्वेदी जी ने कविता लिखना आरंभ कर दिया था, पर आजादी के संधर्ष में सक्रियता का आवेश शनैः शनैः उम्र के चढ़ाव के साथ परवान चढ़ा।

जब वह बाल गंगाधर तिलक के क्रांतिकारी क्रिया कलापों से प्रभावित होने के बावजूद महात्मा गाँधी के भी अनुयायी बने। उन्होंने राश्ट्रीय चेतना को राजनीतिक वक्तव्यों से बाहर निकाला, राजनीति को साहित्य सृजन की टंकार से राष्ट्रीय रगंत बख्शी और जन साधारण को जतलाया कि यह राष्ट्रीयता गहरे मानवीय सरोकारों से उपजती है जिसका अपना एक संवेदनशील एवं उदान्त मानवीय स्वर होता है जहां तक उनकी आरंभिक रचनाओं का सवाल है, माखनलाल जी की आरंभिक रचनाओं में भक्ति परक अथवा आध्यत्मिक विचार प्रेरित कविताओं का भी काफी महत्वपूर्ण स्थान है।

**निष्कर्ष** – दादा माखनलाल चतुर्वेदी हिन्दी के उन थोड़े बहुत कवियों में है जिन्होनें राजनीति में सक्रिय भाग लिया। वे मध्य प्रदेश के प्रमुख नेताओं में गिने जाते थे। उन्होनें अनेक बार कृष्ण मंदिर (जेल) की यात्रा की है। वे इसके लिए हमेशा तैयार रहते थे।

एक सच्चे कवि, लेखक, विचारक, पत्रकार, राजनेता तथा फौलादी विचारों वाले पण्डित माखन लाल चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेश्ठ कवियों में से एक है। छायावाद तथा छायावादी युग के काव्य में उनका कोई सानी नहीं है। बेजोड़ तथा बेहतरीन भाशा शैली उनकी असली पहचान थी।

माखनलाल चतुर्वेदी ने राजनीति के क्षेत्र में अपना योगदान दिया है, वह अविस्मरणीय है। साहित्य के साथ–साथ राजनीति की जो सेवा माखनलाल जी ने की है, वह शायद ही कोई अन्य कवि कर सके।

**संदर्भ सूचि** :–


1. मखनलाल चतुर्वेदी, हिमकिरीटिनी, पृ. 50
2. श्री चतुर्वेदी जी, रचनावली, भाग – 6 पृ. 38
3. अज्ञेय त्रिंकुश, पृ. 63
4. डॉ0 नगेन्द्र : साहित्य का समाज शास्त्र, पृ. 56
5. डॉ0 जनार्दन पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में भारतीय संस्कृति, पृ. 58
6. डॉ0 हरिश्चन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 445–46



**शोधार्थी**
**नीलम देवी**
हिन्दी–विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर (रोहतक)
मो0 नं0 9416935148
Email:neelamparmar911@gmail.com

2

# कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रेम एवं अध्यात्म की सार्थकता

**डॉ0 निर्भय शर्मा**

**सारांश** –

प्रेम एवं अध्यात्म में अपार शक्ति है और प्रेम तो पवित्र गंगाजल की भाँति है । इसमें रंग मिला देने से यह सुनिश्चित करना बड़ा मुश्किल होता है कि जल में रंग मिला है या रंग में जल; ठीक इसी प्रकार से सच्चे प्रेम को अलग कर पाना बेहद कठिन है । प्रेम में कितना उल्लास, कितनी शान्ति और कितना बल है यह तो प्रेम में पगे लोग ही जानते हैं । इस जगत् में परमसत्ता से लेकर एक जीव–मात्र भी प्रेम से प्रभावित दिखाई देता है । कहने का तात्पर्य यह है कि प्राणी जन्म लेते ही प्रेम से जुड़ जाता है । प्रेम एक भावनात्मक व्यापार प्रक्रिया है, जो किसी के भी प्रति हो सकती है, जैसे–ईश्वर के प्रति, माता–पिता के प्रति, गुरू के प्रति, बहन–भाईयों के प्रति, प्रेमिका के प्रति, पशु–पक्षियों के प्रति तथा दृष्टिगोचर होने वाली समस्त वस्तुओं के प्रति । इस अखिल विश्व में प्रेम ही एक ऐसी शक्ति है जो किसी सीमा में नहीं बँधता ; देश, भाषा एवं जाति का दुर्गमनीय मार्ग इसमें कभी बाधक नहीं बनता । प्रेम अपने आप में बहुत ही व्यापक है । इसकी अभिव्यक्ति मात्र से प्रायः सभी को सुख की सुखद अनुभूति होती है तथा प्रेम की भाव–भूमि पर प्रेम को विविध रूपों में देखा जा सकता है । कुँअर बेचैन के साहित्य में प्रेम के विविध पक्ष देखने को मिलते हैं जैसे– प्रेमी की भाषा, प्रेम का आकर्षण, प्रेम के प्रति समाज का दृष्टिकोण तथा इसके अतिरिक्त न जाने कितने पहलुओं को उन्होंने अपने साहित्य में जगह प्रदान की है ।

बीसवीं शताब्दी के अनेक साहित्यकारों ने प्रेम के साथ–साथ अध्यात्म एवं दर्शन के माध्यम से भी अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया है । जिसने कभी 'दर्शन' शब्द का अर्थ नहीं समझा, दर्शन उसका भी अपना होता है । दार्शनिक विचार उसके भी हैं, सिर्फ उसे यह नहीं मालूम कि ऐसे ही विचार दार्शनिक कहे जाते हैं । अध्यात्म एवं दर्शन की अपनी यह विशेशता है कि भौतिक एवं अभौतिक दोनों स्वरूपों को कसौटी पर कसा जाता है तथा इसके अस्तित्व का संबंध केवल दृष्यमान जगत् से ही नहीं अपितु अभौतिक रूप से भी लिया जाता है । 1

कुँअर बेचैन के साहित्य में अध्यात्म एवं दर्शन के विविध पक्ष देखने को मिलते हैं जैसे– ईश्वर के प्रति आस्था, जन्म–मरण में विश्वास, सद्मार्ग में विश्वास, मानवीय सोच में परिवर्तन, आत्मा–परमात्मा मिलन । इसके अतिरिक्त भी अनेक पहलुओं को बेचैनजी ने उजागर किया है । प्रेम एक ऐसा संबंध है जिसके लिए हम सब लालायित रहते हैं । इस संसार में माँ–बच्चे का रिश्ता सबसे मजबूत होता है । इसका एकमात्र कारण प्रेम ही है, क्योंकि यह निःस्वार्थ होता है । कहने का तात्पर्य यह है कि एक सुखी जीवन का आधार प्रेम ही है । संसार के किसी भी रिश्ते को पोशण देने के लिए प्रेम एक आवश्यक घटक है ।

एक नायिका अपने प्रियतम को रिझाने के लिए कुछ शरमाती और बलखाती हुई बड़ी सहमी सी अपने प्रियतम की ओर बढ़ती चली जा रही है । जैसे कोई नये प्रेमी से मिलने के लिए तत्पर हो । यथा–

कुछ शरमाती, कुछ बलखाती
प्राण–प्रिया, रूक–रूक यों आती
जैसे यादें नए बलम की
ज्यों कागज पर नोक कलम की । 2

आज का मानव स्वभाव बुहत ही दूषित एवं कलुशित होता जा रहा है, लेकिन वहीं पृथ्वी माँ सभी को क्षमा कर देती है, वहीं बादल उस कलुषिता एवं गंदगी को पानी के साथ बहाते हुए ले जाते हैं और कुछ ही समय में पृथ्वी की सफाई कर डालते हैं । ईश्वरीय कृपा ही मनुष्य के लिए सब कुछ है । यदि ईश्वर से यह कृपा प्राप्त करनी है तो मनुष्य को अपने जीवन में सद्मार्ग का अनुसरण करना होगा, मानवता का धर्म निभाना होगा। ऐसा करने के उपरांत उसे हर जगह परम–शक्ति के दर्शन प्राप्त होंगे–

प्रेमपत्र ही तेरा मंदिर, प्रेमपत्र ही गुरूद्वारा
यही चर्च है, ये ही मस्जिद, यही भक्ति का इकतारा
है अल्लाह, यही है ईश्वर, यह ही नानक, ईसा का घर
इसके आगे शीश झुका तू, पड़ मत किसी झमेले में
प्रेम की चिठिया पढ़ना रे मनुआ ! जाकर कहीं अकेले में । 3

एक पत्नी अपने पति से निवेदन करते हुए कहती है कि आज मेरे जूड़े में फूलों का गजरा मत लगाओ, क्योंकि इसे अगले दिन बासी होकर उतरना ही होगा । इस असार संसार में किसी का स्थायित्व नहीं है और न ही होगा । इसीलिए अत्यधिक सँजना–सँवरना या सौंदर्य करने में भी कोई लाभ दिखाई नहीं देता । उदाहरणार्थ – मत टाँको आज पिया
जूड़े में फूल
कल का दिन पतझर का 4

मंदिर, मस्जिद और गुरूद्वारे में जाने से मनुष्य को मुक्ति नही मिल जाती । सबसे पहले जीव को आत्मशुद्धि तथा आत्ममंथन

करना होगा । स्वयं को शुद्ध एवं सिद्ध पुरूष कर लेने पर ही उस असीम शक्ति का दर्शन हो पाना संभव है । यथा–

वो न मंदिर में, न मस्जिद में, न गुरूद्वारे में है
प्यार की जो गूँज, मेरे मन के इकतारे में है 5

आजकल अक्सर प्रेम दीवानों को बहुत–सी परीक्षाएँ देनी पड़ती हैं । जिसमें उन्हें सफल होना अत्यावश्यक होता है, वहीं आजकल की प्रमिकाएँ भी बड़ी कुशल एवं चतुर होती जा रही हैं । उनका वक्र स्वभाव देखते ही बनता है । बेचैनजी के शब्दों में–

कई सुअवसर मेरे होते–होते हुए पराए
जैसे नई प्रेमिका कोई
प्रेमी के घर आते–आते
गलियों में मुड़ जाए 6

समर्पण के पश्चात ही एक नया आनंद मिलता है । व्यक्ति जब स्वयं को दूसरों के हितार्थ लगा देता है तो उसे एक नया आनंद, उत्साह और सम्मान मिलता है, जिससे वह गद्‌गद् हो जाता है । जैसे कि एक फूल टूटने के पश्चात् भी नई खुशबू बिखेर जाता है –

फूल जब तोड़ा गया तो उसने सबसे ये कहा
सबको खुशबू बाँटकर मेरी तरह टूटा करो 7

प्रेम की भाषा मौन कही गयी है । इस भाषा में बातें कम और काम कुछ ज्यादा होता है । प्रेमी–प्रेमिका या अन्य अपनी भाव–भंगिकाओं से इशारों ही इशारों में सब कुछ जान लेते हैं और उसी के अनुरूप कार्य करने लगते हैं । प्रेम की पराकाश्ठा संसार के सभी प्राणियों के दिलो–दिमाग पर काबिज हो जाने के समान है । इस भाव को कुँअर बेचैनजी अभिव्यक्त करते हुए कहते हैं–

धरा भी रास्ता देगी, ये अंबर रास्ता देगा
मुहब्बत है अगर दिल में तो हर घर रास्ता देगा 8

इस भौतिक संसार में प्रायः सभी प्राणी मोह–माया के जाल में फँसकर सुख–दुःख के इर्द–गिर्द ही चक्कर लगाता रहता है और वह अक्षम–सा होने लगता है, वहीं प्राणी जब मोह–माया के जाल से ऊपर उठ जाता है तो दार्शनिक सोचवाला हो जाता है और ऐसा कर पाना किसी सामान्य प्राणी के लिए प्रायः संभव नहीं है –

कितना मुश्किल है सुख और दुःख से यूँ ऊपर उठना
वक्त लगता है किसी दिल को कँवल होने तक 9

इस संसार में जन्म से लेकर मृत्यु तक सभी के साथ प्रेम से रहना अपने आप में बहुत बड़ी बात है । व्यक्ति के जीवन में यही सबसे बड़ी पूजा है और सबसे बड़ा धर्म भी । प्रेम की अपनी भाशा कुछ अलग ही होती है । मुहब्बत में भी न जाने कितने इम्तिहान देने पड़ते हैं । कभी हँसी मिलती है तो कभी रोना भी पड़ता है और कभी–कभी खीज भी होती है–

इश्क यह खेल भी कैसा अजब इक खेल है
पहले तो आँसू दिये फिर मुस्कराने को कहा
मशवरा जब प्यार करने का मिला तो यह लगा
जैसे मुझ को फिर किसी ने चोट खाने को कहा 10

आत्मा–परमात्मा का संबंध बहुत ही निकटस्थ होता है । परमात्मा जब भी आत्मा के साथ एकाकार करना चाहता है तो उसके मार्ग में कोई भी बाधक नहीं बन सकता । जगत् की परमशक्ति से साक्षात्कार होने के उपरांत आत्मा संगीतमयी हो जाती है और ऐसी आत्मा का परमशक्ति स्वयं में विलय कर लेती है । जिस प्रकार नाव और जल का बहुत ही निकट का संबंध होता है, ठीक उसी प्रकार आत्मा और परमात्मा का भी । जलहीन नाव व्यर्थ हो जाती है । जल के अभाव में मछलियों की जीवनलीला पर संकट के बादल मड़राने लगते हैं, ठीक उसी प्रकार परमात्मा से अलग हुई जीवात्मा भी छटपटाती रहती है । जीवात्मा–परमात्मा का अंश मात्र है और आत्मा उस परमशक्ति के चारो ओर ही घूमती रहती है । उस अनंत आकाश में न जाने कितनीं जीवात्माएँ परमात्मा से मिलन के लिए घूमती रहती हैं –

दिये सी देह में इक रौशनी सघन पहने
हम आत्मा हैं मगर घूमते हैं तन पहने
है चारो ओर तेरे शून्य तो उदास न हो
धरा भी घूम रही है कई गगन पहने 11

कुँअर बेचैनजी प्रेम के वास्तविक धरातल पर उतरकर कहते हैं कि प्रेम में स्थायित्व नहीं है । जैसे शलभ एक बार ही दीपक से प्रेम करके अपना जीवन तथा अपना सर्वस्व उसी दीपक के नाम कर देता है यथा–

एक क्षण को प्रीति से मिलकर गले
शलभ–दीपक साथ ही दोनों जले
उम्र–भर को प्यार में मिलते नहीं दो मीत 12

इस असार संसार में एक दिन सभी जीवधारी उस परम शक्ति के आगोश में चिरनिद्रा विलीन हो जाते हैं । यहाँ सब सूना–सूना सा दिखाई देने लगता है और सभी उस परमात्मा के प्यारे हो जाते हैं –

तितली, भँवरे, बुलबुल, मैना, सब ही नाता तोड़ गए
सूनी डाली सूख रही है, फूल–पात सब छोड़ गए 13

सूरज जब डूबता है तो अपने पीछे सितारों के छींटे छोड़ जाता है और जब मधुऋतु जाती है तो बहारों के छींटे शेश छोड़ जाती है और जब सावन जाता है तो मल्हारों को छोड़ जाता है तथा बादल भी मिटने से पहले फुहारों के छींटे छोड़ जाते हैं । ठीक उसी प्रकार से प्रेम–दीवानों के लिए प्रेम एक नवीन उत्साह, एक आकुलता और एक मिलन की चाह के छींटे छोड़ जाता है । यथा–

सूरज डूबा तो अंबर को दे गया सितारों के छींटे
मधुऋतु भी जाने से पहले दे गयी बहारों के छींटे

सावन लौटा तो दुनियाँ को मिल गए मल्हारों के छींटे
बादल भी मिटने से पहले दे गया फुहारों के छींटे 14

इस असार संसार में मृत्यु ही शाश्वत सत्य है, जिससे किसी को भी मुँह नहीं मोड़ना चाहिए । दार्शनिक विचारधारा से जुड़े हुए लोग कभी भी मृत्यु से नहीं डरते । ज्ञानी पुरूष तो मृत्यु से साक्षात्कार करना चाहते हैं, क्योंकि मृत्यु तो एक न एक दिन सभी को अपने आगोश में ले ही लेगी, तो फिर इससे कैसा डरना । इस संबंध में बेचैनजी लिखते हैं –

मौत तो आनी है तो फिर मौत का क्यों डर रखूँ
जिंदगी आ तेरे कदमों पर मैं अपना सर रखूँ 15

मुहब्बत में अपार गहराई होती है । प्रेम जब अपनी पराकाष्ठा पर होता है तो दिनोदिन उसमें चार चाँद लगने लगते हैं और फिर ऐसे में एक प्रेमिका अपना रूपलावण्य निखारकर अपने प्रियतम के आने की प्रतीक्षा में है, इतने में ही बैरी बदरा घनघोर वर्षा करने लगते हैं और प्रेमिका अपने प्रियतम के आने की आस लगाकर मार्ग ही देखते रह जाती है –

बैरी बदरा तो आके बरस भी गए, तुम न आए, न आए, न आए पिया

मैंने अँखियों में कजरा लगा भी लिया, मैंने अलकों में गजरा सजा भी लिया

एक सपना जो सोया हुआ था कहीं, मैंने मन में वो सपना जगा भी लिया

कब से बैठी हूँ पलकें बिछाए पिया, तुम न आए, न आए, न आए पिया 16

मनुष्य के अंदर सब कुछ समाहित है लेकिन वह अपने अन्तर्मन की आवाज को पहचान नहीं पाता । यदि वह सद्मार्ग का अनुसरण करता है तो उसे प्रभू के अलावा किसी के आगे शीश झुकाने की आवश्यकता नहीं होती । सद्मार्ग पर चलने के लिए कबीर, सूर, तुलसी, मीर और गालिब आदि सभी साहित्य मर्मज्ञों ने अपने–अपने ढंग से विचार व्यक्त किये हैं, इसी मार्ग को और अधिक महत्व देते हुए बेचैनजी कहते हैं –

बहुत कुछ दे गए तुलसी, कबीरा, मीर और गालिब
जहाँ को कुछ तो दे जाना 'कुँअर ' जाते हुए तुम भी 17

आजकल प्रेम में वास्तविकता कम, धोखा ज्यादा मिलता है । कुछ लोग तो मुहब्बत की खातिर अपने को बेचते फिरते हैं, लेकिन जब हकीकत पता चलती है तो पैरों तले मिट्टी खिसक जाती है । बदलते हुए समाज के परिदृष्य ने प्रेम को भी बदला है । आजकल देखने में यही आ रहा है कि लोग मुहब्बत को बदनाम करने में लगे हुए हैं –

अब मुहब्बत के मानी बदलने लगे
लोग फिर से निशानी बदलने लगे 18

कुछ लोगों ने स्वार्थवश मंदिरों और मस्जिदों को राजनीति का अखाड़ा बना दिया है और यहाँ भी अपनी राजनीतिक रोटियाँ सेंककर लाभ उठाना चाहते हैं । देश के विभिन्न स्थानों पर इन्हीं स्वार्थों के चलते खून–खराबा होने तक की घटनाएँ आए–दिन घटित होती रहती हैं । कविवर बेचैनजी इस विचारधारा से दुःखी होकर कह उठते हैं –

मंदिरों या मस्जिदों की बात मैं करता नहीं
मैंने सूने में भी अपना सर झुकाया, तुम मिले 19

भटकाव मनुष्य को कहाँ से कहाँ पहुँचा देता है इसलिए व्यक्ति को सकारात्मक सोच के साथ आगे बढ़ने की आवश्यकता होती है । समाज में रहकर यदि हम किसी का भला न कर सके तो हमें किसी का बुरा भी नहीं करना चाहिए । किसी पीड़ित व्यक्ति की मदद करने में बहुत ही सुखानुभूति होती है । इसका अनुभव तभी किया जा सकता है जब आप किसी की निःस्वार्थ भावना से मदद करते हैं । यथा–

तुम्हारे दिल की चुभन भी जरूर कम होगी
किसी के पाँव से काँटा निकालकर देखो 20

प्रेम विभिन्न रूपों में समाहित रहता है । प्रायः यह देखा गया है कि प्रेम में किसी की धड़कने बढ़ती हैं तो किसी की मदमस्त नीदें । लेकिन प्रेम में अपार अपनत्व होता है, ठोकरें मिलने पर सच्ची मुहब्बत कभी जुदा नहीं होती । यथा–

कभी धड़कन, कभी मदमस्त चाहत की तरह हूँ मैं
मुझे दिल में जरा रख लो, मुहब्बत की तरह हूँ मैं
मुहब्बत ने कहा मुझसे सताए जा, सताए जा
तुझे मैं प्यार ही दूँगी कि औरत की तरह हूँ मैं 21

**निष्कर्ष**

समाज के कुछ स्वार्थी एवं चापलूस लोग अपना उल्लू सीधा करने के लिए झूठे प्यार का ढ़ोंग रचाते हैं, जो कि नितान्त गलत एवं असामाजिकता का प्रतीक है । सच्चे प्रेमियों के मार्ग में बाधाएँ तो आती रहती हैं, लेकिन इन लोगों की राहें प्रायः सुगम हो जाती हैं और यह लोग अपने मंतव्य में सफल हो जाते हैं । सही अर्थों में प्रेम बहुत व्यापक है, जिंदगी का सार है और प्रेम से ही संसार है तथा मानवीयता का धर्म निभाने पर मनुश्य को एक अलौकिक सुखानुभूति होती है । आज के इस भैतिकवादी युग में मनुष्य इतना व्यस्त हो गया है कि उसे भजन–संध्या करने का भी समय नहीं है, लेकिन जैसे ही वह उस असीम शक्ति का आत्मसात् कर लेता हैं तो उसके आगे माया–मोह का पड़ा हुआ परदा हट जाता है और ईश्वर द्वारा प्रदत्त प्रकाश पथ दिखाई देने लगता है । बेचैनजी के साहित्य का आद्योपांत अध्ययन करने के पश्चात पाठक इस निश्कर्श पर पहुँचता है कि कविवर की विचारधारा अध्यात्म एवं दर्शन से परिपूर्ण है वहीं सार रूप में यह भी कहा जा सकता है कि कुँअर बेचैनजी का प्रेम–वर्णन अपने आप में नवीन, स्फूर्तिदायक, सामाजिक,मौलिक एवं अर्थसंगत है, जो कि समाज के मानस पटल पर एक गहरी छाप छोड़

जाता है । हिंदी साहित्य के विद्वान् लोग बेचैनजी के काव्य में अवगाहन करके एक नवीन आनंद की अनुभूति करते हुए देखे गये हैं ।

**संदर्भः–**


1. वीसबीं शताव्दी के हिंदी काव्य के संदर्भ में कुँअर बेचैन के काव्य का मूलयांकन– डॉ0 निर्भय शर्मा, पृ0सं0– 128
2. उर्वशी हो तुम– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 36
3. उर्वशी हो तुम– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 46
4. पिन बहुत सारे– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 86
5. दीवारों पर दस्तक– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 59
6. पिन बहुत सारे– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 22
7. दीवारों पर दस्तक– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 81
8. आँधियों में पेड़– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 46
9. ...तो सुबह हो– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 19
10. कोई आवाज देता है– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 76
11. कोई आवाज देता है– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 121
12. उर्वशी हो तुम– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 54
13. दिन दिवंगत हुए– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 112
14. उर्वशी हो तुम– कुँअर बेचैन, पृ0सं0–105
15. कोई आवाज देता है– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 33
16. दिन दिवंगत हुए– कुँअर बेचैन, पृ0सं0–103
17. आग पर कंदील– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 96
18. नाव बनता हुआ कागज– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 68
19. दीवारों पर दस्तक– कुँअर बेचैन, पृ0सं0–15
20. दीवारों पर दस्तक– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 64
21. नाव बनता हुआ कागज– कुँअर बेचैन, पृ0सं0– 31



**डॉ0 निर्भय शर्मा**
असिस्टेंट प्रोफेसर (हिंदी)
न्यू ग्रेट स्कालर्स महाविद्यालय
अल्हागंज, शाहजहाँपुर (उ0प्र)
मो0नं0– 9634160016
ईमेल– dr.nirbhaysharma@gmail.com


# मेरा भारत महान

गॉव दहपा, जिला– हापुड मे पहली बार किसी मंत्री की कार आई थी, गाव में पहली बार कार देखकर, बहुत सारे बच्चे कार को देखने के लिए, कार के चारो ओर एकत्र हो गये। उन बच्चो में एक हरीश नाम का बच्चा भी था जिसकी आयु लगभग 10–12 वर्ष रही होगी। कार के शीशे पर गाव की धूल बुरी तरह से जम गयी। हरीश अपनी उगली से कार के शीशे पर कुछ लिखने लगा। पुलिस वाले ने उसको देख लिया। पुलिस वाले ने हरीश से कहा– '' क्या कर रहा है , मंत्री जी की गाडी के शीशे गन्दे कर रहा है, दो–चार थप्पड मारते हुए कहा चल इन्हें साफ कर।

हरीश बुरी तरह से डर गया सोच रहा था, उसने कोई बडा अपराध कर दिया।

हरीश ने अपनी कमीज निकाली और गाडी के सारे शीशे साफ कर दिये। गाड़ी के शीशे पहले से कही अधिक चमक गये थे क्योकि गाडी के शीशे अब गन्दे नही साफ हो गये थे। परन्तु वह भी साफ जो साफ हो गया, जहॉ हरीश धूल भरे शीशे पर उगुली से लिख रहा था।– मेरा भारत महान

3

# दिनकर का नारी चिंतन

डॉ0 सुनीता कुमारी

**सारांश** –

रामधारी सिंह दिनकर भारतीय संस्कृति के श्रेष्ठ समर्थक एवं युग–द्रष्टा कवि थे। राष्ट्रकवि दिनकर देश की आत्मा थे। यों तो दिनकर की रचनाओं में भक्ति, श्रृंगार एवं राष्ट्रीयता आदि कई तत्वों के दर्शन होते हैं लेकिन नारी चित्रण उनकी रचनाओं का एक विशिष्ट पहलू रहा है। दिनकर साहित्य में नारी को प्रेयसी, पत्नी और माता के रूप में दर्शाया गया है। दिनकर प्रेयसी को सपनों की साकार प्रतिमा मानते हैं। दिनकर ने अपनी पुस्तक 'उजली आग' में नारी के विषय में यही भाव दिखलाया है। उनका मानना था कि नारी जब मुस्कुराती है, तब स्वर्ग का दरवाजा खुल जाता है। दिनकर के जीवन में प्रेरणा का प्रमुख स्रोत नारी ही थी।

काव्य–प्रतिभा के अद्वितीय आदित्य रामधारी सिंह दिनकर ने न केवल बिहार बल्कि पूरे विश्व में अपने गाँव सिमरिया का नाम रोशन किया। दिनकर की रचना रसवंती में संकलित बालिका वधू इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि युवावस्था में दिनकर किसी के प्रेमपाश में बँधे हुए थे तथा विवाह के बाद वे हतप्रभ थे लेकिन अंत में सच्चे प्रेमी की तरह वे उसकी मंगल कामना करते हैं।

रामधारी सिंह दिनकर नारी में उन्मुकता के गुण के पक्षधर थे। यही कारण है कि रश्मिरथी में वे कुंती के मुख से यह कहलवाते हैं :–

भागी थी तुमको छोड़ कभी जिस भय से
फिर कभी न हेरा तुझको जिस संशय से,
उस जड़ समाज के सिर पर कदम धरूंगी
डर चुकी बहुत अब और अधिक न डरूँगी।

'उर्वशी' में नारी के स्वरूप का जो चित्रण दिनकर जी ने किया है वह नारी को पुरूष के समान उर्जा प्रदान करता है। उर्वशी प्रेम और सौन्दर्य का काव्य है। प्रेम और सौन्दर्य की मूल धारा में जीवन दर्शन सम्बन्धी अन्य छोटी–छोटी धाराएँ आकर मिल जाती है। पुरूरबा और उर्वशी की कथा बहुत पुरानी है, उर्वशी के बारे में अनेक धारणाएँ और आख्यान प्रचलित है। कहा जाता है कि वह नारायण ऋषि के अरू से निकली महाभारत में भी उसका जिक्र आया है कि कैसे एक बार इन्द्र के यहाँ अस्त्र विधा सीखने आए अर्जुन पर उर्वशी मोहित हो गयी थी, किन्तु अर्जुन ने उसमें मातृत्व देखा, फलस्वरूप उर्वशी ने अर्जुन को नपुंसक रहने का शाप दे दिया, जो भी हो साहित्य में उर्वशी और पुरूरबा का प्रेम विश्वविख्यात है। नारी के मातृत्व और पत्नी रूप के बीच के द्वंद्व को भी कवि ने उर्वशी में दिखलाया है।

कौन भामिनी है जो अंगज पुत्र और प्रियतम में किसी एक को लेकर सुख से आयु बिता सकती है ?

कौन पुरन्ध्री तज सकती है पति के लिए तनय को ?

कौन सती सुत के निमित्त स्वामी को त्याग सकेगी ?

पुरूष–रचित इस सभ्यता में प्रकृति की दूती बनकर नारी प्रेयसी तथा जननी के रूप में अपना काम करती आई है।

दिनकर ने नारी स्वरूप के चित्रण में नारी के विशिष्ट गुणों का वर्णन किया है नारी ही वह शक्ति है जो मनुष्य को एक रूप प्रदान करती है। सत्य तो यह है कि सारी ही सृष्टि की रचना और नियमन करती है। प्रेमिका का प्रेम अनन्य भाव का होता है। वह जब अपने प्रियतम से बिछुड़ जाती है तो उसे संसार का सारा वैभव स्वर्ग का ऐश्वर्य नगण्य लगता है। उसकी केवल एक लालसा होती है – अपने प्रियतम से सम्मिलन। इस मिलन में एक–एक पल का व्यवधान उसे असाध्य हो उठता है –

कहती हूँ, इसीलिए चित्रलेख ?मत देर लगाओ जैसे भी हो मुझे आज प्रिय के समीप पहुँचाओ। दिनकर ने नारी और पुरूष को एक ही रथ के दो पहिए के समान दिखलाया है। दिनकर नारी को वैदिक कालीन अधिकार दिलाने के पक्षधर थे। वे नारी को मोक्ष प्राप्ति का साथी मानते हैं। समय के साथ साहित्य और समाज दोनों का विकास हुआ है। एक दौर था जब समाज में महिलाएँ हाशिए पर खड़ी थीं। आज समाज में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान है तभी तो दिनकर ने कहा है – नारी के भीतर एक नारी है जो अगोचर और इन्द्रियातीत है।

**संदर्भ ग्रंथ सूची :**

1. युगाचरण दिनकर – डॉ0 सावित्री सिन्हा।
2. दिग्भ्रमित राष्ट्रकवि – कामेश्वर शर्मा।
3. जनकवि दिनकर – डॉ0 सत्यकाम वर्मा।
4. दिनकर एक सहज पुरूष – जीवनी – शिवसागर मिश्र।
5. दिनकर व्यक्तित्व एवं कृतित्व – (संपादक) – जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी।
6. दिनकर के काव्य में परम्परा और आधुनिकता (शोध प्रबंध) – डॉ0 जयसिंह 'नीरद।
7. कवि दिनकर व्यक्तित्व और कृतित्व – श्रीमती एस0के0 पद्मावती।

8. दिनकर का रचना संसार – डॉ0 छोटेलाल दीक्षित।
9. दिनकर का वीर काव्य – धर्मपाल सिंह आर्य।
10. दिनकर का व्यक्तित्व और उनका काव्य – कमलेश गौड़।
11. दिनकर के काव्य में मानव मूल्य (शोध–प्रबंध) – डॉ0 अश्विनी वशिष्ठ।
12. दिनकर की काव्यभाषा – यतीन्द्र तिवारी।
13. उर्वशी : विचार और विश्लेषण (संपादक) – डॉ0 वचनदेव कुमार।
14. दिनकर : व्यक्तित्व और कृतित्व – डॉ0 खगेन्द्र कुमार ठाकुर।

**डॉ0 सुनीता कुमारी**
सहायक प्राध्यापिका
हिन्दी विभाग
राँची वीमेन्स कॉलेज, राँची
मो.नं.–9470368260

# मेरे हिस्से के पाँव

माँ!
तूने तो पाला मुझे रखा गर्भ में नौ माह
दिया जन्म पूरे शरीर कोऔर दी थी उड़ने की चाह,
फिर अब क्यों चल न पाती मैं घुटरुनी भी सरक न पाती
मैं बढ़ने की कोशिश में कैसे
तन पर हैं ये मेरे घाव माँ मेरी तू मुझे बता दे
कौन ले गया मेरे हिस्से के पाँव?
बाबा!
तुम लाए थे अपने आँगन  नन्ही काया का तुम सहारा
रुचिर शीत भी तेरे अंकपक्की छत तले आसरा
धूप घनी में तुम बन बादल
शौक पले जो तुम थे संबल
छलनी हो गई कब चादर
झुलसे जाते जो मेरे चाव
अब बाबा तुम ही बतलाओ
कौन ले गया मेरे हिस्से की छाँव?
घर!
घर के बाहर नभ तक ही एक नहीं हर घर था मेरा
एक क्षण को टिकते न पैर पग में मेरे बँधा था फेरा
आमों की बगिया में कूकी
फूलों पर तितली संग झूमी
गलियों पगडंडी पर दौड़ लगाई
अब चारों ओर जलते अलाव
नहीं पत्र भर हरियाली मेरी
कौन ले गया मेरे हिस्से के गाँव?
देवी!
शारदे माँ! विद्या की देवी
ज्ञान अर्जन को तुमको पूजाहाथ में कलम दवात भर स्याही
लिखना–पढ़ना बस काम न दूजा तख्ती से लेकर
पुस्तक–ग्रंथ
तर्क–वितर्क जो मेरा पंथ
विवेक बुद्धिरत उद्‌गार सब
वाणी के अवरुद्ध उद्‌भाव
मूक मूढ़ सी चालें मैं देखूँ
कौन ले गया मेरे हिस्से के दाँव?

**डॉ0 आरती 'लोकेश'**
**दुबई, यू.ए.ई.**

4

# A Study Into The Architectural Intricacies of The Nemesis of The Partition of India And The Genesis of The Islamic Republic of Pakistan

**Dr. Laxmi Kant Tripathi**

***Abstract :***

*A lot has been said and volumes have been written on the question as to who actually caused the Partition of India or created Pakistan. Some accuse Gandhi, some Jawaharlal, some Patel, some Jinnah and his Muslim League, some British government, some Hindu Mahasabha and the RSS. There is yet another group who blames the whole of Congress and the British Raj. The debate is still going on. Truly speaking, no single individual or a group of individuals is to blame. It was a fabulous idea of Sir Syed Ahmad Khan in the later part of the nineteenth century that the Muslim constituted a separate nation. At that point of time, it was intended to alienate the Muslim elite from the Hindu mainstream which was struggling for Swarajya, the self-government. Sir Syed felt that the interests of the Muslim elite, of which he was a member, would be best served by closely aligning with the British Raj. The British needed the Muslim support but they recognised the Muslims as the largest minority, not a nation, and hence granted them the separate electorate.*

Few individuals significantly alter the course of history. Fewer still modify the map of the world. Hardly anyone can be credited with creating a nation-state. Mohammad Ali Jinnah did all three.[1]

A lot has been said and volumes have been written on the question as to who actually caused the Partition of India or created Pakistan. Some accuse Gandhi, some Jawaharlal, some Patel, some Jinnah and his Muslim League, some British government, some Hindu Mahasabha and the RSS. There is yet another group who blames the whole of Congress and the British Raj. The debate is still going on.

The British view is rightly expressed by H.V. Hodson, the Constitutional Advisor to the Viceroy in 1941-42 and author of several books on Commonwealth, etc., when he states:

"Between 1935 and 1946, even between 1942 and 1946, much had happened to make the task of holding India together by national government with Dominion powers much more difficult. The way in which the Congress exploited its electoral success in 1937 was the first blow. Next, the war and all its consequences were a disaster for India's progress to a united independence. The withdrawal of the Congress from provincial governments, its rejection of the Cripps Offer, and its Quit India campaign, set its cause back by years and gave an immense advantage to its opponents, exploited by Mr. Jinnah. The wartime inertia of British policy (except abortively in 1942) and the negativism of the Congress left a vacuum for Muslim separatism to expand. Never was the Gandhian leadership less relevant to practical politics, never did the Congress need more to recognise its own shortcomings. Had it perceived the new Political realities, it might have made a better bargain with the League and the British over sharing central power at Shimla in 1945 than it could have made in any later negotiation; for on his side Mr. Jinnah had not yet found and tested his full strength. And the chance of forming a genuine all-community Government of a united India was never again so strong."[2]

Truly speaking, no single individual or a group of individuals is to blame. It was a fabulous idea of Sir Syed Ahmad Khan in the later part of the nineteenth century that the Muslim constituted a separate nation. At that point of time, it was intended to alienate the Muslim elite from the Hindu mainstream which was struggling for *Swarajya*, the self-government. Sir Syed felt that the interests of the Muslim elite, of which he was a member, would be best served by closely aligning with the British Raj. The British needed the Muslim support but they recognised the Muslims as the largest minority, not a nation, and hence granted them the separate electorate.

In 1940, the Muslim League passed the resolution to segregate the Muslim majority areas to be ruled by Muslims. The word Pakistan was not yet coined. The resolution had been moved by Sir Sikandar Hyat Khan, then the Premier of the Punjab. Replying to various queries about the Pakistan scheme, he told Punjab Legislative Assembly on March 11, 1941 that he had not framed any Pakistan scheme. He said that such a scheme had been first formulated by one Maulana Jamal-ud-din, followed by Sir Mohammed Iqbal whose writings and poems gave a ground to think in terms of establishing some sort of Pakistan. Later, a concrete scheme of **Pakistan was formulated by Rahmat Ali**. According to him **Pakistan** was to be made up of the **Punjab**

(P), **Afghanistan**, including NWFP (A), **Kashmir** (K), **Sindh** (S), and **Baluchistan** (TAN). This scheme was widely circulated. In conclusion, Sikandar Hyat Khan said:

"A vast majority of educated Muslims, however, do not believe in any of these schemes. Take the President of the League himself. He is not a believer in any extra-territorial scheme. He stands by the Lahore resolution to which our Hindu friends have given the name of Pakistan. Mr. Jinnah naturally, like everybody else, sees the advantage in adopting a catch-phrase which appeals to the masses. If Hindus and Sikhs can exploit it, why not the Muslim League? The Muslims like it; so it is a convenient slogan to sway the Muslim masses..."[3]

In September 1944, after his release from jail, Gandhi held seventeen days discussion with Jinnah at Bombay, without any result. But, a few days later when Durga Das met Jinnah at Delhi, the latter jubilantly said. "Gandhi has defined Pakistan for me."[4] In fact, Jinnah had revived Sir Syed Ahmed Khan's contention that the Muslims were a separate nation, distinct from Hindus, but he had no clear idea of having a separate homeland for the Muslims. Gandhi and the Congress, though opposed to the two nation theory, never once refuted Jinnah's arguments in support of the Muslims being a separate nation. This lent support to Jinnah's basic point. Over and above, Gandhi clearly said that as a member of a joint family, the Muslims had every right to seek partition and that the Congress had no means to retain anyone against his wishes. This contention gave a popular sanction to League's demand for Partition. In a way, Gandhi, not Jinnah, may be called the 'Father of Pakistan'.

Smt. Aruna Asaf Ali, the celebrated freedom fighter states, "The Mountbatten came to India only in 1947, whereas the seed of the sub-continent's partition had been sown in the first decade of the century when the British rulers partitioned Bengal in 1905 and created separate electorates for Muslims under the Indian .Councils Act 1909".[5]

The matter would have been different if the Congress had rejected the very idea of the Muslims forming a separate nation and of India being a joint family property. It was not done. On the contrary, Congress conceded that the Muslims had a different language of their own, namely, Urdu, that they had their separate Muslim culture; and that they had a separate set of laws, namely, the *Shariat*. The only tenuous common factor between the Hindus and the Muslims, according to the Congress and the Muslim League, was that both were bound by the British rule. Even now, the Congress continues to harp on those very differences of the Muslims in India. With all these differences continuing, Hindu-Muslim unity is impossible. On the contrary, there is every possibility of the twelve crores of Indian Muslims seeking yet another partition. There is also the danger of other religious, linguistic and ethnic minorities, advancing similar demands for autonomous/ independent pockets within India. Granting autonomy to the Muslim majority State of Jammu & Kashmir, as vehemently supported by a number of noted journalists and Congress leaders, will not solve the Kashmir problem but will make a strong precedent for granting similar autonomy to other Muslim majority districts and areas. Indeed, Congress always claimed to represent the Indian people as a whole and working for the freedom and welfare of all without distinction of caste, class, or religion, but it always talk,' in terms of Hindus, Muslims, Sikhs, Harijans, Christians, and so on. For a party engaged in the cause of all, it should have been an anathema to talk in such separatist terms.

At the same time, Hindus as a nation or even as a community showed utter lack of political wisdom. In spite of all their alleged caste and creed differences they got together in the fight against the mighty British Empire, braving bullets and bayonets, but they miserably failed against the Muslim dagger. They failed to see the noose of Ahimsa tied around their neck by Gandhi. In every town, in every mohalla, the Hindus were left to fend for themselves whenever they were attacked by well organised and well equipped Muslims. It was because the Hindu elite who should have guided and mobilised the Hindu masses against the fanatics of the two nation theory favoured soft options and rallied around Gandhi and the Congress with an eye on their share of booty in the event of transfer of power from the British to Indian hands. There was no identity of purpose or interest between the elite Hindus and the poor, semi-literate, Hindu masses. As a result, in the midst of the worst kind of blood-shed, arson, and loot, the rich and the influential Hindus (barring exceptions) came to India safely from the West Punjab and East Bengal. (This also applies to the Muslims who migrated to Pakistan). This aspect of the tragedy which accompanied the Partition remains unwritten because all the writers, authors, and politicians who have dealt with the subject belonged to the elite classes.

The elite class of Hindus, consisting of lawyers, professionals, civil servants and big business houses, generally looked down upon their less privileged classes as a despicable lot of men and women, ignorant, illiterate, deep-rooted in superstition. The price for a united India asked for by the Muslim League was 33 per cent of government jobs and equal number of seats in the Central Assembly, equality

with Hindus in the Executive Council (Council of Ministers) against a total Muslim population of 24.28 per cent according to 1941 census, right to secede, and above all a virtual veto power in the Legislature. The Partition was accepted with the sole aim of avoiding a bloody civil war, but the blood actually spilt in consequence thereof was far greater than it would have been in a civil war. Still Partition was preferred because a civil war would have threatened and destroyed many of the privileged ones, the aspirants of power. This divergence of interest persists even today.

The Congress itself was a divided house. Its strength lay in its huge financial resources, well-knit organisational set up going right up to remote villages, its propaganda machine and the press support; and populist slogans, promising everything to every organised group. Since Hindus never came up as an organised lot, they were always treated as the sacrificial goats. For that very reason, Hindus were always the victims of false hopes and false propaganda. One of the false hopes held was that the Partition would finally, and for good, settle the ever agonising Hindu-Muslim question. It persists even today and is taking an alarming proportion day by day. The fact is that neither was the Hindu-Muslim problem solved nor did India get freedom. What India got in 1947, whether through the labours of Gandhi or other factors, was ceding one third of Hindustan to Islamic marauders and transfer of the reins of power from the rational Whites to irrational and unscrupulous Browns. The new Brown Sahibs completely forgot, and strived to make Hindus forget, the Muslim League's slogan, *'Hans ke liya hai Pakistan, lar ke lenge Hindustan'* (We have won Pakistan with all ease but we will take India through war). They also forgot the parameters within which the League and its sword arm, the Muslim National Guard, carried out their 'Direct Action' as brought out by Justice G.D. Khosla in his 'Stern Reckoning' :

1. All the Muslims of India should die for Pakistan.
2. With Pakistan established whole of India should be conquered.
3. All people of India should be converted to Islam.
4. Until Pakistan and Indian Empire is established, the following steps should be taken:

(a) All factories, and shops owned by Hindus should he burnt destroyed, looted and loot should be given to league office.

(b) All Muslim Leaguers should carry weapons in defiance of order.

(c) All nationalist Muslims, if they do not join League, must be killed by secret Gestapo.

(d) Hindus should be murdered gradually and their population should be reduced.

(e) All temples should be destroyed.

(f) Karachi, Bombay, Calcutta, Madras, and Visakhapatnam should be paralysed by December 1946 by Muslim League volunteers.

(g) Hindu women and girls should be raped, kidnapped and converted into Muslims from October 18, 1946.

(h) Hindu culture should be destroyed.

(i) All Leaguers should try to be cruel at all times to Hindus, and boycott them socially, economically and in many other ways.

People wonder as to why the Indian Muslims rejoice on seeing Pakistan cricket or hockey team winning over the Indian team and lament on seeing it losing. The reason is simple. They are counting the day when Pakistan will overtake India and establish Islamic rule here. The insurgency in Jammu & Kashmir and in the North East kindles their hopes. The true face of the Muslim psyche can be seen in the Urdu news papers and journals. Time and again Hindus are challenged to come out and fight on the streets without the intervention of the police and the army. Since ninety five per cent of the Muslims in the police force before 1947 and all Muslim units of the army went to Pakistan, the Muslims feel themselves at a loss and are clamouring for proportionate share in the police and armed forces. The Congress, the Communist Parties and their off-shoots forming the "National Front" are lending support to their demands.

In fact, the Partition as envisaged by its founding fathers has not yet taken place. Perhaps, it augurs well for it raises the hope of some day annulling the great artificial divide of a compact whole and India reverting back to one nation and one country. The Partition was thrust on the Indian people on the sole premise that the Muslims formed a separate nation and could not live in peace with the Hindus on terms of equality. Fired with this religious frenzy, Pakistan, the land of the **faithful**, killed or pushed all its Hindu population to India. The Indian government, on the other hand, thwarted with an iron hand, every attempt to similarly push the Muslims to Pakistan. As a result, the overwhelming majority of the Muslims, including many ardent members of the Muslim league, the profounder of the two nation theory, chose to live in Hindu India. Instead of effecting a cultural integration of these Muslims with the Hindu majority, and others, the Congress government created further dissensions and created all conditions of the pre-partition days which encouraged the fundamentalist

Muslims to reorganise, rejuvenate and resurrect the Muslim League with its old separatist thought. They are now nourishing the fond hope that, sooner or later, the existing Hindu India would also become a greater Pakistan or another bigger Islamic state. Their leadership opposes each and every move to integrate and make a common cause with the rest of the Indian people. Such Muslims may be in the Muslim League, in the Congress, in the Communist Party, or the "National Front", their common aim is to establish the hegemony of Islam and the *Shariat*. This is more pronounced when, on the eve of every parliament session, all Muslim members of Parliament, irrespective of their party affiliations sit together at the official residence of one of the Muslim minister at the Centre and chalk out a common strategy in furtherance of their Islamic goal in a secular polity. On the other hand, Hindus in the Communist Parties are renegade, in the Congress they are opportunists, in the BJP they are nationalists, and in any other party, they are a rolling stock. In non-political organizations, they are social activists who protest *en mass* on behalf of them: *hum kagaz nahin dikhayenge*.. Naturally, Hindus have always failed to make a common cause effectively. This weakness Hindus and adds to the strength of the Islamic fundamentalism; the root cause of the nemesis of partition of India and genesis of the Islamic Republic of Pakistan!

**Reference**


1. Wolpert, Stanley; Jinnah of Pakistan, published by S.K. Mookerjee, Oxford University Press,1988 (Paperback),YMCA Library building, Jai Singh Road, New Delhi-001, p.vii.
2. Hodson, H.V. ;The Great Divide, 2nd Print 1988, Oxford university Press, karanchi, p. 526.
3. Menon, V.P. ; Transfer of Power in India, Orient Longmans,1968, 3/5 Asaf Ali Road, New Delhi-2, pp. 451-453 (Extract from Punjab Assembly proceedings).
4. Das, Durga; India from Curzon to Nehru and After (4th Reprint) 1977, Rupa & Co., Bankim C Chaterjee Street, Calcutta-700073, p. 213.
5. Aruna Asaf Ali, Private Face of a Public Person (Jawaharlal Nehru), Radiant Publishers, E. 155 Kalkaji, New Delhi-19, 1989, p.89.



**Dr. Laxmi Kant Tripathi**
Associate Professor,
Department of Political Science,
Feroze Gandhi College, Rae Bareli (U.P.)
Email:lktripathi7@gmail.com


# मोक्ष दीपक की लौ में

अंतिम पतझड़ में भी जीवन के, कोंपल चाहों के फूल खिले,
कभी नहीं आस मिलने की थी, वे बिछड़े हुए भी खूब मिले।

कर लिया वही जो मन भाया, कह दिया वही जो मन आया,
चल दिये जहाँ ले चल साया, सुन गया वही मन की माया।
संतृप्त हो चली सब आशाएँ, काया खंडहर उर युवा चले,
संकल्प लिए सब पूर्ण हुए, वृद्ध तन हिलता न भान हिले।

मनुष सम मनुष प्रजाति हित, वर्धन पर ध्यान भी खींचा,
कर्त्तव्य का विस्तार लपेट, आँचल को ममता से सींचा।
कुछ बीज रोप कई बरस गए, वटवृक्ष वे अब रूप फले,
वंश तरु नम धरती पौध से, उपजे नव अंकुर स्नेह पले।

ऊँच–नीच कुछ अधिक–कम, क्रोध–प्रेम कभी शुष्क नम,
नातों को अपनाते रहकर हम, डूबे अशक्त में भरकर दम।
मान–प्रतिष्ठा गणना त्यागी, ओष्ठों को कई–कई बार सिले,
सशक्त उन रेशों की सहभागी, महीन डोर बँधी गाँठ खुले।

नियति के झटकों पर विषाद, उड़ा दिया पल में परिहास,
उपयुक्त सदा विधि का चयन, यह सौभाग्य का इतिहास।
भरपूर जिया जीवन जी भर, स्पंदन में हर्ष उल्लास घुले,
कतरा कतरा तन निर्झर था, प्यासी धड़कन की तृषा टले।

नयनों में चलचित्र विगत का, रथ चढ़ बन रहे सारथी,
भवचित्र काया की बागडोर, आरूढ़ दिखे बने स्वार्थी।
प्रकाश फैलाते पुंज के तल, अंधकार भरा वृत्त खले,
मोक्ष दीपक की लौ में जल, शेष श्वास की आयु गले।


**डॉ0 आरती 'लोकेश'**
दुबई, यू.ए.ई.

5

# Light Music and Its Scope

**Dr. Sarswati Negi**

***Abstract :***

Let me clarify at the very outset that as I talk of light music, or refer to it, directly or indirectly, I mean to talk of light music in context with Indian music unless specified otherwise. Being an Indian, I am closer to it than any other kind of music. I have been a student of music and hence can say it on account of my experience that music is a very efficient tool, which can help us, keep healthy and happy through our lives.

Let us concentrate upon music of the time we live in. at present, Indian music is very much popular in around the Indian Subcontinent. Not only here, we find our music wherever the people from Indian origin belong to. Thus, our music can be felt from almost every part of the world. At present, Indian music is very much popular in and around the Indian Subcontinent. Not only here, we find our music wherever the people from Indian origin belong to. Thus, our music can be felt from almost every part of the world.

Light music or popular music – as most of us call us it, is getting more and more prominence with the masses. Various streams of this kind of music have evolved over the centuries and some are still in the process. Pop music has so many shades and expressions that it needs a thorough study. Various forms of light music, such as, bhajans, Gazzals, movie melodies etc. will be studied in this article.

**Introduction:**

Let me clarify at the very outset that as I talk of music, or refer to music, directly or indirectly, I mean to talk of Indian music unless specified otherwise being an Indian, I am closer to it than any other kind of music. I have been a student of music and hence can say it on account of my experience that music is a very efficient tool which can help us keep healthy and happy through our lives. According to Sri Chinmoy, "God's favourite sound is the sound of His inner Music. This inner Music is the music of earth's transformation and humanity's life-perfection." As we open up for music, full of beauty and bliss, we are spell-bound to its melodies and forget everything else.

Music, as referred to in various ancient and medieval Works and treatise, is a combination of three other fine arts. Namely, Geet, (melody or vocal music), Vadya, (instrumental music) and Nritya, (dance). However, we'd not go into the technicalities of the term. Generally, the common men and women do not need a definition to appreciate, understand, adjudge any concepts, ideologies, arts, philosophies etc. the common people use the 'common sense' to understand even the most complicated situations. It is the job of the scholarly and the intelligent to play with language and more often than not, to prove nothing but their capacity of analyzing the concepts. One needs to be a connoisseur and not necessarily a scholar, to enjoy or appreciate music or any art for that matter. However, I go with the most famous definition of music which is accepted by artists and scholars in India without any doubts.

"गीतं वाद्यं तथा नृत्यं, त्र्यम सङ्गीतमुच्यते।"

Singing, playing on instruments and dancing – these three intermingled arts together are called music.

Let us concentrate upon music of the time we live in. at present, Indian music is very much popular in around the Indian Subcontinent. Not only here, we find our music wherever the people from Indian origin belong to. Thus, our music can be felt from almost every part of the world.

**Diversification of music:**

Music consists of vocal, instrumental and dance forms. It is a versatile art form which has diverse possibilities and applications. Vocal music further consists of various diverse arrangements such as classical music, semi-classical music and light music. Our focus in this article is light music and its scope. Therefore, let us concentrate upon the same.

**What is light music?**

The word 'light' refers to weight. The things which are not heavy are considered light. It is the opposite of the word 'heavy'. Thus, light music is considered lighter than classical and semi-classical music both of which are based upon Raga music. Light music is considered easier than that of raga music (though the exponents of light music have different opinions upon it).

When we study it in more details, we find that the term 'light music' was given by the British scholars who

found that our Raga music and folk traditions in music were different from each other. Light music is a generic term applied to a mainly British musical style of "light" orchestral music, which originated in the 19th century. It grew to its Zenith during the mid-20th century and continues until the present day. The style is a less "serious" form of Western classical music, featuring through-composed, usually shorter orchestral pieces and suites designed to appeal to a wider audience than more serious compositions. The form was especially popular during the formative years of radio broadcasting, with stations such as the BBC Light Programme featuring a playlist largely consisting of light compositions. Occasionally known as mood music or concert music, light music is often grouped with the easy listening genre, although this designation is misleading. Although mainly a British phenomenon, light music was also popular in the United States and in continental Europe, and many compositions in the genre are still familiar through their use as film, radio and television themes.

In fact, the terms 'Classical music' as well as 'Light music' came to India with the British rule which happened to be during the modern period of the history. Previously, no Indian scholars, musicologists or musicians used this term. In ancient India, no works of music refer to the tradition of classical/light music. Likewise, all medieval treatise deal with only music. They give it different dimensions like Gaayan, Vaadan, nritya etc. but do not subscribe to light or classical music. In modern times, as Britishers came to India, many British musicians also visited India. They got interested in the research of Indian music. Hence, they divided our music in the categories like light music, classical music etc.

**Scope of light music:**

Scope of light music is diverse and versatile. In fact, we find light music in every sphere of our life. It is one of such tools that can turn our minds upside down and can guide the mankind to the journey of spiritualism. It can transfigure our minds and bring about phenomenal changes in the state of our mental health. It can curb most of the psychological disturbances of the era and hence can take us closer to the Gracious God.

In this era of information revolution, we have somehow erased from our memories the basic information about our very existence. We have forgotten that it is not our efforts but the grace of God, which showered on us numerous gifts of Mother Nature. We have become so self-centered that gradually, we are closing all avenues of social contacts. We spend hours to communicate our ideas and aspirations through the internet but forget to give a smile as we run into the person next door; we fail to recognize our neighbors at times. There are problems in the society which need prompt attention. If these problems are not addressed to in the near future, we shall endanger ourselves. These problems need a quick solution.

**One of such solutions is using light music as a tool of mental healing.**

Music is a fine art. Therefore, it has the capacity to generate the feeling of beauty. The beauty of ideas, the beauty of feelings, the beauty of Mother Nature and above all, the realization of the omnipresent God through the realization of beauty.

Looking at Music through diverse perspective one can allocate; and disseminate a wider spectrum. Music not only enhances the spiritual levels but also caters for therapies when medicines fail to act. There are various authoritative citations of researchers who have proved scientifically the musical phenomena and the working thereof. Even theologians have approved of this source and various schools of thoughts have adopted this medium to propagate, prophesize and communicate the perspective. It is synthesized in inverse prepositions that people have attained mysticism through music and proper application thereof. Music has been instrumental in bringing social change and even at times revolution in the society.

It is in the present day where people are looking out for fusion and also looking for metallic music that has somehow led people from deep spiritual experience to a situation of chaos. This chaos is reflected in the popular music or Bollywood music of the present day.

After this outline, now let us present the divisions available in light music:

Light music can be divided into different categories like:

1. **Devotional music,**
2. **Sufi music,**
3. **Regional or folk music,**
4. **Popular music,**
5. **Bollywood music,**
6. **Patriotic music compositions,**
7. **Ghazals,**
8. **Miscellaneous.**

**1. Devotional music:**

Devotional music is music based upon Bhajans, Keertans, Guru Bani, and all other styles of praising the all

mighty. Many exponents of classical music also demonstrated their artistic skills in this field. Pt. Bhimsen Joshi, Kishori Amonkar, Pt. Jasraj, etc are great artists who sang devotional music with the same natural ease which they reflected in the highest form of Raga music.

**2. Sufi music:**

Sufi music came to India with Sufi tradition of Muslims. Though music considered forbidden in Islam, Sufi musicians consider it a means to reach God. Great sufi saint Nizamuddin Chishti was found of Kawwalis. A versatile musician and also a disciple of the saint Amir Khusro originated a musical tradition called Kawwali and many of others disciples of the same saint learnt it from Amir Khusro. They sang this Kawwali on different celebrations before the Guru and other Sufi scholars. Hence this tradition evolved in India. There are many forms of Kawwalis which are not the topic of our study. However, it is worth mentioning that Kawwalis began through Sufi music.

Besides, Kawwalis, presently, sufis sing, natia Qalams, Hamad, Ghazals (which will be discussed in the coming paragraphs), and other such songs which seemingly look romantic but have a deeper devotional meaning. By depicting the romance between a man and woman, they describe the urge to meet with the God. Their urge to find God is as strong as a young man's urge to see his beloved.

**3. Regional or folk music:**

India is a huge country which can be divided in various regions on account its cultural diversity. As cultural traditions change, music of the area also changes. Music is an integral part of our culture. In different regions of India various songs and dance forms are prevalent which are very different from each other. This music of various regions is called regional music. Sometimes, it is referred to as 'country music' or folk music of a specific region.

Our folk traditions have been very rich from the time immemorial. Folk dances, folk songs, folk theatrical forms etc have a very intriguing effect.

Examples of this music are: Haryanvi folk songs, Maand a Rajasthani song, Gujrati folk songs, Dandiya which is a form of Gujrati folk dance, and many others.

**4. Popular music:**

In Most popular streams of music it begins from Mumbai. Though, other cities too are getting centers of this kind of music. In the Indian Subcontinent, the popular music or the pop music as it is called in short, came through the music of the cinema. In fact, before the advent of cinema, two categories of music were commonly prevalent in the region. Namely, one – the Margi sangeet: which was governed by a specific fixed set of rules, two – Deshi sangeet, which was common in the folk people. There was not any music as the popular music or the pop music. As the medium of cinema originated, the recording industry emerged in India. Film music initiated the art of writing the musical compositions. Before the advent of the film music in India, we had no tradition of writing musical compositions. We had oral tradition so as to memorize the compositions. In our music, it is the uniqueness that we develop musical compositions through our imagination and not through the writing of compositions. Whereas in the western world, musicians first write the musical composition. Then they play these compositions without any kind of change. It is the imagination of the composer and not that of the artist who is playing or singing the compositions. In India, the trend is different. Here we have the scope for new creativity in the composition. That is why, all compositions, however old it may be, look new and original at the same time. Even after the development of the musical notation system, we have not developed the habit of writing musical compositions. We rather feel easy to memorize them. What I mean to say that there is a greater scope for creativity in our music in comparison to the western music. Popular music reflects the Western influence on Indian music of various regions. In modern days, in wedding receptions, other parties, Clubs and restaurants etc everywhere we listen to popular music either playing on computers or videos of the same are displayed. Popular music has today become a kind of very short video which displays dancing girls and boys to the rhythms of Western paterns. Popular music has grabbed the space of regional and folk music.

**5. Bollywood music:**

Bollywood music is also a kind of popular music. It depicts all music which is composed for Indian movies. It is the music of cinema.

It is from Bhatkhande and Vishnu Digambar Paluskar who originated notation system for Indian music but Film music changed the scenario by initiating the art of writing musical compositions in Western system of musical notation. . This is also note worthy that the film music in India neither could be included in the category of the classical music nor could it be called the folk music. In fact, it borrowed immensely from all kinds of music. Be it the folk music, Raagdari music, devotional music, Sufi music, regional music or the western music. That is why; the film songs had the glimpse of all kinds of music. Thus, these kinds of songs cannot be included in a specific category. To solve the problem, the film songs were also called as the popular

music. In fact, this music has to be very popular. Soon it made its place on all channels of music. All media of music was full of the film music. Radio, television, recording industry, all media that was related to music directly or indirectly, gave a remarkable space to the film music. Common people, who had never thought of learning music, began to sing the movie melodies; it made its roots deep in the masses. The Rikshawwalas, hawkers, vegetable sellers, the drivers of different vehicles, people of all strata of the society danced at the tune of the movie songs. The popularity of the film music was so great that initially it was impossible to make a film without songs. The popularity of a film was very much depended in India over the popularity of its songs. That is why; there is nothing wrong if the film music in India is called the popular music. However, we can present several examples wherein, film music borrowed from classical music and hence cannot be called popular music in the sense in which the word is presently used. Yet it is also true that in the sense of popularity, we can call it popular music. Basic difference between pop music and film music is that pop music is highly westernized whereas, not all movie music has a western influence. Movies like mughal-a-Aazam, Paakeeza, basant Bahar, utsav etc. have quiet traditional Indian ethos in their songs.

**6. Patriotic music compositions:**

One of many objectives of music is national integration through the art. In school assemblies, school functions and on national festivals, patriotic songs are sung. This kind of singing is called community singing. Akashwani conducts group songs based upon nationalism. On republic days, independence days, Gandhi Jayantietc, various groups perform at dedicated venues and sing national songs full of enthusiasm. These songs have a very positive influence on the mind of the children.

**7. Ghazals:**

Ghazal is another form of light music which got prominence with the advent of Begum Akhtar in the field of vocal music. Later on, Mehndi Hassan and Ghulam Ali from Pakistan, Jagjitsingh, Hariharan, Pankaj Udhasetc popularized the genra. It was Jagjit singh who gave a western touch to ghazals by introducing musical instruments like Guitar, Violin etc. presently, it is a very popular stream of light music. Sometimes, many pop artists also try on ghazal singing. Hence, gradually, it is entering into popular music sphere.

**8. Miscellaneous:**

All remaining light music genra may be included in this category. Singing styles like Fusion music, Rabindra Sangeet, Natya sangeet (maharashtra) can come in this stream.

**Conclusion:**

Keeping in view, all above facts and after going through various categories of light music, we can conclude that scope of light music is ever-growing we cannot delimit it with categorizations and classifications. It would be a great injustice to it. However, for studying light music, all these categories need to thoroughly be studied without which we will never be able to grasp the true meaning of light music. Light music in itself looks confusing and gives different connotations. But after going through this article, we can easily grasp the concept of light music. We can also ascertain its scope.

**References**


- Sri Chinmoy is a spiritual teacher who dedicated his life in the service of humanity. In his 43 years in the West, he endeavored to inspire and serve mankind with his soulful offerings - his prayers and meditations, literary, musical and artistic works. For more info, visit: http://www.srichinmoy.org/
- "Geetam Vadyam Tatha nrityam, tryam sangeetamuchchyate." – Sangeet Ratnakar: Swaragata Adhyaya, Pindotpatti Prakaran.
- Indian Subcontinent refers to the geographical entity consisting of countries like India, Pakistan, Bangladesh, Nepal and Bhutan etc.
- https://www.definitions.net › definition › light+music
- Music, Mind and Mental Health, (1998), Bag chi K., Society for Erotological Research, New Delhi.
- In general, there was no trend of writing the musical compositions.
- Please note that in Karnataka music, the musical compositions are fixed but still there is a scope for imagination therein. However, in the Western music, there is no such liberty.



**Dr. Sarswati Negi**
Department of Music
Maharshi Dayanand University
Rohtak

6

# Grammar Of Communal Politics During The National Movement of India (from 1757 To 1905)

**Dr. Laxmi Kant Tripathi**

***Abstract :***

***T***he British rule in India had a mixed reaction. It was hailed by those who had seen the tyranny of Islamic rule under the Muslims emperors and nawabs. It was cursed by those who had enjoyed patronage of the extravagant and lustful nawabs and kings. The farmers, the tradesmen and craftsmen, especially the weavers, were all hard hit, because of the new agrarian and trade policies, were all hard hit, because of the new agrarian and trade policies of the East India Company. As a result, there were frequent local uprisings in various parts of the country, especially in Bihar, Bengal and South India, even before the armed revolt of 1857. The failure of the 1857 revolt brought home to Indians their basic weaknesses. The leaders of the majority home to Indians their basic weaknesses. The leaders of the majority Hindu community realized that they must first get rid of their age-old shackles of casteism, regional prejudices, illiteracy, superstitions, and defeat-ism, before they could succeed in any attempt against the British might. Consequently, a number of social and religious reformist organizations, like the Arya Samaj, Brahmo Samaj, Parathana Samaj, Came into being, The British Intelligentsia also realized that they could not take Indian population for granted and must pay heed to Indian sentiments and tone up their administration. On their part, the British started taking certain measures to appease the Indian sentiment.

"I thank the Almighty for emancipating this country from the centuries old bondage and placing it under the British rule".[1]

These are the words of Raja Rammohun Roy (1772-1833) about the East India Company's victory in the Plassey war (1757) and consequent removal of the Muslim rule from Bengal.

The British rule in India had a mixed reaction. It was hailed by those who had seen the tyranny of Islamic rule under the Muslims emperors and nawabs. It was cursed by those who had enjoyed patronage of the extravagant and lustful nawabs and kings. The farmers, the tradesmen and craftsmen, especially the weavers, were all hard hit, because of the new agrarian and trade policies, were all hard hit, because of the new agrarian and trade policies of the East India Company. As a result, there were frequent local uprisings in various parts of the country, especially in Bihar, Bengal and South India, even before the armed revolt of 1857.

The failure of the 1857 revolt brought home to Indians their basic weaknesses. The leaders of the majority home to Indians their basic weaknesses. The leaders of the majority Hindu community realized that they must first get rid of their age-old shackles of casteism, regional prejudices, illiteracy, superstitions, and defeat-ism, before they could succeed in any attempt against the British might. Consequently, a number of social and religious reformist organizations, like the Arya Samaj, Brahmo Samaj, Parathana Samaj, Came into being, The British Intelligentsia also realized that they could not take Indian population for granted and must pay heed to Indian sentiments and tone up their administration. On their part, the British started taking certain measures to appease the Indian sentiment.

In the meantime, a new crop of Indian intellectuals, consisting of lawyers, editors, doctors, entrepreneurs and civil servants had been produced by the East India Company and the British Crown. Their only grievance was that they were denied equality of status and remuneration with their white counterparts.

There were many Britishers who studied the Indian problem in great detail and brought before the British parliament the failings of the British government in India which needed redressal.[2] A British ex-ICS officer, Mr. A.O. Hume, took up the Indian grievances. In a letter to Sir Auckcland Colvin, he complained about (a) the costly and unsuitable civil courts, (b) the corrupt and oppressive police, (c) the rigid revenue system, and (d) the galling administration of the Arms Act and the Forest Act. He sought (a) justice cheap, sure and speedy, (b) a land revenue system more elastic and sympathetic, and (d) a less harsh administration of the Arms and Forest laws.[3] Hume had also "unimpeachable evidence" of political discontent and "seething revolt" incubating in various districts, based upon the communication of the disciples of various *gurus* to their religious heads. He, therefore, thought of evolving a safety valve for this unrest and the Congress was the outlet. On March, 1st, 1883, in a letter addressed to the graduates of Calcutta University, he asked for just fifty men good and

true, men of unselfishness, moral courage, self-control and active spirit of benevolence. He stated, "If only fifty men good and true, can be found to join as founders, the thing can be established and the further development will be comparatively easy." Hume added.. " if they can not renounce personal ease and pleasure, then at present at any rate all hopes of progress are at an end and India truly neither desires nor deserves any better government than she enjoys."[4]

Hume also consulted the then Viceroy, Lord Dufferin, about forming the Indian National Union (later named as Congress) and was also blessed byMr. W.C. Bonnerjee, the first President of the Congress, through his Introduction to Indian Politics', published in 1898.

"It will probably be news to many that the Indian National Congress, as it was originally started and as it has since been carried on, is in reality the work of the Marquess of Dufferin and Ava when that nobleman was the Governor-General of India. Mr. A.O. Hume had in 1884, conceived the idea…. Saw the noble Marquess when he went to Simla in early 1885… Dufferin took great interest in the matter and after considering over it for some time, he sent for Mr. Hume…… He said, there was no body of person in this country who performed the functions which Her Majesty's Opposition did in England… it would be very desirable in their interest as well as in the interest of the ruled that Indian politicians should meet yearly and point out to the Government in what respects the administration was defective and how it could be improved, and he added that an assembly such as he proposed should not be presided over by the local Governor, for in his presence the people might not like to speak out their minds… Lord Dufferin had made it a condition with Mr. Hume that his name in connection with the scheme of the Congress should not be divulged so long as he remained in the country, and his condition was faithfully maintained and none but the men consulted by Hume knew anything about the matter,"[5] In March 1885, it was decided to hold a meeting of representatives from all parts of India at the ensuing Christmas. A circular was issued stating *inter-alia* that the Conference would be composed of delegates-leading politicians, well-acquainted with the English language- from all parts of the Bengal, Bombay and Madras Presidencies. The venue first proposed was Poona but later it was changed to Bombay.

The First two-day's session of the Indian National congress was accordingly held at Bombay on 27th and 28th December, 1885 under the presidentship of a retired ICS officer, Mr. W.C. Bonnerjee. It was attended by 72 delegates including prominent men like Dadabhai Nauroji, K.T. Telang, Ferozeshah Mehta, a number of professors, lawyers, editors, writers and scholars. Reporting about the conversion, the Times of India, Bombay, of February5, 1886, sarcastically remarked:

"Only one great race was conspicuous by its absence: the Mohammedans of India were not there. They remained steadfast in their habitual separation."[6]

The Report was, however, not wholly correct. Two prominent members of the Muslim community, namely, R.M. Sayani and A.M. Dharamsi, both layers at the Bombay High Court, did attend the Congress session. It is noteworthy that a political organization of middle class Muslims was also formed in 1885 in Calcutta. This Muslim organization later joined the Congress. The editorial of the Times of India, however,made a prophetic observation which not only proved correct fifty years later but would seem relevant even today. It stated:

"Political privileges they can obtain in the degree in which they prove themselves deserving of them. But it was by force that India was won, and it is by force that India must be governed, in whatever hands the Government of the country may be vested. If we (the TOI was then owned by the British)

were to withdraw, it would be in favour not of the most fluent tongue or of the most ready pen, but the strongest arm and the sharpest sword".[7]

The first session of the Congress expressed loyalty of the Indian people towards the British government in clear and unequivocal terms. It discussed issues relating to administration and taxation and passed a resolution that the British government should appoint a committee to look into the same. Upto 1897, the main aim of the Congress was to secure from the British masters greater rights of recruitment of Indians in higher civil services and certain other concessions, like reform of the legislative council, holding examination for the ICS, both in England and India, Its means were appeals, memorial, memoranda and petitions. The number of Congress delegates increased with each subsequent session. Participation of the Muslims also increased; from 02 in the first session and 33 in the second, it rose to 156 (out of 702) in the sixth session in 1890. Participation of Parsis and Christians was quite appreciable. While the first president of the Congress was a Hindu, the second one (1886), Dadabahi Nauroji, was a Parsi, the third (1887), Badruddin Tyabji, was a Muslim, the fourth (1888) David George Yule, was Christian, the fifth (1889), Sir William Wedderburn, was a European, and the Sixth (1890),

Sir Pherozshah Mehta, was again a Parsi. In spite of all this, the Congress was termed as a "Hindu" organization, and rightly so because of the Hindu majority. An impression was, however, being created by the British officials that the Muslims were opposed to it. As a reaction to it, one Sheikh Raza Hussein Khan produced in the Congress session of 1888 at Allahabad, a '*fatwa*' from the spiritual leader of the Sunni community of Lucknow and declared that "It is not the Muslims but their official masters who were opposed to the Congress".[8] The Sheikh said, "We may differ in religious views, but in our aspirations, we are one. We have common goal, and we are one nation. So in respect of laws, all should be treated alike".[9] But the fact remains that quite a large number of Muslim leaders, prominent among them being Sir Syed Ahmed Khan were opposing the Congress and dissuading the Muslims from joining it.

A classic example is one of Badruddin Tayyabji, president of the 1887 session of the Congress. Almost at the same time, Sir Syed Ahmed Khan got his Knighthood. Tayyabji wrote him a letter of congratulation. In reply, Sir Syed criticized the Congress. Stating that it was against the interest of the Muslim community, he ridiculed Tayyabji for his association with the Congress. The latter first defended his national outlook, but ultimately relented and wrote to A.O. Hume that in view of the increasing hostility of the Muslims, the annual session of the Congress should be prorogued for at least five years. Taking note of the Muslim sentiments, Hume himself circulated a draft resolution that no subject should be taken up for consideration by the Congress if it was opposed by the Muslim or the Hindu delegates as a body. It was the starting points of Muslim separation from Hindus and other religious minorities, all together called non-Muslims.

Thus, from the very beginning, the Congress came to regard the Muslims as a separate entity. Not only that, various acts and gestures of Congress showed that it needed the Muslims more than the Muslims needed the Congress. Taking advantage of this queer situation, the Muslims who joined Congress always bore a domineering posture.

Here is an example. Social reform was made a part of the Congress programme. Alongwith the main session, a National Social Conference used to be held in the same Pandal.Inthe Social Conference of 1899, a *Mufti* from Barreilly was associated. A resolution supporting re-marriage of Hindu child widows came up for consideration. The *Mufti* sought permission to speak. The presiding officer said, "The resolution concerns Hindus alone; you need not speak. At this, the *Mufti* said angrily, "Then why have your tagged the word 'National' with this Conference?" Permission was granted. The *Mufti* pleaded that the Hindu ***Shartras*** did not allow re-marriage of widows and, therefore, it was a sin to bring in such a resolution." On another resolution to allow reconversion to Hindu religion of those who had once gone out and embraced Islam or Christianity, the *Mufti* again intervened to say, "When a man became an apostate and abandoned Hindu religion, he should not be allowed to come back and contaminate the sacred Hindu society."[10] The Hindu leaders in the Conference, including stalwarts like Ranade, were simply non plussed. The incident brings out the tragic fact that the Hindus who had brought the two resolutions had not done their home-work properly. They had not seen their own scriptures. They had been prompted only by the Western thought-wave. The *Mufti* had not said anything new. The fact, still mostly unknown and ignored, is that wherever Islamic rule was set up in India, the *Qazis* and the *Muftis* interpreted even the Hindu ***Shastric*** law. And, they did the way it suited them most. The *Shariat*law does not allow a Muslim to go out of the Muslim fold. Thus, it served the cause of Islam to favour the view that once a Hindu embraces Islam or Christianity, the doors of Hindu religion are closed to him forever. The *Shariat* law allows Muslims four wives at a time. Thus, it suited the Muslims to decree that the Hindu widows could not re-marry under the Hindu law. Consequently, thousands of Hindu widows went to Muslim homes. Had the Hindu leaders read their own scriptures, history and known their ancient traditions, they would have found that widow marriage was prevalent among Hindus. The holy ***Vedas***, the original Book of Hindu religion, contain references to widow marriage as well as inter-caste marriages. Emperor Chandra Gupta Maurya's marriage with the daughter of Greek-General *Seleukos*, about 300 BC, is a well-known fact of

history. Later Hindu ***Shastras*** do not commend such marriages, but there is no absolute injunction against them. Further, the ***Vedic edict is 'Krinvanto vishwamaaryam'***(let us Aryanise the world). As all the Hindu ***Dharmashastras*** were composed much before the advent of Islam or Christianity, they could not lay down anything specific about them or those who, to save their lives or property, adopted either of them, but wanted to come back to their original faith. A ban on such home coming would be violative of the Vedic teaching of converting the world to Aryan fold. Moreover, in the present context, such a ban will be a sin against humanity and freedom of conscience. The very fact that all the people of various hues, like the

*Shakas,* and the *Huns,* who had come to India before Islam, got converted to Hindu religion, leaving no trace of their origin, is a glaring testimony of the *open door policy of Hindu religion*.

Even before **Lokmany Bal Gangadhar Tilak** attended the Congress Session at Bombay in December 1889, he had become a great nationalist leader in his own right. In this session, he proposed that the member of the Imperial Council should be elected by the Provincial Councils instead of being elected by the electoral-college. Gopal Krishna Gokhale seconded it. It was the first and the last time in Congress proceedings that the two stalwarts' concurrence is witnessed. Tilak's proposal was lost, but his speech made a lasting impact. He got great support from leaders like B.C. Pal, Lajpat Rai, Subramaniam lyer and Madan Mohan Malaviya. In fact, Tilak gave a wholly new turn to Congress;he changed its course from loyalty to British government to confrontation, by putting up the demand for self-government, '**Swaraj is my birth right'**. Tilak laid stress on the service to the people and making Congress an organization of the masses.In 1893, Tilak started *Ganeshotsava,*the worship of Lord Ganesha with festivity and public procession which soon became a popular annual feature. It was followed by the celebrations of *Shivaji Jayanti* in 1896. The Muslims also participated in these festivals. But, the Anglo-Indian press of the time accused him of communalism, trying to stir up the Hindus against the Muslims. Vehemently refuting this charge, Tilak said,"Shivaji festival is not celebrated to alienate or even to irritate the Muslims. Times are changed and the Mohammadans and the Hindus are in the same boat so far as political condition of the people is concerned. Can we not both of us derive inspiration from the life of Shivaji under these circumstances?"[11]

No right thinking man can accuse Shivaji of being communal. Indeed, in Maharashtra, Shivaji was held in high esteem both by the Muslims and the Hindus. In the disastrous famine of 1896-97 and during the plague epidemic of March 1897, Tilak did a lot of relief work and, on both the occasions, he served Hindus and Muslims alike. He was, however, critical of Government's pro-Muslim attitude and expressed his anger through the '*Maratha*' and the '*Kesari*'. Consequently, there was a vilification campaign not only against him but against the whole Brahmin community of Poona. He was imprisoned on the charge of sedition in July 1897 and released in September, 1898. But the malicious reports of pro-British press has formed the source material for a number of Marxist, British and Pakistani historians to denigrate Tilak,*e.g.* a Britisher states:

"The first man to combine Hindu revivalism with active political agitation was Bal Gangadhar Tilak (1856-1920) who inspired an era or religious fanaticism and political violence which lasted until Gandhi introduced other methods in the early 1920s… Tilak can also be regarded as one of the founders of Pakistan, for he and the other revivalist Hindu leaders who used the Hindu religion politically in such a way that Indian Muslim finally became convinced that it would be the Hindus who ruled if Congress ever came to power."[12]This sort of history is an outcome of perverted mind or the result of Pakistani propaganda which does not have an *iota* of the truth.

**Partition of Bengal** in 1905 was the most important event in arousing national consciousness and mass awakening throughout India. The province of Bengal, at the time, included Bihar and Orissa and presented a lot of administrative problems. In 1874 itself, two frontier districts of Bengal had been transferred to Assam. In 1896, the Chief Commissioner of Assam had proposed that Chittagong Division and the Districts of Dacca and Mymen Singh should also be transferred to it, but the proposal was dropped. When partition of Bengal was affected in 1905, the motivation was political, rather than administrative. This would be clear from the Note prepared by the Home Secretary, Risely for Lord Curzon, in December 1904, which stated: "Bengal united is a power, Bengal divided will pull in several different ways. That is what the Congress leaders feel; their apprehensions are perfectly correct and they form one of the greatest merits of the scheme… One of our main objects is to split up and thereby weaken a solid body of opponents to our rule."[13]

The partition plan of Bengal by which a new province of East Bengal, comprising of Assam, Chittagong and 15 other districts, was created, generated a tempest of opposition and bitterness throughout India. There were protest rallies in every nook and corner. The *Swadeshi* movement attained an All-India character. The boycott of British goods caused considerable financial loss to the British industrial establishment in Lancashire (Englad). The Muslims supported this movement *ab initio*, but later the majority of them, especially in the new province of Bengal, turned against it and pledged their support to the government.[14] John Page Hopps, editor of 'The Coming Day, London', wrote; "The phrase 'Home Rule' is a phrase of ill omen to the ruling classes of Great Britian. This 'Home Rule' was the demand of the Hindus. As against this, the Musalmans had consistently been following the policy of

fidelity chalked out by Sir Syed Ahmad whose complete programme could be summed up in three words, 'Education, Loyalty, Opposition of the Hindus."[15]

The anti-partition agitation was followed by a reign of repression. Heavy punishments were awarded for small or no fault. The Governor of Bengal, sir Bamfylde Fuller put all the forces of fury on the Hindu public of Bengal. Even John Viscount Morley said, "He is evidently a shrewd, eager, impulsive, overflowing sort of man quite well fitted for government work of ordinary scope, but I fear, no more fitted to manage the state of things in East Bengal than am I to drive an engine."[16]

Two boys were fined for singing *Vande Mataram* in the streets of Mymensigh. Sir B. Fuller issued a circular calculated to prevent the Muhammadans from making a common cause with the Hindus. In it, the Divisional Commissioners and District Judges were asked to 'fix a proportion which Mohammedans should constitute in the personnel of each office, and to instruct those who enjoyed the power of making appointments that so long as that quota was not reached they were not to reject Muhammedan candidates merely on the ground of comparative inferiority of qualification."[17] In his zeal for favouring the Muslims, Fuller called the Muslims as his favourite co-wife, a remark that was resented by many self -respecting Muslims.[18] Consequently, there were bloody Hindu-Muslim riots in Bengal in which the Muslims committed all acts of brutality on the Hindu population. "At one place, some Muslims proclaimed by beat of drum that the Government had permitted them to loot the Hindus, while at another they publicly declared" that the Government had permitted the Muslims to marry Hindu widows in the *Nikah* form."[19]The atrocities on Hindus of Bengal, both by the British government and by the Muslims, were numerous. Naturally, therefore, Hindus took to extreme methods against the British officials.

The Muslims League, which was then at cradle (formed in 1906), followed its chosen way of not making a common cause with the Hindus except under pressure of expediency. While the anti-partition agitationists criticized the Viceroy, Lord Curzon, the Muslim as a class eulogized him. The Aligarh Institute Gazette of May 9, 1904, stated, "One community of India deprecated completely the various acts of Lord Curzon…and this, perhaps because another community regards his period as the best one and Lord Curzon as the best Viceroy."[20] But, despite all the odds, the anti-partition movement got stronger and stormy until the partition of Bengal was annulled in 1911. The rest is the fillip of communal unrest and hatred, culminating from communal divide to the bleeding partition of an ancient nation that was India

**Reference:**


1. B.N. Jog: Threat of Islam, Unnati Prakashan,1994, Purvanchal Navghar Marg, Mulund (E), Bombay-81, p. 1
2. Pattabhi Sitaramayya: History of Indian National Congress, Vol.-I, 1969, S. Chand& Co, Ram Nagar, New Delhi, P.5.
3. Ibid, p.8.
4. Ibid, pp.8-9
5. Ibid, p.15
6. B.N.Jog: op. cit., p.41
7. Ibid, p.41
8. Pattabhi Sitaramayya,: op. cit., p.44.
9. B.N. Jog: op. cit., p.42
10. Ibid., pp. 50-51
11. Dr. Nihar Nandan Singh: Lokamanya Bal Gangadhar Tilak, Congress Centenary Celebrations (1985), Committee, AICC, New Delhi, p.26
12. Micheal Edwardes: Last Years of British India, NEL Mentor Edition,1967, New English Library, Barnard Inn, Halborn, Landon, ECI, pp.. 35-36.
13. Dr. Tara Chand: History of Freedom Movement in India, vol. III, Publication Division, Government of India, 1972, p.313.
14. Ibid, p.317.
15. Lal Bahadur: 'The Muslim League (Its History, Activities & Achievements) Agra Book Stores, 1954, Agra, p.56
16. Ibid,p.60
17. Ibid,p.61
18. Ibid,p.61
19. Ibid,p.61(*based on CY Chintamani's Indian Politics since the Mutiny*).
20. Ibid,p.65



**Dr. Laxmi Kant Tripathi**
Associate Professor,
Department of Political Science,
Feroze Gandhi College, Rae Bareli (U.P.)
Email:lktripathi7@gmail.com

7

# Role of School in English Language Learning

**Dr (Prof.) Punita Jha, Shibu V.R**

Abstract :

School is a second home for any student. It is not out of anybody's life which has been proved even by the Avataras or transformation of God. If we look at any religion; we find that their divine personalities were the best learners and examples for us. So, the schools remain as a abode of perfect learning specially language because learning language is a contribution of community or group. School does not mean to have mere building but should have all facilities and atmosphere to learn English language like compulsory language spoken, language lab, language activities and it should begin from the teachers first. School is the only platform where students can practice English language because it is not our mother tongue.

School is the best place where language learning takes place positively. It provides a big platform for each and every learner studying in the school. School provides comprehensive learning platform. Learning is a transmittable act. Positive and negative learning occurs rapidly. We try to learn a new language, when we find that everyone is speaking a same language. School provides a challenge for learner to speak in same language. Each and every one receives enough input in a language over a period of time. Student takes learning new language in a challenging way;

Yes, I have to speak in English,

I will speak in English.

He started to practice it with one word, one wrong sentence at early stage but next stage he learnt more than a word or a sentence. Positive learning starts at this point which leads one to the classroom when a teacher delivers lectures in English, and peer communicates in English in the classroom, playground and in the bus while travelling. Students get better exposure and ample opportunities to communicate in English without sense of fear. Students learn English speaking technique very fast up to pre-primary and primary level. However, acquisition of English language learning or second language slows down from the age of eleven onwards. It happens due to learning English as a 2nd and third language. Learning occurs here but progress becomes slow.

Now, the basic question which arises is whether the homely environment is enough for second language (L2) acquisition? Exposure of certain language in suitable environment is the key point in the language teaching – learning process. Language is meant for communication. Merely knowing the language is not sufficient, if it is not used in day to day life. Use of language for different purposes is another key point in learning a language. The systematic use of language develops at second stage of language learning i.e. appropriate/meaningful sentence, fluency, grammatical accuracy, word- power and punctuation.

A child starts learning language in his/her mother's womb. It is proved in scientific research and even we know it from our religious epic the Mahabharta. Abhimanyu learnt so much language in his mother's womb. Can you say that journey of language learning starts right from the mother's womb? Unconsciously a child has already acquired some knowledge about a language and the parents, home, society, helps him to bring that unconscious knowledge to the conscious effort of language learning. The way child learns language is very interesting. In early stage, if a child utters a word "mama , pa –papa " parents encourage his/her to say so repetitively and gradually child picks up language ,i.e. letter , words , sentences , phrases etc. It happens only due to practice and exposure to that language. Child starts learning his mother tongue. Slowly, children get more exposure in mother tongue. What happens when children start to learn second language? Can we provide same environment in the classrooms in teaching –learning situations? We can certainly maximize second language learning in the classroom by providing homely environment in the class.

I would like to take the view of Tagore, he insisted that education should be imparted in a natural surroundings. He believed in giving children the freedom of expression. He said, "Children have their active subconscious mind which like a tree has the power to gather its food from the surrounding atmosphere". He also said that an educational institution should not be "a dead cage in which living minds are fed with food that's artificially prepared. Hand work and arts are the spontaneous over flow of our deeper nature and spiritual significance".

Main purpose of Language is to communicate, to convey the message. Home is the first school of language

learning. If the parent of a child is well qualified and know more than two languages; child acquires more than two languages very easily. Suppose if a Child's mother belongs to Gujrat and her mother tongue is Guajarati but she marries to a man from England, naturally child will acquire both languages. It will also depend on the society, where they reside. If the parents live in Delhi and most of the people in locality speak Hindi, probably the child learns Hindi first than English. Because most of the time he listens Hindi than English. Society also plays an important role in the language learning. If a number of people speak particular language in society; child will acquire that language easily e.g., in Goa there were French colonies before independence and till the date French is one of the main language in Goa. School is an important factor in language learning, their peers, and their teachers are most important in their life.If teachers in the school are competent enough in their concern subject, and if their teaching methodology is suitable to the learners, suitable to the present needs of the learners, language learning takes place very soon. Exposure and practice in language learning is crucial factors without it no one can learn language. In fact we cannot learn language in vacuum.

I would like to quote Edward T. Hall, he said, "the essence of cross culture communication has more to do with releasing response than with sending message. It is more important to release the right response than to send the right message."

We should create such types of activities which involve children directly like role –play, discussion in the classroom etc. These types of activities provide so much exposure and practices. Children feel comfortable in the classroom. When children feel at ease in the classroom they learn so much, they think that they are just talking in the classroom, meanwhile the acquisition power increases. Does a textbook play important role in language learning? Yes, a textbook plays crucial role in language learning. It provides ample opportunities for language learning through different tasks. Now a day's textbook writers give much importance to develop communicative competence; tasks are communicative and related to real life situations so that learned can use language in the class as well as in daily activity. If the textbook provides ample communicative tasks, children learn so much. Exposure and practices are the keys to success. Practices lead to perfection and command on that language and exposure helps to use that language in different contexts, it helps to sharpen that knowledge. Apart from exposure and practices, home, parents, school, teacher, society, textbooks play crucial role in language learning.Students must be taught vocabulary through formal instruction and also provided opportunities to acquire vocabulary through use in language-rich settings in and out of the classroom. Teachers should go beyond the words in reading texts and address the meaning of common words, phrases, and expressions that English learners have not yet learned. Academic English is the language of school-based learning and entails understanding the structure of language and the precise way that words and phrases are used, including content-specific vocabulary. More nuanced and de-contextualized than conversational English, it requires a high degree of precision in reading, writing, listening, and speaking. Starting in kindergarten, academic English should be taught explicitly in specific blocks of time throughout the day - during content area instruction, reading instruction, and English language development. Students should learn the structure of the language, grammar, how words and phrases are used.

It is said that the change should take place from me first then the next person to me therefore every language teacher and all English medium schools should take an oath that we will never speak with each other in any language except the language English as well as should make sure that we teach the textbooks in English only. Teachers should develop pupils' spoken language, reading, writing and vocabulary as integral aspects of the teaching of every subject. English is both a subject in its own right and the medium for teaching; for pupils, understanding the language provides access to the whole curriculum. Fluency in the English language is an essential foundation for success in all subjects.There will be challenges in the beginning but that will be for few days and the students will be able to understand later which will lead them to have a new dream for their lives.

**Reference**


- D.A.Wilkins., Linguistics in Language Teaching, Arnold Publication, 1972.
- Garcia, E. E., &Frede, E. C., Young English language learners: Current research and emerging directions for practice and policy. New York,:Teachers College Press, 2010.
- James, S.W., The Technology device and language teaching and learning. The Qualitative Report, Vol.15, 2015. Retrived on 9th July 2017.
- J.Haycraft, An Introduction to English Language Teaching, Longman, 1978.
- National Clearing house of English Language

Acquisition, The growing number of English learner students, Private Publications, 2011.
- Prabhu, NS, Second Language Pedagogy. Oxford: Oxford University Press, 1987.
- Rajeev Ranjan, English language learning: Importance and benefits of practice and exposure, Teaching is an Art, Indian Educationist, 2020
- Rodriguez-Valls, F., Coexisting languages: Reading bilingual books with biliterate eyes. Bilingual Research Journal, Landon, 2011.
- National Curriculum Framework, National Council of Educational research and Training, 2005.

**Dr (Prof.) Punita Jha**
Supervisor
Lalit Narayan Mithila University
Darbhanga, Bihar

**Shibu V. R.**
Research Scholar
Lalit Narayan Mithila University
Darbhanga, Bihar
Mob. 7544001228

**लघुकथा–हताशा का लावा**
**–संतोष सुपेकर**

क्या यार? कैसे–कैसे लोग हैं दुनिया में?हरि की माताजी की मौत के दूसरे दिन नरेन फिर उसके घर आया ,कुछ हांफता सा और बाहर सड़क पर ही तेजी से बोलने लगा–,कल वो तुम्हारे खास दोस्त,मुँह में रखी तम्बाखू घोलते हुए उसने बड़े अर्थ पूर्ण ढंग से हरि को देखा, रवि को मैं ही तो लेकर आ रहा था यहाँ ।पर वो साला ...इधर मम्मीजी की अर्थी उठने वाली थी उधर वो ,सब जानते हुए भी ...देर कर रहा था,घर बैठा परांठे भर रहा था ,घी के परांठे...हे हे हे...

हरि ने कुछ कहने के लिए मुँह खोला पर फिर अचानक बन्द करते हुए कुछ क्षण सोचा और सम्भलकर कहा ,ष्ठीक है यार! आ तो गया था वो टाइम से यहाँ।

अरे ! नरेन ने बनावटी ढंग से आँखें चौड़ी कीं,आ गया था मतलब ?कोई एहसान किया क्या उसने यहाँ आकर ?अरे तेरा खास दोस्त है वो रवि!कहते हुए उसका मुँह कुछ कड़वा हुआ,उसने तम्बाखू से स्वाद और नशा खींचने की असफल कोशिश करते हुए फिर पानी पर लाठी मारी ऐसे टाइम पे भी घी के पंराठे?सूझता कैसे है लोगों को?

अरे समझा करो यार , रवि शुगर पेशंट है ।वो भूखा नही रह सकता।मौत मैय्यत के कामों में चार–पांच घण्टे तो लग ही जाते हैं।ऐसे व्यक्ति को तो हमेशा खाकर ही कहीं जाना चाहिए।याद है जब माँ को ब्लड की जरूरत थी तब कैसे उसने बिना खाए–पीए भागदौड़ की थी?फिर ? अब, उसके खाकर आने या भूखे पेट आने से माँ वापस तो नही आ जाएंगी न?नरेन की उम्मीदों श्पर पानी फेरते हुए हरि ने अपनी आँखों पर ठंडे पानी के छींटे मारे।

हूं, चलो।जो तुम ठीक समझो।ठंडा पानी नरेन के ऊपर भी पड़ा ,मुँह मे रखी तम्बाखू उसे असहनीय होने लगी तो श्पिच्चश की आवाज के साथ उसने सारी तम्बाखू थूक दी।

तम्बाखू की उबलती हुई पीक , हरि को पीक नही,हताशा का लावा नज़र आई और ऐसे माहौल में भी मुस्कुराहट ने उसके होंठों पर अधिकार जमा लिया।

**लघुकथा–अपॉइंटमेंट**
**सन्तोष सुपेकर**

क्यों?शनिवार की शाम क्यों नही आ सकते आप?दिलावरसिंहजी ने आश्चर्य से पूछा, उसी दिन तो कार्यक्रम होता है हमारे ग्रुप में?ऐसा क्या काम रहता है आपको शनिवार शाम?

वो क्या है रामनिवास कुछ झिझकते हुए बोले,दोनो बच्चे यू एस ए में हैं और शनिवार शाम को ही वे हमसे बात करते हैं।तब हम दोनो को सारे काम छोड़कर अवेलेबल रहना पड़ता है।वे दोनों उस दिन वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग से बात करते हैं....

तो?शनिवार शाम ही जरूरी है क्या?और किसी दिन बात नही हो सकती ?

नहीं ,उन्होंने हमारे लिए शनिवार का ही टाईम फिक्स कर रखा है ,नही तो फिर हम हफ्ते भर उनका चेहरा नही देख पाते। अब ...क्या कहूँ आपसे...ष्बोलते हुए जुबान लड़खड़ाने लगी रामनिवासजी की ष्उनसे बात करना हमारी मजबूरी है ,उन दोनो की शायद ..नही ।

8

# समाज को आइना दिखाता – डॉ० लक्ष्मण सिंह का काव्य

**दिनेश**

**सारांश** –

साहित्य और साहित्यकार का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है क्योंकि साहित्यकार अपने साहित्य में उसी का वर्णन करता है जैसा वह समाज मे देखता है। आज के समाज में पुरानी मान्यताएँ खंडित हो रही हैं और नई मान्यताएँ पनप रही हैं। लेकिन नवीन मान्यताओं का अभी पूर्ण विकास नहीं हुआ है। ऐसे समय में साहित्यकारों के हृदय में अपनी संस्कृति, जीवन मूल्यों और मान्यताओं के प्रति आस्था विश्वास का भाव पैदा होना स्वाभाविक है। उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से वर्तमान समाज की विसंगतियों को दूर करके समाज की पुनः स्थापना का प्रयास किया है। साहित्यकारों का यह प्रयास समाज के प्रति सचेत रहने का परिणाम है।

सामाजिक बुराइयों पर प्रहार

डॉ० लक्ष्मण सिंह अपने काव्य संग्रह 'चन्द्रिका' में बहु–विवाह प्रथा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि भारतीय समाज एक से अधिक विवाह करने की अनुमति नहीं देता है। इस प्रथा के कारण समाज में नारी की स्थिति बहुत खराब हो जाएगी। समाज का विधान तो यही है कि एक पुरुष के साथ एक ही स्त्री रहे। यहाँ तक कि इस परम्परा का निर्वाह मनुष्य ही नहीं, पशु–पक्षी भी करते हैं तो मनुश्य बहु–विवाहप्रथा को चलाने की नादानी कैसे कर सकता है। कवि ने इसको इस प्रकार चित्रित किया है–

''चलाई तीन पत्नी की रीत,
उचित इसको कह देगा कौन?
अवमूल्यन नारी का हुआ,
सिद्धान्ततः कौन रहेगा मौन?
एक नर संग नारी रहे एक,
समाज का सीधा सरल विधान।
पक्षियों तक में ये रीत,
भानु क्यों बन बैठा नादान।''

डॉ० लक्ष्मण सिंह ने 'रोशनी' काव्य संग्रह में भी समाज में फैली बुराईयों पर प्रहार किया है। उनका यह मानना है कि समाज में ऐसा समय आने वाला है, जब सब कुछ समान होगा, सभी लोगों का अधिकार एक समान होंगे, छोटे–बड़े का भेदभाव समाप्त होगा और नया सवेरा जल्दी आएगा।

''उच्च वर्ग का कुपित खिलाड़ी/चौपट सार समेट रहा है।
बदली बहुत गोटियाँ, बदले दाव बार–बार बहुतेरे।
नवप्रभात की किरण नवीन/नया सवेरा ले आई है।''

डॉ० लक्ष्मण सिंह की रचना एकादश–शती ग्यारह सौ दोहों का संकलन है। उन दोहों में ऊँच–नीच की भावना का विरोध और आाम आदमी की लाचारी व बेबसी का चित्रण हुआ है। कवि का मानना है कि व्यक्ति के ऊँच–नीच का मूल्यांकन जन्म के आधार पर नहीं होना चाहिए, बल्कि व्यक्ति के गुणों के आधार पर होना चाहिए।

''नीचा कौन, कौन ऊँचा, कौन पैमाना होत्र।
गुण अवगुण की जात को, सहज हिय संजोयदा।
जात धर्म के फेर में, विधया सकल संसार।
गुण अवगुण लख–लख निए, बदल्यों ना व्यवहारा।''

डॉ० लक्ष्मण सिंह ने तत्कालीन समाज में फैली सामाजिक बुराईयों को अपने हरियाणवी दोहों के माध्यम से व्यंग्य रूप में दर्शाया है। इन दोहों के माध्यम से कवि ने सामाजिक जीवन शैली और आज के सामाजिक संबंधों पर भी करारा व्यंग्य किया है तथा आधुनिक मानव की सामाजिकता को दर्शाया है। उच्च वर्ग के लोग भोले भाले लोगों के माध्यम से अपने स्वार्थों की पूर्ति करते हैं।

''भले लोग भूखे मरै, मारै मौज मलंग।
जोर जुल्म कितने कैर, कटै न कती पतंग।।
पद धन बल धारी सबै, मिलजुल करते लूट।
सैयां हुए कोतवाल तो, जावै सारे छूट।।
सरकारी उद्योग सब, बेचैगी सरकार।
समाजवाद मिटाण का किसनै सै अधिकार।।

**वर्ग संघर्ष**

डॉ० लक्ष्मण सिंह ने अपने काव्य संग्रह 'महक माटी की' में कवि ने समाज में हो रहे वर्ग संघर्श को दर्शाया है कि किस प्रकार अमीर लोग अमीर होते जा रहे हैं और गरीब गरीब ही रह गए हैं। पूंजीपति लोगों ने समाज के प्रत्येक क्षेत्र पर अपना कब्जा कर रखा है। वह निम्न वर्ग के लोगों का शोषण करते हैं तथा उन पर तरह–तरह के अत्याचार करते हैं। पूंजीपति आम जनता का भला न सोचकर अपने स्वार्थों की ही पूर्ति करते हैं।

कार्ल मार्क्स ने भी इस विशय में कहा है – ''पूंजीवाद अन्तोतगत्वा हमारी समूची कला और संस्कृति को बिकाऊ माल में तबदीन कर देगा।''

''पूंजीपति अपने धन–बल पर करते जन गण की लूट पाट।
निर्धन से निर्धन के श्रम पर, करते हैं सारे ठाठ बाठ।।
वे क्रूर, क्रूरतम हत्यारे, करते तो एकाधिकार सखै।।''

**भ्रष्टाचार**

भ्रष्टाचार का यथार्थ चित्रण डॉ० लक्ष्मण सिंह की कविता का मुख्य उद्देश्य है। इससे पहले भी अनेकों कवियों ने भ्रष्टाचार को अपने काव्य के माध्यम से स्पश्ट किया है। परन्तु डॉ० लक्ष्मण सिंह के काव्य में भ्रष्टाचार के विभिन्न रूपों को देखा जा सकता है। कवि ने समाज में हो रहे भ्रष्टाचार के रूप में रिश्वतखोरी, अन्याय, अत्याचार आदि का खुलकर वर्णन किया है। उन्होंने जहाँ भ्रष्टाचारियों पर व्यंग्य रूप में प्रहार किया है वहीं राजनीतिज्ञों द्वारा किए जा रहे भ्रष्टाचार पर वे कहते हैं कि सत्ता पाते ही करोड़ों का घपला करते हैं। उनके राज में दोशी व्यक्ति स्वच्छंद घूमते हैं।

**भ्रष्टाचार की परिभाषा**

भ्रष्टाचार अर्थात् भ्रष्ट + आचार। भ्रष्ट यानी बुरा या बिगड़ा हुआ तथा आचार का अर्थ है आचरण। अर्थात् ''भ्रष्टाचार का शाब्दिक अर्थ है वह आचरण जो किसी भी प्रकार से अनैतिक और अनुचित ही।''

बहन बेटियों को उठा लिया जाता है। आज जनता सिर्फ उनसे अपने अधिकारों की माँग करती है। परन्तु राजनेता अपने स्वार्थों की पूर्ति में लगे रहते हैं।

''करोड़ों का घपला जो करे,
देश में द्रोह करे हर बार।
हत्यारे घूमे जहाँ स्वच्छन्द,
दे निदोर्शों को ललकार,
हमें दे न्याय–न्याय दे हमें,
बनाई हमने जो सरकार।''

डॉ० लक्ष्मण सिंह ने 'चन्द्रिका' के माध्यम से भ्रष्टाचार को स्पष्ट करते हुए कहा है कि भ्रष्टाचार ने मानव का रूप धारण कर रखा है, जो फैलता ही जा रहा है। एक स्थान पर भ्रष्टाचार को उद्घाटित करते हुए उन्होंने न्यायधीशों पर व्यंग्य किया है, वे कहते हैं कि न्यायाधीश इस पद को पाकर सबकुछ भूल बैठे हैं कि उनका क्या कर्त्तव्य हैं?न्यायधीश भी न्याय का निर्णय उसी के पक्ष में देते हैं, जो ज्यादा रिश्वत देता है।

'भ्रष्ट जो न्यायधीश हो जाए,
न्याय प्रक्रिया में करे विलम्ब।
पाकर शासनाधीश निर्देश,
भूले बैठे पद का अवलम्ब।।

डॉ० लक्ष्मण सिंह उन लोगों को खुले आम दण्डित करने के लिए कहते हैं जो भ्रष्टाचार को बढ़ावा दे रहे हैं। ये पंक्तियाँ उन्होंने 'महक माटी की' काव्य की कलाकार कविता के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त की है कि जो समाज का रक्षक है, वही समाज का भक्षण कर रहा है। उस भ्रष्टाचारी को कठोर से कठोर दण्ड मिलना चाहिए, जो सामाजिक व्यवस्था को खोखला कर रहा है।

''समाज में रिश्वत ग्रहण करे,
नेता हो या अधिकार हो।
संरक्षक वन भक्षण करता,
कितना बल–धर रहबारी हो।।
करो दण्डित सरेआम उसको,
करता जो भ्रष्टाचार सखे।।''

कवि ने भ्रष्ट लोगों को भेड़ियों कहकर संबोधित किया है और कहा है कि न जाने ये भ्रश्ट भेड़िये गाँव में कहाँ से आ गये जो हमेशा लोगों का रक्त चूसने में लगे रहते हैं। यदि इन भ्रष्ट भेड़ियों की यह इच्छा पूरी नहीं होती तो वे पूरे गाँव में आतंक फैला देते हैं।

''गाँव में भेड़िया कौन आया है?
किसके होठों पर रक्त चढ़ रहा है।
कौन सूखे हाड़ है निचोड़ता?
मांस न मिलने से कौन चिढ़ रहा है?''

डॉ० लक्ष्मण सिंह ने अपने काव्य, 'हरियाणवी दोहा सतसई' में भी भ्रष्टाचार का वर्णन बहुत अच्छे ढंग से किया है। इन्होंने भ्रष्टाचारी व्यक्ति को जिस–जिस रूप भ्रष्टाचार फैलाते देखा उसे उसी रूप में चित्रित भी कर दिया। उन्होंने भ्रष्टाचारी व्यक्तियों को चारे, डाकू के दोस्त कहा है।

इन्होंने यहाँ पर यह भी कहा है कि भ्रष्टाचारी लोग रंगे हाथों रिश्वत लेते पकड़े गए हैं, परन्तु उनका कुछ नहीं बिगड़ता है। कवि ऐसे लोगों को खुले–आम दण्डित करने के लिए कहते हैं। जो समाज को खोखला कर रहे हैं।

**निष्कर्ष**

रूप में कहा जा सकता है कि कवि डॉ० लक्ष्मण सिंह समाज के प्रति सजग रहे हैं। उन्होंने समाज में फैली कुरीतियों का न केवल अपने काव्य में वर्णन किया है, अपितु उसका पुरजोर विरोध भी किया है। उन्होंने भ्रष्टाचार, वर्ग संघर्श, आम जन की समस्याओं को अपने काव्य में स्थान दिया है।

**दिनेश**
मकान नं0 249ए, राजेन्द्रा कालोनी,
नजदीक भिवानी चुंगी, रोहतक–124001
फोन : 9812781321, 8708503527

9

# 90 का दशक और हिन्दी कविता

यतेन्द्र कुमार यादव

**सारांश** –

असंख्य आँखों से दिखाई दे रही
चमकती चीज़ों की पीठ के पीछे
स्याह स्मृतियाँ ही नहीं साजिशें भी हैं ख़तरनाक
वक़्त नहीं है
समय की इस ऊँची कूद को कोई भी नाम दे दो[1]
(चंद्रकांत देवताले)

समकालीन हिन्दी कविता को 1990 से रेखांकित करते हुए हमारे सामने यह स्पष्ट है कि 90 का दशक आर्थिक–सामाजिक –राजनीतिक – सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण परिवर्तनों का दशक रहा। यही वो दशक है जिसमें सोवियत संघ का विघटन हुआ और इस घटना को समाजवाद के अंत के रूप में घोषित किया गया। यही वो दशक है जब शीत–युद्ध की दो–ध्रुवीय राजनीतिक का अंत हुआ और अमरीका को निर्विवाद रूप से दुनिया का नेता मान लिया गया। यही वो दशक है जब नई तकनीकी, सूचना और संचार के माध्यमों से दुनिया को एक गाँव में बदलने की हसरतें परवान चढ़ीं, और इस कवायद को भूमंडलीकरण का नाम दिया गया। इसी दशक में देश के सत्ता ने बहुराष्ट्रीय निगमों को देशी बाज़ार में न्यौता दिया, और इस कदम को नई आर्थिक नीति' के तहत 'उदारीकरण' का नाम दिया गया। इसी दशक में अमरीका ने इराक़ पर अपना पहला हमला किया, जिसे पूरी दुनिया ने टेलीविज़न पर सजीव देखा। इसी दशक में देश में सांप्रदायिकता के एक नए अध्याय की शुरूआत हुई। बीसवीं सदी के अंतिम सालों में होने वाली इन घटनाओं और परिवर्तनों में ही समकालीनता के मायने स्पष्ट होते हैं। और कविता पर बात करते हुए इनको नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। वस्तुतः बीसवीं सदी का यह विशेष कालखण्ड ही इक्कीसवीं सदी की बुनियाद है।

हमारे सामने यह भी स्पष्ट है कि इस दशक में होने वाले इन महत्वपूर्ण परिवर्तनों का चरित्र और दिशा किस तरह से साम्राज्यवादी मंसूबे लिए हुए है। ऐसे में सवाल उठता है कि इस समय की कविता अपने समय के इस सत्य की पुष्टि कहाँ तक कर पाती है। क्या कविता अपने समय की घटनाओं और परिवर्तनों में साम्राज्यवादी गंध पहचान पाती है। क्या साम्राज्यवाद–विरोध इस समय की कविता का 'मुख्य स्वर' या फिर 'केन्द्रीय स्वर' हो सकता है ? यह प्रश्न इसलिए भी ज़रूरी है क्योंकि रचना का अस्तित्व इतिहास के भीतर होता है, इतिहास के बाहर नहीं। कृतियों की उत्पत्ति में इतिहास की सक्रिय भूमिका होती है और पाठकों द्वारा उनके अनुभव तथा मूल्याँकन का इतिहास उनके जीवन का इतिहास होता है।[2] इस दौर की कविता में साम्राज्यवाद की पहचान और उसके प्रतिरोध को केन्द्रीय स्वर के बतौर जाँचने–परचाने और पहचानने की दिशा में कवियों के विचार कुछ ज़रूरी सूत्र देते हैं। राजेश जोशी के विचार से :

''किसी केन्द्रीय मैटाफर के आभाव में कई छोटे–बड़े मैटाफर कविता में आए हैं। इस समय के मूल अंतिर्विरोध को समझने और व्यक्त करने तथा मनुष्य की मुक्ति के संघर्श को अभिव्यक्ति देने वाले केन्द्रीय मैटाफर को खोजने की कोशिश में कविता ने कई तरह के मैटाफर खोजे और रचे हैं। ये कुछ अलग हैं और कई बार तो ये ग़ैर–राजनीतिक और ग़ैर–सामाजिक भी लग सकते हैं। लेकिन इन बिखरे–छितरे रूपकों में अंर्तव्याप्त अर्थ को गंभीरता से पढ़े तो कई बार नितांत ग़ैर राजनीतिक लगने वाले रूपक सबसे अधिक राजनीतिक आशयों को प्रकट करते हैं।''[3]

**और साथ में यह भी कि :**

''किसी एक रचनाकार की कविताओं के सहारे इस दौर की कविता का केन्द्रीय मैटाफर नहीं तलाशा जा सकता। इस समय का सच और उसका मैटाफर थोड़ा बँटा हुआ है। बहुत सारे कवियों की बहुत सारी कविताओं में बँटा हुआ है। इसलिए इस दौर की कविता का मूलभाव टुकड़ा–टुकड़ा जोड़कर ही स्पष्ट होता है। केन्द्रीय मैटाफर कई छोटे–छोटे मैटाफरों को एक साथ मिलाकर ही तैयार हो सकता है।''[14]

**मंगलेश डबराल के लिए :**

''कविता अपने समय के संकटों को पूरी सच्चाई से कभी व्यक्त नहीं कर पाती इसलिए उमसें हमेशा ही संकट का, दोहरे आपातकाल का समय है जब बाहर से महाबली बहुराष्ट्रीय निगम और उनका जगमगाता बाज़ार और भीतर से सांस्कृतिक फासीवाद की शक्तियाँ समाज को अपने–अपने तरीके से विकृत कर रही हैं। इस बाज़ारवाद और कट्टरतावाद की मिली–भगत को सभी जानते हैं ..... ऐसे में समाज के ग़रीब नागरिकों को अनागरिक बनाकर अदृष्य हाशियों की ओर फेंक दिया जाता है।''[5]

**वीरेन डंगवाल कविता और समय के रिश्ते पर कहते**

हैं :

''सूचना प्रौद्योगिकी और जेनेटिक इंजीनियरनिंग की नई ताकत से लैस ट्रांसनेशनल पूँजी के मंसूबे गहरे हैं। विखंडनवादी उत्तर आधुनिक सांस्कृतिक विचारधारा से ऊर्जा लेते उसके अनुचर विछन्नता, विभेद, विखंडन और पुर्नसंयोजन के द्वारा उन सभी चीज़ों को जीत लेने के लिए आतुर हैं, जिन्हें हमेशा से निरंतर और अविभाज्य समझा जाता रहा है। इसके लिए वे सुघड़ सांस्कृतिक वाग्जाल, उन्माद और बर्बरता तीनों का ही एक साथ इस्तेमाल करते हैं,.....दुनिया भर में उनकी करतूतों के बनाए नए–नए ध्वंसावशेश दिखाई दे रहे हैं। भारत में सांस्कृतिक फांसीवाद और सांप्रदायिकता उन्ही की मदद से परवाने चढ़ें हैं और वे विखंडन और संयोजन का एक उत्तर आधुनिक 'स्वदेशी' मॉडल तैयार करने में काफी हद तक कामयाब भी हुए हैं। वैश्विक दबाव, आग्रहों और महत्वाकांक्षाओं के चलते हालाँकि राजनीतिक तंत्र ने, धर्मनिरपेक्षों ने भी इस अमानवीय प्रक्रिया का सक्रिय और कारगर प्रतिरोध नहीं किया, लेकिन देश के व्यापक हिस्सों में साधारण जन इस मुद्दे पर उतने विभाजित भी नहीं हुए जितना कर देने की उनकी योजना थी। यह बेहद महत्वपूर्ण है कि इस पूरी प्रक्रिया में अपने धर्म के अनुरूप कविता ने न्याय के पक्ष में अपनी पुकार को धीमा नहीं होने दिया। यह विकराल शक्तियों का सामना शब्द की सत्ता के सहारे करने वाली कविता की जीत है।''[6]

ध्यान देने की बात है कि इस दौर के इन प्रमुख कवियों के विचारों में अपने समय के संकटों और चुनौतियों के स्तर पर एक प्रकार का साम्य दिखाई देता है। इन संकटों और चुनौतियों में साम्राज्यवादी आहटें साफ हैं। और इनके सामने हमारी राजनीति जितनी निहत्थी और निरूपाय मालूम पड़ती है, और प्रतिरोध की शक्तियाँ जितनी अशक्त, असहाय और बिखरी हुई दिखाई पड़ती हैं, उतनी कविता नहीं है।[7] इस तरह कवियों के विचार कविताओं के अवलोकन में गहरी मदद करते हैं।

हम देखते हैं कि इस दौर की कविताओं का ताना–बाना अधिकांश बाज़ार, उपभोक्तावाद, साम्प्रदायिकता–युद्ध–दमन–हिंसा और साथ ही भूमंडलीकरण की प्रक्रिया में तेज़ी से बदल रहे सामाजिक–राजनीतिक–सांस्कृतिक परिदृश्य के इर्द–गिर्द ही घूमता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि कविता अपने समय की घटनाओं और परिवर्तनों का दबाव भी स्पष्ट है। शायद ही कोई कवि ऐसा हो जिसने इस दौर के सांस्कृतिक परिदृष्य में बाज़ार की ध्वंसकारी भूमिका से इंकार किया हो। इस समय की कविता में 'बाज़ार' लगभग 'बीजशब्द' की तरह आता है और अपने समय के आख्यान की रचना करता प्रतीत होता है। यहाँ यह भी स्पष्ट है कि राजनीतिक सत्ता द्वारा 'उदारीकरण' और 'मुक्त' अर्थव्यवस्था द्वारा निर्मित इस बाज़ार को भले ही तरक़्की और विकास का कदम बताया गया हो, लेकिन कविता को लाख कोशिशों के बाद भी इसमें मनुष्य–विरोधी तत्व ही मिलते हैं। यह बात गौरतलब है जब एक तरफ सत्ता प्रतिष्ठानों द्वारा बाज़ार को लेकर तरक़्की ओर विकास के कसीदे पढ़े जा रहे हों, तब दूसरी तरफ कविता में उसे 'लुटेरों' की जगह घोषित किया जाता है। यह 'विराट' भयप्रद बाज़ार' है जहाँ कविता 'अकेलापन' महसूस करती है। इसकी जद में आने से न जंगल बचे हैं, न जल, न ज़मीन। देखिए :

***i.*** गंगा गोदावरी/नर्मदा और घाघरा/नाम लेते हुए भी तकलीफ होती है/उनसे उतनी ही मुलाक़ात होती है/जितनी वे रास्ते में आ जाती हैं/और उस समय भी दिमाग़/कितना कम पास जा पाता है/दिमाग़ तो भरा रहता है/लुटेरों के बाज़ार के शोर से[8]

(आलोक धन्वा)

***ii.*** और फिर हम उन्हें देखते हैं/विराट भय प्रद बाज़ारों की/सुचित्रित कलावान दीवारें में टँके हुए/टी0वी0 के पर्दे पर/सड़क–सड़क सजे चमकपटों पर/देवियों–सी सुन्दर, शान्त सुसज्जित लड़कियाँ [9]

(आर0 चेतनक्रांति)

***iii.*** बाज़ार एक ऐसी जगह है/जहाँ मैंने हमेशा पाया है/एक ऐसा अकेलापन जैसा मुझे/बड़े–बड़े जंगलों भी नहीं मिला[10]

(कुँवरनारायण)

***iv.*** बाज़ार की तरफ भागते/सबकुछ गुड्डमड्ड हो गया है इन दिनों यहाँ/उखड़ गए हैं बड़े–बड़े पुराने पेड़/और कंक्रीट के पसरते जंगल में/खो गई हैं इसकी पहचान[11]

(निर्मला पुतुल)

इस बाज़ार के लिए माँग (डिमांड) और आपूर्ति (सप्लाई) का आपसी संबंध गुज़रे ज़माने की बात है। यह वह बाज़ार भी नहीं है जहाँ हम अपनी–अपनी बुनियादी ज़रूरतों की चीज़ों लेने जाते थे। और न ही यह सबके लिए सजह–सुलभ है। यहाँ माँग को दर किनार कर वस्तुएँ चीज़ें बनाई जाती हैं। फिर उन्हें आक्रामक विज्ञापनों के ज़रिए ब्रांड में बदला जाता है। और उनकी माँग का जनता में भ्रम पैदा करके बेचा जाता है। यह अचानक नहीं है कि सामाजिक इतिहास के किसी भी दौर से कहीं अधिक आज उपभोक्तावाद पनपा है। यह 'उपभोक्ता संस्कृति पूँजीवाद की 'चरम' और साथ ही 'पतनशील' अवस्था की द्योतक है, क्योंकि वह मनुष्य की सृजनात्मकता का पूर्ण निशेध करके एक पाशविक बिंब निर्मित करता है।[12] देखिए कविता इस तथ्य को संज्ञान में कैसे लेती है :

***i.*** आज भी तो वही हुआ/इतने रंग छींट धरियाँ छाप चारखाने/आज भी खड़ रहा चुप/उंगलियों से कपड़े की कि नारी

मीजंता कुछ ढूंढ़ता/कुछ और देख लेते है कहा/और बाहर आ गया/पर सच बताओ/न चुन पाने की वजह इतने रंग थे/या कुछ और? [13]

(अरुण कमल)

***ii.*** अप्रासंगिकताएँ क्यां हावी हें इस कदर तमाम अच्छी और ज़रूरी चीज़ों पर/जो चीज़ें ठीक–ठाक हैं और जो चाहिए तमाम लोगों को उनका/विज्ञापन क्यों नहीं दिखाई देता कहीं/...../बीड़ी के बंडल का रैपर क्यों नही बनाते अलेक पदमसी/वो कौन हैं जिनके लिए है इतना सारा उद्योग [14]

(उदय प्रकाश)

***iii.*** कहीं कोई हड़बड़ी नहीं कि बदलती है सदी एक मेरी अनुपस्थिति की हाज़िरी के बग़ैर बाज़ार में बढ़ती ललक है हस्बमालूम [15]

(लीलाधर मंडलोई)

***iv.*** बाज़ार में खरीदी हुई चीज़ों के साथ जब दिए जाने लगें खूबसूरत आकर्षक उपहार तो रूककर सोचना चाहिए कि अब आपको किस नई विधि से ठका जा रहा है [16](भगवत रावत)

***v.*** प्रलोभन की उकसाती इबारत के नीचे/बारीक फ़रेबी हरफ़ों में लिखा है/शर्तें लागू/जो बहुत ग़ौर से देखने पर ही नज़र आता है/शर्तें तो फिर भी नज़र नहीं आतीं [17]

(आशुतोष दुबे)

नई उदारवादी आर्थिक नीतियों की शुरूआत का दौर किसानों–मज़दूरों–कामगारों के लिए एक बहुत बड़ा दुष्चक्र साबित हुआ है। इस दौर में बहुत से कारीगरी के काम या तो बंद हो चुके हैं या बंद होने के कगार पर पहुँच गये हैं। आर्थिक उदारवाद, जिसका सारतत्व है सब कुछ बाज़ार के हवाले करना। उसका नतीजा हुआ है कि समाज के इन तबकों में सबसे ज़्यादा अपने काम और स्थान से पलायन हुआ है।इससे भी ज़्यादा खतरनाक संकेत इन तबकों में तेज़ी से बढ़ती आत्महत्या की प्रवृत्ति है। देश के कृशिगत ढ़ाँचे को देखें तो खेती योग्य ज़मीनों को जबरिया अधिगृहित करके उसे कॉरपोरेट समूहों को उपलब्ध कराया जा रहा है। इसके साथ ही न फसलों का बाज़िब मूल्य मिल पा हरा है न ज़मीनों का माकूल मुआवज़ा। एक तरफ कृषि क्षेत्र की उत्पादक शक्तियाँ (किसान और खेत मज़दूर) आज भी सामंती जकड़नों से पूरी तरह मुक्त नहीं हो पाए हैं तो दूसरी ओर इन्हीं सामंती ताकतों से साँठ–गाँठ करके कॉरपोरेट खेती की योजना बनाई जा रही है। इस तरह की योजनाओं को सामंतवाद–साम्राज्यवाद गठजोड़ की पुरानी दास्तां के रूप में देखना अनुचित नहीं है।[18] आज हम थोड़ा पीछे मुड़कर देखें तो यह कॉरपोरेट खेती बाहर से थोपे गए भारत के जबरिया व्यावसायीकरण के इतिहास की भी याद दिलाती है। जब 19वीं सदी के शुरूआती सालों में ब्रिटेन की ईस्ट इंडिया कंपनी ने नील और अफीम की खेती के लिए देश के किसानों को मजबूर किया था अब यह काम उदारीकृत विकास के मॉडल के नाम पर आधुनिक तरीके से अमरीका की सरपरस्ती में अंजाम दिया जा रहा है।

उदारीकरण के गुलाबी अफ़सानों में छिपी इस स्याह हक़ीकत को कविताओं में कुछ इस तरह पढ़ सकते हैं :

***i.*** ये वरूण के बेटे हैं/इनकी हथेलियाँ हल की मूठ पर नहीं है/इनकी खुरपी की धार पर नहीं चढ़ती कोई घास/इनकी हँसियों के दाँतों से कोई रिश्ता नहीं अब/फसलों का [190]

(निलय उपाध्याय)

***ii.*** दुनिया एक गाँव तो बने लेकिन सारे गाँव बाहर रहें उस दुनिया के यह कंप्यूटर करामात हो [20]

(वीरेन डंगवाल)

***iii.*** तुम एक कारीगर से छीन लेते हो उसके हाथ/उसकी थाली का निवाला/एक बुनकर से छीन लेते ही उसका करघा/तो यह भी वध है हथियार उठाए बिना/कभी–कभी आत्महत्या भी/हत्या की तरह देखी जानी चाहिए। [21]

***iv.*** वे चले गए कपास को धागें में बदलकर मगर उन धागों से एक पूरी चादर बुने बगैर अब तुम जिसे कभी पूरा नहीं कर सकते [33]

(एकांत श्रीवास्तव)

***v.*** क्रोध अब प्रकट किया जा सकता है सिर्फ़ खुदकुशी से [224]

(नीलाभ)

***vi.*** उसका खेत उन्हीं का बैल और उन्हीं का है ट्यूबबैल मेरे हिस्से मेहनत आई

उनके हिस्से है आराम

मेरा गाँव कैसा गाँव [23]

(सूरजपाल चौहान)

मुक्त बाज़ार का समर्थन करने वाले बहुत से लोगों के मन में यह धारणा थी कि भूमंडलीकरण और आर्थिक उदारीकरण के दबावों तले रूढ़िवाद और सांप्रदायिकता की दीवारे टूटेंगी क्योंकि आर्थिक एवं टेक्नोलॉजिकल विस्तार मनुष्य के मस्तिष्क को नए परिप्रेक्ष्य देता है। लेकिन हुआ इसका उल्टा, और वो इसलिए कि इन परिवर्तनों को नियंत्रित और संचालित एक ऐसी व्यवस्था द्वारा किया जा रहा है जो इन परिवर्तनों को अधिकाधिक मुनाफ़े की नीयत से देखती है। और अपनी मुनाफ़ाखोर विसंगति को छुपाने के लिए समाज की प्रतिक्रियावादी शक्तियों को उकसाना, बढ़ावा देना और प्रश्रय देना इसकी मज़बूरी होती है। इसीलिए एक तरफ देश में आर्थिक

उदारीकरण शुरू होता है, नई–नई तक़नीकी के साथ चकाचौंध बढ़ती दिखाई देती है, तो दूसरी तरफ सांप्रदायिक कट्टरता परवान चढ़ती है। ग़ौरतलब है कि इस दौर में उदारीकरण की नीतियों से उभरने वाले नव–धनाढ्य मध्यवर्ग में भी घोर सांप्रदायिक रूझान देखने को मिलते हैं। बाज़ार और सांप्रदायिकता की मिली भगत कोई नई बात नहीं है, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के अंतर्गत यह बात व्यवहार में देखी जा चुकी है। 90 के दशक में उभरने वाली सांप्रदायिकता जिस तरह से संस्थागत रूप लेती दिखाई पड़ती है, दरअसल वह साम्राज्यवाद की फाँसीवादी परियोजना बनाने की पुरानी और सौद्धांतिक प्रवृत्ति की घोतक है।[36]

यह बात ध्यान खींचने वाली है कि इस दौर में सांप्रदायिक फाँसीवादी शक्तियों ने जितनी मज़बूती से राजनीति और समाज में पैर जमाए, कविता में उतनी ही मज़बूती से उनका प्रतिरोध मिलता है। शायद यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगा कि इस दौर की कविता अपने इतिहास के किसी भी दौर से कहीं अधिक आगे बढ़कर सांप्रदायिक–फाँसीवाद के विरोध और प्रतिरोध में गोलबंद होती दिखाई पड़ती है। इस दौर के सभी कवि मिलकर और स्पश्ट रूप से सांप्रदायिक हिंसा और बर्बरता का विरोध करते हैं। देखिएः

***i.*** इतिहास के बहुत से भ्रमों में से/एक यह भी है/कि महमूद मज़नबी लौट गया था/लौटा नहीं था वह/यहीं था/सैकड़ों बरस बाद अचानक/वह प्रकट हुआ अयोध्या में/सोमनाथ में उसने किया था/अल्लाह का काम तमाम/इस बार उसका नारा था/जय श्रीराम [25]

(नरेश सक्सेना)

***ii.*** और जब मुझसे पूछा गया तुम कौन हो/क्या छिपाए हुए हो अपने भीतर एक दुश्मन का नाम/कोई मज़हब कोई ताबीज़/में कुछ कह नहीं पाया मेरे भीतर कुछ नहीं था/सिर्फ़ एक रंगरेज़ एक मिस्त्री एक कारीग़र एक कलाकार/एक मज़दूर था। [38]

**सन्दर्भ – सूची :–**


1. चंद्रकांत देवताले, उजाड़ में संग्रहालय, पृ0 11।
2. देखें, मैनेजर पांडेय, साहित्य और इतिहास दृश्टि, वाणी प्रकाशन, 2005, पृ0 vii ।
3. राजेश जोशी, एक कवि की नोटबुक, राजकमल प्रकाशन, 2004, पृ0 151।
4. उपर्युक्त, पृ0 151।
5. मंगलेश डबराल, 'एक कवि का अकेलापन' लेख से, पहल 68, पृ0 12।
6. वीरेन डंगवाल, 'मैं कवि हूँ पाया है प्रकाश' लेख से, समयांतर, अप्रैल 2005, पृ0 24–25।
7. राजेश जोशी, एक कवि की नोटबुक, पृ0 147।
8. आलोकधन्वा, दुनिया रोज बनती है, पृ0 10।
9. आर0 चेतनक्रांति, 'बेचने वाले' शीर्शक कविता से, नया ज्ञानोदय, जनवरी 2012, पृ0 439।
10. कुँवरनारायण, इन दिनों, पृ0 12।
11. निर्मला पुतुल, नगाड़े की तरह बजते शब्द, पृ0 26।
12. देखें, संस्कृति और व्यावसासिकता (सं0 रमेश उपाध्याय), शब्दसंधान प्रकाशन, 2006, पृ0 42।
13. अरूण कमल, इंडिया टुडे (साहित्य वार्शिकी 1997), पृ0 144।
14. उदय प्रकाश, रात में हारमोनियम, पृ0 49।
15. लीलाधर मंडलोई, मगर एक आवाज़, पृ0 31।
16. भवत रावत, दस बरस (सै0 असद ज़ैदी), पृ0 43।
17. आशुतोश दुबे, 'शर्तें लागू' कविता का अंश, नया ज्ञानोदय, जनवरी 2012, पृ0 351।
18. देखें, प्रधान हरिशंकर प्रसाद, 'खेतिहर समाज' की भूमिका, फ़िलहाल ट्रस्ट पटना, संस्करण 2006।
19. निलय उपाध्याय, इंडिया टुडे (साहित्य वार्शिकी 2002), पृ0 132।
20. वीरेन डंगवाल, दुश्चक्र में स्रश्टा, पृ0 19।
21. एकांत श्रीवास्तव, नया ज्ञानोदय, जनवरी 2012, पृ0 347–348।
22. उपर्युक्त, पृ0 348।
23. नीलाभ, शब्दों से नाता अटूट है, पृ0 40।
24. सूरजपाल चौहान, हँस का दलित विमर्श विशेशांक, 2004, पृ0 190।
25. देखें, जितेन्द्र भाटिया, ''वैश्वीकरण के तकाजे और फाँसीवाद'



**शोध छात्र**
**यतेन्द्र कुमार यादव**
**शोध निर्देशक**
**डॉ0 वीरेन डंगवाल**
हिन्दी विभाग
बरेली कॉलेज, (बरेली)
(उ0प्र0)
3408307996

10

# डॉ० लक्ष्मण सिंह के काव्य में चित्रित नारी व जन साधारण की समस्याएँ

**दिनेश**

**सारांश** –

नारी और जनसाधारण समाज का प्रमुख अंग है तथा इन दोनों की ही स्थिति हमेशा दयनीय रही है। ये समाज का ऐसा हिस्सा है जिसके अभाव में समाज के निर्माण की कल्पना भी नहीं की जा सकती, जहाँ नारी परिवार का महत्वपूर्ण हिस्सा है। वह माँ के रूप में मनुश्य को जन्म देती है। पत्नी, बहन, बेटी के रूप में सेवा करती है, वहीं जनसाधारण हर प्रकार से हमारी सेवा एवं सहायता करते हैं। समाज के विकास और निर्माण में अपना खून–पसीना बहाते हैं। फिर भी दोनों ही वर्ग (स्त्री व जन साधारण) समाज में शोशण व अत्याचार का शिकार होते रहे हैं। इन दोनों ही वर्गों की समाज में वास्तविक स्थिति का यथार्थ चित्रण डॉ० लक्ष्मण सिंह के काव्य में देखा जा सकता है।

1. नारी की स्थिति

कवि ने अपने काव्य के माध्यम से नारी के सभी रूपों को चित्रित किया है। 'चन्द्रिका' में नारी को सामान्य नारी, पत्नी, माता तथा आधुनिक नारी के रूप में चित्रित किया है। 'चन्द्रिका' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

''सदियों से है नारी विवश
किन्तु वह रहेगी कब तक दास?
करे जो समानता की बात,
हो उसका नितान्त उपहास।''

एक अन्य उदाहरण में यह बताया गया है कि हमारा समाज पुरुष प्रधान है। जहाँ पर नारी का महत्व पुरुष की अपेक्षा कम है। नारी की इच्छाओं, भावनाओं का कोई महत्व नहीं है। उसे हर बार अत्याचार सहना पड़ता है। उसका कोई सहारा नहीं है। पुरुष प्रधान समाज में उसकी गुहार सुनने वाला कोई नहीं है। ''कहने के लिए तो नारी संसार की श्रेष्ठतम रचना है। संसार में जो कुछ सत्य है, सुन्दर है, नारी उसका प्रतीक है। प्राचीन काल में भारतीय नारी को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। उसी का परिणाम है कि प्राचीन भारतीय संस्कृति में अनेक ऐसी आदर्श नारियाँ है, जिनके ऊपर भारतीय संस्कृति और नारी जाति को गर्व है। सावित्री, सीता, उर्मिला, गार्गी अनेक ऐसी नारियाँ हैं, जिन्होंने अपने तप, विधवता, त्याग और प्रेम से समाज में अत्यन्त ऊँचा स्थान ग्रहण किया है। धीरे–धीरे नारी की दशा गिरने लगी।'' डॉ० लक्ष्मण सिंह ने एक स्थान पर कहा है –

''हमारा पुरुश प्रधान समाज,
नारीच्छा का कुछ नहीं मौल।
बिखलती नारी पीड़ से रहे,
उड़ाये उसका सभी मखौल।।
नहीं नारी का सम्बल कोई,
यह पिसती रही पिसे हर बार।
विनय पर कान न धरता कोय,
करे किससे, कैसे वह गुहार?''

डॉ० लक्ष्मण सिंह ने 'चन्द्रिका' में आधुनिक नारी का भी चित्रण किया है। किस प्रकार नारी पुरुष में अवैध सम्बन्ध बढ़ते जा रहे हैं। पुरुष नारी के बाह्य सौन्दर्य में उलझता जा रहा है और नारी पैसे की चकाचौंध के कारण पुरुष की तरफ आकर्शित होती जा रही है। वह चाहती है कि बाहर किसी को पता न चले, इसलिए वह ये सारे घिनौने कार्य घर पर ही करती है। वह इतनी आधुनिक हो गई है कि वह मातृत्व का कर्त्तव्य भी निभाना नहीं चाहती है? क्योंकि आज की नारी घर में बंधकर नहीं रहना चाहती है। इसलिए बच्चों के बंधन में नहीं बंधना चाहती।

''एक जीवन में इच्छा एक,
प्रसव पीड़ा का न हो भार।
शिशु पालंन का नहीं है नेह,
उठाना नहीं चाहती भार।।

नारी पुरुष से कन्धे से कंधा मिलाकर चलना चाहती है। वह प्रत्येक परिस्थिति में पुरुष का साथ देना चाहती है। जब स्त्री पुरुष का साथ देती है तो पुरुष अपने आपको भाग्यशाली समझता है। वहीं कवि ने अपने काव्य संग्रह 'महक माटी की' मे 'नारी' कविता में नारी के सभी रूपों का वर्णन किया है। जैसे पत्नी, माता, बहन, आधुनिक नारी, दयनीय नारी आदि। नारी का हृदय इतना विशाल है कि सभी दुःख तकलीफों को सहन करके भी वह कुछ नहीं बोलती। इसीलिए वेदों में भी नारी को पूजनीय कहा है।

''सारा दिन फिरकी सी घूमे,
सुन लेती फिर भी जली कटी।
यदा–कदा झाड़, सहनी पड़ती,

फिर भी शान्ति–पथ से भटकी।
रो लेती भीतर जा करके,
बाहर सहती फटकार,
इसलिए हमारे समाज में महिला,
को पूजा जाता है।''

दिनकर भी कहते हैं कि नारी के पास दैवीय सौन्दर्य, शान्ति, क्षमा, कविता अर्थात् मधुर वाणी है।

''वह नारी है केवल उसके ही पास बन्धु।
सौन्दर्य, शक्ति, कविता, तीनों का मिश्रण है।''

कवि मंगलेश डबराल भी अपनी कविता 'एक स्त्री' में स्त्री के समर्पण भाव का चित्रण इस प्रकार करते हैं –

''सारा दिन काम करने के बाद
एक स्त्री याद करती है
अगले दिन के काम
एक आदमी के पीछे
चुपचाप एक स्त्री चलती है
उसके पैरों के निशान पर अपने पैर रखती हुई
रास्ते भर नहीं उठाती निगाह।''

यहाँ डॉ० लक्ष्मण सिंह ने यह भी स्पश्ट किया है कि नारी भोग की वस्तु नहीं है, वह पूजनीय है। उसका सम्मान करना चाहिए, वह समाज की मर्यादा है।

''वह समाज की मर्यादा है,
पूरब की नारी भी नारी है।
नहीं साधन है मनोरंजन का,
रही नित पूज्य हमारी है।''

कवि रामधारी सिंह दिनकर रूपवती नारी को विश्व का सबसे बड़ा वरदान मांगते हैं –

''यह तुम्हारी कल्पना है प्यार कर लो
रूप सी नारी प्रकृति का चित्र है सबसे मनोहर।''

जनसाधारण की समस्याएँ यथार्थ स्थिति का चित्रण

डॉ० लक्ष्मण सिंह ने अपने काव्य में आम आदमी की पीड़ा को समझा और व्यक्त किया है। कई जगहों पर तो उन्होंने जनसाधारण का इतना सुन्दर और यथार्थ चित्रण किया है कि ऐसा लगता है मानो वह प्रत्यक्ष रूप से हमारे सामने घटित हो रहा है। 'महक माटी की' कविता संग्रह में 'किसान' नामक कविता में जन साधारण की स्थिति का चित्रण इस प्रकार किया है कि जब किसान अपने अनाज को बेचने जाता है तो दलाल उसे उसका वास्तविक मूल्य न देकर उसे कम मूल्य देता है व स्वयं लाभ कमाता है।

''अपना अनाज निकालकर वह,
ज्यों ही मण्डी में लाता है,
टोला मण्डी के दलालों का,
खुद अपने भाव लगाता है।
ऐसा कल भी कभी आएगा,
हक्क पाए जब हकदार, सखे।।''

कवि ने मजदूर के जीवन का भी यथार्थ चित्रण किया है कि वह दिनभर मेहनत करने के पश्चात भी वह अपने जीवन के स्तर को ऊँचा नहीं उठा सकता है। उसके जीवन में कोई चाह व चमक नहीं रही है। वे अपने जीवन से हार चुके हैं।

''दिनभर मेहनत मजूदरी की,
वह चला रहा छाया रखना।
छुट–पुट करता है जॉब–वर्क,
रोजी केवल कपड़ा–खाना।।
कुदरत ने छीनी है आभा,
बेक्रूर वक्त से है हारे।।''

इसी प्रकार की मजदूर की स्थिति का वर्णन कवि मंगलेश डबराल ने भी अपनी कविता संग्रह 'पहाड़ पर लालटेन' की 'तानाशाह कहता है' कविता में किया है। वह दिन–रात मेहनत करके दूसरों के लिए घर बनाता है, परन्तु उसकी झोपड़ी के छप्पर उड़ गये हैं। बच्चे भूख से व्याकुल हो बच्चे आसमान की तरफ मुँह करके रो रहे हैं।

''देखो तुम्हारी झोपड़ियों के छप्पर उड़ गये हैं
और कई रोज से तुमने कुछ नहीं खाया
तुमहारी फसल कोई लूट ले गया है
तुम्हारे बच्चे रो रहे हैं
आसमान की ओर मुँह किये हुए।''

'महक माटी की' काव्य के माध्यम से लक्ष्मण सिंह बताना चाहते हैं कि साधारण व्यक्ति की जीवन में सुख–सुविधाएँ नहीं है। वह पूरा जीवन मेहनत करके भी कुछ रंग जीवन में नहीं भर पा रहा। उसे जीने की भी चाह नहीं रही है। एक श्रमिक मिल में दूसरों के लिए वस्त्र बनाता है, स्वयं का तन आधा ढ़का हुआ है। डॉ० लक्ष्मण सिंह ने जन साधारण की तुलना मछली से की है, जिस प्रकार मछली रेत में तड़पती रहती है। किसी के सामने अपने मन के भावों को व्यक्त नहीं कर सकती। उसी प्रकार जन साधारण अपने मन की बात

किसी के सामने व्यक्त नहीं कर सकता, बस मन ही मन तड़पता रहता है।

''तप्त रेत में तड़पते मीन
कहे क्या?बोले किससे?क्या?
विवश स्वयं को झलसाती रही,
कहे किससे वह मन की व्यथा।''

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि डॉ० लक्ष्मण सिंह ने अपने काव्य के माध्यम से स्त्री के सभी रूपों के साथ–साथ जन साधारण मजदूर, किसान की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है। पहले नारी गृहलक्ष्मी के रूप में जानी जाती थी। आज वह फैशन की चकाचौंध से प्रभावित ही कर भोग–विलास व कुमार्ग पर चलने लगी है। इसका वर्णन अपने काव्य में किया हैं कि मजदूर, किसान व जनसाधारण की वास्तविक पीड़ा को अपने काव्य के माध्यम से दर्शाया है।

## संदर्भ सूची


1. डॉ० लक्ष्मण सिंह, चन्द्रिका, पृ० 59
2. डॉ० अनिल कुमार शर्मा, साठोतरी हिन्दी गजल में, डॉ० गिरिराज शरण, अग्रवाल का योगदान, पृ० 103–104
3. डॉ० लक्ष्मण सिंह, महक माटी की, पृ० 27
4. रामधारी सिंह दिनकर, सीपी और शंख, पृ० 40
5. मंगलेश डबराल, पहाड़ पर लालटेन, पृ० 19
6. रामधारी सिंह दिनकर, उर्वसी, पृ० 40



**दिनेश**
मकान नं0 249ए, राजेन्द्रा कालोनी,
नजदीक भिवानी चुंगी, रोहतक–124001
फोन : 9812781321, 8708503527

11

# साम्राज्यवाद की बुनियादी अवधारणा और साहित्य

यतेन्द्र कुमार यादव

**सारांश** –

हरबोलों की मिरजई और मंजीरों की वे बातें/1857 के इस डेढ़ सौवें वर्श में फिर याद तो आईं/पर को/याद आना कोई विकल्प नहीं था/याद को/संदर्भों से न जोड़ने का विकल्प इस समय तक/बहुत सुविधाजनक हो गया है हम सबके लिए/हमसे अधिक 1857 को साथ लेकर चले हैं वही उपनिवेशी ताक़त/जो अब सभी आडंबर छोड़ पूरे निवेशी हैं/भौतिक जगत से लेकर अंतर्चेतना तक चलता है विनिवेश का खेल/तभी तो अब ख़तरे साफ़ नहीं नज़र आते/वक़्त इतनी तेज़ी से बीतता है खिलौनों के बीच/कि विचार बन नहीं पाते, नज़रे टिक नहीं पातीं/जीवन शैली का अर्थ मानो एक क्षण हो गया हो/और क्षण से क्षण की कुलाँचों में पूरी पृथ्वी को नाप लेना ही माद्दा हो/क्योंकि पृथ्वी अब
एक–सी होने का आभास देती है।[1]

(पंकज राग)

हमारे देश के भीतर साम्राज्यवाद के प्रतिरोध और साम्राज्यवाद विरोधी साहित्य की लंबी परंपरा रही है। 1857 के विद्रोह ने हिन्दी साहित्य को दरबारों की चापलूसी से बाहर निकालकर यथार्थ की ठोस ज़मीन पर खड़ किया और उसे नई चेतना से लैस किया। हिन्दी साहित्य का इतिहास जहाँ से 'आधुनिक काल' का प्रस्थान मानता है, उस आधुनिक साहित्य की शुरूआत ही ब्रितानी साम्राज्यवाद से टक्कर लेते हुए हुई। निसंदेह साम्राज्यवाद विरोधी चेतना ही इस 'आधुनिक काल' को आधुनिक बनाती है। भारतेन्दु से लेकर महावीर प्रसाद द्विवेदी, पंत, प्रसाद, निराला, प्रेमचन्द, मैथलीशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, बालकृश्ण शर्मा नवीन और दिनकर आदि के साहित्य को साम्राज्यवाद विरोधी चेतना के आलोक में ही ठोस तरीके से समझा जा सकता है।

औपनिवेशिक दासता से मुक्त होने के बाद भी वादा किया गया समाजवाद का लेकिन नीतिगत फैसले हुए पूँजीवाद–साम्राज्यवाद के पक्ष में। इस पूँजीवाद–साम्राज्यवाद परस्त एजेण्डे की पहचान और प्रतिरोध हमें केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, नागार्जुन, मुक्तिबोध, सर्वेश्वर, नरेश मेहता, शमशेर बहादुर सिंह, धूमिल और गोरख पाण्डे आदि कवियों की रचनाओं में बदस्तूर मिलता है। यह विडंवना ही कही जाएगी कि जहाँ साहित्य में और आम जनता में अपने देश की ठोस परिस्थितियों में साम्राज्यवाद और उसके देशी सहयोगियों की पहचान कभी धूमिल नहीं हुई, वहीं राजनीतिक स्तर पर हमेशा ही साम्राज्यवाद के स्वरूप को लेकर विवाद और भ्रम बना रहा।

सामान्य अर्थ में जब कोई देश अपनी सीमा से बाहर के क्षेत्र के लोगों के आर्थिक और राजनीतिक जीवन पर अपना शासन नियंत्रण अथवा आधिपत्य कायम करता है तो इस व्यवहार को साम्राज्यवाद के नाम से जाना जाता है। ऐसा करने के लिए सेना को प्रयोग किया जा सकता है या कोई दूसरा तरीका भी अपनाया जा सकता है, ख़ासतौर से उपनिवेशवाद के द्वारा ऐसा होता रहा है। उपनिवेशों को जीतकर तथा उन पर कब्ज़ा करके या अन्य तरीक़ों से उन पर नियंत्रण कायम कर उन्हें परतंत्र बनाकर यह काम संभव है। यहाँ ज़रूरी बात यह है कि किसी देश द्वारा किसी दूसरे देश या जनता पर अधिकार करना या उन पर प्रत्यक्ष शासन करना हमेशा साम्राज्यवाद की वास्तविक विशेशता नहीं रही है। एक साम्राज्यवादी देश और उसेक नियंत्रणाधीन देश या उपनिवेश के बीच संबंधों की वास्तविक विशेषता शोषण है।[2] यह शोषण प्रत्यक्ष राजनीतिक नियंत्रण के माध्यम से भी हो सकता है और उकसे बिना भी। इसका अर्थ यह है कि कोई साम्राज्यवादी देश अपने उपनिवेश को या अपने परोक्ष नियंत्रण वाले देश को आर्थिक और राजनीतिक हित पूरा करने के लिए अपने अधीन लाता है। हमारे यहाँ लगभग दो सौ साल तक रहने वाली ब्रिटिश हुकूमत इसी उपनिवेशवाद रूपी साम्राज्यवाद की दास्तां है।

जैसा कि हम जानते हैं कि साम्राज्यवाद हमारे साथ बहुत लंबे समय से बहुतेरे रूपों में रहा है। क्योंकि जैसे–जैसे वैश्विक पूँजीवाद अपने ढांचे की बदलता है वैसे ही यह खुद को नए–नए रूपों में गढ़ता है[7]। अब यह वैश्वीकरण या भूमंडलीकरण करी परिघटना के रूप में हमारे सामने है। भूमंडलीकरण साम्राज्यवाद के इतिहास की नवीनतम अवस्था है[6]। 1990 का दशक, जो भूमंडलीकरण की परिघटना की शुरूआत का दशक माना जाता है, अपने अवधारणात्मक अर्थ से भिन्न साम्राज्यवाद की अवधारणा की ही पुश्टि करता है। एक अवधारणा के रूप में भूमंडलीकरण की आधारभूत पहचान है – प्रवाह। यह प्रवाह कई तरह का हो सकता

है। जैसे विश्व के एक हिस्से के विचारों का दूसरा हिस्सों में पहुँचना, पूँजी का एक से ज़्यादा स्थानों पर जाना, वस्तुओं का कई–कई देशों में पहुँचना और उनका व्यापार, तथा बेहतर आजीविका की तलाश में दुनिया के विभिन्न हिस्सों में लोगों की आवाजाही। इसकी सबसे बड़ी और बुनियादी विशेषता है – 'विश्वव्यापी पारस्परिक जुड़ाव'।[8] इस तरह से अपने अवधारणात्मक अर्थ में यह परिघटना बेहद साकारात्मक मालूम पड़ती है। लेकिन पिछले दो दशकों पर गौर करें तो अपने अवधारणात्मक अर्थ के उलट इसका प्रभाव बड़ा विशम साबित हुआ है। इस परिघटना ने कुछ देशों को बाकी देशों की अपेक्षा और समाज के एक हिस्से को बाकी सामाजिक हिस्सों की अपेक्षा ज़्यादा प्रभावित किया है। सूचना–प्रौद्योगिकी के आइकन बिल गेट्स जब यह कहते हैं कि ''आभासी वास्तविकता में सभी समान हैं'' और जब एजाज़ अहमद इसमें जोड़ते हैं कि, ''यथार्थ वास्तविकता यह है कि धरती पर जी रही आधी इंसानियत को अभी भी अपना पहला टेलीफोन कॉल करना है और न्यूयॉर्क के मैनहय्न द्विाप में पूरे अफ्रीका महाद्वीप से ज़्यादा टेलीफोन लाइनें हैं''[9] तो यह स्थिति और स्पश्ट हो जाती है।

भूमंडलीकरण के इस परस्पर–विरोधी सत्य की तस्वीर एकदम साफ है। हम देख रहे हैं कि इस दौर में 'उदारीकरण' और 'मुक्त व्यापार के नाम पर पश्चिमी बाज़ार को खुला संरक्षण मिल रहा है। विकासशील देशों को अपने व्यापारिक नियमों में बदलाव के लिए सहमति – पूर्वक या फिर जबरिया मजबूर किया जा रहा है। विकास की बड़ी–बड़ी परियोजनाएँ व्यापक पैमाने पर निजी हाथों में सौंपी जा रही हैं। जनता के द्वारा चुनी गई लोकतांत्रिक सरकारें तमाम जनकल्याणकारी योजनाओं से अपना पल्ला झाड़ रही हैं। 'पब्लिक सेक्टर' की जगह 'प्राईवेट सेक्टर' का अभूतपूर्व विस्तार हुआ है। और 'प्राइवेट सेक्टर' ने विकास की जो परिभाशा गढ़ी है उसी को विकास मान लिया गया है। इसका नतीजा यह हुआ है कि व्यापक स्तर पर लोगों को अपनी ज़मीन और रोज़गार से हाथ धोना पड़ा है। इस प्रक्रिया में ऐसा भयानक जन–विस्थापन हो रहा है कि जिसकी इतिहास में मुश्किल से ही कोई मिसाल मिले।

सामाजिक विज्ञान के अनेक विद्वानों का मानना है कि भूमंडीकरण में विश्व की कुल आय प्रतिवर्श दो से ढ़ाई फीसदी की दर से बढ़ी है, फिर भी दुनिया में ग़रीबों की संख्या में करोड़ों का इज़ाफ़ा हुआ है। शीर्श की सौ सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में से इक्यावन निगम अर्थात् कॉर्पोरेशन यसा व्यापारिक कम्पनियाँ हैं न कि देश। विश्व के शीर्ष के एक प्रतिशत लोगों की आय नीचे के सत्तावन प्रतिशत लोगों के बराबर है। और यह असमानता लगातार बढ़ रही है।[10] हमारे देश के विशेष सन्दर्भ में भूमंडलीकरण का दौर जहाँ एक तरफ 'इंडिया शाइनिंग' और 'फील गुड' जैसे चुनावी नारे लेकर आया, वहीं दूसरी ओर अमीरों और ग़रीबों के बीच गहरी खाई पैदा हुई है। किसानों–कामग़ारों द्वारा आत्महत्या करने की घटनाएँ इस विद्रूप को और उजागर कर देती हैं। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में किसानों को उनकी फसल का उचित मूल्य मिलना तो दूर, बल्कि विकास के नाम पर उनकी ज़मीनों का जबरिया अधिग्रहण करके बहुराष्ट्रीय निगमों व देशी औद्योगिक घरानों को उपलब्ध कराया जा रहा है। साथ ही इस दौर में आतंकवाद और सांप्रदायिकता में आश्चर्यजनक उभार आया है। भुखमरी–बेरोज़गारी–अपराध–हिंसा–अलगाववाद–उपभोक्तावाद–अपसंस्कृति और लांकतांत्रिक अधिकारों पर पुलिसदमनः भूमंडलीकरण के दौर के तल्ख़ सच्चाईयाँ हैं।

यदि पिछले दो दशकों को साम्राज्यवाद की शास्त्रीय परिभाषा के प्रकाश में देखा जाए, तो एक आध लक्षणों को छोड़ इसके अधिकांश लक्षण आज भूमंडलीकरण के दौर में कहीं अधिक स्पश्टता के साथ हमारे सामने हैं। और इसके साथ–साथ 'सर्वाधिकारवाद' का बोलबाला पहले से कहीं अधिक तेज़ गति से बढ़ा है। यहाँ तक कि भूमंडलीकरण के पैरोकार विद्वान भी यह मान रहे हैं कि विश्व अर्थव्यवस्थाओं के निरंतर बढ़ते हुए एकाधिकार के माध्यम से आर्थिक शक्ति का विस्मयकारी केन्द्रीकरण प्रकट हो रहा है। इसके साथ ही हम देख रहे हैं कि 'युद्ध की भाषा' लोकतंत्र की भाशा के रूप में प्रस्तुत की जा रही है। 'इतिहास का अंत' और 'विचारधारा का अंत' के बाद अब 'सभ्यता का संघर्श' की चर्चा चलाई जा रही है। सैन्य युद्धों के साथ–साथ सांस्कृतिक मोर्चो पर भी साम्राज्यवादी हमले की बढ़ोत्तरी अभूतपूर्व है। पिछले दो दशक जहाँ सोवियत संघ के विघटन के साक्षी रहे हैं, वहीं अमरीका के नेतृत्व में साम्राज्यवाद ज़्यादा संगठित और ताक़तवर बनकर हमारे सामने आया है।

**सन्दर्भ – सूची :–**


1– पंकज राग की लंबी कविता का अंश, नया ज्ञानोदय, जनवरी 2012 पृ0 348–349।

2– देखें, प्रो0 अर्जुन देव, सभ्यता की कहानी (भाग 2), एन0सी0ई0आर0टी0, संस्करण 1994, पृ0 229।

4– उपर्युक्त, पृ0 9।

5– उपर्युक्त, पृ0 14।

6– देखें, एजाज़ अहमद, यह समय–13, सहमत प्रकाश 2007, पृ0 47।
7– उपर्युक्त, पृ0 10।
8– देखें, समकालीन विश्व राजनीति, एन0सी0ई0आर0टी0, 2008, पृ0 137–138।
9– देखें, एजाज़ अहमद, यह समय–13, सहमत प्रकाशन 2007, पृ0 64।
10– देखें, अंरूधति रॉय, नव साम्राज्य के नए किस्से, पेंगुइन बुक्स, संस्करण 2005, पृ0 28।

**शोध छात्र**
**यतेन्द्र कुमार यादव**
**शोध निर्देशक**
**डॉ0 वीरेन डंगवाल**
हिन्दी विभाग
बरेली कॉलेज, (बरेली)
(उ0प्र0)
3408307996

12

# मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' उपन्यास में नारी का सामाजिक संघर्षः–

सुमन

**सारांश** –

मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों की नारियाँ अत्यंत चेतना सम्पन्न और साहसी है। नारी चरित्र पारम्पारिक नैतिकता के व्यवहार को खारिज कर बुनियादी परिर्वतन के संकेत देती है। 'इदन्नमम' उपन्यास की कुसुमा इसका जीवन प्रमाण हैं। कुसुमा भाभी अपने जेठ दाऊ जी के साथ शारीरिक संबंध रखकर प्राप्त संतान पर गर्व करती है। पर हमारा समाज और उसकी नैतिकता ने उस संतान को नाजायज घोषित किया। ऐसी नैतिकता को साहसी कुसुमा ठेंगा दिखाती है। "ओ नवीले। खैर माना की बच्चा दाऊ जी का है वरना किसी का भी होता, जाता का अनजात का, गैर चलते आदमी का। हम किसी के मुहताज नहीं।" (1) पुरूष जो करे वह सब जायज और नारी करते तो नाजायज यह कौन–सा न्याय हैं?बऊ जहाँ अपनी परम्परा को छोड़ नहीं पाती वहाँ उसकी बहू प्रेम' घर की मर्यादा, नैतिकता को तोड़ रतन यादव के साथ भाग जाती है। इसी कारण बऊ और प्रेम बहू का काफी संघर्ष होता है। 'इदन्नमम' उपन्यास की प्रायः सभी नारी पात्र पुरूष प्रधान समाज द्वारा निर्धारित नैतिकता के मानदण्डों पर प्रश्नचिन्ह्न लगाती है। परिवार के परम्परागत चार दीवारी को तोड़ती लांघती देह और धरती के आर पार देखती है। पुरूष अधीनता से वह मुक्ति पाना चाहती है।

इस उपन्यास की नायिका मंदाकिनी जो पढ़ने कहा की ललक तो रखती है। पर पढ़ना कहाँ उसकी नियति में रखा है अनपढ होने के बावजूद भी गांव की रीतियों, परम्पराओं पर प्रश्न उपस्थितकर रीति–रिवाज को बनाने वाली पक्षपाती वृत्ति को मंदाकिनी, कुसुमा भाभी के संवाद से स्पष्ट होता है–"बिन्नु, हमें एक बात समझाओं, अस्थाओं कि ये रिश्ते–नाते, संबंध और मरजाद किसने बनाई ?किसने सिरजी है बन्धनों की रीत है जो नाम लेती हो उनके ?मनु व्यास ने?रिसियों मुनियों ने?देवताओं ने कि राच्छसों ने?मन्दाकिनी पढ़ना रोककर भाभी को गौर से देखने लगी। क्या उत्तर दे इन सवालों का?भाभी, ये रीति–रिवाज तो उन्होंनें ही बनाये हैं, जिनके ऊपर ये किताबे लिखी गई हैं।

गलत कोई है मंदा। एकदम पक्षपात से रची हैं। बताओ तो अग्नि साच्छी धरके गाँठ बाँधने का क्या मतलब?पति और और पत्नी को साथी–सहचर कहें तो बिरथा है कि नहीं?कितेक उलटा है बिन्नू, बेअरथ! यह संबंध बड़ा थोथा है। लो, एक तो खूँटे बाँधा पागुर, दूसरा सरग में उड़ता पंछी। ढोर और पंछी सहचर नहीं हो सकते मंदा..... ।"(2)

उक्त सवादों में हो मदा और भाभी का एक अपना विजन है वह है परम्परा, रीति–रिवाज को निरर्थक साबित कर मानवीय सार्थक संबंधों को स्थापित करना, मंदा जैसी अनपढ़ लड़की में आधुनिक तथा बदलती हुई सोच है और पुरूश प्रणित पारम्परिक समाज व्यवस्था के प्रति उसके विद्रोह की अभिव्यक्त है संघर्ष की लड़ाई में मंदा को साथ मिलता है, उसकी सहेली कुसुमा का। मंदाकिनी की दीदी बऊ परम्परावादी विचारों की नारी है। मंदा भी परम्पराओं के साथ तो जिंदगी जिए इसलिए दादी उसे कुन्ती, द्रोपदी, सत्यवती के उदाहरण देकर त्याग–समर्पण की बात समझाती हैं और उसे परम्पराओं पर विश्वास करने के बात समझाती है। पर मंदा है कि अपने विचारों पर डटे रहकर पुरानी मान्यताओं से टकराती है। मंदा दादी को कहती है– "सो हम कहते हैं बऊ, पुरानी परम्पराओं की जो थोथी और दुखदायिनी नीति है, उसकी अन्धभक्ति न करो। पुरूष पूजा को मान–मर्यादा का नाम न दो तुम उसी परम्परा को तो निभाने की कोशिश करती रही और उसी का फल है कि आज तक हमारे घर की स्थिति वही की वही है, और बुरी।"(3)

मंदा की यह सोच उसके संघर्ष का परिचायक है। अपनी दादी को समझाती है, हम आज इस स्थिति में जो हैं वह परम्पराओं, मर्यादाओं को निभाने का ही नतीजा है मंदाकिनी की माँ पति की मृत्यु के बाद रतन यादव के साथ भाग जाती है। दादी प्रेम को स्वीकार करने लिए तैयार नहीं है। दादी प्रेम की रंडी, बदचलन कहकर गालियाँ भी देती है। बेटी मंदा को छोड़कर गैर मर्द के साथ भाग जाना दादी को कतई मंजूर नहीं है। मंदा तो प्रेम के रिश्ते को भी तोड़ने की बात करती है पर मंदा माँ द्वारा उठाए गए कदम को गलत न मानकर उसे अपनाने की, घर में पनाह देने की बात करती है यह मंदा की ओर से किया गया परम्पराओं पर प्रहार ही था। मैत्रेयी पुष्पा ने ऐसे नारी चरित्र दर्शाये हैं जो परम्परागत मान्यताओं पर चलने से इन्कार करते हैं कुसुमा भाभी यशपाल की परित्यक्ता नारी है। जो अविवाहित दाऊजू से प्रेम करती है और उससे उत्पन्न बच्चे पर गर्व करती हैं। इन वैवाहिक परम्पराओं को वह छेद देती है।

जिसमें अग्निसाक्ष के नाम पर ढोंग रचा जाता है। यह घोर विद्रोह है। उस सामंती नैतिकता के खिलाफ जो पुरूष को खुली छूट देकर सदाचार का कुल ठेका नारी के गले मढ़ देती है। कुसुमा भाभी सामाजिक परम्पराओं की वर्जनाओं को ही चुनौती देती है।

मंदा की लडाई जितनी नारी अस्मिता के लिए है उतनी ही सामूहिक है। मंदा के जीवन में बचपन से ही भटकाव आया। दादी के साथ यहाँ से वहाँ बेबसी का जीवन जीना पड़ा। पर मंदा के जीवन शैली मे इसी भटकाव से संघर्ष करने का साहस भरा। सर्वप्रथम वह अपनी ताकत, बुद्धिमता को पहचानकर अपने को जगाती हैं और अन्य नारियों को भी जागृत करने का प्रयास करती है। कुसुमा भाभी ने भी मंदा को बार–बार साहस दिया है। मंदा जब कमजोर पड़ती है, तो कुसुमा उसे उसकी आन–बान की याद दिलाती है।"अब विचारी न बनों मंदा। इतनी नादान नहीं। गलती दोषी तो वह खोजे जो अपराधी, दोषी कमजोर हो। लोभी– लालचियों और बेइमानो के आगे तुम अपने को निर्दोष साबित करना चाहती हो?सो कैसे हो पाएगा?अपमान, अवज्ञा न करो अपनी आन–बान की। पर इतेक सुन लो हम तुम्हारी हिम्मत जानते हैं, आंयदा आखों में आसू ना दिखे। सोचना छोड़ दो इन राच्छसो के बार में।"(4)

इस उपन्यास का प्रत्येक नारी पात्र अपने स्तर पर अपनी अस्मिता के लिए संघर्षशील हैं इस बात को व्यक्त करती हुई माधुरी छेडा लिखती है– मंदा के साथ ही साथ बऊ यानी मंदा की दादी और मंदा की माँ की कहानी भी साथ–साथ समांतर चलती है। अन्य सभी पात्रों में कुसुमा भाभी और कक्कों का उल्लेख जरूरी है। क्योंकि यह दोनों भी अपने–अपने ढंग से अपनी अस्मिता निर्णय शक्ति और संघर्षशीलता का अच्छा खासा परिचय देती है।"(5) मैत्रेयी पुष्पा ने भीएक नारी का जीवन जिया है। डॉक्टर की पत्नी होते हुए भी वह रत्ती भर आजादी के लिए तरसती रही। मैत्रेयी का स्थान एक नारी के रूप में घर में नहीं है बल्कि पत्नी के रूप में है।

"मैं मिसेज शर्मा के सिवाय क्या हूँ बेटा?तेरे पिता की पत्नी. .....न..... औरत हूँ, न मनुष्य केवल पत्नी। इसी रूप में मैं तेरे पिता के परिवा में शामिल हूँ।" मैत्रेयी पुष्पा मूल रूप से हमारी सामाजिक संरचना पर ही प्रश्नचिहन लगाती है। बेटी का जन्म उत्सव का नहीं बल्कि उपहास का विषय माना गया है। बेटी को बोझ के रूप में देखने वाला समाज अपने सिर पर से बोझ हल्का करना चाहता है इसी कारण बाल–विवाह, अनमेल विवाह कर छुटकारा पाने की मानसिकता निर्माण होता गया। इस सत्य को हम और आप नकार नहीं सकते। मैत्रेयी जी ने गांव की विधवा नारियों की समस्याओं को अभिव्यक्त किया है। नारी को इन समस्याओं के लिए झगडने के लिए नारी चरित्र को ऊर्जावान भी बनाया है। नारी पुरूशों की तरह दंबग होकर ही नही जीना चाहती बल्कि वह उसके जीने के स्वाभाविक अधिकार भी पाना चाहती है। युवा समीक्षक डॉ० दया दीक्षित जी ने लिखा है– "जानने वाले जानते हैं कि मैत्रेयी ने ना पहले विमर्श को जीया है और बाद में उन्हें लेखन में उतारा है कितने रचनाकार है ऐसे जो यह कह पाते हैं कि कही कथनी और करनी का यह अभेध ही उनकी प्रभावी अपार सृजनात्मक सफलता और सुयश का कारण तो नहीं।"(6)

मंदा की सोच में एक मूलभूत जीवन सच को लेखिका वाणी देती है। नारी चाहे सदवा हो या विधवा। देह की भूख तो सबमें समान होती है। इस उपन्यास की बऊ, प्रेम और कुसुमा विधवा और परित्यक्ता की यातनाओं से पीड़ित हैं। बऊ और प्रेम भरी जवानी में विधवा हुई पर प्रेम ने बऊ की तरह घर की मर्यादा के नाम पर अपनी देह की भूख को दमन करने के बाजार उसके क्षमण की राह चुनी। ये दोनों परस्पर निर्णय समाज में अलग–अलग प्रतिमा बनाते हैं। बऊ समाज के द्वारा आदर की अधिकारिणी बनी जबकि प्रेम को लांछन, तिरस्कार और बहिष्कार मिला। प्रेम को समाज की ओ से मिले उत्पीड़न को सहने का सामर्थ्य है। उसे अफसोस इस बात का है कि उसकी शारीरिक भूख और इच्छाओं की कद्र किसी ने नहीं की। प्रेम और बऊ ने सामाजिक मान्यताओं के साथ कड़ा संघर्ष किया है। समाज क्या कहेगा प्रेम को फिक्र नहीं है। वह भले ही गाँव की नारी हो पर विचार नए है। प्रथम पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने वाली बऊ भी एक संघर्शशील नारी हैं। बेटे के मरने के बाद बऊ ने मंदा का जो पालन पोशण किया वह भी उसके संघर्षशीलता का परिचायक है। वे श्यामली से सोनपुरा आते हैं औ मंदा अपने पिता के अधूर सपने को पूरा करने और मजदूरों के शोषण के खिलाफ जो अभियान चलाती है। उसमें बऊ उसका साथ देती है। कुसुमा भाभी यशपाल सिंह की परित्यक्ता नारी है कुसुमा का चरित्र भी चुनौतियों का सामना करता है। यशपाल सिंह के होते हुए भी जीजा दाऊजी के साथ संबंध स्थापित करती है। उसे समाज के वैध–अवैध, नैतिकता–अनैनिकता का कोई डर नहीं हैं। कुसुमा मंदा से कहती है– "अकेले थे हम मंदा निपट अकेले। झुलस–झुलस कर मर रहे थे। प्यासे तड़प रहे थे, दाऊ जी आ गए हमारे बिहड में शीतल झरना होके बहने लगे। उजाड़ जिंदगानी के टूटे–फूटे मंदिर में जो प्रभु देवता का रूप धारण कर खड़े हो गए हो.....हम उनकी शरण मे जा गिरे। जोगिन–तपासिन की तरह।"(7) यशपाल की परित्यक्ता कुसुमा

भाभी की यह सोच समाज व्यवस्था से गहरा टकराव का निर्माण करती है। दाऊ जी को अपना प्रभु मानती है। कुसुमा विवाह के बंधनों में बंधकर रखने वाले अग्नि–साक्ष के सात फेरो को न निभाने वाले पति को वह पति और सास को सास मानती है।

"अग्निसाक्षी करे ही आए थे, तुम्हारे पुत के संग। सात भाँवरे फिरके लियाज रखा उसने?निभाया संबंध दूसरी बिठा दी हमारी छाती पर। उस दिन से कोई संबंध कोई नाता नहीं रहा हमारा जो ब्याह कर लाया था, उसे ही कोई ताल्लुक नही ंतो इस घर में कौन हमारा सुसर और कौन जेठ।"(8) विधवा और परित्यक्ता नारी के संबंध में समान रवैया देख कर नारी पात्र स्वयं अपनी मंजिल तलाश कर रही है। इसके अतिरिक्त परिवार, समाज द्वारा छली तथा नकारी जाने पर करारा उत्तर देना भी वह जानती है और आने वाली आपतियों का सामना करने के लिए वह तैयार रहती है।

मंदाकिनी और बऊ जान बचाकर दर–दर की ठोकरे खाकर परेशानी और असुरिक्षतता को ढोते हुए सोनपुरा वापस आकर अपने पिता महेन्द्र को अधूरे सपनों को पूरा करने के लिए जिस तरह का साहस दिखाती है। उसके साहस को शब्द वद्ध करते डॉ० विजयबहादुर सिंह लिखते हैं– "इदन्नमम का अर्थ ही यही है कि यह लड़ाई अब अस्पताल और निजी जायदाद के लिए नहीं, उस विराट जनसमूह के सुखद ऐतिहासिक भविष्य के लिए है जिसे भारत माता कहते है।"(9) मंदा पिता के अस्पताल का सपना पूरा करने के लिए जी तोड़ भागदौड करती है। अर्जी पर अर्जी देकर अस्पताल मे डॉक्टर को लाने के लिए प्रयास करती है। अस्पताल में डॉक्टर लाकर ही मंदा चैन की सांस लेती है।

सोनपुरा लौटने पर मंदा ग्रमीण समाज, शोषित वर्ग और आदिवासी मजदूरों के अधिकारों के लिए अकेले ही संघर्ष का अभियान चलाती है। मंदा गाँव में घर–घर घूमकर पाई–पाई जमा कर मजदूरों के लिए ट्रैक्टर खरीदती हैं। बऊ के दिए हुए पचास हजार भी उसमें लगा देती है। इतना ही नहीं बल्कि सभी मजदूरों के सहयोग से गरीब रामदास की बेटी की शादी भी धूमधाम से करती है। संघर्ष के इस अभियान के लिए सामूहिक संघटन बनाती है। मंदा जो अभियान चलाती है। इससे आप–पास के गांवों को भी समर्थन मिलता है।

निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि मैत्रेयी पुष्पा एक ऐसा नाम है जिन्होंने एक के बाद एक ऐसे नारी चरित्र पाठकों तक पहुँचायें है, जो परम्परागत पुरूषी मानसिकता को नकारकर नई समानता के विचारों का समर्थन करती है। मैत्रेयी पुष्पा के 'इदन्नमम' उपन्यास की मंदाकिनी तो सामूहिक संघर्ष का अभियान चलाती है। यह अभियान सोनपुरा तक सीमित नहीं रहा बल्कि आस–पास के इलाकों तक भी पहुँचा है। आज के दौर में हमारे समाज का जो परम्परावादी ढाँचा है उसे बदलने की सोच, दिशा इस उपन्यास से हमें मिल सकती है।

**संदर्भ ग्रंथ सूचीः–**


(1) मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, पृ० सं०– 95

(2) मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, पृ० सं०– 94

(3) मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, पृ० सं०–309

(4) मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, पृ० सं०–108

(5) संपा, दीक्षित दया, मैत्रेयी पुष्पा सत्य और तथ्य, नई जमीन की तलाश माधुरी छेडा, पृ० सं०–144

(6) संपा, दीक्षित दया, मैत्रेयी पुष्पा सत्य और तथ्य, पृ० सं०–154

(7) मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, पृ० सं०–55

(8) मैत्रेयी पुष्पा, इदन्नमम, पृ० सं०– 98

(9) विजयबहादुर सिंह, उपन्यास और स्त्री, पृ० सं०–274



**शोध छात्रा**

**सुमन**

बाबा मस्तराम

विश्वविद्यालय,

रोहतक 124001

13

# किसान जीवन से संबंधित हिन्दी कहानीकार

उषा देवी

**सारांश** –

1. प्रेमचंद

प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई, 1880 – 8 अक्टूबर, 1936 को हुआ। ये धनपत राय श्रीवास्त के नाम से जाने जाते है। ये कहानीकार, उपन्यासकार थे। इन्होंने सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, निर्मला, गबन, कर्मभूमि, पूस की रात आदि तीन सौ से भी अधिक कहानियाँ लिखी है। इनमें अधिकांश कहानी हिन्दी और उर्दू दोनों भाशाओं में प्रकाशित हुई है। हिन्दी पत्रिकाओं में जमाना, सरस्वती, माधुरी, चाँद आदि लिखी है। जीवन के अंतिम दिनों तक वे साहित्य सृजन में लगे रहे। साहित्य का उद्देश्य अंतिम व्याख्यान, अंतिम उपन्यास कफन, अन्तिम कहानी माना जाता है।

इन्होंने 1921 में असहयोग आंदोलन के दौरान सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देने के बाद वे पूरी तरह साहित्य सृजन में लग गए। उन्होंने कुछ महीने मर्यादा नामक पत्रिका का संपादन किया। 1922 में इन्होंने बेदखली की समस्या पर आधारित प्रेमाश्रम उपन्यास प्रकाशित किया। 1925 ई० में रंगभूमि नामक वृहद उपन्यास लिखा जिसके लिए उन्हें मंगलप्रासाद पुरस्कार भी मिला।

1930 में बनार से मासिक पत्रिका हंस का प्रकाशन शुरू किया। 1932 में इन्होंने हिन्दी साप्ताहिक पत्र जागरण का प्रकाशन आरंभ किया। 1936 में अखिल भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ के सम्मेलन की अध्यक्षता की। प्रेमचंद लगभग दस से अधिक कहानियाँ प्रतिवर्ष लिखते थे। मरने के पश्चात उनकी कहानियाँ 'मानसरोवर' नाम से 8 खंडों में प्रकाशित हुई।

2. कृष्ण चदर

कृष्ण चदर का जन्म 23 नवंबर, 1914 – 8 मार्च, 1977 को हुआ। ये हिन्दी और उर्दू के कहानीकार थे। इन्हें सरकार द्वारा साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में पद्मभूशण से सम्मानित किया गया। उन्होंने स्वतंत्रता के बाद हिन्दी कहानियाँ लिखी है। एक वायलिन समुद्र के किनारे, तुफान की कलियां, एक गधे की वापसी, पिआस, यादों के चिनार आदि इनकी प्रमुख रचनाएँ थी।

3.रैदास

संत रविदास का जन्म सन् 1388 में हुआ। रैदास कबीर के समकालीन थे। मध्ययुगीन साधकों में रैदास का विशिष्ट स्थान था। कबीर की तरह रैदास भी संत कोटि के प्रमुख कवियों में विशिश्ट स्थान रखते है। कबीर ने संत में रविदास कहकर इन्हें मान्यता दी है।

4. मिथिलेश्वर

अपनी–अपनी जगह मिथिलेश्वर कहानी के मुख्य पात्र है। इन्होंने किसान के बारे में लिखा है। किसान अपने को सृजनकर्ता मानता है। सृजनकर्ता की मान्यता के अनुसार उसी को किसी भी वस्तु से इस खींचने का अधिकार है। जो मानव जीवन को जीवन प्रदेश कर सके।

भदई का जीवन और जमीन के प्रति यही सौन्दर्य बोध है। वह आधुनिक दुनिया की चकाचौंध में अंधा और परंपरा विरोधी है। भदई सोचता है लान में सब्जियाँ उगाई जाती तो तमाम गरीबों के काम आती। उनकी मान्यता है जो चीज मनुश्य की भूख शांति कर न सके उसे जमीन की जीवनी शान्ति खींचने का अधिकार नहीं है।

5. स्वयप्रकाश

'माया और भार' सूरज कब निकलेगा में बाहरी स्थितियों के दबाव को झेलते हुए संघर्ष की चेतना लक्षित होती है। इनकी कहानियों में पात्रों के एक भरे पूरे जीवन और वैविध्य पूर्ण संसार की वापसी पर जोर देती है। वे राजनीति का इस्तेमाल न करके राजनीति ने किस तरह हमारी पूरी व्यवस्था तथा सामाजिक संरचना को ढाला और प्रभावित किया है। इसे अति सूक्ष्मता से प्रदर्शित किया है।

घर में पढ़ी–लिखी नारी, हिंदू–मुसलमान और गाँव छोड़कर अपनी मिट्टी से नाता तोड़ लेने वाले अभिशपा शहर में मजदूर की हैसियत से जीने को अभिशप्त लोगों से स्वयं प्रकाश का कथा बनती है।

6. जयनंदन

'खेत की मूली' समकालीन हिन्दी कहानी में परम्परा के प्रति विद्रोह की भावना देखी जाती है। परियाग बाबू अपने ही जिगर के टुकड़े छोटे भाई सोहाग को अलग नहीं करना चाहते। परंतु बेटे की जिद्द ने उन्हें अलग कर दिया। इसके अतिरिक्त विस्फोट, आग, बैल, अकाल, माल मवेशी तथा नई अदालत आदि कहानियाँ

है।

7. भैरव प्रसाद गुप्त

भैरव प्रसाद गुप्त की गिनती नई कहानिकारों में होती है। इन्होंने सामाजिक यथार्थ की ऐसी परतों को उधेड़ा है कि कहानी साहित्य में धमाल मच गया। इन्होंने नव वर्शांक 1956 में प्रकाशित हुआ था। इसके अतिरिक्त मगली की टिकुली, मित्र और अन्य कहानियाँ, सपनें का अंत का अंत, महफिल, आप क्या कर रहे है। आँखों का सफल आदि प्रकाशित है।

भैरव प्रसाद गुप्त की गिनती मुख्य कहानिकारों में होती है। सामयिक परिवेश और सामाजिक विकास से उत्पन्न साधारण से अंतर की छोड़कर प्रेमचंद की परम्परा के बराबर कहानीकार है। शहरी और ग्रामीण जीवन की अवैज्ञानिक बाड़ेबन्दी से अलग है।

8. शिवमूर्ति

शिवमूर्ति का जन्म सन् 1950 में उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर जिले में हुआ था। इन्होंने ग्रामीण किसान जीवन का महत्वपूर्ण उल्लेख किया है। ''केशर–कस्तूरी कहानी इनकी मुख्य कहानी है। इस कहानी पर इन्हें हंस पुरस्कार प्राप्त हुआ है। इनकी कहानियों में संवेदना का स्थान भी पाया जाता है। इसके अतिरिक्त तिरिया चरित्र, कसाईबाग, भरतनाट्यम अन्य कहानियाँ भी है।

इनकी कहानियों में समसामयिक भावना की सुलभ मिलती है। ग्रामीण राजनीति स्थिति किसान की लाचारी, बेबसी, टूटते रिश्ते उनकी कहानियों के केन्द्रित बिंदू है। ग्रामीण जीवन का इन्होंने बड़ा सुंदर चित्रण किया है। केशर–कस्तूरी समेत जो भी कहानी प्रकाशित हुई है वे समकालीन किसान की है।

**सन्दर्भ सूची**


- रामचंद्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ० 98
- विजयेंद्र सिंह, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 108
- हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य उद्‌भव और विकास, पृ० 148
- डॉ० रामचंद्र तिवारी, हिन्दी गद्य का साहित्य, पृ० 205
- वही, पृ० 173
- विद्याधर शुक्ल, प्रगतिशील कहानियाँ, पृ० 156
- रामचंद्र तिवारी, हिन्दी का गद्य साहित्य, पृ० 98
- शिवमूर्ति, केशर कस्तूरी, पृ० 12
- वही, पृ० 18



**उषा देवी**
शोधछात्रा,
ओम स्ट्रलिंग ग्लोबल विश्वविद्यालय
हिसार

14

# भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण पर धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव

डॉ0 सविता मिश्र

सारांश –

भारत में आधुनिक धार्मिक आन्दोलनों के सभी नेताओं – राजा राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, ज्योतिबा फुले, महादेव गोविन्द रानाडे आदि ने भारतवासियों को भारतीय संस्कृति के आदर्शों की ओर प्रेरित किया। पश्चिमी प्रभाव की प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय जनमानस अपनी संस्कृति की अवहेलना करने लगा था। ऐसे विषम समय में जितने भी धार्मिक आन्दोलन चले, वे भौतिकवाद के विरोधी और अध्यात्मवाद के पक्षधर थे। इस संदर्भ में डॉ॰ द्वारिका प्रसाद श्रीवास्तव का कथन द्रष्टव्य है – 'उन महापुरुषों ने भारतवासियों को भारतीय संस्कृति के शाश्वत् आदर्शों की ओर प्रेरित किया। उनका विश्वास था, कि जब तक भारतीय धर्म और संस्कृति पर छाई हुई काई को दूर नहीं किया जायेगा, तब तक भारतवासियों का वैयक्तिक और सामाजिक जीवन निर्मल और स्वस्थ नहीं हो सकता।'[1]

इसमें कोई संदेह नहीं है, कि महापुरुषों द्वारा चलाये गये आन्दोलनों के फलस्वरूप राजनैतिक पुनर्जागरण हुआ, जिसकी चरम परिणति, भारत की विदेशी दासता से मुक्ति में हुई। इसके साथ–साथ इन नेताओं ने रूढ़ियों, कर्मकाण्डों, अंधविश्वास आदि का भी विरोध किया। ब्रह्म समाज के नेता राममोहन राय ने एक परमात्मा की उपासना पर बल दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती ने मूर्ति–पूजा, कर्मकाण्ड, बहुदेववाद का खण्डन करते हुए इन सब को आध्यात्मिक विकृति का प्रधान कारण माना। वेदों में अटूट आस्था रखने वाले स्वामी दयानन्द जी एकेश्वरवाद के प्रबल समर्थक थे। रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द ने भी धार्मिक आडम्बरों का प्रबल विरोध किया। केशवचन्द्र सेन और गोविन्द रानाडे आदि ने भी पारस्परिक सौहार्द्रपूर्ण संबंधों पर बल देते हुए मानवीय भावनाओं को संबलता प्रदान की।

धार्मिक आन्दोलनों के इन नेताओं ने समाज में व्याप्त अनेक विसंगतियों को दूर किया। महिलाओं को पुरुषों के समानाधिकार देना, बाल–विवाह का विरोध करना, विधवा–विवाह का पक्ष, नारी–शिक्षा आदि की दिशा में इनका प्रमुख योगदान रहा। जाति–प्रथा के अप्रजातांत्रिक और दमनकारी रूप का विरोध करते हुए उक्त नेताओं ने जाति–प्रथा के आधारों पर प्रहार किया और भारतीय जनमानस को सचेत करते हुए कहा, कि जाति–प्रथा राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बड़ा व्यवधान है।

धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में सुधार करने वाले इन आन्दोलनों का मूल उद्देश्य राष्ट्र की प्रगति था। इस संदर्भ में अरविंद घोष के अवदान पर प्रकाश डालते हुए मैकडॉनल्ड ने कहा था – "अरविन्द घोष ने अपने कट्टर हिन्दुत्व और सशक्त राष्ट्रवाद का संबंध स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने बताया है, कि मानव का ईश्वर का साक्षात्कार करना आवश्यक है और यह कार्य आत्म–साक्षात्कार द्वारा ही संभव है, जो पुनः केवल राष्ट्रवाद के द्वारा ही संभव हो सकता है।'[2]

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में सुषुप्त हुई भारतीय चेतना को जगाने वाले इन आन्दोलनों में ब्रह्म समाज का विशेष स्थान है। राजा राममोहन राय द्वारा 20 अगस्त, 1828 ई॰ को कलकत्ता में स्थापित ब्रह्म समाज की शाखाएँ निरंतर फैलती गईं और अन्ततः इसने एक अखिल भारतीय संस्था का रूप ले लिया था। डॉ॰ पट्टाभी सीतारमैया के अनुसार, 'राममोहन राय, भारतीय राष्ट्रवाद के देवदूत और आधुनिक भारत के जनक थे।'[3] वे सर्वोपरि परमात्मा की सत्ता को स्वीकार करते हुए उसकी आधारभूत सत्य के रूप में प्रतिष्ठा करना चाहते थे। इस संदर्भ में शिवनाथ शास्त्री का कहना है – "राममोहन राय का धर्म प्रचारार्थ किया गया कार्य, सीधा–सादा था अर्थात् अपने देशवासियों का मूर्ति–पूजा का परित्याग करने के लिए आह्वान करना और उन्हें एक सत्य परमात्मा की उपासना के लिए अग्रसर करना।"[4]

राममोहन राय के प्रयासों का यह फल हुआ कि धर्म का परिमार्जित रूप लोगों के सामने आया और एक विस्तृत पृष्ठभूमि तैयार हुई जिससे आगे चल कर देश में अभूतपूर्व राजनैतिक पुनर्जागरण हुआ। राममोहन राय जाति–प्रथा के प्रबल विरोधी थे। उनके नेतृत्व में जाति–प्रथा के विरुद्ध शक्तिशाली अभियान प्रारंभ हुआ। इसमें कोई संदेह नहीं कि 'जाति–प्रथा को ढीला करने का प्रयत्न करने से ब्रह्म समाज ने भारत में मानववाद, राष्ट्रवाद और लोकतंत्रवाद के आधारों की पृष्ठभूमि तैयार की और भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण के निमित्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया।'[5]

राजनैतिक पुनर्जागरण के संदर्भ में राममोहन राय की महत्त्वपूर्ण भूमिका यह भी थी, कि उन्होंने जनता को अपने अधिकारों एवं स्वत्व के प्रति सचेत किया। उस समय भारतवासी स्वप्न में भी यह नहीं सोच सकते थे कि सरकार के समक्ष समस्याएँ रखी जा सकती हैं। उन्होंने पाश्चात्य शिक्षा पर भी बल दिया, किंतु उनकी प्राचीन हिन्दू–दर्शन एवं संस्कृत भाषा के प्रति अटूट श्रद्धा थी। उनका दृढ़ विश्वास था कि बिना आधुनिक विज्ञानों का अध्ययन किए

भारतवासी आर्थिक और राजनैतिक क्षेत्रों में यूरोपियन लोगों की तुलना नहीं कर सकते।[6]

भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण में स्वतंत्रता संबंधी विचारों का भी महत्त्व रहा है। राममोहन राय स्वतंत्रता के महान समर्थक थे। उनका मानना था कि स्वतंत्रता के शत्रु और निरंकुशता के मित्र कभी सफल नहीं हो सकते। उन्होंने 'संवाद–कौमुदी', 'बंगदूत' आदि समाचार–पत्रों को अंग्रेज़ी, बंगला, फारसी और हिंदी भाषाओं में प्रकाशित कर समाज में जागृति फैलाई। देश की प्रशासनिक व्यवस्था के सुधार में भी ब्रह्म समाज का उल्लेखनीय योगदान रहा। इसके अतिरिक्त उनका सुझाव था कि कानून बनने से पहले, उस कानून के संबंध में भारत के जनमत को जान लिया जाना चाहिए।

राममोहन राय के बाद देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने ब्रह्म समाज का सदस्य बनकर उसके आदर्शों का प्रचार–प्रसार करना प्रारंभ किया। उनके द्वारा निकाली गई 'तत्त्व–बोधिनी पत्रिका' ने भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की थी। उनके साथ–साथ उनके साथियों पं॰ ईश्वरचंद्र विद्यासागर, राजेन्द्र लाल मिश्र आदि ने नारी–शिक्षा का समर्थन किया। उन्होंने भारतीय नील–गाय की खेती में लगे श्रमिकों के साथ किये जाने वाले अत्याचारों का विरोध किया। वे राजनीतिक स्वतंत्रता के पक्षधर थे और इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वे राजनीतिक स्वतंत्रता और नागरिक स्वतंत्रता का संरक्षण चाहने वाले उस समय की एक मात्र संस्था ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन के सेक्रेटरी रहे।

केशवचंद्र सेन ने हिंदुओं के उपनिषदों के साथ ईसाइयों की बाइबिल, यहूदियों के जेदअवेस्था और मुसलमानों के पवित्र कुरान से मूल सूत्र संकलित करके 'श्लोक संग्रह' तैयार किया।[7] मैक्समूलर ने केशव के प्रयासों पर टिप्पणी करते हुए लिखा था कि केशव के नव–विधान में समस्त धर्मों का आलिंगन करते हुए एक सर्वोपरि परमात्मा में एकीकृत होना शामिल था जिनके फलस्वरूप भारतीय राजनीति में धर्म निरपेक्षता और धार्मिक स्वतंत्रता के आदर्श प्रतिष्ठित हुए जिन्हें भारत के स्वतंत्र होने के बाद भारतीय संविधान में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया। केशवचंद्र सेन अत्यन्त ओजस्वी वक्ता थे। वे भारत के जागरण के लिए महिलाओं और श्रमिकों की भूमिका आवश्यक मानते थे। इसमें कोई संदेह नहीं है कि भारत के राजनीतिक पुनर्जागरण में उनकी प्रमुख भूमिका रही है।

आधुनिक भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण में सत्यशोधक समाज तथा प्रार्थना समाज ने भी धर्म सुधार व समाज सुधार के कार्यों द्वारा महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। धार्मिक क्षेत्र में महन्तों और पुजारियों की निरंकुशता को अस्वीकार करके प्रार्थना समाज ने लोक तंत्रात्मक वातावरण की स्थापना की तथा भक्ति की अपेक्षा कर्म पर ज़ोर दिया। उन्होंने ईश्वर के प्रति प्रेम करने की अपेक्षा मानव–सेवा पर अधिक बल दिया। दलित–वर्ग मिशन की स्थापना प्रार्थना–समाज का एक महत्त्वपूर्ण कार्य था – जिसके बल पर राजनैतिक पुनर्जागरण की दिशा को गति प्राप्त हुई थी। महादेव गोविन्द रानाडे ने हिन्दू–मुस्लिम एकता के लिए विशेष प्रयास किया था। उनके अनुसार, यदि गुज़रे हुए समय की शिक्षाओं का कोई मूल्य है तो एक बात पूर्णतः स्पष्ट है कि इस विशाल देश की तब तक कोई उन्नति नहीं हो सकती जब तक हिन्दू और मुसलमान दोनों मिलकर न चलें और उन आदर्शों का अनुसरण करने का निश्चय न करें, जिनका मार्गदर्शन अकबर के समय के महापुरुषों ने किया था, जो उसके प्रमुख परामर्शदाता और पार्षद थे और दोनों उन ग़लतियों को न दोहरायें जो अकबर के परपोते औरंबज़ेब ने की थी।

प्रार्थना समाज आन्दोलन, ब्रह्म समाज आन्दोलन से कुछ बातों में भिन्न भी था। इसके समर्थकों ने ब्रह्म समाजियों की तरह हिन्दू समाज से अपना संबंध–विच्छेद नहीं किया था तथा यह आन्दोलन ब्रह्म समाज की तरह केवल सुधारवादी न होकर पुनरुत्थानवादी था। चन्दावरकर, तैलंग आदि नेताओं ने देश के बहुमुखी विकास में अपना योगदान दिया तथा भारतवासियों के अंदर आत्मविश्वास जागृत किया। 1901 में रानाडे की मृत्यु के पश्चात् प्रार्थना–समाज इस स्थिति पर पहुँच गया था कि इंग्लैण्ड के 'दी टाइम्स' नामक समाचार–पत्र को भारत भेजे गए संवाददाता वेलेंटाइन शिराल ने उस वर्ष में प्रकाशित अपने ग्रंथ 'इंडियन अनरैस्ट' में प्रार्थना–समाज को 'मृत्युशील आन्दोलन' की संज्ञा दी।[8]

भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण में आर्य समाज का उल्लेखनीय योगदान था। यह ब्रह्म समाज व प्रार्थना–समाज की तुलना में अधिक राष्ट्रवादी आन्दोलन था। लाहौर में 24 जून, 1977 को आर्य समाज की स्थापना के समय स्वामी दयानंद ने जो नियम निर्धारित किये, उनके मूल में भारत में वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा और देश के पुनर्जागरण का उद्देश्य विद्यमान था।[9] स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भारत की अवनति के मूल कारणों पर विचार करते हुए धार्मिक, सामाजिक और राष्ट्रीय एकीकरण को महत्ता प्रदान की और इसके लिए सदैव प्रयासरत् रहे।

सामाजिक सुधार हेतु उन्होंने पश्चिम के आदर्शों को ग्रहण नहीं किया, वरन् अपने देश के प्राचीन आदर्शों को महत्ता दी। उनका यही मानना था कि भारतीयों के अन्दर वैदिक आदर्शों का समावेश हो जाए तो उन्हें विदेशी शासन से मुक्ति मिल सकती है। दयानन्द का मानना था कि भारतीयों को अपने ही प्रयत्नों से प्राचीन भारत की प्रतिष्ठा को लौटाना चाहिए। उनका कहना था, कि जिनकी विद्या विश्व में फैली है, वह सब आर्यावर्त्त देश से मिस्र वालों, उनसे यूनानी, उनसे यूरोप देश और उनसे अमेरिका आदि देशों में फैली है।[10]

आर्य समाज ने स्पष्ट रूप में भले ही ब्रिटिश शासन का विरोध न किया हो, किन्तु दयानन्द की राष्ट्रवादी विचारधारा ने भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण को बल अवश्य प्रदान किया था। न्याय की स्थापना और राज्य की सुरक्षा संबंधी दयानन्द के विचार अत्यन्त

महत्त्वपूर्ण हैं। स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग के पक्षधर दयानन्द प्रथम महापुरुष थे, जिन्होंने हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किया था। राजनैतिक पुनर्जागरण में गो–रक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। गो–रक्षा हेतु स्वामी दयानन्द ने जगह–जगह पर व्याख्यान दिए। उनके व्याख्यानों को सुनकर अनेक ईसाइयों और मुसलमानों ने गो–रक्षा का समर्थन किया था। उनकी मान्यताओं से प्रेरित होकर लाला हंसराज ने डी॰ए॰वी॰ कॉलेज लाहौर की तथा स्वामी श्रद्धानन्द ने गुरुकुल कांगड़ी हरिद्वार की स्थापना की। उनके समय में भारत का राजनैतिक पुनर्जागरण राष्ट्रवादी सिद्धान्तों पर चला पर गो–रक्षा संबंधी विचार ने मुसलमानों में भारत की व्यापक राष्ट्रीय विचारधारा में शामिल होने से हिचकिचाहट उत्पन्न की, जिससे आगे चलकर कूटनीतिक अंग्रेज़ शासकों को द्विराष्ट्र सिद्धान्त का प्रचार करने में सहायता मिली और अन्ततः देश का विभाजन हुआ।[11]

उक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि भारत के राजनैतिक पुनर्जागरण में धार्मिक आन्दोलन का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है और इसके मूल में विश्ववाद की विचारधारा विद्यमान है। इन्हीं आन्दोलन द्वारा भारतीयों के अंदर नवीन आशा तथा नवीन शक्ति जागृत हो गई थी। धार्मिक और सांस्कृतिक क्षेत्र से उठने वाली यह लहर भारत के राजनैतिक क्षेत्र में प्रकिष्ट हुई और भारत राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने हेतु उत्सुक हो उठा था।

**संदर्भ**


1. भारत के राजनीतिक पुनर्जागरण पर धार्मिक आन्दोलन का प्रभाव – डॉ॰ द्वारिका प्रसाद श्रीवास्तव – पृ॰ 10
2. 'दी अवेकनिंग ऑफ इंडिया' – मैकडॉनल्ड – पृ॰ 116
3. दी हिस्ट्री ऑफ दी इंडियन नेशनल कॉंग्रेस – भाग–2, पृ॰ 17
4. हिस्ट्री ऑफ द ब्रह्म समाज – खण्ड–1, पृ॰ 72
5. भारत के राजनीतिक पुनर्जागरण पर धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव – डॉ॰ द्वारिका प्रसाद श्रीवास्तव – पृ॰ 25
6. इंडियन नेशनलिज़्म एण्ड हिन्दू सोशल रिफॉर्म – सी॰ एच॰ हीम सैल – पृ॰ 89
7. दी लाइफ एण्ड टीचिंग ऑफ केशवचन्द्र सेन – प्रतापचन्द्र मजूमदार – पृ॰ 110
8. इंडियन अनरैस्ट, पृ॰ 27
9. भारत के राजनीतिक पुनर्जागरण पर धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव – डॉ॰ द्वारिका प्रसाद श्रीवास्तव – पृ॰ 83
10. सत्यार्थ प्रकाश – पृ॰ 264
11. भारत के राजनीतिक पुनर्जागरण पर धार्मिक आन्दोलनों का प्रभाव – डॉ॰ द्वारिका प्रसाद श्रीवास्तव – पृ॰ 106



**डॉ॰ सविता मिश्र**
एसो॰ प्रो॰ – हिन्दी विभाग
आर॰बी॰डी॰पी॰जी॰ कॉलिज,
बिजनौर
Email:drsavitamishra64@gmail.com

15

# स्वतंत्रता के पश्चात् किसान जीवन

उषा देवी

**सारांश** –

1920 के असहयोग आंदोलन तथा 1930 के सविनय अवज्ञा आंदोलन 1934 के औपनिवेशिक स्वराज्य के लिए आंतरिक चुनाव तथा भारत छोड़ो आंदोलन के किसानों के सहयोग से हिंदी प्रवेश में राष्ट्रीय आंदोलन को जन–आंदोलन का स्वरूप दिया। इन सभी राष्ट्रीय संघर्षों के दौरान किसानों ने अपने वर्गीय मुद्दे को स्थानीय स्तर पर मुद्दा बनाया।

असहयोग आंदोलन के दौरान बारदोली और चौरा–चौरी किसान संघर्ष इसके उदाहरण है। औपनिवेशिक कानून को चुनौती देना किसान का एक अहम् मुद्दा रहा है। साम्राज्यवाद ने भारत में स्थाई उपनिवेश की संरचना डाली। कांग्रेस का सामंतवाद और साम्राज्यवाद से समझौता–परस्त संबंध था जो हिंदी क्षेत्र के किसान आंदोलनों में साफ दिखाई पड़ता है।

कांग्रेस की जमींदार समर्थक किसान सभाई नीति अपने क्रूरतम रूप में उपस्थित हुई। बिहार कांग्रेस सभा कांग्रेसी वामपंथी किसानवादियों का जमघट थी। 1947 में कांग्रेस और सामंतवाद के आपसी रिश्ते को खोलते हुए कहा – गांधी टोपी गाढ़ी खादी को पहनकर और जेल के भीतर कांग्रेस के नाम औपनिवेशिक स्वराज्य की हिमायती रही तथा किसान सभा पूर्ण स्वराज्य की। किसान आंदोलन में राष्ट्रीय आंदोलन की तरह हिंसा और अहिंसा का प्रश्न सबसे प्रबल था। कांग्रेस और गांधी ने हिंसा और अहिंसा के प्रश्न को तमाम मुक्ति संघर्शों का केंद्रीय प्रश्न बना दिया। चंपारण सत्याग्रह में नीले गोरों की हिंसा अपने चरम रूप में थी। नीलहे किसानों का मानसिक और शारीरिक दोनों तरह से दमन करते थे। किसान संघर्शों ने किसानों के बीच चेतना निर्माण के दौरान एक ओर सम्राजी ओर सामंती प्रतीकों को चुनौती दी। यही कांग्रेस की सुधारवादी संशोधनवादी प्रतीकों का भी विकल्प गढ़ा।

चंपारण और अवध की तरह बिजोलियों में भी किसानों का आर्थिक शोशण बहुत ज्यादा था। मेवाड़ की खेती जमीन जमींदारों के नियंत्रण में थी। बिहार तथा राजस्थान में भी साम्राज्यवादी एवं सामंतवादी शक्तियों ने आर्थिक लूट के बहुआयामी तरीके अपनाए थे।

औपनिवेशिक जमींदारी एक राजसत्ता के भीतर दूसरी राजसत्ता थी। 1952 में बढ़ते किसान आक्रोश खासकर तेलंगाना विद्रोह के बाद कांग्रेस ने स्थायी बंदोबस्त तथा जमींदारी विनाश अधिनियम लाना पड़ा। आजादी के पश्चात् भूमि सुधारों की प्रक्रिया मूल रूप से दो चरणों में विकसित हुई। पहला चरण आजादी के तुरंत बाद शुरू हुआ और आमतौर पर साठ के दशक के आरंभ तक जारी रहा। बिचौलियों की समाप्ति जैसी जागीरदारी। भूमि पर हदबंदी हो गई। सहकारी और सामुदायिक विकास कार्यक्रम इस दौर को संस्थागत सुधारों का दौर कहा गया। काश्तकारी सुधार जिनमें काश्तकारी को जोत की सुरक्षा प्रदान की। इन दौरों के बीच कोई रेखा–सीमा नहीं थी। वास्तव में ये एक–दूसरे के पूरक थे।

हिंदी क्षेत्र में कृषि संरचना और व्यवस्था के संचालन के लिए जमीन को केंद्र में रखकर श्रेणीबद्ध सामंती ढ़ांचा खड़ा किया जो निम्नलिखित तरह से काम करता था। सबसे ऊपर औपनिवेशिक राज्य था। जो सबसे बड़ा था। बड़े जमींदार अपने जागीर का कुछ हिस्सा ठेके पर उठा देते थे। हिंदी क्षेत्र में खेती के संकट लगातार बढ़ते गए। खेती में ठहराव आ गया। किसान उच्चतम न्यायालय में अपील करते रहे।

जमींदारी उन्मूलन एक अधिकतर राज्यों में 1956 तक पास किया लेकिन उन्हें लागू करने में एक बड़ी दिक्कत भूमि संबंधी अभिलेखों का अभाव था। फिर भी यह कहा जा सका कि 1956 तक ओर अवश्य ही पचास के दशक के अंत ब्रिटिश भारत के जमींदारों के और तब तक भारत में शामिल हो चुके रजवाड़ों के जागीरदारों जैसों के उन्मूलन का काम खत्म हो चुका था।

जमींदारी उन्मूलन का अर्थ था करीब 2 करोड़ काश्तकारों का भूस्वामी बनना। खेतीहर परिवारों की संख्या ओर इनके तहत क्षेत्र संबंधी आंकड़ों पर निश्चित भरोसा नहीं किया जा सकता।

देहातों में राष्ट्रीय आंदोलन और किसान आंदोलन घुलमिल जाते थे। जहाँ किसान आंदोलन स्थानीय स्तर पर सांमतवाद विरोध को केंद्रिय मुद्दा बनाता था। अवध किसान आंदोलन अपने वर्गीय स्वरूप वर्ग चेतना और वर्ग संघर्ष के नजरिए से जुझारू आंदोलन था। इसमें सबसे ज्यादा विभिन्न जातियों के लघु काश्ताकार शामिल थे। इसके पश्चात् जी०पी० पंत की अध्यक्षता में जमींदार उन्मूलन समिति की रिपोर्ट कई प्रवेश के लिए कानून बनी। जमींदार अपनी समिति बचाने के लिए आंदोलन का सहारा लेगें। सम्पत्ति के अधिकारों एवं अपर्याप्त मुआवजे जैसे सवाल उठे। देश के विभिन्न हिस्सों के जमींदारों ने जमींदारी शुरू की।

औपनिवेशिक कानून को चुनौती देना किसान आंदोलन का एक अहम् मुद्दा रहा है। खासकर बिहार आंदोलन ने धज्जियां उड़ाई है। आजादी के बाद 1951 तक तेलंगाना में सामंती

अर्थव्यवस्था के खिलाफ आंदोलन चला। कम कीमत पर गल्ला वसूली इस आंदोलन का मुख्य कारण था। किसानों की अधिकांश मांगे आर्थिक समस्याओं से संबंधित थी इसमें छोटे किसानों ने जमींदारों के खिलाफ गोरिल्ला युद्ध छेड़ दिया। इसके अतिरिक्त देश में नील पैदा करने वाले किसानों का आंदोलन पाबना विद्रोह, तेभाना आंदोलन, चंपारण सत्यागृह आंदोलन और बारदोली इत्यादि जो आंदोलन हुए ये इन आंदोलनों का नेतृत्व महात्मा गांधी, वल्लभभाई पटेल जैसे नेताओं ने किया। स्वतन्त्रता से पूर्व तथा स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय किसानों की दशा में केवल 19–20 का अंतर नजर आता है। समृद्ध किसानों की गिनती मात्र अंगुलियों पर कर सकते हैं। किसानों के ऋण माफ किए जाने की व्यवस्था की आवश्यकता है। ऋण माफी से निश्चित रूप से किसानों को लाभ हुआ है।

## संदर्भ सूची


- कटार सिंह, ग्रामीण विकास सिद्धांत नीतियाँ, पृ० 110
- राष्ट्रीय किसान नीति 2007, पृ० 8
- किसान जीवन साहित्य और विमर्श, पृ० 12
- वही, पृ० 16
- वही, पृ० 22
- प्रेमचंद, किसान जीवन संबंधी कहानियाँ
- भारतेन्दु हरिश्चंद्र, भारत दुर्दशा, पृ० 105
- शेखर जोशी, दस प्रतिनिधि कहानियाँ, पृ० 91
- मैथिलीशरण गुप्त, किसान सम्पादक पालीवाल
- गयाप्रसाद शुक्ल, कृशक कन्दन, पृ० 68



**उषा देवी**
शोधछात्रा,
ओम स्ट्रलिंग ग्लोबल
विश्वविद्यालय
हिसार

16

# Impact and implications of Artificial Intelligence on Human Rights

Dr. Rajesh Hooda Dr. Mukesh Bala

**Abstract**

Human Rights issues and concerns are poising a challenge to deal because of its ever widening scope and nowadays due to the intricacies coming out of the advancement of science and technology. Globalization and ever expanding world are bringing the people across the seas closer. Nations and organizations freely exchange the innovations and techniques for the advantage of the humanity and prosperity of the nations under the roof of United Nation. But technology has its own benefits and problems like Gnome Editing and Artificial Intelligence. Every research and innovations bring with it new challenges and debates. Though not younger ones, but many will take on surprise note on coming to hear about "Designer Baby". The same way artificial Intelligence might not be welcoming by all. Law, innovations, technology and advancement has no meaning if these do not yield well to our society, its people, living beings and our nature. Artificial Intelligence is going to be the new norm and likely to transform each and every sector, community and institution. There is possibility that future wars, surgeries and house support will route to AI. It will back up social transformations and life. So, the paper is aimed to study and analyze the concept of Artificial Intelligence and its implications on human rights.

**Key words:** Technology, Transformation, Human Rights, Artificial Intelligence

**Introduction and Concerns**

Human Rights issues and concerns are poising a challenge to deal because of its ever widening scope and nowadays due to the intricacies coming out of the advancement of science and technology. Globalization and ever expanding world are bringing the people across the seas closer. Nations and organizations freely exchange the innovations and techniques for the advantage of the humanity and prosperity of the nations under the roof of United Nation. But technology has its own benefits and problems like Gnome Editing and Artificial Intelligence. Every research and innovations bring with it new challenges and debates. Though not younger ones, but many will take on surprise note on coming to hear about "Designer Baby". The same way artificial Intelligence might not be welcoming by all. Law, innovations, technology and advancement has no meaning if these do not yield well to our society, its people, living beings and our nature. Artificial Intelligence is going to be the new norm and likely to transform each and every sector, community and institution. There is possibility that future wars, surgeries and house support will route to AI. It will back up social transformations and life.

AI is summed as associate in nursing intelligence that isn't natural intelligence as we human beings have or animals have however it's an intelligence being created by complicated algorithms. To do research, decide and recommendation on the queries provided to that for solutions AI is someday referred to as an machine intelligence incontestable by the machines i.e Smartphone's, laptops, tablets, drones and alternative self operative machines as an example speech recognition, learning, planning, driving, housework, dogmas, warfare and medical operations. AI is essentially a fancy set of algorithms particularly in an exceedingly coded kind.

These algorithms do depend upon the info provided to them or fielded to them. These are free from any form of bias as they are doing have a group pattern of operating and supported the principle of complicated algorithms.In 1956, John McCarthy coined the term "Artificial Intelligence" as the topic of the Dartmouth College Conference, the primary conference dedicated to the topic.

Artificial Intelligence worries with the planning of intelligence in a man-made device. Intelligence is that the ability to accumulate, perceive and apply the data to realize goals within the world. AI is the study of the mental faculties through the employment of machine models. AI is that study of intellectual/mental processes as machine processes. AI program can demonstrate a high level of intelligence to a degree that equals or exceeds the intelligence needed of an individual's in playing some task.

Although there's no specific definition of Artificial Intelligence, it is defined and referred to make machines that

are like humans which will assume and act, ready to learn and use data to resolve issues on their own.

**Advantages of Artificial Intelligence**

AI can be very effective cost cutting mechanism for government rendering various services more economical and accessible by more people if the governments decide to upgrade themselves for the use of AI. It would result as a tremendous support for the government in various areas and sectors like weather forecasting, disaster management and control, health and services, agriculture and production, safety and security control and even to check the scale of crime and criminality in any parts of state

Pandemic like Covid 19 has left all of us with catastrophic reflections and impressions of destructions on humanity. Covid 19 is so far seen as a product of lab research. We have failed even to control the spread of Covid 19, its impacts and devastations. Despite we see use of AI to help predicting and controlling pandemic outbreaks. Already there are important advancements through the employment of AI in pandemic diagnosing and hindrance. Victims of pandemics outbreaks conjointly get relief from AI to modify health officers to intervene early in time of epidemics or pandemics.

AI is also useful in agriculture and help farmers to adapt to the changes. AI is combining information from international satellite images of weather conditions andtheir information to assist farmers to improve their crop yields, to diagnose and treat crops of ailments, and adapt to the ever-changing environmental conditions. This approach to farming is understood as exactness agriculture, and it will facilitate in the increase of farm productivity to feed a lot of the world's growing population.

We observe regular increase in the temperature and AI is employed to rank climate models and predict extreme weather events, moreover on higher side it also predicts extreme weather events and helps to prepare for these natural calamities. AI is additionally useful for distinguishing and apprehending poachers and locating and capturing ailments spreading in animals.

**Understanding Human Rights: Issues and challenges**

Human rights are provided under the Indian constitution. Human Rights can be summed up as those essential rights without which there cannot be the living of an individual in an exceedingly dignified manner and developing of his personnel skills and property and to realize what they dream of in respect of their spheres of life. While discussing human rights we must always state the origin of the human rights .i.e. Universal Declaration on Human Rights; on 10th of December 1948 adopted by the General Assembly.

Human Rights are classified into four categories:

*General (article 1and 2); Civil and political (articles 3 to 21); Economics, social and cultural rights (articles 22 to 27); Concluding (articles 22 to 30)*

The International Bill of the Human Rights :

*Universal declaration of human rights 1948; International covenant on civil and political rights 1966, International covenant on economic science , social and cultural rights 1966, Optional protocol to the international covenant on civil and political rights 1966.*

Human rights that are enshrined below the constitution of India are specifically:

Article 14 right to equality, Article 15 prohibition of discrimination, Article 16 equal opportunities in jobs, Article 19 freedom of speech and expression having sixfreedoms inserted in it, Article 20 protection from arrest and prosecution, Article 21 right to life and liberty, Article 32 remedies for violation and infringement of fundamental rights.

Human rights are universal and binding but respect for human rights is utmost required at the level of states as individual human being is a state subject and international community and organizations has no say but for exceptional situations. Though governments and corporations alike have obligations and treaties and conventions to abide by the norms and protocols to safeguard and fulfill human rights but gross violations are observed in many states. So, the need to address the violations of Human rights rests with the law of states which undertakes to protect and promote human rights.

**Impacts of AI on Human Rights**

*Philosophical conflicts*:

The role of AI in facilitating discrimination is well documented, and is one in all the key problems within the ethics discussion nowadays but for the proper to fairness isn't the sole right concerned by AI. As a result of human rights are mutually dependent and co-related, AI affects nearly each

internationally recognized human right.

Now we will examine the several effects posed by AI on the human rights . The rights mentioned are for the most part those embodied within the 3 documents that kind the bottom of international human rights law, the supposed "International Bill of Human Rights." This includes the Universal Declaration of Human Rights (UDHR), the International Covenant on Civil and Political Rights (ICCPR), and also the International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights (ICESCR). To these, this report adds the proper to information protection as outlined by the EU Charter of basic Rights below article 7 and 8("Everyone has the right to respect for his or her private and family life, home and communications." - Article 7 of the EU Charter of basic Rights

"Everyone has the right to the protection of personal data concerning him or her. Such data must be processed fairly for specified purpose and on the basis of theconsent of the person concerned or some other legitimate basis laid down by law. Everybody has the right of access to data which has been collected concerning him or her, and also the right to have it rectified." - Article 8 of the EU Charter of basic Rights). for every concerned right we have a tendency to discuss however current AI uses violate or risk violating that right, moreover as risks display by prospective future developments in AI. It is necessary to notice that the human rights problems mentioned below don't seem to be essentially distinctive to AI. Several exist already among the digital rights area, however the power of AI to spot, classify, and discriminate magnifies the potential for human rights abuses in each scale and scope.

Comparing the human rights harms in alternative uses of technology that too leverage the information, the harms associated with the employment of AI typically disproportionately impact marginalized populations. that may embody ladies and youngsters, moreover as bound ethnic, racial, or non secular teams, the poor, the otherwise disabled, and members of the LGBTQ community. The long-established social process of those teams is mirrored within the information and reproduced in outputs that entrench historic patterns.

*Institutional harms and challenges posed by AI to human right*

In this section we are going to discuss variety of controversies created by the AI Systems. By depletion an individual's right ideology, we are going to see what the benefits are and harms fall among the compass of human rights. We are going to concentrate on rights founded within the UDHR and also the most vital human rights treaties: The International Covenant on Civil and Political Rights (ICCPR) and also the International Covenant on Economic, Social and Cultural Rights (ICESRC),that are sanctioned by roughly a hundred and seventy countries. Together, these 3 documents make the International Bill of Rights and further illustrate that human rights are "indivisible, mutually dependent, and co-related."

Technology though make out our every day life and advancement will determine future course of human race but some where technological implications have gone to create threats and harms too. Technology has resulted into different kind of challenges before institutions like perpetuating bias in criminal justice within the western countries like USA and others. There are several documented cases of AIgone wrong within the criminal justice system. AI is employed in risk evaluating whether or not a litigant is probably going to commit wrong/ crime again so as to advocate sentencing and set bail or supposed "predictive policing," and help to generate victimization insights from numerous information points.

Another fear and aspersion is about use of machine learning for risk rating of defendants is publicized as removing the illustrious human bias of judges in their sentencing and bail selections. And prognostic policing efforts ask for to best assign often-limited police resources to forestall crime, although there's forever a high risk of mission creep. However, the recommendations of those AI systems typically more exacerbate the terribly bias they're attempting to mitigate, either directly or by incorporating factors that are proxies for bias.

AI brings ease in supervising the population. It provides facilitates and analyzes multiple knowledge streams in real time making itself more compatible to suit our official and domestic needs, and getting it more customized for various socio-legal and political purposes like one is being done in biometric identification computer code. However, its dangerous and adverse repercussions in various forms have also been part and parcel of the system.

Mis-Information has its roots in AI also. Media, very

often rely and compute results based on AI. Media analysis influences advertisement and consumers decision which may be a misnomer and sometimes completely different from actual and real data involving many financial, commercial and social hazards. Though, it may be very early to disown the fair use and impact of AI on media related activities, but it is suggested to determine the exact role and accuracy of results computed using AI by media.

AI is also misused to create sham audio-video of some target people to meet unfair and unwarranted ends especially in political life. Cases has been reported to attempt to disdain the virtue of women, politicians or leaders to defame them. During Covid- 19, it is also observed that voice of renowned scientists and doctors got truncated to influence the people opinion and spread fears. AI is also seen as manipulated by some persons to earn cheap publicity and earn views.

We hear though may not be having clear understanding of a term "Big Data" which simply forecasts risk of one's privacy. There are risks because of ability of AI totrace and analyze our digital lives area unit combined as a result of the sheer quantity of knowledge while using the net. While buying tour package, online booking, applying for loan online, buying insurance policy and, shopping online and anything we doing as matter of necessity and somewhat compulsions in today's word is not so safe as seems. We don't know how safe and protected is our information? We don't know the policy of the company we are dealing with? Whether our information wouldn't be shared or sold further? Answer of many such questions is yet to be search and find out but the answer lie in the domain of technology itself. We can't escape use of AI around us but we can look safer surfing and demand data protection.

Investors and buyers are not guided by the real facts and figures all the times. Companies may have the opportunity to manipulate the scale to enhance their endorsement and subscriptions without violating the principles and rules. Shouldn't it be treated as one of the Human Rights aspects in broader sense because human rights have social, political, financial, cultural and religious manifestations? It implies that any attempt to misguide, discriminate, conspire and mislead is an attack on human rights and should be termed as antithesis to them.

Conclusion and Suggestions:

After discussing a lot about the AI and its shortcomings, AI is proven advantageous in different fields in different manners for mankind and life on earth. It is vastly used successfully to advance in medical, defense, healthcare, research, education and algorithmic calculations. We advancing in technology also using existing AI and it is building pathways for future generations to come. Improvements are going on and required to address issues and challenges forwarded by AI. A few has been discussed above including its implications on Human Rights. it's not the AI which can be said to be GOOD or BAD because it is simply technology; an application and advancement. It's the way we make use of technology which render it good or bad. We are growing and exploring new things with time. So, the suggestions are two ways: The responsibility which our research scientists and engineers owe while creating such applications and the responsibility of law and institutions entrusted to behold norms. Law is taking care of but our legal system is supposed to be more accountable and responsible. It should be ready to embrace the dynamics of recent developments and innovations in its entirety especially on the front of consumersector wherein tracts and practices are used to dilute the rigors of law by defying the provisions for the protection of individual as consumer and investor.

**References:**


1. Pandey, Parul. 2018. "Building a Simple Chatbot from Scratch in Python (Using NLTK)." Medium, September 17. https://medium.com/analytics-vidhya/building-a-simple-chatbot-in- python-using-nltk-7c8c8215ac6e.

2.10.https://ml.berkeley.edu/blog/2018/01/10/adversarial-examples/.

3. G7. 2018. "Charlevoix: Common Vision for the Future of Artificial Intelligence." https://g7.gc.ca/wp-content/uploads/2018/06/FutureArtificialIntelligence.pdf.

**4.** John Paul Mueller and Luca Massaron "Artificial Intelligence for Dummies"

**5.** accessnow.org *Human Rights In The Age Of Artificial Intelligence*

6. Evgeni Aizenberg, Jeroen van den Hoven "Designing for human rights in AI"First Published August 18, https://doi.org/10.1177/2053951720949566

**7.** Rowena Rodrigues "Legal and human rights issues of AI: Gaps, challenges and vulnerabilities" December 2020https://www.sciencedirect.com/science/article/pii/S2666659620300056

8. Corinne Cath "Governing artificial intelligence: ethical, legal and technical opportunities and challenge" https://royalsocietypublishing.org/doi/10.1098/rsta.2018.0080

9. Teresa Rodríguez de las Heras Ballell "Legal challenges of artificial intelligence: modelling the disruptive features of emerging technologies and assessing their possible legal impact" *Uniform Law Review*, Volume 24, Issue 2, June 2019, Pages 302–314, https://doi.org/10.1093/ulr/unz018 , 01 July 2019

10. Pramit Bhattacharya "Core Legal Issues with Artificial Intelligence in India"*https://www.foxmandal.in/core-legal-issues-with-artificial-intelligence-in-india/,* September 2020

**Dr. Rajesh Hooda**
Asso. Professor
Department of Law
BPSMV. KK. (Haryana)
**Dr. Mukesh Bala**
Asst. Professor (Economics)
Hindu Girls College
Sonipat (Haryana)
H. No. 2135 - Sector-23
8307935310

17

# जानकीजीवने प्रकृतिचित्रणम्

डिम्पल

**सारांश** –

महाकवेःबाल्मीकेः आदिकाव्यं रामायणं संस्कृत–साहित्यस्य अद्वितीयं ग्रन्थ–रत्नमस्ति। प्रकृतिक्रोडात् उदभूतं काव्यमिदम् प्रकृतेः काव्यमातृत्वं सिद्धयति । रामकथायाः प्रभावः उत्तरवर्त्तिसाहित्ये स्पश्टरूपेण द्रश्टुं शक्यते। तस्यामेव श्रृंखलायां अभिराज–राजेन्द्रमिश्रकृतं जानकीजीवनं आवहति प्रमुखं स्थानं आधुनिकरामकथाश्रितकाव्येशु। कविकर्म प्रकीर्तितं काव्यम्। प्रकृतिं आश्रित्यैव काव्यं सजीवं मानवमनसः आहलाद्करं च जायते। कविवरपंतः तु स्वकाव्यचेतनायाः उदभवमेव प्रकृतितः स्वीकरोति कथयति च "मै घंटो एकान्त में बैठा प्राकृतिक दृश्यो को एकटक देखा करता था। मेरे कोई अज्ञात आकर्शण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।"(1) कविवरः रविन्द्रनाथस्य अनुभूतिः अपि दर्शनीया अस्मिन् संदर्भे "आश्चर्यचकित होकर मैं अपने आपसे पूछने लगा कि नित्यके परिचित जगत पर से क्षणभगुरत्व का आच्छादन आज दूर होजाने का क्या कारण हैं इस सांयकालीन प्रकाश में कोई जादूतो नहीं है। (2)

आचार्य–विश्वनाथेन साहित्यदर्पणे रम्यवनोपवनाः उद्दीपनरूपेण वर्णिताः ।

सर्वप्रथमं आचार्य–भरतेन प्राकृतिक–दृश्यानां उल्लेखनीयं विधानं कुर्वता उक्तं यत्

"प्रावृट्कालं कदम्ब–मेघादि प्राकृतिकस्पर्शैः प्रदर्शयेत्"

विश्वनाथेन अपि कथितं यत् महाकाव्ये सन्ध्यादीनां प्राकृतिक–तत्वानां वर्णनं भवितव्यम्।

"सन्ध्या–सूयेन्दु–रजनी–प्रदोश–ध्वान्तवासराः।

प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलर्तुवन सागराः ।।" (3)

आदिकालादेव प्रकृतिः मानवस्य सहचरी धात्री च अस्ति। यथा मानवास्तित्वस्य कल्पना प्रकृतिं बिना न भवितुं शक्नोति तथैव काव्स्य अपि कल्पना निरर्थका एव प्रकृतिं विना । यतः रसं विना काव्यं नास्ति प्रकृति विना च रसोत्पत्तिः नास्ति । प्रकृतिमानवयोः तादात्म्यसम्बधो वर्तते । महर्शिदयानन्देन उक्तं "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" । इति न्यायेन वेदेशु एव सर्वप्रथमं प्रकृतेः अराधना उपलभ्यते ।

तत्र पृथ्वी–सूर्याग्नि–जल–वायु–सोम–चन्द्रादीनां प्राकृतिक–तत्त्वानां स्तुतिः कृताऽस्ति। 'प्र' उपसर्गपूर्वकात् 'कृ' धातोः 'क्तिन्' इति प्रत्यये कृते सति निश्पद्यते प्रकृतिशब्दः। संसारस्य धात्री सम्पादिका चास्ति स्वव्युत्पत्तिलभ्यार्थेन यतः "प्रकर्शेण करोति" इति प्रकृतिः। सांख्य–दर्शने त्रयाणां गुणानां साम्यावस्था प्रकृतिः उक्ता । (4)लोके साधारण शब्दे शुकान्तार– वृक्ष – लता– गुल्म – सूर्य – चन्द्र–पर्वत–वायु–जलादयः प्रकृतौ एव अन्तर्भवन्ति। न केवलं स्तुतिः अपितु संसारकल्याणाय अपि प्रकृतेः एव अराधनां करोति ऋशिः वेदेशु। यथा "मधु वाता ऋतायते माध्वीर्नः सन्तु औशधिः।" (5) प्रकृतेः सह तादात्म्य–सम्बन्धस्य , प्रकृतेः उपासनायाः, प्रकृतेः च परमसत्तात्वेन स्वीकरणस्य च परम्परायाः निर्वहनं परवर्तिभिः वाल्मीकि–कालिदासादिभिः कविभिः अपि कृतं स्वकाव्येशु। अद्यत्वे मानवः भौतिकतायाः आधुनिकतायाः च अन्धानुकरणे प्रकृतिं पर्यावरणं च उपेक्षते । यस्य दुश्परिणामाः अपि अस्माभिरेव कालान्तरे अनुभूयन्ते यतः अद्यत्वे सर्वविध–नीचनीचैः उपायै फलं एव साध्यम्। अतः अस्माकं प्रकृति समाराधनस्य तस्याः एव परम्परायाः संरक्षणस्य अद्य नितरां आवश्यकता अस्ति। कविः च तत्कर्म लेखनीमाध्यमेनैव कर्तुं शक्नोति। अतः जानकी–जीवने प्रकृतिवर्णनेन कथं प्रकृतिसंरक्षणस्य उपदेशः दतः महाकविना इति मम शोधपत्र–विशयः अस्ति यतः कविकर्म समाजसापेक्षं भवति। प्रकृतिः रसनिश्यन्दिनी भवति। सा दुखीमनः आहलाद्यति। मानवहृदयं सुखेन आप्लावितं करोति। पृथिव्यां भगवता कृता चित्रकारी अस्ति। साधारणमनः अपि विकचीकरोति प्रकृतिः। कविमनसः तु किं कथा। कुमारसंभवे एकस्मिन श्लोके हिमालय–वर्णनं पठित्वा कविवररविन्द्रनाथस्य हृद्योद्गाराः दर्शनीयाः सन्ति– "भागीरथी – निर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारूः।" (6) इदं पठित्वा कविवरः स्वमनोभावान् प्रकटयन् कथयति यत् "कुमार संभव के इस श्लोक को पढकर एक दिन मन जैसे पागल हो उठा था और कुछ नही समझा केवल भागीरथी निर्झर–सीकर और 'कम्पित' देवदारू' इन्ही दो को लेकर मेरा मन खो सा गया था । समस्त श्लोक का रस लेने के लिए मन व्याकुल हो उठा। हिरन की खोज मे लगे हुए किरात के सिर पर मोर पंख है हवा उसी को चीर रही है यह सूक्षमता मेरे मन को पीडा देने लगी।" (7) वाल्मीकि–रामायणात् निःसृता अनन्ता रामकथा रामायणकालात् जानकीजीवनं यावत् निरन्तरं प्रवाहमाणा प्रकृतिवत् नित्यं नवार्थाकुरोद्भाविनी च भूत्वा संसारविविधः दुःखविकलसंतप्तमानवाय शीतलधारा इव सर्वसंतापहारिणी अस्ति तत्र प्रकृतिवर्णनं तु अतीव मनोहरं मनोरमं च। पंर काव्येशु मानवमनसः सामाजिक–परिवर्तनानां परिस्थितीनां च अनुकुलं प्रकृतेः कठोरकोमलयोः द्वयोः एव रूपयोः वर्णनं भवति।

जानकीजीवने प्रथमसर्गे एव प्रथमश्लोके प्रकृति–प्रकोपस्य वर्णनात् महाकाव्यारम्भः कृतः महाकविना। यत्र वर्णितं यत् विदेहजनपदेशु

मेद्यः न ववर्श । (8)
वर्शाभावात् सरांसि अपि शुश्काणि जातानि। वृक्ष–पल्लवाः अपि प्राणशून्याः जाताः । खगशावकाः च मृतप्राया एव मेद्यमालाभावेन झण्झावातैः च जनपद–वासिनः चिन्ताशीलाः जाताः । (9)
अत्र प्रकृतेः अनिवार्यत्वं सूतरां प्रतिपादितम्। जलमेव जीवनं इति तथ्यं। उद्घाटितमत्र। सर्वविध–समृद्धेः अनन्तरमपि प्रकृतेः विना मृतप्राया सृश्टिरियम्। आदिकालादेव प्रकृतिः कवेः कृते प्रेरणादात्री सौन्दर्यमयी च जाता । आचार्यरामचन्द्रशुक्लमहोदयेन कथितं "भीशणता और सरसता ,कोमलता और कठोरता ,कटुता और मधुरता, प्रचंडता और मृदुता का सामंजस्य ही लोकधर्म का सौन्दर्य (10)
प्रकृतिः केवलं नेत्रानन्दस्य विशयः नास्ति अपितु आत्मानुभूतेः सम्बन्धिता काऽपि अपूर्वा अभिव्यक्तिः अस्ति । अस्मादेव कारणात् सृश्टौ जायमानानां परिवर्तनानां अनुकूलमेव कविभिः चित्रिता प्रकृतिः स्वकाव्येशु। यथा सीताजन्म एकः परिवर्तनकारी अद्वितीयः च प्रसगः आसीत्। अतः तत्पूर्वं च कविना मेधाभाववर्णनात् सूचना दत्ता यत् किमपि परिवर्तनं अधुना जायमानमस्ति यद्द्वारा कालान्तरे किमपि अपूर्वं घटिश्यति। सीताजन्म भूमिक्रोडात भवति। रामलक्ष्मणौ अपि महर्शिविश्वामित्राग्रहेण प्रकृति–क्रोडे गत्वा स्वक्षत्रियोचितकर्तव्यानि पूर्णवन्तौ। स्ववनवासावधौ अपि श्रीरामः प्रकृतिशरणं गच्छति। किमधिकं काव्यमिदं तु प्रकृति प्रागंणादेव उदभूतमस्ति। कविना प्रकृति
आलम्बन–उद्दीपन–मानवीकरण–कठोर–मृदु–
आलंकारिकोपदेशात्मकादिरूपेशु चित्रिता
प्रसंगानुसारं।तपोवनाश्रम–पर्वत–नदी–ऋतु–समुद्र–सूर्य–चन्द्र–प्र दोश–दिन–रात–संध्या–प्रभात– दिनां वर्णनमपि काव्यसौन्दर्यं वर्धयति। प्रकृतेः उद्दीपनरूपस्य चित्रणे प्रकृतिः मानवभावानुसारं तस्य सहचरी भवति। तस्य भावान् उद्दीपयति
सुख–दुखानुसारम् । वनवास काले यदा वनवासिनी काश्चित स्त्री सीतां प्रति खेदं प्रकटयति तदा सीता तं कथयति यत् राघव–संसर्गे तु एतत् विजनं काननमपि प्रासादसुखातिशयि वर्तते । (11) राघवं बिना अयोध्या अपि मत्कृते गहनकाननादपि दुःखदायिनी अभविश्यत् । (12) परमत्र श्रीरामसंसर्गात् हंसशुक–कोकिलचातकादीनां मधुरगीतैः ,मयूराणां कपोतानां च नृत्यैः,
पर्वतशिखरपतत्जलधारोद्भूत्वाद्यैः च अत्र वनेऽपि नृत्यगीतवाद्यानां त्रयाणां सुखं सुलभमस्ति। (13)
स्वप्रियेण सह तु ममाश्रमे देवलोकसदृशः उपभोगः विराजते यतः अत्र पयस्विनीजलाभिसक्तः समीरः वहति। फलयुताः वृक्षाः अपि सुशोभिताः अत्र। अयं कामदशिखरः च सर्वविध–भोगमयो प्रतीयते। (14)
दण्डकवनस्य रमणीयं वर्णनं अस्ति यत् रम्यप्रपात निर्क्षरिणी लता–गुल्म–वृक्ष–पर्वत–कन्दरादिभिः सुशोभितं अपि दण्डकवनं असुराणां अत्याचारेण नैव सुरक्षित–स्थानमस्ति तपोधनेभ्यः। अतः तेशां दुश्टानां विनाशाय श्रीराम तत्रैव हंसावलिसुशोभितायाः ,विमलसलिल–प्रवाहायाः, शिलाघातैः वीणामिव वादयन्त्याः गोदावरीनद्याः पार्श्वे स्वपर्णगृहनिर्माणार्थं लक्ष्मणं आदिशति। अहो। कस्य मनः न आकर्शयति गोदावरीनद्याः चित्रमिदम्। पठित्वा एव तत्र गमनस्य यथावद्–दर्शनस्य च इच्छा जागृता भवति। वैदिककालाद् अद्य यावत् विभिन्नरूपेशु चित्रिता प्रकृति संवेदनशीलैः साहित्यकारैः। सुकवेः संवेदना प्रकृते मनोरमरूपैः जागृता भवति। प्राकृतिकोपमानाश्रयेणैव स्वभावान् प्रकटयति कविः। अत एव मानव सौन्दर्य–वर्णनार्थं प्रकृतिरेव उपादानरूपे वर्णिता अस्ति कविभिः । मिश्रमहोदयेनापि रामसीतयोः रूप–लावण्यवर्णनार्थं प्रकृतिरेव आश्रिता यतः सौन्दर्यवर्णनार्थं प्रकृतितः श्रेश्ठतरं नास्ति किमपि उपमानम् ।बालरूपसीतायाः वर्णनं कविना प्राकृतिकोपमानैरेव कृतमस्ति ।तस्याः हस्तचरणयोः तुलना रक्तकमलेन कृता। नेत्रद्वयं तस्याः कुवलययुगलम्। मणिबन्धं च मृणालयुग्मकं तस्याः। अहो सर्वमेव सीताशरीरसरसि युगपदुत्पन्नमस्ति। (15)
वैदेही चन्द्रकलेव वयः क्रमं व्यतीतवती। नवयौवनायाः कपोलमण्डलयुगलमपि पूर्णाविकासितपाटलपुश्पसदृशं विभाति। (16)
सीता नवयौवनागमनं तथैव धारयति यथा पुश्पभारगर्विता फलोत्कण्ठा च लता नवपुश्पागमं धारयति। लतारूपा सा सीता वचोमाधुरीमपि नवलता मकरन्दः इव धारयति । (17)
सीता अरण्यदेवता इव मुखे कमलं , करयोः पल्लवं , कपोलयोः जपापुश्पं, अधरोश्ठे च बिम्बफलं धारयति इति कीदृशी मनोहारी कल्पना प्राकृतिकोपमानैः कृता। (18)
किशोरवयसान्ते यौवनारम्भे च कीदृशं परिवर्तनं भवति इत्यपि प्राकृतिको–पमानैः दर्शितमस्ति। यौवनारम्भे सा वैदेही यौवनोचित–लज्जाभावेन शनैः–शनैः पुश्पावलिभारनमिता स्वयंप्रभा चम्पालता इव गाम्भीर्यं धृतवती । (19)
तस्याः चांचल्य–रूप–शुकाः विनश्टाः जाता। शैशवाभ्यस्ताः आमोद–विनोद–परम्परा–रूपलता–अपि शुश्काः जाताः। एवं वनस्थलीरूप–वैदेही नवयौवनेन धृता । (20)
इत्थं अत्र आलंकारिकरूपे विभाविता प्रकृति।
सामाजिक–परिवर्तनानुसारं मानवचेतसः मनोदशानुरूपमपि स्वरूपं परिवर्तयति प्रकृति। नारी–प्रकृतयोः सौन्दर्यस्य परस्पर–सम्बन्धस्य तथ्यमिदं दृश्टवा एव संस्कृत–साहित्य–संबधे 'डा0 देवराजस्य' कथनमिदं उल्लेखनीयं अस्ति यत्
"संस्कृत–साहित्य प्रकृति के मनोरम चित्रों से परिपूर्ण है। मनुश्य की सभ्यता व संस्कृति के साथ उसकी कल्पना तथा रचनात्मक

उद्भावना–शक्ति भी सुसंस्कृत होती गई है संस्कृत–कवियों ने प्रायः प्रकृति की मनोहर छवियों में नारीत्व का आरोप किया हैं।" (21) अस्यामेव परम्परायां मिश्रमहोदयेन सीतारूपलावण्यं वर्णितुं प्रकृतेः मनोहरछविशु नारीत्वस्य आरोपं कृत्वा प्राकृतिक–नारीवादस्य भावना सुदृढा कृता यत् प्रकृत्या सह नार्याः अनुपम–सौन्दर्यस्य अपि मनोऽभिरामं चित्रं समुपस्थास्य मानवमनसंतापहारकं अपूर्वं मुदं जनयति। यदा भूमेः सीता उत्पन्ना जाता तदा आकाशप्रांगणोद्भूता वाणीरेका श्रुता जनकेन तदनन्तरमेव जलधराणां पंक्तयः आकाशे विरूढाः। सीताजन्मना सहैव पृथ्वीः जलधाराप्रवाहैः आप्लाविता। निमेशपूर्वं तु पृथ्वी मेघाभावात संतप्ता आसीत्। जीवनं च मृतप्रायमासीत् परं सीताजन्मघटनानन्तरं प्रस्फुटितं जीवनं जातं। (22

सामाजिक–परिवर्तनस्य द्योतिका अत्र प्रकृति यत् किमपि नूतनं इदानीं घटिश्यमाणमस्ति यत् संसारपरिर्वतनस्य संवाहकं भविश्यति। मानवमनसः मनोदशानुरूपं वयसानुगुणमपि परिवर्तितं भवति प्रकृतिः। यदा कालिदासस्य काव्ये शकुन्तलापतिगृह–गमनावसरे परित्यक्तनर्तनाः मयूराः जाताः। हरिणशिशवः अपि तृणानि त्य क्तवन्तः। लता च अश्रूणि मुंचन्तीव दर्शिताः तथैव मिश्रकाव्येऽपि यद्यपि कालिदासवत् तु नैव तादात्म्यः स्थापितः प्रकृत्या सह तथापि अनेकेशु स्थलेशु तु दर्शनीयानि सन्ति प्रकृतिचित्राणि यथा शश्टम–सर्गे विलासवने सखिभिः प्रेरिता सीता रामं द्रश्टुं ततः प्रस्थानं करोति तदा विविध–विहग –कलरव–मिश्रितैः समीराद्याताझम्पिताशोकपुश्पैः सीतायाः जय–जयकारः प्रस्तुत । भयभीत–भ्रमराः वियति आश्रिताः। देवैः इत्थं कल्पितं यथा कामदेवस्य धनुचाप भग्नः। कोकिलाभिः कुजितुं प्रारब्धम् भ्रमरैः पुश्पमधुपानं प्रारब्धम्। मयूरैः च नृत्यारम्भः कृतः। (23)

अनेन प्रकारेण अरण्यचारिणः जीवाः सीतां विजयिनीं कृतवन्तः अत्र प्रकृतेः मानवीकरणमपि कृतमस्ति। मृगाक्षी सा सीता ईर्श्यावशात् मृगवधूभिः कटाक्षसहितं–दृश्टा। प्रकृतिमानवयोः अभिन्नसम्बन्धत्वात् प्रकृतौ मानवभावानां आरोपणस्य परम्परा प्राचीनकालादेव प्रचलति। प्रकृतिं सचेतनां मत्वा तस्यां मानववत् सुख–दुःख–वियोग–संयोगेर्श्या–ममत्व–प्रेमादिभावानां आरोपणं क्रियते यथा मृगवधूभिः सीता सकटाक्षं दृश्टा। (24)

अपि च वन देवता सीतायै संदेशं ददती दर्शिता यत् व स्वप्रियतमं अनेनैव प्रकारेण रमयेति। (25)

सीता–रामयोः संगमेन मुदा प्रकृति राज्ञः दशरथस्य मिथिलागमने अतिथि–सत्कारं प्रफफुलित–पद्मैः , गन्धैः, भ्रमराणां मृदु–झंकारैः च करोति। गन्धयुतः समीरः , प्रस्फुटित–पद्माः , भ्रमराणां मधुरध्वनिः च अत्र अतीव मनोभिरामं चित्रं प्रस्तुवन्ति। प्रकृतिः आदिकालादेव मानवस्य सहचरी अस्ति। यथा वनकन्या शकुन्तला वन्यप्राणिभिः सह प्रकृतिक्रोडे लालिता–पालिता आसीत्। सीताऽपि प्रकृतिक्रोडात् उद्भूय वनवासावधौ राघवेन सह चित्रकूटपर्वतं गत्वा प्रकृति–सहचरी भूत्वा परमानन्दं अनुभवति। तत्र सा लतागृह–पुश्प–कुण्जरमणीये विभिन्न–विहग–मधुर–ध्वनि कुजिते चित्रकुटे प्रतिदिनं आहलादं अनुभवति। सा प्रतिदिनं प्रकृत्या सह आत्मीय–सम्बन्धं अनुभवन्ती पयस्विनि–नदीं गच्छति।

कस्यापि व्यक्तिविशेशस्य आगमनेन गमनेन वा प्रकृति कथं स्वरूपं परिवर्तयति कथं मानवस्य अन्तकरणं अनुरजंयति इति सुतरां वर्णितं। सीतायाः आगमनेन पयस्विनि नदी एव गंगा जाता। दर्भादयः च प्रासादवत् जाताः। कामद–पर्वतः च सुमेरूसदृशः–जातः। इत्थं आवेदेभ्यः वर्तमानकालं यावत् प्रकृति विस्मयस्य रहस्यस्य च विशयः जाता। परमसत्तारूपेण च स्वीकृता प्रकृतिः। या प्रतिक्षणं संसारपरिवर्तनानुसारं मानवान्तः करणस्य स्थितेः अनुरूपं, सांसारिक–जनानां परिवर्तित–प्रवृत्त्यानुगुणं ,सृश्टौ जीवानां कर्मानुरूपं च संसारसमक्षं स्वनवीनरूपं दर्शयति। तदनुरूपमेव स्वकठोर–कोमल–प्रचण्ड–मृदु–सरसादिरूपाणां दर्शनं कारयति मनुश्यान्। एवमेव सुखदुःखयोः सहभागिनी अपि। यथा दुश्टानां विरोधं कुर्वती दर्शिता। जटायुमाध्यमेन तथैव सज्जनानां सहकारमपि करोति। रामः सीतापहरणानन्तरं लताः, विहगान् ,पशून् , पर्वतान् , गोदावरी–नदीं, पण्चवटीं , दण्डकवनं ,वनदेवान् वनदेवतान् च सीता–विशये पृच्छति। समस्तमेव दण्डकवनं रोदिति। श्रीराम–विलापैः सम्पूर्णा एव प्रकृति वैदेहीमया दृश्यते रामाय। (26)

अत्र प्रकृतिः सान्त्वना ददाना इव दर्शिता कविवरेण यत् वैदेही अत्रैव अस्ति। मेघोपरूधार्धचन्द्रबिम्बे सीतामुखं , नृत्ययुक्तमयूर– कलापे सीतायाः केशसमूहं, भ्रमराणां अस्फुटस्वरे सीतावाचं, प्रफ्फुलोत्पले च सीतायाः रम्यहासं पश्यन् श्रीरामः सम्पूर्णामेव प्रकृतिं सीतामयं पश्यति। एतादृशी रम्य–कल्पना संस्कृत–साहित्ये एव भवितुमर्हति। अत्र सीता–विरहे प्रकृतिरेव रामस्य सहचरी भूत्वा तस्य भावान् उद्दीप्तान् करोति या सीतान्वेशणे रामस्य सहकारमपि करोति।

उपदिश्यमानाऽपि दर्शिता प्रकृति मिश्रमहोदयेन। यथा वैदिककविभिः प्रकृतिः परमसत्तारूपेण स्वीकृत्य पूजिता आसीत संदेशः च दत्तः यत् प्रकृत्यानुकूल्ये एव प्राणिनां हितं अस्तित्वं च निहितम् तथैव मिश्रकाव्येऽपि स्वीकृतं यत् मानवस्य गुणानुगुणमेव प्रकृतिरपि व्यवहरति। यदि राजा रामसदृशः गुणवान् सदाचारी चास्ति तदा प्रकृतिरपि तदनुरूपमेव फलं ददाति। यथा स्ववत्सं दृश्टवा गौः स्वयं दुग्धं उद्गिरति तथैव रामस्य गुणैः प्रसन्ना पृथ्वी रामं पुत्रसदृशं मत्वा स्वयमेव शस्यश्यामला फल–फूलाच्छादिता च जाता। नदी–सरोवर–वनाकाशामेघवाताः सर्वमेव अनुकूलं भूत्वा रघुनाथयशः प्रथितवन्तः। (27)

प्राकृतिक–वस्तूनामपि पृथक्त्वेन मनोहारि–वर्णनं उपलभ्यते मिश्रकाव्ये। सूर्योदर्ये विद्वत्गोश्ठयां मूर्खदुर्गुणा इव तारकाः विलीनाः जाताः। दिगन्तरं च उज्ज्वलं जातम्। सूर्योदयस्य मनोहारि–वर्णनं

अस्ति। चन्द्रमसः चन्द्रिकायाः वर्णनमपि मनोहरं जातमस्ति। घनविघ्नितप्रभा , कुमुद–पुश्पैः च अभिनन्दिता चन्द्रसहचरी चन्द्रिका इव सीता अपि राजप्रासादं त्यक्त्वा वनं गच्छति। (28)

नदीनां अपि सहकारः दर्शितः वनवासावधौ । तमसा–गंगा–यमुना–पयस्विनी–नदीनां वर्णनं सजीवं जातं पगे–पगे। नदीनां रम्य–संगीतः, पवित्रजलं, जलसंगमंउ, तत्रस्थानां विहगानां मधुर–ध्वनिः, जलप्रवाहस्य हृदयावर्जकगतिः च कस्य सहृदयस्य चित्तं न आकर्शयति। रात्रौ पवित्र– सलिलायाः तमसानद्याः पुण्यतटे रात्रिशनं कीदृशं अन्तः करणाह्लादकरं अस्ति इति प्रकृतिरसानुभवी एव जानाति। गंगा यमुनयोः पूत–संगमे स्नानं अविरतपवित्रकरमस्ति। (29) ततः कामद–शिखरे पलाशगृहं निर्माय तत्रैव निवसन्ति सीता–राम–लक्षमणाः। सन्धया–प्रभातयोः वर्णनं अपि अनुपमं जातम्। तत्र प्रभातवेला रात्रितमः दूरीकृत्य प्रकाशं प्रकिरति। प्रकृतिः नवोत्साहस्य, नवजीवनस्य ,नवारम्भस्य ,जीवनागमनस्य निराशासमाप्ते च प्रतीकभूता अस्ति या नवाशायाः सचारं कृत्वा सृश्टिं नवपथि प्रेस्यति। प्रभातवेलायां हसं–शुक–सारिका–चातक–पिक–केकिनः सूयोदयात् पूर्वमेव उत्थाय स्वमधुरकण्ठैः इक्ष्वाकुवंशशंसनं कृतवन्तः। पक्षिणः मिलित्वा गायन्ति यत् रक्तकमलानि विकासितानि। मन्दं मन्दं वहति समीरः। नीहारकणिकाश्च नलिनिपत्रेभ्यः नीचैः पतिताः। संक्रमितप्रभः चन्द्रः च पश्चिम–दिशि दृश्यते। (30)

ऋतूणां–वर्णनमपि मनोहरं जातम्। ऋतुराज–वसन्तः यदा आगच्छति तदा आम्रवृक्षाः मंजरीभिः रमणीयाः भवन्ति। पीतवर्णः सर्शपः सुशोभितः भवति। एतादृशे महिमामण्डिते मधुमासे फाल्गुने यदा होलोत्सवः आयाति तदा राजप्रासादे नेत्रतृप्तिकरं दृश्यं भवति। (31)

यथा वर्शाकाले मेघानां अविरतानुधावनैः निर्सग–पीतवर्णा विमला च चन्द्रिका विखिद्यते तथैव सीताऽपि विखिद्यते नवयौवने। इति कीदृशी मनोहारि–कल्पना उपमा च दत्ता प्राकृतिकोपमानैः। यदा रामः रावणवधानन्तरं अयोध्यां प्रत्यागच्छति तदा मार्गस्थ–पर्वत–नदी–निर्झर–वन–सागरा–दीनां चित्तानुरंजकं चित्रं वर्णयति। येन इदं प्रतीयते यत् वयमपि रामेण सह यात्रां कुर्मः। सर्वप्राकृतिकवस्तुनां च प्रत्यक्षं कुर्मः।

समुद्रस्य चलवीचीनां नियन्त्रणाय निर्मितं साकेत–पुलिनं रामः न केवलं सीतां दर्शयति अपितु पाठकानपि दर्शयति। जलधिधनुशि अमोघबाणसदृशः विराजते सेतुः। (32)

उपरि नीलाकाशः नीचैः नीलजलधिः च द्वयं मिलित्वा अद्भुतं चित्रं जनयतः। मीन–मकर–सर्पादिजीवयुक्तः समुद्रः श्वेतडिण्डिरसमुहैः हसदिव प्रतीयते। श्लोकमिदं पठित्वा एव एतादृशहसन्समुद्रस्य दर्शनस्य उत्कण्ठा तीव्रा भवति पाठकहृदये। अतीव रमणीय–कल्पना वर्तते कविवरस्य। (33)

अग्रे शैलेन्द्र–महेन्द्रस्य वर्णनं करोति श्रीरामः। गगनस्पर्शी प्रस्रवणागिरीः शान्तवनैः मुखरप्रपातैः विहगकलरवैः मनोहरः रमणीयः च वर्तते । (34)

अद्य संसारस्य सकलचिन्ताविकलः चतुर्दिग्प्रसृत–कोलाहल–खिन्नः च मानवः एतादृशमेव हृदय–सन्तापहरं शान्तिकरं च वातावरणं समीहते। पम्पाशोभा तु अतीव रमणीयत्वेन पृथग्त्वेन च वर्णिता कविना। अत्र तु प्रतिमधुकरं नायकस्य धीरोद्धतत्वं विद्यमानमस्ति। प्रतिकमलिनीं च मानिनि–नायिकावत् मानचर्चा विद्यते। (35)

वनमेघविद्युल्लतासदृशायाः गोदावरी नद्याः पवित्रता , कुटज–बकुलादिवृक्षाणां च सघनता अद्यत्वे तु दुर्लभा एव। विशयोऽयं समालोच्यः अस्ति वर्तमान सन्दर्भे। तापसानां पर्णगृहैः युक्तः दण्डकवनः परां आध्यात्मिक–शान्तिं जनयति। पयस्विनीनद्याः तटे विद्यमानः महर्शेः अत्रेः आश्रमः तु हृदयाह्लादकरः वर्तते यत्र आध्यात्मिक–शान्त्या सह सत्फलानां अमृतं अस्ति, हरितनिकुंजानां सघनता अस्ति, अमृतजल प्रपातानां संगीतः अस्ति। पर्वत–शिखराणां च भव्यता अस्ति। (36)

अहो। प्रकृतेः कीदृशं रमणीयं चित्रं प्रस्तुतमत्र। राजहंसीसदृशा गंगा मयूरीव यमुना च यदा प्रयागराजे मिलित्वा चिरवियोगजखेदं दूरीकुरूतः तदा पाठकस्य मनः श्रद्धया नमति। (37)

अनेन कथयितुं शक्यते यत् महाकाविना जानकीजीवने प्रकृतेः कठोर–कोमल–सूक्ष्म–सुकुमार–मधुर–कर्कशादिसर्वरूपाणां वर्णनं कृतमस्ति। प्रकृतेः सर्वविध–चित्राणि मनोहराणि जातानि अत्र। लंका–किश्किन्धा–मिथिलायोध्यादिनगराणां वर्णनं अपि अतीव नयनाभिरामं कृतमस्ति। सीतास्वयंवरसमये मिथिलायाः मनोरमं वर्णनं कृतम। अपि च रामसीतयोः विवाहानन्तरं अयोध्यायाः शोभायाः अपि सजीवं सूक्ष्मं च चित्रणं कृतमस्ति। अत्र नगराणां भव्यतायाः, ऐश्वर्यस्य , सांस्कृतिकगतिविधीनां च वर्णनं प्राकृतिकरूपेण कृतमस्ति। संक्षेपेण कथयितुं शक्यते यत् कविः स्वप्रतिपाद्यं वर्णयितुं प्रकृतिमेव आधाररूपे चिनोति यतः प्रकृति–मानवयोः सम्बन्धः शाश्वतः नैसर्गिकश्च वर्तते। काव्ये भावानां सूक्ष्मतायाः, सहृदयतायाः, संवेदनशीलतायाः, नायक–नायिकयोः सौन्दर्यस्य, रागात्मकतायाः च वर्णनार्थं प्रकृतेः निरिक्षणं क्रियते। महाकविना अपि एतदर्थं प्रकृतेः संश्लिश्ट–चित्रेशु नवीनतायाः अपि समावेशः कृतः अस्ति। चाक्षुश–प्रत्यक्ष–विम्बानां सर्जना अपि कृता।

प्रकृतिकाव्ययोः सम्बन्धः अतीव प्राचीनः अस्तिं । आवेदेभ्यः अर्वाचीन–काव्यं यावत् साहित्यं प्रकृतिरसेन आप्लावितं अस्ति मानवजीवनमेव साहित्यत्वेन परिवर्तितम् भवति। मानवचेश्टानां , मनोभावानां , अन्तः करणस्य अवस्थानां च अभिव्यक्तिः प्रकृतिमाध्यमेनैव भवति। प्रकृतिः अस्माकं संस्काराणा , विचाराणां ,

जीवनस्य च अभिन्नांगभूताऽस्ति। आदिकवेः कालिदासस्य काव्यपठनेन स्पश्टमिदम्। मिश्रमहोदयः अपि तस्याः एव पुण्य परम्परायाः कविः अस्ति। अतः तस्याः परम्परायाः अभिन्नः सन् प्रकृति–मानवयोः सम्बधः स्थापितः मिश्रमहोदयेनापि। अर्वाचीन–काव्येशु मिश्रकाव्यं प्रकृतेः नवचित्रैः समन्वितं, चित्ताकर्शकं, हृदयाह्लाद्करं ,नवसाहित्यकारेभ्यः अनुकरणीयं च वर्तते। यद्यपि आदिकवेः वाल्मिकेः प्रकृति–वर्णनं तु अपूर्वमेव। तस्य तुलना तु केनापि न कर्तुं शक्यते। तस्य काव्यं तु प्रकृति–प्रेरणया एव उद्भूतं, प्रकृतिप्रांगणे एव प्रफफुलितं, प्रकृति–गर्भे एव च परिणतिं प्राप्नोति। साहित्यसर्जनायां प्रकृतिमहत्वस्य सशक्तनिदर्शनं रामायणम्। रामायणस्यैव अनुकृतिः अस्ति मिश्र–काव्यं तत्र प्रकृतिवर्णनं तु स्वाभाविकमेव परं नास्ति रामायणवत् प्रभावकरम्। तथापि अर्वाचीनसंस्कृत–साहित्ये तु अपूर्वमेव। संस्कृत साहित्यसंबधे डा देवराजमहोदयस्य कथनमस्ति यत्

"संस्कृत–साहित्य प्रकृति के मनोरम चित्रो से परिपूर्ण है। मनुश्य की सभ्यता और संस्कृति के विकास के साथ –साथ उसकी कल्पना तथा रचनात्मक उद्भावना शक्ति भी सुसंस्कृत होती गई।" (38)

अतः शाश्वत–सौन्दर्यस्य पर्यायभूता प्रकृतिः, रचनात्मककलानां प्रेरणास्वरूपा प्रकृतिः, अनुपम–सौन्दर्यस्य च आदिजननी प्रकृतिः मिश्रकाव्ये अपि स्वमनोहरदृश्यैः प्रभावोत्पादिका, उत्प्रेरिका, प्रेरणास्वरूपा च अस्ति। संस्कृतसाहित्यसंबधे डा0 नारायणतिवारीकथनं मिश्रकाव्यविशये अपि प्रासंगिकमस्ति "घने जगलों की हरियालीए नदियों का कल–कल निनाद, विविध वृक्षों पर पशु–पक्षियों की बोलियां, जिनकी स्वर–लहरी ने वैदिक चिन्तक, कवि, ऋशि को प्रभावित किया वह आज भी शाश्वत रूप मे हमारे सामने विद्यमान है।" (39)

कविवर रविन्द्रनाथ –महोदयेन कथितं यत् "सुगंध फूल मे विश्व के आनंद की धारण की हुई आकृति है।" (40)

कविवरेण मिश्र महोदयेन विश्वस्य अदृश्यानंदः स्वकृतौ प्रकृतिचित्रणरूपेण समाहितः येन सांसारिकखेदजन्यं नैराश्यं दूरी भवति। सत्यमेव उक्तं कविवरेण रवीन्द्रनाथेन

"उन वृक्षों के पत्तों से बने हुये शिखर पर से सूर्यनारायण की सवारी ऊपर आ रही थी। इस दृश्य को देखते–देखते मेरे नेत्रो पर से जैसे पटल दूर हो गया हो। मुझे दिखने लगा कि संपूर्ण जगत चमत्कार जन्यप्रकाश से प्रकासित हो गया और उसमे चारों ओर से सौन्दर्य तथा आनंद की लहरों पर लहरें उठ रही हैं।" (41)

**संदर्भ संकेताः**

1 सुमित्रानन्दनपंत पृ0–1

2 जीवनस्मृति पृ0–263–264

3 आचार्यविश्वनाथ साहित्य दर्पण 6/321 , पृ0–551

4 ईश्वरकृश्ण , सांख्यकारिका 16

5 ऋग्वेद 1.90.61

6 कालिदास , कुमारसंभव 1.15 , पृ0–4

7 अनु0 अमृतराय ,रवीन्द्रनाथ के निबंध ;जीवन–स्मृतिद्ध, पृ0 93–94

8 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 1.1

9 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 1.3–4

10 आचार्यरामचन्द्रशुक्ल, चिंतामणि भाग–1, पृ0 216

11 अभिराजराजेन्द्रमि, जानकीजीवनं 11.30

12 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 11.31

13 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 11.33

14 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 11.34

15 अभिराजराजेन्द्रमि, जानकीजीवनं 2.9

16 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 3.2

17 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 3.4

18 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 3.13

19 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 3.16

20 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 3.19

21 डा0 देवराज–भारतीय–संस्कृति पृ0 118

22 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 1.49–50–52

23 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 6.40–41–42

24 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 6.43

25 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 6.44

26 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 13.11–12

27 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 17.2–3–4

28 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 11.1

29 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 11.2

30 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 9.80–81–82–83

31 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 9.87–88

32 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 16.17–18

33 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 16.21

34 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 16.30

35 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 16.34

36 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 16.41

37 अभिराजराजेन्द्रमिश्र, जानकीजीवनं 16.44–45

38 डा0 देवराज , भारतीय–संस्कृति पृ0 118

39 डा0 नारायण तिवारी, हिन्दीकहानी में प्रकृतिचित्रण पृ0 21

40 जीवनस्मृति पृ0–270–271

41 जीवनस्मृति पृ0–264–265

**संदर्भग्रंथा –**


1 शान्तिजोशी 1920, सुमित्रानन्दनपंत ग्रंथावली, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली

2 आचार्यविश्वनाथ /सत्यव्रतसिंह 1957 ,साहित्यदर्पण ,चौखम्बाविद्याभवनचौक वाराणसी

3 ईश्वरकृश्ण , सांख्यकारिका , चौखम्बाविद्याभवन वाराणसी
4 डा0 गंगा सहायशर्मा 2006 ,ऋग्वेद,संस्कृतसाहित्य प्रकाशन नई दिल्ली
5 C.R. देवधर (E.D.)1997 , कुमारसंभव आफ कालिदास , मोतीलाल बनारसीदास पब्लिसर्स प्राइवेट लिमिटेड देहली
6 अभिराजराजेन्द्रमिश्र 1988 , जानकीजीवनं , वैजयन्त प्रकाशन इलाहाबाद
7 आचार्यरामचन्द्रशुक्ल 1997, चिंतामणि भाग–2 , इंडियन प्रैस प्रयाग
8 डा0 देवराज 1961, भारतीयसंस्कृति, प्रकाशनशाखा सूचनाविभाग उत्तरप्रदेश
9 डा0 नारायणतिवारी 2005 , हिन्दी कहानी में प्रकृतिचित्रण, अमरप्रकाशन सदरबाजार मथुरा
10 रवीन्द्रनाथ ठाकुर श्री सुरजमल जैन ;अनुवादकद्ध 1930, जीवन स्मृति, मित्रग्रंथमाला कार्यालय सीतलामाता बाजार इंदौर

**डिम्पल**
**शोध छात्रा**
ओम स्टलिंग ग्लोबल
विश्वविद्यालय
हिसार (हरियाणा)

18

# I. REASON AND MOTOR PROVISION IN MOTOR VEHICLES AMENDMENT BILL,2019.. (SAFETY OF PEDESTRIANS AND NON-MOTORISED TRANSPORT)

**Dr. Santosh Kumar Sharma**

**KEY PROVISIONS IN MOTOR VEHICLES (AMENDMENT) BILL, 2019**

**I.SAFETY OF PEDESTRIANS AND NON-MOTORISED TRANSPORT**

**Motor Vehicles Act, 1988:** There are currently no provisions in the Motor Vehicles Act (MVA) for the safety of pedestrians and non-motorised road users.

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019:** Amendment to Section 138 of MVA proposes the insertion of new sub-section (1A), which gives the **power to State Governments to regulate the activities of pedestrians and non-motorised road users in a public place**. The amendment proposes States to regulate the activities of pedestrians and non-motorised road users.

**Analysis:** Section 138 gives power to the State Governments to make rules for a number of specified matters that are in control of the State Government. With the insertion of new sub-section (1A) in Section 138, the State Governments **may** make rules in their respective State Motor Vehicle Rules specifying the manner of regulating the activities of pedestrians and non-motorised road users. **Regulation of activities in a public place of pedestrians and non-motorised road users could include the creation of special zones such as cycle tracks and footpaths, NMT lanes etc., which could all be interpreted as regulation of such activities.**

**II. SAFETY OF CHILDREN DURING COMMUTE**

**Motor Vehicles Act, 1988:** There are no provisions to protect children during commute.

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019:**

• The insertion of **Section 194B makes it mandatory for every child to be secured** by a safety belt or a child-restraint system. Additionally, the section also provides for adult accountability for not seating children in a safe manner with a penalty of **Rs. 1000**.

• Amendment to Section 129 (Wearing of protective headgear) proposes that **every child above the age of four years being carried on a motorcycle must wear a helmet**, the design and specifications of which may be prescribed by the Central Government. Moreover, with the insertion of clause (aa) in section 137 (2), the Central Government from time-to-time can provide for standards of protective gear, and measures for safety of children below the age of four years of age riding under section 129.

**Analysis**: While adult accountability for child restraints has been provided for, the Central Government must expeditiously notify rules for ensuring the safety of children below 4 years of age.

**III. RECALLING OF VEHICLES**

**Motor Vehicles Act, 1988:** Currently there is no provision to recall vehicles that are old or are harmful to the environment or do not meet safety standards.

Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019: New provisions 110A and 110B to empower Central Government to recall vehicles which do not meet standards and it also provides for establishment of testing agencies for issuing certificates of approval.

**IV. STRINGENT PUNISHMENT FOR FAULTY ROAD DESIGN, ENGINEERING AND MAINTENANCE**

**Motor Vehicles Act, 1988:** There is currently no provision which holds road contractors and civic agencies accountable for faulty road design and non-maintenance of roads leading to accidents.

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019:** Section 198A is to hold road contractors, consultants or concessionaires accountable for faulty road design, construction and maintenance and failure to do so will lead them to being fined up to Rs. one lakh.

**Analysis: „Engineering/designing fault' caused 1289 accidents in 2016, killing 589.**[1] However, no provision exists in the current Motor Vehicles Act 1988, to hold road contractors liable for defects in construction and maintenance. **The insertion of a section to penalize contractors for faulty road design and engineering will ensure an accountability framework besides improving the quality of the roads.** Currently, contractors get away with faulty roads as there is no accountability framework in place.

**V. TRANSPARENT, CENTRALISED AND EFFICIENT DRIVER'S LICENSING SYSTEM Motor Vehicles Act, 1988:** Chapter II of the MVA relates to Licensing of Drivers of Motor Vehicles.

• Under the existing Act, the lack of a centralized database of all licences and motor vehicles across India led to a situation where a **person may have multiple licences from different States.**

• The second proviso to Section 9 (3) **exempts applicants of drivers' licences to take the test of competence** if s/he possesses a driving certificate issued by any institution recognized by the State Government.

• To drive a transport vehicle, an applicant is required to possess minimum educational qualifications.

[1] Ministry of Road Transport and Highways, Transport Research Wing, „Road Accidents in India?, 2016, p.83.

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019:**

• The licensing system would be digitized and the

identification of the applicant would also be linked as per the UID mechanism.

• Minimum educational qualifications for transport drivers given under Section 9(4) has been omitted.

• By the insertion of sub-section (5) in Section 12, the necessity of possessing a licence to drive a light motor vehicle for at least one year before applying for a learners? licence to drive a transport vehicle has been removed. An applicant can now directly apply for the class of vehicle in which he has received training through an accredited school.

• The renewal of transport licences under Section 14 (2) (a) has been increased to five years from three years. The renewal of transport licences for driving vehicles with hazardous goods has been increased to three years from one year subject to such conditions as may be prescribed by the Central Government.

• To facilitate the grant of licences in a transparent and efficient manner, insertion of Section 25A provides for the establishment of National Register for Driving Licences containing data on all driving licences issued throughout India. The provision also provides for the State Registers to be subsumed in the national register. **I**t specifies that no driving licence shall be valid unless it has been issued a unique driving licence number under the National Register of Driving Licences.

• The exemption from taking the test of competence in case the applicant produces a certificate from an established school given in the second proviso to Section 9 (3) has been omitted.

• The renewal period of a licence has been fixed at intervals of 10 years (forty years and fifty years) after the age of thirty years. The renewal period after attaining the age of fifty-five years has been fixed at every 5 years.

• Amendment to Section 19 provides for the licensing authority to disqualify a person from holding a licence and place his name in public domain unless he successfully completes a driver refresher training course from an established school after a certain number of offences.

• Under Section 27, the Central Government has been given the power to make rules for:

**-The form and manner in which the licensing authority shall issue licences**

- The curriculum and training modules for the regulation of schools and establishments referred to in Section 12

**- The manner of placing a licence holders name in the public domain for disqualification due to a certain number of offences**

- The nature, syllabus and duration of driver refresher training course

- The matters referred to in Section 25A, i.e., maintenance of National Registers for driving licences

**Analysis:**

• Since driving a transport vehicle requires special skills, a person should be able to handle a LMV for at least one year before graduating to a HMV, a provision which has been omitted in the Amendment Bill subject to formal training for that class of vehicle from an accredited school or establishment.

• In Section 14, increase in renewal period to drive transport vehicles without any prescribed training or testing is detrimental to the safety of road users considering that HMVs are involved in a high number of accidents.

• In section 14, increase in renewal period for carrying hazardous goods has been increased to three years instead of one year provided that he undergoes a refresher training programme as specified by the Central Government.

VI. REGISTRATION OF NEW MOTOR VEHICLES BY VEHICLE DEALERS

**Motor Vehicles Act, 1988:** Under Section 41 of the existing Act, vehicle dealers cannot carry out registration of motor vehicles.

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019:**

• The amendment proposed for Section 41 will now enable the vehicle dealers to register new vehicles.

• The newly registered vehicles will have distinguishable registration marks

• There is also a provision that fixes penalties for dealers who fail to duly register a vehicle or falter in their duties. Such dealers can be fined for up to Rs. 15,000/-

**VII. STRICT REGULATION OF HEAVY MOTOR VEHICLES (HMVS) SUCH AS TRUCKS, BUSES AND LORRIES**

**Motor Vehicles Act, 1988:** Minimum educational qualifications for drivers of transport vehicles are provided under Section 9 (4) of the principal Act.

• A learners? licence to drive a transport vehicle is granted only when the applicant possesses a licence to drive a light motor vehicle for at least one year provided under Section 7.

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019:**

• Minimum educational qualifications for transport drivers given under Section 9 (4) has been omitted.

• By the insertion of sub-section (5) in Section 12, the necessity of possessing a licence to drive a light motor vehicle (LMV) for at least one year before applying for a learners' licence to drive a transport vehicle has been **removed.** An applicant can now directly apply for the class

of vehicle in which he has received training through an accredited school.

•Amendment to Section 72 (Grant of stage Carriage Permit) gives the power to the Regional Power Authority to waive any condition prescribed in the section to obtain a permit for a stage carriage in rural areas. The conditions prescribed in Section 72 include

(i) The **maximum number of passengers** and the maximum weight of luggage that may be carried.

(ii) Minimum and maximum number of daily trips that may be provided

**(ii)** Specifications of **approved body codes**

• The Bill proposes automated fitness testing for transport vehicles with effect from a date as notified by the Central Government. **Amendment to Section 117 puts a duty on the State government to prioritize the safety of road users and ensure free flow of traffic while designating parking zones.**

**Analysis**:

• Allowing applicants to obtain transport license without other requirements such as minimum educational qualifications and experience in driving LMVs is detrimental to the safety of road users.

•Fatigue tests, minimum safety standards for vehicles, training of transport drivers through simulated tests and the establishment of rest areas for transport drivers have not been provided for in the Bill.

## VIII. STRINGENT PUNISHMENT FOR DRUNK-DRIVING, OVER-SPEEDING, VIOLATION OF HELMET AND SEAT-BELT LAWS

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019:**

All the amendments in the MV Bill in the offences & penalties chapter seek to provide stringent penalties for grave offences like drunk-driving, over-speeding, seat-belts and helmets etc.

**Analysis**:

The increased fines will act as a deterrent and shall prevent road users from driving recklessly. However, many stakeholders and even the Parliamentary Standing Committee recommended that if drunk driving caused death then that act should constituted as „culpable homicide not amounting to murder? instead of just „negligence?. This recommendation hasn?t been included in the final amendment as it involves amendment in the IPC for which the Ministry of Home Affairs has to move appropriate amendments. ***A more detailed comparison of the penalties is described at the end of this document.****

## IX. REVISION OF FINES

**Motor Vehicles Act, 1988:** There exists no provision for a steady increase of fine so that the fines are consistent with the changing inflation levels.Motor Vehicle (Amendment) Bill, 2019: A new provision Section 199B is to effectuate a fixed increase in all fines under the Act @10% on an annual basis on the 1st day of April every year.

**Analysis**: The annual increase in fines will ensure that fines are not stagnant and are consistent with the changing times.

## X. ELECTRONIC MONITORING AND ENFORCEMENT OF ROAD SAFETY

**Motor Vehicles Act, 1988:** With enforcement being a State subject, the current scenario with regard to electronic enforcement differs across States.

Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019: The insertion of new Section 136A puts the responsibility on the Central Government to make rules for the electronic monitoring and enforcement of road safety. State Governments shall ensure the implementation of the same.

**Analysis**: Legislating the establishment of robust electronic enforcement for traffic violations will result in reduction in human intervention and the associated corruption**.** A robust electronic enforcement system including speed cameras, closed-circuit televisions cameras, speed guns and such other technology will ensure violations being captured at a greater scale.

## X. OFFENCES BY JUVENILES

**Motor Vehicles Act, 1988:** Under the current Act, allowing unauthorized persons to drive a vehicle invites a penalty of Rs. 1000/- and/or imprisonment of up to three months. Occasionally, provisions of the Indian Penal Code (IPC) are invoked in cases involving death or injury, such as Section 109 (Abetment) of the IPC read with either Section 304 II/Section 304A in case of death or Section 337-339 of the IPC in case of injury.

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019:** The amendment Bill under Section 199A invokes adult accountability by proposing penalties for the guardian/owner of the vehicle for offences committed by Juveniles. The guardian or owner of the vehicle shall be guilty with a fine of Rs. 25000/- and/or imprisonment of up to 3 years, while the Juvenile will be tried under JJ Act. Additionally, the registration of said motor vehicle will be cancelled. The burden of proof shall lie on the guardian/owner.

**Analysis:** According to the Ministry of Road Transport and Highways, in 2016 alone, total and fatal road accidents involving underage drivers were 18,738 and 5,383 respectively.[2] While in the existing Act, the penalty is for allowing "unauthorized persons" to drive vehicles, the amendment proposes to specify "juveniles". **The penalties for the same have been increased with a 25x increase in the fine and a 12x increase in the period of imprisonment**.

**In addition to the increased fines, registration**

[2] Ministry of Road Transport and Highways, Transport Research Wing, „Road Accidents in India?, 2016, p.90.

**of the vehicle being cancelled can ensure that guardians do not allow their juveniles to drive their vehicle.**

**XI. DANGEROUS DRIVING**

**Motor Vehicles Act, 1988:** The existing definition of driving dangerously has a narrow scope that does not take into account common traffic offences such as jumping red lights and using mobile phones while driving. Furthermore, considering the nature of offences, the existing fine prescribed is a meagre rupees one thousand.

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019:** Besides enhancing penalties for dangerous driving, the amendment to Section 184 has also broadened the scope of **the definition of "dangerous driving" to include the acts that are considered driving in manner dangerous to the public such as jumping a red light, violating a stop sign, use of hand-held communication devices while driving, driving against the flow of traffic, and passing or overtaking any motor-vehicle in a manner contrary to law.**

**Analysis:** All the above mentioned points, which were earlier missing in the Act, are risk factors that contribute to road accidents. By expanding the scope of the definition of dangerous driving, the Bill provides the enforcement agencies to crack down on traffic rules violators more efficiently and provides a uniform penalty for such offences.

**XII. PENALTY FOR OFFENCES RELATED TO CONSTRUCTION AND MAINTENANCE OF VEHICLES**

**Motor Vehicles Act, 1988:** The existing punishment for offences relating to construction and maintenance of vehicles provided under Section 182A is rupees one thousand for the first offence and rupees five thousand for any subsequent offence.

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019:** Amendment to Section 182A enhances penalties for contravention of chapter VII (Construction and maintenance of vehicles) by manufacturers, dealers, importers and owners of motor vehicles. It also provides a penalty for registration and issuance of certificate of fitness to oversized vehicles.

• The penalty for sale or offering to sell or alter in contravention of chapter VII shall be an imprisonment of up to one year or a fine which may extend to one lakh rupees.

• The penalty for failing to comply with the provisions of chapter VII during manufacture shall be a term which may extend to one year or a fine which may extend to rupees one hundred crore.

• The penalty to offer to sell or sell safety components not in compliance with chapter VII shall be an imprisonment of one year and a fine which may extend to one lakh rupees.

**Analysis:** Enhancing the penalties for construction and maintenance of motor vehicles by a manufacturer to up to rupees one hundred crore will ensure that manufacturers are held accountable for any defect in the vehicle.

**XIII. NATIONAL ROAD SAFETY BOARD**

**Motor Vehicles Act, 1988:** There is currently no provision for a national body for road safety.

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019:** The proposed new **Section 215D establishes a National Road Safety Board**. The Board will render advice to the Union as well as State Government on all aspects of road safety and traffic management including the standards of road design, vehicle maintenance, road maintenance, sustainable utilization of road transport, safety of vulnerable road users, road construction technology, motor vehicle standards, etc.

**XIV. TRANSPORT AGGREGATORS**

**Motor Vehicles Act, 1988:** The current Act does not recognize aggregators of transport like cab service providers etc.

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019:** The new legislation under Section 93, gives statutory recognition to transport aggregators.

**XV. NATIONAL TRANSPORTATION POLICY**

**Motor Vehicles Act, 1988:** There are no provisions for formulating a unified transportation policy for the country.

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019:** New provisions **66A and 66B to empower the Central Government to implement a National Transportation Policy in consultation with the States.**

**XVI. PENALTY MULTIPLIER**

**Motor Vehicles Act, 1988:** There is no provision in place for the State Governments to multiply any penalties.

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019:**

• The proposed Section 210A gives power to the State Governments to specify a "multiplier" (not less than one and not greater than ten) to be applied to each fine.

• Section 210B also imposes a penalty on any enforcing authority under this Act. It would have to pay twice the penalty corresponding to that offence under the Act.

**Analysis:**

• The new provision gives State Governments the power to increase fines in their jurisdiction by up to ten times the amount specified in the Act. For instance, the proposed fine for over-speeding is Rs. 1000 but any State Government can levy a fine of up to Rs. 10,000 and not less than Rs. 1000 for over-speeding in the jurisdiction of that respective State.

• Penalizing enforcing authorities will push them towards discharging their duties more efficiently and deter them from lapsing on their part.

**• XVII. COMPENSATION IN HIT-AND-RUN CASES**

**Motor Vehicles Act, 1988:** The compensation for hit-and-run cases is currently Rs. 12,500/- in cases of grievous hurt and Rs. 25,000/- in cases of death.

**Motor Vehicles (Amendment) Bill, 2019: The proposed amendment to Section 161 of the Act is slated to increase the compensation in cases of grievous injury to Rs.**

**50,000/- or higher and to Rs. 2 lakh or higher in cases of death.**

**Analysis: In 2016 alone, there were 55,942 reported cases of hit-and-run accidents in India, which resulted in 22,962 deaths (which stands at 15.2% share in total road accident deaths). In view of the high number of hit-and-run cases in India, the increased compensation will enable immediate monetary assistance to the victim/victim families.**

**NOTE: In the 2019 version of the Amendment Bill, the following three changes may be noted:**

**(i) Section 28:** This Section in the 1988 Motor Vehicles Act provided power to the State Government to determine how they wanted to maintain the State Registers for Driving Licenses. The Section (28 (2) (j)) has now been omitted and may be to ensure uniformity in maintenance of State Registers. This omission wasn?t made in the 2017 version but has been made in the 2019 one.

**(ii) Section 56:** This Section provides for vehicle fitness testing in automated testing centres. In the 2017 version the date after which only vehicle fitness certificates from automated testing centres would be considered valid was 1st October, 2019. In the 2019 version there is no specific date but a date that will be notified by the Central Government.

**(iii) Section 41**: Section 41 deals with registration of vehicles and its sub-parts 11, 12 and 13 provide fines for delays in registration. The fines are drawn from Section 177 in the Motor Vehicles Act, 1988 which was INR 100. In the 2017 Amendment Bill the fine was raised to up to INR 5000. However, in the 2019 version sub-section 11, 12 and 13 are omitted.

## *COMPARITIVE CHART: REVISED AND EXISTING PENALTIES

| Section | Title | Existing Penalty | Proposed minimum penalty |
|---|---|---|---|
| 177 | General | Rs. 100/- | From Rs. 500/- up to Rs. 1,500/- |
| New 177A | Rules of road regulation violation | Rs. 100/- | From Rs. 500/- up to Rs. 1000/- |
| 178 | Travel without ticket | Rs. 200/- | Rs. 500/- |
| 179 | Disobedience of orders of authorities | Rs. 500/- | Rs. 2000/- |
| 180 | Unauthorized use of vehicles without licence | Rs. 1000/- | Rs. 5000/- |
| 181 | Driving without licence | Rs. 500/- | Rs. 5000/- |
| 182 | Driving despite disqualification | Rs. 500/- | Rs. 10,000/- |
| 182A | Punishment for offences relating to construction and maintenance of vehicles | Rs. 1000/- for the first offence and Rs. 5000/- for subsequent offence | **Dealer**: Rs. 1 lakh per vehicle 1 year imprisonment **Manufacturer**: Up to Rs. 100 crore **Dealer selling safety equipment**: Up to Rs. 1 lakh **Consumer**: Rs. 5,000/- or 6 months imprisonment or both |
| 182 B | Oversize vehicles | New | From Rs. 5000/- up to Rs. 10,000/- |
| | | | Rs .1000/- for LMV |
| 183 | Over speeding | Rs. 400/- | From Rs. 2000/- up to Rs. 4,000/- for Medium passenger vehicle/Heavy passenger vehicle/Medium goods vehicle/Heavy goods vehicle |
| 184 | Dangerous driving | Rs. 1000/- | From Rs. 1000/- up to Rs. 5000/- and/or 6 months-1 year imprisonment |
| 185 | Drunken driving | Rs. 2000/- | From Rs. 10,000/- up to Rs. |
| | | | 15,000/- |
| 186 | Driving when mentally or physically unfit to drive | Rs. 200/- for the first offence and Rs. 500/- for subsequent offence | Rs. 1000/- for the first offence and Rs. 2000/- for subsequent offence |
| 187 | Punishment for offences relating to accidents | Imprisonment of up to 3 months for first offence 6 months for second offence Fine: Rs. 500/- for first offence and Rs. 1000/- for the second offence | 6 months for the first offence and one year imprisonment for subsequent offence Fine: Rs. 5000/- for first offence and Rs. 10,000/ - for subsequent offence |
| 189 | Speeding / Racing | Rs. 500/- | Rs. 5,000/- |
| 192 A | Vehicle without permit | Up to Rs. 5000/- | Up to Rs. 10,000/- |
| 193 | Aggregators (violations of licensing conditions) | New | Rs 25,000/- to Rs 1,00,000/- |
| 194 | Overloading | Rs. 2000/- and Rs. 1000/- per extra tonne | Rs. 20,000/- and Rs. 2000/- per extra tonne |
| 194 A | Overloading of passengers | New | Rs. 200/- per extra passenger |
| 194 B | Seat belt | Rs. 100/- | Rs. 1000/- Child Restraint: Rs. 1000/- |
| 194 C | Overloading of two wheelers | Rs. 100/- | Rs. 1000/-, Disqualification for 3 months for licence |
| 194 D | Helmets | Rs. 100/- | Rs. 1000/- Disqualification for 3 months for licence |
| 194 E | Not providing way for emergency vehicles | New | Rs. 10,000/- Imprisonment: 6 months |
| 196 | Driving Without Insurance | Rs. 1000/- | Rs. 2000/- Imprisonment: 3 months |
| 198 A | Failure to comply with standards for road design, construction and maintenance | New | Up to Rs. 1,00,000/- |
| 199 | Offences by Juveniles | New | Guardian / owner shall be deemed to be guilty. Rs 25,000 with 3 year imprisonment, Juvenile to be tried under JJ Act, Registration of Motor Vehicle to be cancelled |
| 206 | Power of Officers to impound documents | | Suspension of driving licenses u/s 183, 184, 185, 189, 190, 194C, 194D,194E |
| 210 B | Offences committed by enforcing authorities | | Twice the penalty under the corresponding section |

## CONCLUSION

The introduction of the new Motor Vehicle Act 2019 is clearly aimed at ensuring that motorists start taking traffic rules more seriously which in turn will be promotion of safe and sustainable mobility across the country. We hope that with the introduction of the amendments the people would now become more careful while using their vehicles. Also we are hoping for a serious drop in cases of drop in cases of drunk driving non usage of sea tablets rash driving over speeding and racing.

**Dr. Santosh Kumar Sharma**
M. COM, MBA, LLB, LLM WITH
PhD.(PGDIM MATERIALS)
Mo.-9899882948-
santosh.sharma2013@gmail.com
H.NO. 5113, SECTOR 03, BALLABGARH
FARIDABAD (121006)

19

# जानकीजीवने मानवमूल्यानि

डिम्पल

**सारांश** –

भाष्यते इति भाष् मानवसभ्यतायाः संस्कृतेः च विकासः भाषां बिना सम्भवः नास्ति। भाषा एव मानवान् पशुभ्यः पृथक्करोति। मानवः भाषामाध्यमेन एव स्वभावान् प्रकटीकरोति। भाषा न केवलं विश्वसभ्यतायाः संस्कृतेः उन्नतेः मूलकारणं अस्ति अपितु भाषाकारणादेव मानवः सृष्टेः सर्वेशु जीवेशु श्रेष्ठतमः सर्वोतमः वा अस्ति । भाषा उन्नतिमूलं भवति। भारतीय–संस्कृतेः प्राचीनसभ्यतायाः वाः यदि अध्ययनं करणीयं तर्हि संस्कृतं विना न काऽपि भाषा दृष्टिपथं आयाति यतः संस्कृताश्रिता अस्ति अस्मांक संस्कृतिः अस्माकं सामाजिकं सास्कृतिकं धार्मिकं नैतिकं आध्यात्मिकं च जीवनं संस्कृत–साहित्य एव अनुस्यूतं अस्ति तत्रापि आदिकाव्यं रामायणं अद्वितीयं अस्ति। भारतीय–संस्कृतेः जीवनमूल्यानां च चित्रणार्थं। अद्यत्वे रामायाणाधारितकाव्यानां वार्ता यदि क्रियते तर्हि अभिराजराजेद्रमिश्रप्रणीतं महाकाव्यं जानकीजीवनं अभिराजते साहित्यजगति। वर्तमान समाजे जीवनमूल्यानां मानवमूल्यानां च प्रासंगिकतां, आवश्यकतां, महत्वं च पश्यन् जीवनमूल्यानां स्थापना स्थापनार्थं प्रयासाः वा करणीयाः । एतदर्थं मानवमूल्यानि शिक्षयत् प्रदर्शयत् वा साहित्यं सर्वाधिकं महत्वपूर्णं अस्ति। अतः एतस्मिन् शोधपत्रे मया जानकीजीवने महाकाव्ये वर्णितानां मानवमूल्यानां। वर्णन विवेचनं च कृतं वर्णनात्मक – विवेचनात्मकयोः विध्योः प्रयोगेन। संस्कृतं संसारस्य प्राचीनतमा भाषा अस्ति। 'देववाणी' इति कथ्यते। भारतीयसंस्कृतेः उन्नतेः मूलं च इयं भाषा। सत्यमेवोक्तं भारतेन्दुहरिश्चन्द्रेण "निजभाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल "संस्कृतभाषा एव अस्माकं कृते निज भाषा इति। काव्यादर्शकर्त्रा सम्यगुक्तं यत् "इदमन्धतमः कृत्स्नं जायते भुवनत्रयं।
यदि शब्दाह्वयं ज्योतिरासंसारं न दीप्यते।" (1)

संस्कृतभाषा एव ज्योतिस्वरूपा संसारस्य यतः न केवलं एशा साहित्यकारणात् अपितु स्वसाहित्ये स्थितज्ञानविज्ञानत्वात् अपि अद्वितीयं स्थानं बिभर्ति विश्वसाहित्ये। शब्द एव ब्रह्म इति वाक्यपदीये उक्तं– "अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम् ....." (2) संस्कृतं च ब्रह्मवाणी नात्र संशयम्। आधुनिकसंस्कृतसाहित्ये प्रो0 अभिराजराजेन्द्रमिश्रः न अपेक्षेते कमपि परिचयं। तत्कृते विपुलसाहित्ये जानकीजीवनं महाकाव्यं भारतीयसंस्कृतेः जीवनमूल्यानां प्राणस्वरूपं अस्ति साम्प्रतिके साहित्ये। साहित्यं विश्वस्य हितार्थं भवति न केवलं शब्दानां भण्डारमात्रं मनोविनोदसाधनमात्रं च। सामाजिककल्याणं च साहित्ये सूक्ष्मतया निहितं भवति तदैव तत्साहित्यत्वेन उदीर्यते। अद्यत्वे समाजे वातावरणं विशाक्तं ,वसितुं अयोग्यं च। प्रत्येकस्मिन् युगे साहित्यकाराः समाजं स्वसाहित्ये प्रकटयन्ति। साहित्ये समाज–बोधः, सामाजिक समस्यानां ,समाजस्य अस्तित्वार्थं आवश्यकानां, स्वस्थ–समाजस्य रचनार्थं आवश्यकानां च जीवनमूल्यानां बोधः भवितव्यः। जानकीजीवनं इति महाकाव्यस्य कथानकं यद्यपि आदिकाव्यात् रामायणात् गृहीतं तथापि तत्र नवीनता अस्ति। समाजबोधः अस्ति। समाजस्य ह्रासोन्मुखमूल्यानि प्रति नवाशा नवास्था चापि अनेन महाकाव्येन प्रेरिता जागृता च । जानकीजीवनं इति महाकाव्यमाध्यमेन मिश्रमहोदयेन भारतीयसंस्कृतेः लुप्तपरमपरां पुनः स्थापयितुं भारतीय–समाजस्य जीवनमूल्यानि प्रतिश्ठितानि। अतः एतानि एव जीवनमूल्यानि प्रस्तोतुं मया एकः लघुप्रयासः कृतः अस्मिन् शोधपत्रे।

जानकीजीवने जीवनमूल्यानि –

आवेदेभ्यः आधुनिक–साहित्यं यावत संस्कृतसाहित्यं जीवनमूल्यगर्भितं वर्तते। ऋग्वेदे प्रार्थितं
"धियो योनः प्रचोदयात्" सम्बधानां मध्ये प्रेमभाव वर्धनार्थं अथर्ववेदे उक्तं– "मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन् मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यक् च सव्रता भूत्वा वाचे वदत भद्रया ।।" (3)

ईशावास्योपनिशदि त्यागेन सह भोगार्थं प्रेरितं "तेन त्यक्तेन भुंजीथाः" (4)

अथर्ववेदे परस्परं सद्भावार्थं प्रेमभावार्थं च प्रेरणा दत्ता अस्य श्लोकस्य माध्यमेन
"अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शांतिवाम्।।" (5)

बृहदारण्यकोपनिशदि उक्तम्– "असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय।"

एतादृशी वर्तते अस्माकं संस्कृतेः, संस्काराणां , संस्कृतस्य ,संस्कृत–साहित्यस्य च परम्परा। एतादृष्याः एव महद् –परम्परायाः, विलक्षण संस्कृतेः वा रचनाकाराः सन्ति अभिराजराजेन्द्रमिश्रमहोदयाः येन स्व–साहित्ये प्रतिपदं मानवमूल्यानां संवर्धनं संरक्षणं च कृतं। जानकीजीवनं एतेशां सुपसिद्धं महाकाव्यं अस्ति। मातुः सीतायाः व्यथा यदा कवेः हृदयं स्पृशति। कविहृदयः यदा व्यथितं उद्वेलितं च भवति तदा तद्भावाः महाकाव्यत्वं प्राप्नुवन्ति । यथा आदिकवेः वाल्मिकेः शोकः प्राप्तः आसीत् श्लोकत्वं तथैव अस्य कवेः शोकः अपि महाकाव्यत्वं प्राप्तः। प्रस्तूतं महाकाव्यं मानवस्य हृच्चित्रं प्रस्तौति।

अत एव अत्र प्रतिपदं मानवमूल्यानि अनुस्यूतानि सन्ति। यद्यपि महाकाव्यं इदं आदिकाव्ये रामायणे आधारितं तथापि आधुनिक–कालानुसारं तत्र परिवर्तनं संशोधन च दृष्यते कथानके। मिश्रमहोदयैः अत्र वर्तमानदृष्टया वर्तमानकालानुसारं च मूल्यानि आधारीकृत्य यथेश्टं सर्वग्रह्यं च परिवर्तनं कृतं कथानके। अत एव वर्तमानसदर्भे न केवलं एशा कथा प्रासंगिकी अपिए स्वस्थ –समाज–निर्माणार्थं आवश्यकी अपि, जानकीजीवने नारीसशक्तीकरणं , नार्याः अस्मिता, उदातं दाम्पत्य–प्रेम, समाजे दलितवर्गस्यं उत्थानार्थं प्रयत्नः, सम्बन्धेशु पवित्रता मर्यादा च, राजनीतिक्षेत्रे नैतिकता, राश्ट्रहितस्य आवश्यकता देशभक्तिः वा, मानवाधिकाराणां स्वीकार्यता, नार्याः अधिकाराणां स्वीकार्यता, सुचरित्रस्य महत्वं ,पारिवारिकसम्बन्धेशु पवित्रतायाः विश्वासस्य च आवश्यकता, सत्य–निष्ठा, त्यागः, धैर्यः इत्यादिकं अतीव दृढतया चित्रितम्। अत्र वैदेही सीता मुख्यपात्रत्वेन चित्रिता इति नारीगौरवं प्रति सशक्तं अपेक्षितं च परिवर्तनं वर्तमानयुगापेक्षानुसारम्। जानकीजीवने वर्णितानां जीवनमूल्यानां वर्णनं अत्र संक्षेपेण प्रस्तूयते ।

उदातविचारयुक्तसरलजीवनसंदेशः – :

हिन्दी भाषायां कथ्यते "सादा जीवन उच्च विचार" इति महाकाव्ये प्रतिपदं अनुस्यूतं। प्रस्तुतं महाकाव्यं संदेशं प्रस्तौति यत् जीवनं उदातविचारयुक्तं परं सरलं आडम्बररहितं च भवितव्यं। यथा रामस्य जीवनं आसीत् । अस्मिन् महाकाव्ये अलौकिकपात्राणां अपि साधारणीकरणं कृत्वा सरलजीवनस्य संदेशः – अतीव सरलतया दतः। रामस्य सीतायाः च सरलजीवनं साधारणेन परं उदातविचारयुक्तेन जनेन समं लोकमर्यादायुक्तं सदाचरण–समन्वितं, समाजहितकारकं, उच्चादर्शयुक्तं चास्ति। प्रजापतेः कथनं स्वयमेव रामस्य आर्दशजीवनस्य कथां कथयति

"अनिन्द्यसौन्दर्यवतीं गुणान्वितां धवानुरक्तां मृगलोचनां प्रियां।
परस्त्वदन्यः कः इव त्यजेज्जनोऽन्यथा धरित्र्यां परिभोगकातरः।।" (6)

अहो सच्चरित्रस्य एतादृशी महता ।

नार्याः पतिव्रतधर्मः –

नार्या एव गृहं गृहं भवति। यदि नारी सद्गुणयुता पतिव्रता च अस्ति तर्हि गृहं स्वर्गसदृशं भवति। चाणक्येन उक्तं–

"वित्तेन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृदुना रक्ष्यते भूपः सन्नार्या रक्ष्यते गृहम्।।" (7)

यदि नार्या आचरणं पवित्रं तर्हि स्वस्थ समाजस्य निर्माणं भविष्यति। पतिव्रता–धर्मविशये सीतामाता अस्माकं समाजे आदर्शभूता अस्ति । दर्शनीयः अनुकरणीयः च सीतायाः पतिव्रतधर्मः। उदाहारणं एकं –

"वल्लभा रघुवंशभानु निभस्य चाहं राघवस्य विदेहजा च कुलप्रसूता।
स्वप्नजाऽपि न मे रतिः पुरूशान्तरेषु स्वामिजीवितजीवितास्मि तदर्पिताऽहम्।।" (8)

आदर्श–दाम्पत्य–प्रेम–

अद्यत्वे समाजे सर्वत्र विभाजनं दृष्यते। सम्बन्धेशु सर्वत्र कलुशता, कौटिल्यं, विच्छेदः च दृष्यते। पवित्रप्रेम्णः, परस्परविश्वासस्य च अभावात् पतिपत्न्योः मध्ये कटुता विच्छेद च प्रतिगृहं द्रश्टुं शक्यते । परं जानकीजीवने प्रस्तुतं आदर्शप्रेम, सम्बन्धेशु नवजीवनं संचारयति । प्रणयविशये तत्रोक्तं –

"दाम्पयमस्ति प्रणयैकमूलं विपर्ययेतन्न बिभर्ति संज्ञाम्।
सगानुबन्धे त्रुटिते न काऽपि कस्यपि भार्या न च कोऽपि भर्ता।।" (9)

अत्र स्पष्टं यत् दाम्पत्यजीवनं प्रणयमूलं भवति । अतः प्रणयाधारितं जीवनमेव सफलं बाधारहितं च भवितुं च शक्नोति इति सन्देशेन अनुस्यूतं महाकाव्यं इदम्। पतिपत्न्योः परस्परं अनन्यभावः भवितव्यः ।

निस्वार्थत्यागस्य भावना –

रामस्य सीतायाः लक्ष्मणस्य च संपूर्णजीवनं त्यागेन अनुप्राणितम्। भरतस्य त्यागः अपि अविस्मरणीयः अस्ति। त्यागभावना अस्य महाकाव्यस्य प्राणतत्वं समाजार्थं प्रेरणातत्वं चास्ति। रामः स्वपितुंः आज्ञापालनार्थं प्रासादानां सुखं त्यक्त्वा वनं प्रति गच्छति। न विरोधं करोति न तु क्रोधः। लक्ष्मणः अपि कंटकयुक्तमार्गे रामेण सह चलति। भरतः च न स्वीकरोति राज्यं अपि न्यासरूपेण संरक्षति रामराज्यं। सुकुमारवपुसीता च सहधर्मिणी सहभागिनी च भवति रामस्य अस्मिन् धर्ममार्गे। सीतायाः कृते विजने वने वासः राजप्रासाद सुखातिशायी अस्ति। उक्तं तया– "अम्ब! माऽतितरां गमस्त्वमरवर्वखेदंवैभवं दयितांगिघ्रपदयुगेऽस्ति। राघवे सति कानने विजनं न चैतत्आत्मनैव शापामि सोधसुखातिशायि।।" (10)

सम्बन्धानां महत्वं गौरवं च –

जानकीजीवनं महाकाव्यं सम्बन्धानां महत्वं, सम्बन्धेशु परस्पंर सम्मानभावं, परिवारस्य सुखाय समृद्धये च वैयक्तित्यागः, स्वस्वार्थं परिज्यज्य परिवाराय चिन्तनं च सुतरां वर्णयति । रामः पुत्ररूपे, पतिरूपे, भ्रातृरूपे ,राज्ञःरूपे, मित्ररूपे, शिश्यरूपे राश्ट्रस्य समर्पित नेतृ–रूपे सर्वत्रेव संबधेशु जीवनशक्तिं संचारयति। जानकी जीवने प्रस्तुतं भ्रातृ–प्रेम अदभुतं, अद्वितीयं, अदृश्टपूर्वं च वर्तते। एवमेव सीतायाः पत्नीधर्मः, दशरथस्य वचनपालनधर्मः, हनुमतः सेवकधर्मः, उर्मिलायाः पत्नीधर्मः अपि अनुपमः। संक्षेपेण महाकाव्येन अनेन सर्वे सम्बबन्धानां आदर्शः प्रस्तुतः।

आदर्श–राज्यम्–

रामराज्यं आदर्शराज्यं अस्ति तदवदे व राज्येन राश्ट्रेण वा भवितव्यम्। रामराज्यस्य तु अद्यापि कल्पना क्रियते सर्वैः। राजा रामसदृशः भवितव्यः। रामवत् आचरणं कर्तव्यं न तु रावणवत्। आदर्शराज्ये रामराज्यवत् शान्तिः, लोकेशु संतोशः च भवितव्यः। रामवत् प्रजायाः रक्षा कर्तव्या राज्ञा। यथा रामः धीरः गम्भीरः च अस्ति तथा स्वधैर्येण प्रजासमक्षं उदाहरणं प्रस्तौति, एतत्सर्वं अनुकरणीयम्। राजारूपेण रामः स्वप्रजां राक्षसेभ्यः दुष्टेभ्यः च रक्षति। श्रीरामः दण्डकारण्यं एव यज्ञस्थलं स्वीकरोति यतः तत्र स्थित्वा सः दुष्टानां विनाशं कर्तुं

शक्नोति –

"निश्चिकाय रघूतमः प्रसमीक्ष्य सर्वमानसे यदिंद वनं द्रुतमुद्धरिश्ये।
दण्डकं समभीष्ट राक्षसनाशसत्रदीक्षितस्य भवेत स्थलं मम राघवस्य।।" (11)

अद्यत्वे समाजे सर्वत्र असतोशः, अन्यायः ,असुरक्षायाः भावः, भयस्य वातावरणं च अस्ति जनेशु। अतः अद्यत्वे अपि शासकानां कर्तव्यमस्ति यत् ते अपि रामवत् सुशासकाः भवेयुः। रामराज्यवत् सपूर्णसुरक्षा, शान्तिः, सदभावना, भयमुक्तं वातावरणं च सर्वमिदं भवितव्यम् यथा श्लोकेऽस्मिन्। "राजन्नमेयभुजविक्रमा चापपाणौ।
धात्रीं प्रशासति भयं त्वयि जन्मिनां किम्।।" (12)

इति रामराज्यम्।

नारीसशक्तीकरणं–

महिलासशक्तीकरणं, कन्यारक्षणं च वर्तमानकालावश्यकता साम्प्रतिकयुगापेक्षा चास्ति ।

तत्स्वरः च अत्र मुखरः अस्ति। सर्वप्रथमं तु अत्र सीतायाः भरण–पोषणं अतीव स्नेहेन सम्मानेन च भवति । सीतायाः स्वयवरं स्वयमेव नार्याः गौरवस्य सम्मानस्य च उद्घोषणा । अत्र उद्घोषितं यत नारी स्वयोग्यतानुसारं स्ववरं चेतुं अधिकारिणी । सीतायाः वरचयनस्य आधारोऽपि शौर्यं पराक्रमो वा अस्ति इति नारीगौरवस्य पराकाश्ठा–

"य एव वीरोऽक्षतशम्भुचापं द्रुतं समुत्थाय पिनाकमुच्चौः।
गुणं च दण्डेन युनक्ति सोऽसौ सीतापतिर्लोकसमक्षमद्य।।" (13)

जानकीजीवने वर्णिता जानकी रामेण अपमाने कृते सति तूष्णीं भूत्वा सर्वं न स्वोकराति अपितु प्रतिप्रश्नं करोति। यथा वर्तमान–युगस्य नारी आत्मसम्मानार्थं स्वाधिकारम् याचते। सीतायाः रामं प्रति सम्बोधनं नार्याः तेजस्विरूपं सशक्तचरित्रं च दर्शयति यथा ।

"स्वलोककीर्तेरियति प्ररोचना ममार्यशीलस्य च घोरलांछना।
कुतोन्विदं राद्यव! तत्वपारग! ध्रुवं पतित्वेन जुहोशि गेहिनीम्।।" (14)

सीता स्पष्टरूपेण रामं कथयति यत् केवलं स्वकीर्तेः रक्षार्थं मम चरित्रं शंकितु नैव क्षमः भवान्।

आचरणस्य चरित्रस्य वा पवित्रता –

आचरणं रामादिवत् कर्तव्यम्, न तु रावणादिवत् इति संदेशः सुदृढतया प्रसारितः अनेन महाकाव्येन। आचरणस्य पवित्रतायाः संदेशेन सह स्वस्थस्य द्वन्द्वरहितस्य च समाजस्य रचना एव महाकाव्यस्य पुनीतप्रयोजनं अस्ति। सीतया सर्वेशु रूपेशु आचरणस्य पवित्रतायाः कीर्तिस्तम्भाः स्थापिताः। पत्नीरूपे, पुत्रीरूपे, भगिनीरूपे, कुलवधूरूपे, मातृरूपे, सशक्तनारीरूपे च सा सर्वत्र आचरणस्य गौरवं वर्धयति। न केवलं सीतायाः अपितु अन्येशां पात्राणां आचरणेनापि समाजार्थं पवित्राचरणस्य उदाहरणं प्रस्तुतम्। सीतायाः पवित्राचरणस्य साक्षिणः स्वयं पावकः ब्रह्मा श्रीरामः च सन्ति। यथोक्तं

"मैथिलीमभिनन्द्य धाताधूर्जटिः पावको भ्रम तातपादोऽपि स्वयम्।
ग्राह्यां किल चकतुः श्रीराघवं वेदम्यहं किमतःपरं तद्गौरवम्।।" (15)

<u>पुरूशप्राधान्यास्वीकरणम् –</u>

यद्यपि सीता भारतीय संस्कृतेः अनुसारं स्वपतिमेव परमेश्वरं स्वीकरोति तथापि तस्य अनुचितलांछनां न सहते इति स्पष्टमेव यत् नारीं स्वसुविधानुसारं प्रयोक्तुं, तस्याः चरित्रे लांछनारोपणं च न पुरूषस्य अधिकारः। पुरूषवत् नार्याः अपि अस्तित्वं अस्ति। यदि पुरूशः नारीं सहधर्मिणीं सहचारिणीं अर्धांगिनीं च मन्यते तर्हि सा अपि पुरूशेण समं सम्मानस्य अधिकारिणी अस्ति। पुरूषेण समं सन्ति तस्याः अधिकाराः। सा नास्ति उपभोग्या अपितु जगतः जीवनदायिनी समाजस्य सशक्त–निर्मात्री च। सा पुरूषस्य सम्मानं करोति स्वजीवनसंगिरूपे परं न स्वीकरोति तस्य मिथ्यारोपम्, तस्याः जीवने वर्चस्वं एकाधिकारं च। सीता राघवम अतीव ज्वलन्तं प्रश्नं पृष्ट्वा तस्यारोपं समूलं अस्वीकरोति। सा कथयति

"स्वलोककीर्तेरियति प्ररोचना ममार्यशीलस्य च घोरलांछना।
कुतोन्विदं राद्यव! तत्वपारग! ध्रुवं पतित्वेन जुहोशि गेहिनीम्।।" (16)

यद्यपि सा आदर्शभारतीयनार्याः अपि संदेशं ददाति। यथा

"राधवात्प्रथमं विहाय धरांकशय्यां जानकी दयितं प्रबोधितवत्युदारा।
आननेन्दुमथावलोक्य कुवेलकल्पं राद्यवस्य पराम्मुदं बिभराम्बभूव।।" (17)

ये निरर्थकं स्त्रियाः सम्माने चरित्रे वा प्रहारं कुर्वन्तिए नार्याः सम्मानं सम्मानमेव न स्वीकुर्वन्तिए स्त्रियाः अस्तित्वमेव न स्वीकुर्वन्ति, तेभ्यः अपि सशक्तं उत्तरं दत्तं महाकविना अस्य महाकाव्यस्य माध्यमेन। अत्र सीता अकृतापराधकारणात् निर्वासिता न कृता अपि रजक एव स्वापराधं स्वीकरोति पश्चात्तापं च करोति। अत्र नार्याः गौरवस्य स्वीकरणं अस्ति। मिथ्यारोपकारिणः, नार्याः सम्मानं अस्तित्वं च न स्वीकुर्वन्तः समाजस्य अस्वीकरणीयस्य गर्वयुतवर्चस्वस्य च अस्वीकरणम् दर्शितम् महाकविना।

"एशा नीचकृमिष्चरित्रं शंकते नारको रजकः प्रकृत्या दुर्मतिः।
क्षालितं वसनं तु तेनाऽजीवनं मानसं न तमोऽद्ययावत्क्षालितम्।।" (18)

अनेन श्लोकेन नारीतिरस्काररूपं मानसं तमो क्षालयितुं संदेशः दतः कविना। यः कोऽपि निराधारं नार्याः चरित्रं शंकतें सः नीचप्राणी नात्र संदेहः।

अत्र नारी–सशक्तीकरणस्य सशक्तया उद्घोशः कृतः ।

मानवाधिकाराणां स्थापना –

महाकाव्येऽस्मिन् व्यक्तिविशेशस्य अधिकाराणां सार्वभौमिकं स्वीकरणंए धरायां अस्यां प्रत्येकं जनः स्वतन्त्रः परमेश्वर दता धिकारयुक्तः च अस्ति। तस्य अधिकाराणां हननं नैव कर्तुं शक्यते।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः .....इति।" (19)

वैयक्तिक–स्वतन्त्रतायाः, प्रत्येकं मानवस्य समृद्धेः च या कामना उद्घोशणा वा कृता वेदेशु सा जानकी–जीवने पोषणं प्राप्तवती।

प्रजाधिकाराणां वर्णनं कुर्वन् श्लोकोऽयम् दर्शनीम्–

"पौराः इदं पावनरामराज्यं हिनस्ति वैयक्तिक पारतन्त्र्यम्।
राजोऽधिकारे प्रकृतिर्न बद्धा प्रजाधिकारे नृप एव बद्धः।।" (20)

अत्र स्पष्टमुक्तं प्रजाधिकाराणां रक्षणं नृपस्य कर्तव्यम् अस्ति। कस्यापि अधिकारः नास्ति यत् सः अपरजनस्य चरित्रे मिथ्याक्षेपं कुर्यात्। यदा रजकः सीताचरित्रविशये अपशब्दान् अकययत् तदा सः राजसभायां समाहूतः आसीत् तस्य मतं च उपस्थातुं कथितः आसीत् यथा"दृढा मतिस्ते यदि तत्स्वकीयं मतं हयुपस्थापय निर्विशंकम्।
सीताविरूद्धं वदसि त्वमेकश्चान्येऽपि वा तद्भविता प्रकाशम्।।" (21)

अत्र सीता केवलं महाराज्ञी नास्ति अपितु समस्तनारीणां प्रतिनिधित्वं करोति। नारी अपि सार्वभौमिक–मानवाधिकाराणां अधिकारिणी अस्ति। अपि च जानकीजीवने वर्णितं यत् वैयक्तिक–स्वातन्त्र्यं रामराज्ये पूर्णतया समर्थितं

यथोक्तं श्लोकेऽस्मिन :–

"पौराः इदं पावनरामराज्यं हिनस्ति वैयक्तिक–पारतन्त्र्यम्।
राजोऽधिकारे प्रकतिर्न बद्धा प्रजाधिकारे नृप एव बद्धः।।" (22)

गुरोः गुरूत्वं – गुरोः गुरूत्वं यदस्माकं शास्त्रेशु अभिहितं तद् जानकीजीवने अपि अभिव्यंजितम्।

बालकाः तदैव संस्कारिताः भवन्ति यदा ते उत्तमगुरोः समीपे प्रेषिताः पठनार्थं। गुरोः महत्वं अस्मिन् श्लोके दर्शनीयमस्ति।

"गुरूकुलाश्रयणस्य वयोन्विदं जनकजे–स्वयमेव विचारय।
क्व खलु लभ्य इह प्रथितो गुरूश्चिरयशा वलमीकजसन्निभः।।" (24)

रामः जानाति यत् गुरूं बिना ज्ञानं नास्ति।

अत एव सः वाल्मीकिसमक्षं निवेदयति

यत् भवान् लवकुशौ पाठयतु। "सविनयं पुनरेव निवेद्यते जनकजातनयौ यदिमौ भवान्।
गुरूकुलेऽप्युपनीय निजाश्रये प्रविदधातु यथारूचि संस्कृतौ।।" (25)

श्रीरामः राजा अस्ति तथापि सः गुरोः वशिष्ठस्य परामर्शं बिना तस्य आज्ञां बिना च किमपि कार्यं न करोति। अस्याभिप्रायो अयं नास्ति यत् सः अज्ञानी अस्तिः अथवा असमर्थो वा अस्ति अपितु गुरूोः सम्मानः एव अत्र कारणं।

<u>लोकतन्त्र सम्मतं राज्यम्–</u>

राज्यम् लोकतन्त्रसम्मतं भवेत इति राज्ञः कर्तव्यः भवति। अत्र प्रजाहितं सर्वोपरि भवति लोकतन्त्रे। रामराज्ये सभायां एव सर्वेशां विशयाणां विवादानां वा निर्णयं क्रियते स्म। अत्र राजा निरंकुशो भवितुं न शक्नोति। रामस्य मन्त्रिमण्डले सर्वेषां वर्गाणां प्रतिनिधित्वं आसीत्। तत्र सर्वेशां वर्गाणां जनाः कलाकाराः, सेनानां प्रमुखाः, वशिष्ठः मन्त्रिणः च मन्त्रिमण्डलस्य सदस्याः आसन्। सीतायाः जनापवाद विषये अपि सभायां एव सर्वेषां समक्षं पक्षः स्थापितः। राज्ञः निरंकुशत्वं निवारयितुं श्लोकोऽयं प्रमाणत्वेन पठनीयः–

"भूपतिर्न निरंकुशत्वं यास्यति चेश्टिते मयि तद्दिधास्येऽप्यकुशम्।" (26)

वशिष्ठः सीतापवादविशये अपि रामं सम्मार्गे प्रेरयति यतः सः न केवलं कुलगुः अस्ति रामस्य अपितु तस्य लोकतन्त्र –सम्मतमन्त्रिमण्डलस्य अपि सदस्यः आसीत्।

यथा श्लोकेऽस्मिन्

"भार्येव सीता नहि राद्यवस्य प्रजाऽपि सा प्राप्ताधिकारा ।
सौभाग्यलक्ष्मी रघुवंशिनां सा पौरप्रजानामपि पट्टराज्ञी।।" (27)

लोकतन्त्रे सर्वे वर्गाः समानाः भवन्ति । परं अस्माकं समाजं वर्णाधारित–भेदभावः गहनतया प्रचलितः अस्ति। शुद्राः समाजस्य अगंत्वेन अपितु मानवत्वेन एव न स्वाक्रियते स्म। समाजस्य अन्यैः वर्गैः परं महाकाव्य अस्मिन मानवतायाः संदेशः दतः राममाध्यमेन। रामः शबर्या खादितानि बदरीफलानि अखादत्। पुत्रवत् जटायोः संस्कारं अपि अकरोत। अनेन सिद्धयंते यत् महाकाव्ये दलितोत्थानाय उदाहरणं प्रस्तुतम् यथा – "प्रेम्णा शवर्या वशगो जद्यास–यो दण्डकायां बदरीफलानि।
स्वादावधोधाय तयैव पूर्ण भुक्तानि.....।" (28)

अतः रामस्य समदर्शिचरित्रेण लोकतन्त्रं सुदृढं जातम्।

<u>जानकीजीवनं न रामसीतयोः जीवनस्य चित्रं प्रस्तौति</u> अपितु आदर्शजीवनस्य प्रतीकभूतानां जीवनमूल्यानां अपि चित्रणं करोति। महाकाव्यं पठयित्वा पाठकाः रामादिवत् व्यवहर्तुं प्रेरिताः भवन्ति रावणकर्म च त्याज्यं मन्यन्ते । इदमेव कवेः कवित्वं भवति यदि सः स्वकाव्यमाध्यमेन जनानां संवेदनां स्पृषति ,जनाः तस्य काव्ये स्वत्वं अनुभवन्ति तथा च तस्य काव्यं जनान् विचारयितुं विवशीकरोति। यदि काव्यं जनानां सदगुणेशु श्रद्धां संवेदनां उत्पादयति ,दुर्गुणेशु च अश्रद्धाम्। समाजे व्याप्तेशु कुप्रथासु कुरीतिशु च प्रहारं करोति तदैव कवेः कवित्वं काव्यस्य च काव्यत्वं भवति। आचार्य–विश्वनाथेन कथितं – "वाक्यं रसात्मकं काव्यं।" अत्र तु रसराजः करूणरसः काव्यस्य कारणत्वेन विराजते।: रसराजकरूणरसोद्भवं महाकाव्यं जानकीजीवनं मानवमूल्यानां उद्भवस्थलं भवति। हृच्चित्रं प्रस्तौति महाकाव्यमिदं। यद्यपि कथानकं अस्य रामायणात् अनुप्राणितं परं तथापि रामायणे वर्णितानां विवादयुक्त प्रसंगानामपि सर्वग्राह्यं विवादरहितं रूपं अत्र प्रस्तुतं कृतमस्ति । यथा रजकस्य कथनमात्रेण सीतानिर्वासनं नैव क्रियते अपितु वशिश्ठस्य ज्ञानाग्निः तत् लोकापवादरूपं कलंकं भसमीकरोति तथा नारीचरित्रं केवलं शंकाधारेण नैव दूशयितुं शक्यते। अपि च अत्र सीतायाः जीवनं आधारीकृत्य नारीगौरवमेव वर्धितं कविना। अस्य महाकाव्यस्य नामकरणं अपि सीताजीवनाधारितं भवति। इदमपि वर्तमान समाजानुकूलं नवीनं श्लाध्यं च परिवर्तनं अस्ति। अनेन नारीगौरवरूपजीवनंमूल्यं गौरवं प्राप्नोति। संपूर्णमहाकाव्यं जीवनमूल्यैः अनुस्यूतमस्ति। लोकहितोपकारकचरित्रं, लोकमर्यादास्वार्थत्यागसदाचारशीलगुणैः समन्वितं आदर्शजीवनं

,सत्यविजयस्य संदेशः, दाम्पत्यप्रेमहत्त्वं ,लोकतान्त्रिकमूल्यानां समावेशः, नीतिसम्मतराज्यस्य संदेशः, राज्ञः निरंकुशतायाः विरोधः, समाजे स्त्रीणां सम्मानयुतं स्थानं ,मर्यादाहीनाचरणस्य अस्वीकार्यता, सम्बन्धानां पवित्रता, गुरोः महत्त्वं ,राज्ञः पराक्रमेण शान्तेः सद्भावनायाः च संदेशः, अतिथिसत्कारः , भेदभावरहित समाजस्य स्थापना, मानवाधिकाराणां च समर्थनं इदं सर्वं दृष्टवा आत्मना अनूभूय च कथयितुं शक्यते यत् महाकाव्यं इदं न केवलं जानकीजीवनं अपितु मानवमूल्यानां अपि जीवनं प्राणभूतं वा अस्ति। सर्वेशां मानवगुणानां वर्णनं अत्र कृतं कविना। जानकीजीवने वर्णितानि मानवमूल्यानि व्यक्तिविशेशाय, समाजाय ,परिवाराय, राश्ट्राय च हितकराणि सन्ति। मानवस्य समाजस्य सार्वांगिकः संपूर्णः च विकासः एव मानवमूल्यानां उद्देश्यं भवति। भतृहरिणा तु इदमेव उक्तं यत् संगीतकलादिहीनः जनः पशुसदृशः भवति।

"येशां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः। ते मर्त्यलोके भुवि भारभूताः मनुश्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ।।" (29)

अतः मानवमूल्यैः विना न तु मानवः एव मानवः, न तु साहित्यं एव साहित्यम्। महभारतस्य शांतिपर्वणि उक्तं यत् मनुष्यात् किमपि श्रेष्ठतरं न अस्ति। परं मानवमूल्यैः एव मनुश्यः मनुष्यः भवति। प्राचीनकाले तु मूल्यानां अतीव महत्वं आसीत् । चाणक्यनीतिशुक्रनीतिनीतिशतकादिग्रन्थानां प्रसिद्धिः एतदर्थमेव अस्ति। सत्यमेव उक्त "हमने माना हो फरिश्ते शेखजी ।
आदमी होना बडा दुशवार है।।" (30)

अतः मानवमूल्यैः मनुष्यं श्रेष्ठं कर्तुं जानकी जीवनं सर्वोतम महाकाव्यम्।

संदर्भसंकेंताः –

1 काव्यदर्श – 1.4 पृ0 4 12 जानकीजीवनं –4.15
22 जानकीजीवनं – 18.45
2 वाक्यपदीय 1.1 पृ0 2 13 जानकीजीवनं –7.33
24 जानकीजीवनं – 19.44
3 अथर्ववेद 3.30.3 पृ0 34 14 जानकीजीवनं– 15.61
25 जानकीजीवनं – 19.34
4 ईशावास्योपनिशद , मंत्र 1, पृ014 15 जानकीजीवनं –17.48
26 जानकीजीवनं – 17.54
5 अथर्ववेद 3.30.2 पृ0 34 16 जानकीजीवनं –15.61
27 जानकीजीवनं – 18.67
6 जानकीजीवने 15 -78 17 जानकीजीवनं– 11.6
28 जानकीजीवनं – 18.35
7 चाणक्यनिति 18 जानकीजीवनं –17.44
8 जानकीजीवनं –11.101 20 जानकीजीवनं –18.45
9 जानकीजीवनं 18.71 21 जानकीजीवनं –18.48
29 नीतिशतकम बाई महाराजा भतृहरि 12 पृ0 20
30 नीतिशतकम बाई महाराजा भतृहरि पृ06

संदर्भग्रंथा –

1 वी0 पी0 रंगाचार्य 1938 , काव्यादर्श आफ दण्डी भण्डारकर इस्टीटयूट प्रैस, भण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इस्टीटयूट , पूना न0 4 (इंडिया)
2 भतृहरि,(आचार्यरामगोबिंदशुक्लसंपादित) 1961 ,वाक्यपदीय ,चैखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी–1
3 अथर्ववेद संहिता भाग–1 vedpuran.files.worldpress.com (instapdf.in)12.12.2021
4 ईशावास्योपनिशद भाग–1 गीता प्रेस गोरखपुर
5 भतृहरि (Translated By P ज्वालादत शर्मा ) 1909, नीतीशतकम्बाई महाराजा भतृहरि , धर्म दिवाकर प्रेस मुरादाबाद
6 अभिराजराजेन्द्रमिश्र 1988 जानकीजीवनं, वैजयन्त प्रंकाशन इलाहाबाद
7 विश्वमित्र शर्मा 2013 ,सर्म्पूण चाणक्य नीति, चाणक्य सूत्र और जीवन गाथा, मनोज पब्लिकेशनस 761 मेन रोड बुराडी दिल्ली–110084 (Drive.Google.com )(instapdf.in) 13.12.2021

**डिम्पल**
**शोध छात्रा**
ओम स्टलिंग ग्लोबल
विश्वविद्यालय, हिसार
(हरियाणा)

20

# अथर्ववेद में भूमि

डॉ. दानपति तिवारी

**सारांश** –

भारत एक कृषिप्रधान देश है। यहाँ कृषिकार्य हेतु जलवायु की अनुकूल स्थिति के साथ–साथ भूमि की नितान्त आवश्यकता है, क्योंकि कृषि का आधार भूमि ही होती है। कृषिकार्य जल और आकाश में किसी भी प्रकार से सम्भव नहीं है। भूमि की इसी महत्ता का अवलोकन करके अथर्ववैदिक ऋषि ने अथर्ववेद के 63 मन्त्रों में पृथिवी की स्तुति की है। ये मन्त्र अथर्ववेद के बारहवें काण्ड के प्रारम्भ में स्थित हैं। इसमें कृषिकार्य को ध्यान में रखते हुए भूमि का पर्याप्त वर्णन किया गया है। अथर्ववेद के इस सूक्त में सर्वप्रथम भूमि को माता की संज्ञा देते हुए ऋषि स्वयं को भूमिपुत्र कहता है–

यत् ते मध्यं पृथिवि यच्च नभ्यं
यास्त ऊर्जस्तन्वः संबभूवुः।
तासु नो धेह्यभि नः पवस्व
माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।।
पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।।[1]

अर्थात् हे पृथिवी! जो तुम्हारा मध्यभाग है, जो नाभि का क्षेत्र तथा तथा जो तुम्हारे शरीर से उत्पन्न रस है, उन सबमें हमें धारण करो। हमें पवित्र करो। भूमि माता है, मैं पृथिवी का पुत्र हूँ, पर्जन्य पिता हैं, वह हमारा पालन–पोषण करें।

यह सूक्त अथर्ववेद में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इसमें पृथिवी के स्वरूप और उसकी उपयोगिता का विशद् विवेचन किया गया है। उत्पत्ति से पूर्व पृथिवी की सत्ता समुद्र में जल के भीतर थी। मनीषियों ने उसे अपने पराक्रम से प्राप्त किया। इस पृथिवी का सत्याच्छादित अमर हृदय परम व्योम में स्थित है–

यार्णवेधि सलिलमग्र आसीत्
यां मायाभिरन्वचरन् मनीषिणः।
यस्या हृदयं परमे व्योऽमन्
सत्येनावृतमृतं पृथिव्याः।[2]

अथर्ववेद में पृथिवी अथवा भूमि के महत्त्व को स्वीकार करते हुए उसके पर्याय रूप में अनेक शब्द प्रयुक्त हुए हैं। यथा– 1. वसुधानी (धनों को धारण करने वाली), 2. विश्वंभरा (समस्त संसार का भरण–पोषण करने वाली), 3. प्रतिष्ठा (दृढ़ आधार), 4. विश्वदानीम् (सर्वप्रदाता), 5. हिरण्यवक्षा (हृदय में स्वर्ण को धारण करने वाली), 6. विश्वधायसम् (सबको धारण करने वाली), 7. मन्द्रा, 8. गोपा, 9. कृष्णा, 10. विश्वरूपा, 11. रोहिणी, 12. स्योना (सुखदा), 13. शान्विा, 14. सुरभि आदि।

इसके अतिरिक्त इस वेद में भूमि का निर्वचन करते हुए कहा गया है कि– भूमिर्भूरिधारा। अर्थात् भूमि (पृथिवी) अनेक धाराओं वाली है–

यस्यामापः परिचराः समानी–
रहोरात्रे अप्रमादं क्षरन्ति।
सा नो भूमिर्भूरिधारा पयो–
दुहा मथो उक्षतु वर्चसा।।[3]

शतपथ ब्राह्मण में भी इसका निर्वचन किया गया है–[4]

1. अभूद्वा इयं प्रतिष्ठेति तद् भूमिरभवत्
2. इयं पृथिवी वै भूमिरस्यां वै स भवति यो भवति।

इस प्रकार इन निवर्चनों के आधार पर भूमि शब्द की व्युत्पत्ति 'भू' धातु से हुई है। प्राणियों की उत्पत्ति के कारण इसे भूमि की संज्ञा दी गयी है।

तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार– अभूद्वा इदमिति। तद् भूम्यै भूमित्त्वम्।[5] अर्थात् सत्ता में आने के कारण इसे भूमि कहते हैं।

शब्दकल्पद्रुम के अनुसार– भवन्ति भूतानि अस्याम्।

वाचस्पत्यम् के अनुसार– भवन्ति अस्मिन् भूतानि, भू+मि–किञ्च।

निघण्टु में तो भूमि के 21 नाम गिनाये गये हैं– गौः। ग्मा। ज्मा। क्ष्मा। क्षा। क्षौणिः। क्षितिः। अवनिः। उर्वी। पृथ्वी। मही। रिपः। अदितिः। इळा। निर्ऋति। भूः। भूमिः। पूषा। गातुः। गोत्रा।[6]

इस सूची में सर्वप्रथम प्रयुक्त 'गौः' शब्द का निर्वचन करते हुए आचार्य यास्क ने कहा है कि–

गौरिति पृथिव्या नामधेयम्। यद् दूरङ्गता भवति। यच्चास्याम्भूतानि गच्छन्ति। गातेर्वौकारो नामकरणः।

अर्थात् पृथिवी के दूर तक फैली होने के कारण इसे गौ कहा जाता है। इसका अन्त कहीं दिखाई नहीं पड़ता। गाङ्गतौ धातु है इसमें औकार का प्रयोग करके 'गौ' शब्द बनता है।

अथर्ववेद में भूमि की उर्वराशक्ति का निरूपण करते हुए उच्चकोटि के फसल की प्राप्ति के लिए उसे अत्यन्त उपयोगी माना गया है। यहाँ कहा गया है कि फसल की उत्पादकता हेतु भूमि की स्थितियों का अवलोकन अवश्य करना चाहिए, क्योंकि कुछ फसलों का उत्पादन ढालू जमीन पर तथा कुछ फसलों का उत्पादन पानी लगने वाली भूमि पर अत्यधिक होता है। यहाँ इन बातों को ध्यान में रखते

हुए भूमि का विभाजन किया गया है। यहाँ विभाजित भूमि के दो रूप हैं– 1. उर्वरभूमि, 2. अनुर्वरभूमि।

यहाँ प्रयुक्त उर्वरभूमि का तात्पर्य उपजाऊ भूमि से हे। यहाँ 'खिल्य' शब्द का भी प्रयोग किया गया है जिसका अर्थ 'अनुर्वर' अर्थात् उर्वराशक्ति से रहित भूमि है। जिस भूमि पर प्रकाश, जल और उर्वरक तत्त्व समुचित मात्रा में पाया जाता है वह भूमि उर्वर कहलाती है, इसके विपरीत स्थिति में अनुर्वर भूमि होती है। ऋग्वेद के एकमन्त्र में तीन प्रकार की भूमि (अधित्यका, उपत्यका और समुद्र से लगी भूमि) तथा छः विभागों का वर्णन किया गया है–

तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन् तिस्रो भूमिरमराः षड्विधानाः।[8]

यहाँ प्रयुक्त 'षड् विधानाः' शब्द कृषिकार्य हेतु उपयोगी षड् ऋतुओं की ओर सङ्केत करता है।

अथर्ववेद में भूमि के तीन उपविभाजन भी प्राप्त होते हैं– 1. आर्तना, 2. अपनस्वती, 3. उर्वरा।

पं. सातवलेकर ने 'आर्तना' और 'अपनस्वती' का अर्थ 'युद्ध' और 'यज्ञकार्य' किया है, जबकि सूर्यकान्त ने इसका अर्थ 'ऊषर' तथा 'खननकर्षणयुक्त' किया है। जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। आर्तना शब्द से ही यह स्पष्ट होता है कि जिस भूमि को देखने मात्र से कष्ट हो तथा जिसपर अच्छी फसलों का उत्पादन न हो। इससे यह ज्ञात होता है कि जो भूमि काँटों–रोड़ों से युक्त होती है उसे 'आर्तना' कहा जाता है। यहाँ अनुर्वर भूमि को भी त्रिधा विभाजित किया गया है–

1. ऊषरभूमि, 2. बंजर या परती भूमि, 3. अरण्यभूमि

अथर्ववेद में अनुर्वर भूमि के लिए प्रयुक्त 'बिल्य' शब्द का अर्थ रिक्तस्थान या प्रक्षेप होता है। आचार्य सायण ने इसका अर्थ 'व्रजे' किया है।[9] इसके अतिरिक्त कुछ विद्वानों ने इसका अर्थ पूर्णरूप से ऊषर चारागाह, अनुर्वर, बंजर, अरण्य आदि किया है। कुछ अन्य विद्वान् इसको दो स्वामियों के मध्य की विवादित भूमि भी कहते हैं, जो जुताई–बुआई के अभाव में अनुपजाऊ हो गयी हो।

वैदिककाल में भूमि की माप का भी उल्लेख किया गया है। ऋग्वेद में उल्लिखित है विष्णु देवता ने अपने तीन पाद–प्रक्षेपों से तीनों लोकों को नाप डाला–

प्र विष्णवे शूषमेतु मन्म
गिरिक्षिते उरुगायाय वृष्णे।
य इदं दीर्घं प्रयतं सधस्थ–
मेको विममे त्रिभिरित्पदेभिः।।[10]

यहाँ यह भी कहा गया है कि वरुण देवता ने सर्वप्रथम चारों ओर से सम्पूर्ण पृथिवी को नापा। पृथिव्याः वरिमाणम् अमिमीत्।[11] इस काल में भूमि की माप के लिए बाँस या नरकट से बने डण्डे का प्रयोग किया जाता था जिसको 'तेजन' कहा जाता था। इससे भी यह ज्ञात होता है कि उस समय भूमि वैयक्तिक सम्पत्ति थी। अथर्ववेद में 'तेजनी' शब्द का भी उल्लेख किया गया है। यहाँ ऋभु देवता को कुशलकर्मी मानकर यह कहा गया है कि उनके द्वारा जिस भूमि की माप की जाती थी वह शुद्ध होती थी। ऋग्वेद के दशम मण्डल में भी भूमि की माप के प्रमाण मिलते हैं।[12] यहाँ माप के लिए 'मा', 'प्रमा' और 'प्रतिमा' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें से 'मा' का प्रयोग पृथिवी की माप के लिए किया गया है। वेदों के अतिरिक्त ब्राह्मणग्रन्थों में भी भूमि की माप के प्रमाण प्राप्त होते हैं।

वेदों में भूमि–संरक्षण का भी कथन किया गया है। इसके सन्दर्भ में ऋग्वेद में कहा गया है कि सूर्य देवता अपने प्रकाश द्वारा भूमि का संरक्षण करता है– उर्वरासुः सूरः दृशीके।[13] जहाँ तक भूमिसंरक्षण का प्रश्न है वहाँ अथर्ववेद में इसका बहुत अधिक उल्लेख नहीं किया गया है, किन्तु यत्र–तत्र अवश्य किया गया है। ऋग्वेद में सूर्य के अतिरिक्त वरुण, इन्द्र और पूषा देवता से भी भूमिसंरक्षण हेतु प्रार्थना की गयी है–

इन्द्रः सीतां नि गृहणातु तां पूषा नु यच्छतु।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरामुत्तरां समाम्।।[4]

अथर्ववेद में भूमि का महत्त्व प्रतिपादित करते हुए उसे माता कहा गया है। भूमि की महिमा संसार में सर्वत्र दिखाई पड़ती है। इसके सन्दर्भ में ऋग्वेद में कहा गया है कि भारतभूमि पर जन्म लेने वाला जन्मतः कुलीन होता है। अथर्ववेद के अनुसार मनुष्यों को देवताओं द्वारा प्रारम्भ में ही भूमि का स्वामित्त्व दे दिया गया था। वेदों में दान अथवा संघर्ष द्वारा प्राप्त भूमि का भी उल्लेख किया गया है। अथर्ववेद के अनुसार– भू–स्वामित्त्व की प्राप्ति उत्तराधिकार परम्परा से होती थी। पूर्वजों से प्राप्त भूमि पर उनकी सन्तानों का अधिकार होता था तथा वे सम्पत्ति के स्वामी होते थे। यहाँ यह भी कहा गया है कि पूर्वज अपनी भूमि को पुत्र–पौत्रों के लिए रखते थे। यह वेद कहता है कि अपने मृतक माता–पिता को पिण्डा–पानी देने का कार्य करने के कारण भूमि पर पुत्र का अधिकार होता था। उस समय पुत्रियों को सम्पत्ति का अधिकार प्राप्त नहीं होता था। पुत्र का यह कर्त्तव्य था कि वह अपनी बहन की शादी अच्छी तरह से सम्पन्न करे। यहाँ यह भी कहा गया था कि पुत्री अपने पिता या भाई के घर में खा–पीकर पुष्ट होती रहे। अतः अथर्ववेद के अनुसार उस समय पुत्र को ही भूस्वामित्त्व प्राप्त था, किन्तु पुत्रियों को आदर व सम्मान दिया जाता था। आचार्य यास्क ने विवाह के उपरान्त अपने माता–पिता से दूर चले जाने के कारण उसे 'दूरे हिता–दुहिता' की संज्ञा दी है। यहाँ उन्होंने यह भी कहा है कि उसे पितृकुल से सदैव धनादि की प्राप्ति

भी होती रहती है– दुहिता दुर्हिता। दूरे हिता। दोग्धेर्वा।[15]
वेदोत्तरकाल में जो यह कहा गया है कि 'वीरभोग्या वसुन्धरा' अर्थात् जो बाहुबली है वह पृथिवी का भोग करने योग्य है। इससे यह ज्ञात होता है कि भूमिसंरक्षण हेतु बाहुबल की भी आवश्यकता है, क्योंकि सर्वत्र सम्पत्ति, कृषिभूमि आदि के कारण विवाद की स्थिति पैदा होती रहती है। इन सभी विचारों का उद्भव वैदिक साहित्य से ही हुआ है। ऋग्वेद में तो यहाँ तक कहा गया है कि भूमि का संरक्षण करते हुए अपने शत्रुओं पर आकाश के सदृश विशाल होकर आक्रमण भी करना चाहिए–

द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः श्वसा पृत्सुजनान्।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम्।।[16]

**सन्दर्भ–सूची–**


1. अथर्ववेद–12/1/12
2. अथर्ववेद–12/1/8
3. अ.वे.–12/1/9
4. श.ब्रा.–6.1.1.15, 7.2.1.11
5. तै.ब्रा.–1.1.3.5–8
6. निघण्टुकोश (प्रथमोध्यायः)
7. निरुक्त
8. ऋग्वेद–7/87/5
9. अ.वे. 7.115.4
10. ऋग्वेद–1.154.3
11. ऋग्वेद–8.42.1
12. ऋग्वेद–10.130.3
13. ऋग्वेद–4.41.6
14. ऋग्वेद–4.57.7
15. निरुक्त, 3.1
16. ऋग्वेद–6.20.1



**डॉ0 दानपति तिवारी**
एसो0 प्रो0 एवम् अध्यक्ष : संस्कृत–विभाग
साकेत पी.जी. कॉलेज,
अयोध्या (उ.प्र.)

21

# Stress-relieving effects of Yogic exercise by regulating respiratory rate

**Parbhat Nain**

**ABSTRACT:**

Many meditative and relaxing practices rely on voluntary slowing down of respiratory rate to produce psycho-physiological improvements in brain-body interaction. The detection of mechanisms connecting respiratory regulation to psychological effects, on the other hand, is still a point of contention. The aim of this research is to learn more about the psychological processes that underpin respiration strategies and how they affect people's mental health. According to research, different emotions are linked to different types of breathing, so adjusting how we breathe will affect how we feel. When you're happy, for example, your breathing will be normal, deep, and steady. Your breathing will be irregular, quick, heavy, and shallow if you are nervous or angry.When you follow breathing patterns associated with different emotions, you'll actually begin to feel those corresponding emotions.

**Keyword:** Yoga, Respiratory Rate, Stress, Slow Breathing, Pranayama

**1. Introduction**

Yogic stress management respiration techniques have the power to alter one's mental, physical, emotional, and spiritual well-being. Respiration for stress relief has been shown to help with anger management, anxiety relief, insomnia treatment, increased concentration, and pressure relief. These stress relief breathing exercises are recommended for people who want to communicate with their inner calm and spiritual peace.

Yogic deep breathing for stress relief will help to relax a stressed body and mind. This is because taking a deep breath sends a signal to the brain to relax and calm down. This message is sent to the body by the brain. When you continue to practise yoga breathing exercises for anxiety and stress, all of the stress symptoms such as an elevated heart rate, rapid breathing, and high blood pressure will subside Daily practice of yogic breathing along with meditation, sleep, and mediation focus exercises are enough for a healthy body, mind and spirit.

**Respiration exercises to reduce stress.**

Deep Belly Breathing is a deep respiration technique that sends the breath to the belly to alleviate tension. Deep belly breathing calms the brain's stress response by targeting the largest cranial nerve in the body. Rest your hand on your abdomen and take a deep breathe in, sending the breath all the way from your chest to your belly, before exhaling. Repeat a few times before the exhalation is longer than the inhalation. To achieve harmony, count the lengths of your inhales and exhales. The parasympathetic nervous system is activated, which reduces anxiety and stress.

Kapalbhati is a wonderful yogic respiration practice for stress relief. Begin these stress-relieving breathing exercises by inhaling deeply through the nose and exhaling slowly through the nose while holding the mouth closed. Inhale once more and continue exhaling by pulling the lower abs inwards to push the air out in short spurts. Between each active and rapid exhalation, the inhalation is passive. Aim for 20-30 breaths, then take a few deep or natural breaths before repeating the breathing exercises to relieve tension. For anxiety or stress relief, do yoga breathing exercises. Exhale slowly. It's one of the stress-relieving breathing techniques for beginners.

Slow respiration improves oxygen saturation, decreases blood pressure, and reduces anxiety by increasing cardiac-vagal baroreflex sensitivity (BRS). Slow respiration is often combined with glottis muscle contractions in the yoga tradition. This "Ujjayi" resistance breath is done at different rates and ratios of inspiration/expiration.

Yoga is a mind-body practice that combines physical poses, controlled respiration, and meditation or relaxation. Yoga may help reduce stress, lower blood pressure and lower your heart rate. And almost anyone can do it.

**II. REVIEW OF LITERATURE**

Park and Park (2012) when compared to spontaneous respiration, researchers discovered decreased EEG theta power on the left frontal, right temporal, and left parietal regions, as well as increased alpha power across the entire cortex. EEG alpha strength was positively associated with personality traits such as Harm Avoidance, Novelty Seeking, Persistence, Self-Directedness, and Self-Transcendence (Temperament and Character Inventory subscales).

Fumoto et al. (2004) As compared to spontaneous respiration, voluntary abdominal breathing (Zen Tanden Breathing) at 3–4 b/min decreased alpha peak at 10 Hz on the

EEG and induced significantly higher alpha2 activity (10–13 Hz) in the parietal areas. Participants registered increased vigor-activity in the Profile of Mood States (McNair et al., 1971) subscale scores on a subjective basis and reduced anxiety, evaluated with both Profile of Mood States subscale and State-Trait Anxiety Inventory (Spielberger et al., 1983) (even if the between-condition score difference was not significant)

Yu et al. (2011), during the Zen Tanden era respiration rate at 3–4 b/min resulted in a substantial increase in oxygenated haemoglobin levels in the anterior prefrontal cortex (Brodmann areas 9 and 10), as measured by Near-Infrared Spectroscopy, which was accompanied by an increase in EEG alpha band activity and a decrease in theta band activity as compared to spontaneous breathing. In comparison to the control condition, participants posted lower scores on the Tension-Anxiety, Depression-Dejection, Anger-Hostility, and Confusion subscales of the Profile of Mood States after Zen Tanden Breathing. During 10 b/min paced breathing

Earlier studies have observed an attention/vigilance impairment related to respiration dysfunction in dementia and sleep-disordered breathing in individuals across all ages (Chervin et al., 2006). More recent studies have suggested that there is a bidirectional association between breathing and attention. A growing number of clinical studies have demonstrated that breathing-including meditation may represent a new non-pharmacological approach for improving specific aspects of attention. Mindfulness, for instance, contributes to alerting and orienting, but conflicts with monitoring. In addition, an 8-weeks mindfulness-based stress reduction yielded a larger effect than a 1-month intensive mindfulness retreat, on the attention altering component (Jha et al., 2007). Focused attention meditation is a Buddhist practice, whereby selective attention and the sensation of respiration must be sustained (Gunaratana, 1993/2002; Gyatso and Jinpa, 1995). Three months of intensive focused attention meditation have been found to reduce variability in attentional processing of target tones and to enhance attentional task performance (Lutz et al., 2009). Some studies have investigated cognitive and emotional improvement simultaneously, and have indicated that a brief mental training could enhance sustained attention as well as reduce fatigue and anxiety (Zeidan et al., 2010). Some researchers believe that the relaxation generated by peaceful breathing helped to manage inattention symptoms among children with attention deficit-hyperactivity disorder (ADHD) (Amon and Campbell, 2008). These results led to the development of a breath-controlled biofeedback game called ChillFish, which improved children's sustained attention and relaxation levels (Sonne and Jensen, 2016)

Respiration and mental functions are inextricably related. Respiration is an important part of most meditative practises in the millennia-old eastern tradition, and it is considered a key element in achieving the meditative state of consciousness, or "Samadhi" (Patanjali, Yoga Sutras).Prana is a Sanskrit word that means both "breath" and "energy" (i.e., the conscious field that permeates the whole universe). Prana-Yama (literally, "the stop/control," but also "the rising/expansion of breath") is a collection of breathing techniques aimed at specifically and actively controlling one or more parameters of respiration (for example, frequency, deepness, and inspiration/expiration ratio).Pranayama is primarily related to yoga practice, but it is also part of several meditative practices (Jerath et al., 2006).

## III. Conceptual Framework of The Paper

### Cognitive aspects of respiration

Respiration strategies are deeply entwined with cognitive aspects of meditation, according to heuristics, and their importance in achieving altered states of consciousness is undeniable in eastern culture. A common belief of western culture is that respiration regulation has health benefits such as wellness, relaxation, and stress reduction (googling the terms "pranayama," "wellness," or "stress" yields nearly a million results). Nonetheless, the effects of pure respiration regulation on neural correlates of consciousness and basic mental functions have received little attention in western science.

### Relationship Between Respiration, Thoughts and Mind

*Pranayama is the art of breath control. Maharishi Pantanjali has written in his book Yoga Sutra in sutra (1/34) the practice of pranayama calms the mind.The rate of breathing is reduced by the practice of Kumbak in Pranayama*

Respiration, Mind and Thoughts are closely related to each other like a triangle.

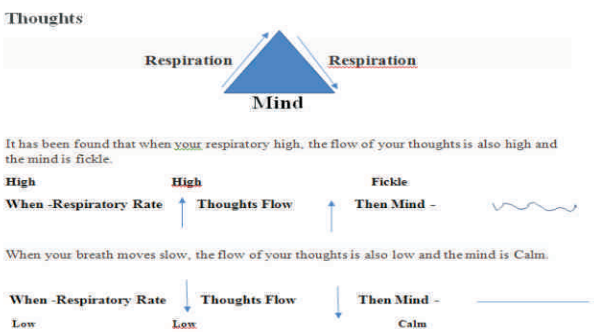

There are positive correlation between the respiration and Thoughts Flow. For example, when you are angry, your respiratory rate is very high and the flow of thoughts is very fast and the mind is fickle.

So what makes breathing so effective? It's very difficult to talk your way out of strong emotions like stress, anxiety, or anger. Just think about how ineffective it is when a colleague tells you to "calm down" in a moment of extreme stress. When we are in a highly stressed state, our prefrontal cortex — the part of our brain responsible for rational thinking — is impaired, so logic seldom helps to regain control. This can make it hard to think straight or be emotionally intelligent with your team. But with breathing techniques of respiration, it is possible to gain some mastery over your mind.

The vagus nerve, which stretches from the brain stem to the abdomen and is part of the parasympathetic nervous system, which controls the body's "rest and digest" behaviors (in contrast to the sympathetic nervous system, which regulates many of our "fight or flight" responses), can be stimulated by changing the rhythm of your breath. Triggering your parasympathetic nervous system helps you start to calm down. You feel better. And your ability to think rationally returns.

Change the ratio of your inhale to exhale to get an understanding of how breathing can help you relax. This is one of many popular stress-reduction techniques that include breathing. Your heart rate increases when you inhale. It slows down when you exhale. Breathing in for four counts and out for eight counts for a few minutes will help to relax your nervous system. Keep in mind:

Although a quick respiration exercise like this can help in the short term, a regular breathing protocol like the SKY Breath Meditation technique can prepare your nervous system for long-term resilience. These basic strategies will help you maintain a sense of well-being and reduce stress at work and elsewhere.

A person's respiration rhythm changes when they are stressed. An nervous person usually takes short, shallow breaths, moving air in and out of their lungs with their shoulders rather than their diaphragm. This way of respiration throws off the body's gas balance. Shallow over-breathing, also known as hyperventilation, can amplify anxiety symptoms by exacerbating physical stress symptoms. Any of these effects can be alleviated by controlling the breathing.

**IV. DISSCUSIONAND CONCLUSION**

Slow respiration strategies have a variety of effects on the autonomic and central nervous systems, as well as the psychological state. Slow respiration techniques cause autonomic changes, such as an increase in Heart Rate Variability and Respiratory Sinus Arrhythmia, which are accompanied by changes in Central Nervous System (CNS) function.

During slow respiration techniques, we discovered evidence of enhanced psycho physiological versatility connecting parasympathetic behavior, CNS behaviors linked to emotional regulation, and psychological well-being in healthy subjects. Increases in HRV and LF intensity, as well as increases in EEG alpha and decreases in EEG theta power, induced by slow breathing techniques at 6 b/min, were found to have consistent associations with positive psychological/behavioral effects. Unfortunately, the lack of consistent methodological explanations that often characterizes slow respiration techniques literature weakens this proof. As a result, further research is required to definitively determine these connections. Only a few writers have attempted to explain the psycho physiological effects of slow breathing techniques in a systematic way, and even fewer have attempted to link them to meditation practice. When compared to other essential mechanisms such as cognitive or affective mechanisms, breathing appears to play a "ancillary" function.

If a quick respiration exercise could aid Jake in such a stressful situation, similar strategies would undoubtedly help the rest of us deal with our everyday workplace stresses. The combination of the Covid-19 pandemic and social justice wars has only added to the distress that many of us experience on a daily basis, and studies indicate that this tension is preventing us from doing our best work. But with the right respiration exercises, you can learn to handle your stress and manage negative emotions.

**V. Suggestions**

Finally, further research is required to separate the pure function of respiration in various meditation techniques. Different approaches (e.g., attention-based and breath-based techniques) can lead to similar states, according to Nash and Newberg (2013).We proposed a brief check-list in this paper that could aid in the improvement of research on this subject. Certain meditative practises and slow respiration techniques can, to some extent, share similar mechanisms, in our opinion. Some converging data exist regarding the mutual relationships between HRV, RSA, theta, and alpha EEG bands activity, the activation of cortical and sub-cortical brain areas, and positive psychological/behavioural outcomes. In addition, the role that nostrils (and more specifically, the olfactory epithelium) play during slow

respiration techniques is not yet well considered nor understood: evidence both from animal models and humans support the hypothesis that a nostril-based respiration stimulating the mechanoceptive properties of olfactory epithelium, could be one of the pivotal neurophysiological mechanisms subtending slow respiration techniques psycho physiological effects.

**References:**


[1]. Aysin, B., & Aysin, E. (2006, August). Effect of respiration in heart rate variability (HRV) analysis. In *2006 International Conference of the IEEE Engineering in Medicine and Biology Society* (pp. 1776-1779). IEEE.

[2]. Dhawan, A., Chopra, A., Jain, R., & Yadav, D. (2015). Effectiveness of yogic breathing intervention on quality of life of opioid dependent users. *International journal of yoga*, *8*(2), 144.

[3]. Brandani, J. Z., Mizuno, J., Ciolac, E. G., & Monteiro, H. L. (2017). The hypotensive effect of Yoga's breathing exercises: A systematic review. *Complementary therapies in clinical practice*, *28*, 38-46.

[4]. Brown, R. P., & Gerbarg, P. L. (2005). Sudarshan Kriya yogic breathing in the treatment of stress, anxiety, and depression: part I—neurophysiologic model. Journal of Alternative & Complementary Medicine, 11(1), 189-201.

[5]. Brown, R. P., Gerbarg, P. L., & Muench, F. (2013). Breathing practices for treatment of psychiatric and stress-related medical conditions. *Psychiatric Clinics*, *36*(1), 121-140.

[6]. Oneda, B., Ortega, K. C., Gusmao, J. L., Araujo, T. G., & Mion, D. (2010). Sympathetic nerve activity is decreased during device-guided slow breathing. *Hypertension Research*, *33*(7), 708-712.

[7]. Stanescu, D. C., Nemery, B., Veriter, C. L. A. U. D. E., & Marechal, C. L. A. U. D. E. (1981). Pattern of breathing and ventilatory response to CO2 in subjects practicing hatha-yoga. *Journal of Applied Physiology*, *51*(6), 1625-1629.

[8]. Homma, I., & Masaoka, Y. (2008). Breathing rhythms and emotions. *Experimental physiology*, *93*(9), 1011-1021

[9]. Jerath, R., Crawford, M. W., Barnes, V. A., & Harden, K. (2015). Self-regulation of breathing as a primary treatment for anxiety. *Applied psychophysiology and biofeedback*, *40*(2), 107-115.

[10]. Park, Y. J., & Park, Y. B. (2012). Clinical utility of paced breathing as a concentration meditation practice. *Complementary therapies in medicine*, *20*(6), 393-399.

[11]. Posadzki, P., Kuzdzal, A., Lee, M. S., & Ernst, E. (2015). Yoga for heart rate variability: a systematic review and meta-analysis of randomized clinical trials. *Applied psychophysiology and biofeedback*, *40*(3), 239-249.

[12]. Saoji, A. A., Raghavendra, B. R., & Manjunath, N. K. (2019). Effects of yogic breath regulation: A narrative review of scientific evidence. *Journal of Ayurveda and integrative medicine*, *10*(1), 50-58.

[13]. Srinivasan T. M. (1991). Pranayama and brain correlates. *Anc. Sci. Life* 11, 2–6

[14]. Yu, W. J., & Song, J. E. (2010). Effects of abdominal breathing on state anxiety, stress, and tocolytic dosage for pregnant women in preterm labor. *Journal of Korean Academy of Nursing*, *40* (3), 442-452.

[15]. Zucker, T. L., Samuelson, K. W., Muench, F., Greenberg, M. A., & Gevirtz, R. N. (2009). The effects of respiratory sinus arrhythmia biofeedback on heart rate variability and posttraumatic stress disorder symptoms: a pilot study. *Applied psychophysiology and biofeedback*, *34*(2), 135.



**Parbhat Nain**
Research Scholar
School of Yoga & Naturopathy
Om Sterling Global University
Hisar

22

# शोध–प्रविधि (संस्कृत विषय के सन्दर्भ में)

**डॉ0 दिनेशमणि त्रिपाठी**

**सारांश** –

जब शोधरत छात्र या छात्रा किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर अपना शोधकार्य सफलतापूर्वक समाप्त कर लेते हैं तथा सम्बन्धित विषय के विशेषज्ञों द्वारा मूल्यांकन के उपरान्त पूर्णतः सफल हो जाते हैं, तो उन्हें सम्बन्धित विश्वविद्यालय द्वारा उस विषय की पी–एच.डी. उपाधि द्वारा विभूषित किया जाता है। पी–एच्.डी. उपाधि का पूर्णस्वरूप डॉक्टर ऑव् फिलॉसफी है। फिलॉसफी शब्द ग्रीक भाषा के 'फिलास' और 'सोफिया' इन दो शब्दों का सम्मिलित रूप है। 'फिलास' का अर्थ अनुराग (प्रेम) और 'सोफिया' का अर्थ ज्ञान है। इस प्रकार यह शब्द ज्ञानानुराग अथवा ज्ञान में अनुराग का वाचक है। डॉक्टर का तात्पर्य वैद्य अथवा विद्वान्–यो वेत्ति। ज्ञान का अर्थ होता है किसी वस्तु को उसके मूलरूप में जानना। इस प्रकार विषय के वास्तविक स्वरूप को जानने–समझने में अनुरक्त होकर जब छात्र या छात्रा (शोधच्छात्र या शोधच्छात्रा) पूर्णज्ञानार्जन में पूर्णतः सफल हो जाता है तब उसे पी–एच्.डी. की उपाधि से अलंकृत किया जाता है। इसका विषयक्षेत्र अत्यन्त ही विस्तृत है, क्योंकि यह उपाधि विज्ञान, कृषि, वाणिज्य और साहित्यादि सभी विषयों के शोधार्थियों को प्रदान की जाती है। इसका कारण यह है कि सभी विषयों के शोधार्थी ज्ञान में तत्पर होकर सम्बन्धित विषयवस्तु के वास्तविक स्वरूप को अच्छी तरह से जान पाते हैं। जहाँ तक संस्कृत–विषय में शोधकार्य का प्रश्न है वहाँ इससे समीक्षात्मक, आलोचनात्मक और विवेचनात्मक आदि पद प्रयुक्त होते हैं। समीक्षात्मक शब्द में प्रयुक्त 'ईक्ष्' तथा आलोचनात्मक शब्द में प्रयुक्त 'लुच्' धातुओं का अर्थ होता है– देखना। कहने का तात्पर्य यह है कि शोधार्थी को किसी महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए पूर्णरूप से विषय का दर्शन करना पड़ता है। विशेषरूप से विषय के स्वरूप को अन्य से पृथक् करके प्रकाशित करना विवेचना है, जो सम्यक् दर्शन के उपरान्त ही सम्भव है। 'डॉक्टर ऑव् फिलॉसफी' का वाच्यार्थ है– 'दर्शन का विज्ञान' तथा दर्शन शब्द का अर्थ है– दृश्यतेऽनेनेति दर्शनम्। अर्थात् वह साधन जिसके द्वारा अपनी विषयवस्तु को अच्छी तरह से देखा जाये।

पी–एच्.डी. के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्दों में 'शोध' शब्द प्रमुख है। यह शब्द 'शुध्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न होता है। इसका अर्थ है– स्वच्छ करना, संवारना, त्रुटियों को प्रकाशित करना। शोधकार्य में वस्तु (विषय) पूर्व की ही होती है शोध द्वारा केवल उसके स्वरूप को स्पष्ट किया जाता है। जैसे एक किसान दवा आदि के द्वारा बीजों का शोधन कार्य करता है तथा उसकी समस्त कमियाँ दूर हो जाती हैं और बीजवपन के योग्य हो जाता है, ठीक उसी प्रकार शोधार्थी भी अपने ज्ञान द्वारा विषय को पूर्णतः शुद्ध करके उसके वास्तविक स्वरूप को शोध–प्रबन्ध के माध्यम से प्रस्तुत करता है।

इस कार्य हेतु 'गवेषणा' (गवेष्+युच्+टाप्) शब्द भी प्रयुक्त होता है। इसका मुख्यार्थ है– 'गाय के लिए इच्छा'। प्राचीनकाल में जब छात्र गुरुकुलों में रहकर अध्ययन करते थे तो उनके द्वारा गुरु की गायों की भी देखभाल किया जाता था। कभी–कभी चरने के लिए गई हुई गायें दृष्टि में नहीं आती थी तब शिष्य को गवेषणा अर्थात् गायों को प्राप्त करने की इच्छा होती थी तथा वे गायों को तन्मयतापूर्वक ढूँढने का कार्य करते थे और गायों को प्राप्त कर लेते थे। यहाँ ऐसा देखा जाता है कि गाय पूर्व से ही विद्यमान थी, परन्तु कुछ समय के लिए दृष्टि से ओझल हो जाने के कारण उसे ढूँढने का प्रयास करना पड़ा। इसी को 'गवेषणा' कहा जाता है। जिस प्रकार यदि कोई मकान जमीन के भीतर दब गया हो तथा स्पष्टरूप से दृष्टिगोचर न हो रहा हो तो उसके सन्दर्भ में जो अध्ययन किया जाता है उसे गवेषणात्मक अध्ययन कहा जाता है।

शोध के लिए प्रयुक्त होने वाले शब्दों में, 'अनुसंधान' (अनु+सम्+धा+ल्युट) भी प्रमुख हैं।' यह शब्द 'अनु' और 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'धा' धातु से निष्पन्न है। जिसका अर्थ है पृच्छा, गवेषणा, गहन परीक्षण या परीक्षण आदि। इसमें प्रयुक्त संधान शब्द का अर्थ होता है– अच्छी तरह से धारण करना। धनुष का प्रत्यञ्चा पर बाण को अच्छी तरह से रखना संधान कहलाता है, परन्तु उसमें त्रुटि हो जाने पर उसे पुनः सावधानीपूर्वक रखना अनुसंधान कहलाता है। इसी प्रकार पूर्व से विद्यमान और विवेचित विषय की पुनर्विवेचना 'अनुसंधान' कहलाती है। शोधकार्य प्रारम्भ करने से पूर्व शोधच्छात्र (शोधार्थी) के समक्ष शोध–विषय के चयन की समस्या प्रमुख रूप से आती है वह इस पर विशेष रूप से अपने पर्यवेक्षक के माध्यम से विचार करता है। इसमें शोध का विषय पूर्व से ही विद्यमान होता है केवल उसका अध्ययन नवीन होता है। इसके सन्दर्भ में

न्यायदर्शन (1/1/1) के भाष्यकार वात्स्यायन ने कहा है कि 'नानुपलबधे न निर्णीतेऽर्थे न्यायः प्रवर्तते, किन्तु संदिग्धे।'

अर्थात् जो वस्तु अनुपलब्ध है उसकी खोज में तथा जिस वस्तु के सन्दर्भ में सार्वभौम निर्णय हो चुका है, उसकी खोज में न्यायदर्शन प्रवृत्त नहीं होता है, वह केवल संदिग्ध वस्तुओं की ही खोज करता है। उसी तरह शोधार्थी भी अनुपलब्ध (खरगोश की सींग के समान) तथा निर्णीत विषय पर शोधकार्य नहीं करते हैं। उनका प्रमुख कार्य समस्याप्रधान संदिग्ध विषयों पर शोध करना है। यहाँ शोध की विषयवस्तु तो प्राचीन होती है, जबकि शोधार्थियों द्वारा की गयी विवेचना नवीन होती है।

शोध के लिए आंग्लभाषा का रिसर्च (Research) शब्द भी प्रयुक्त होता है। सर्च का तात्पर्य है– मौलिक खोज। इसमें वस्तु का रूप स्थित होता है। जब हम उसका रिसर्च करते हैं तो उसकी त्रुटियों या अच्छाइयों पर प्रकाश डालते हुए त्रुटियों का परिमार्जन करते हैं।

शोधार्थी इस पर भी विचार करता है कि शोध की यह परम्परा कब से चल रही है?जब हम अपने प्राचीनकाल का अवलोकन करते हैं तो मनुष्य की विचारशीलता पर प्रकाश अवश्य पड़ता है। आदिमानव वन में रहकर स्वच्छन्द और प्राकृतिक जीवन व्यतीत करता था। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि उसे समय आग, पानी, वस्त्रादि का भी सम्यक् ज्ञान नहीं था, किन्तु वही मानव शनैः शनैः अपनी आवश्यकता के अनुसार आज के वैज्ञानिक युग तक पहुँच गया तो इसके पीछे उसका शोध ही कारण था, क्योंकि आवश्यकता ही आविष्कार की जननी होती है।

जब हम संस्कृत विषय की दृष्टि से शोध–परम्परा का अवलोकन करते हैं तो हमें इस साहित्य की सार्वभौमिक विशालता का ज्ञान होता है। इस साहित्य में साहित्य के अतिरिक्त धर्म, दर्शन, विज्ञान, राजनीति, समाज और अर्थव्यवस्थादि विषयों के मौलिक तथ्य समाहित हैं। यह सभी विषयों की जननी है। अतः इसमें सभी विषयों के उद्भव और विकास की परम्परा सम्प्रति भी प्रवहमान है। सर्वप्रथम वैदिकसाहित्य का सृजन हुआ तत्पश्चात् उनका रहस्योद्घाटन करने के निमित्त उनके व्याख्येय ग्रन्थ के रूप में ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, वेदाङ्ग तथा अनुक्रमणी–साहित्य की सर्जना की गयी। वेद मूलतः वही है, परन्तु विद्वानों द्वारा उन पर अपने मतानुसार पृथक्–पृथक् भाष्य लिखे गये। यह एक प्रकार की शोध–परम्परा का ही परिणाम है। उसी प्रकार साहित्यादिशास्त्रों का भी क्रमिक विकास हुआ जिसमें परवर्ती आचार्यों द्वारा अपने पूर्ववर्ती आचार्यों के सिद्धान्तों का खण्डन या मण्डन करके अपने सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया गया तथा यह शोध–परम्परा अद्यतन भी अनवरत रूप से संचालित हो रही है। इसी प्रकार, व्याकरण और दर्शनादि के क्षेत्र में भी अनेक मत और उनके क्रमिक विकास की परम्परा प्राचीन समय के साथ ही साथ शोध के माध्यम से आज भी चल रही है।

**शोध का क्षेत्र एवं प्रकार**

शोध–कार्य की दृष्टि से संस्कृत विषय एक विस्तृत क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करता है। इसके अन्तर्गत काव्य और उनके साथ–साथ धर्म, दर्शन, विज्ञान, समाज और राजनीति आदि अनेक विषय समाहित हैं। काव्यों का साहित्यिक व शास्त्रीय विवेचन तथा शास्त्रों में काव्य–योजनात्मक विवेचन आदि भी संस्कृत विषय के प्रमुख शोध–कार्य हैं। संस्कृत विषय के शोधकार्य के क्षेत्र अधोलिखित हैं–

**1. साहित्यिक अध्ययन**– साहित्यशास्त्र से सम्बन्धित कथावस्तु, नायक–नायिका, पात्र–संयोजन, रस, गुण–दोष, अलंकार तथा रीति (शैली) आदि की दृष्टि से किसी काव्य (श्रव्य) की विवेचना (समीक्षा) की जाती है तथा नाट्यशास्त्रीय दृष्टि से (दृश्य) काव्य की समीक्षा को साहित्यिक अध्ययन कहा जाता है। यहाँ तुलनात्मक अध्ययन भी किया जाता है।

**2. ऐतिहासिक अध्ययन**– इसके अन्तर्गत किसी विषय या वस्तु का उद्भव और क्रमिक विकास आता है।

**3. तुलनात्मक अध्ययन**– इसके अन्तर्गत समान तथ्यों पर आधारित दो विषयों की परस्पर तुलना की जाती है।

**4. शास्त्रीय अध्ययन**– संस्कृत–साहित्य के विभिन्न शास्त्रों तथा उनमें निहित विविध तथ्यों का अध्ययन शास्त्रीय अध्ययन की श्रेणी में आता है।

**5. जीवनोपयोगी अध्ययन**– संस्कृत साहित्य से हम जीने की कला सीखते हैं। इसके अन्तर्गत विश्वबन्धुत्त्व की भावना, परोपकार, दया, क्षमा, सदाचार और राष्ट्रप्रेमादि से सम्बन्धित तथ्य आते हैं। इसमें पर्यावरण और मनोरंजन का भी अध्ययन किया जाता है।

शोध–कार्य हेतु निर्धारित विषयवस्तु में अध्ययन की दृष्टि से साहित्यिक अध्ययन, समीक्षात्मक, तुलनात्मक, विवेचनात्मक, ऐतिहासिक, दार्शनिक, व्याकरणात्मक, समाजशास्त्रीय, आध्यात्मिक और आलोचनात्मक अध्ययन आते हैं अथवा इनका प्रयोग किया जाता है।

इस संस्कृत विषय की गम्भीर गवेषणा हेतु शोधच्छात्र और शोध–निर्देशक का भी चयन विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा निर्धारित एक निश्चित योग्यता से होता है। इस विषय के अन्तर्गत विविध विषय समाहित हैं यथा– साहित्य, वेद, व्याकरण, दर्शन, धर्मशास्त्र, पुराणेतिहासादि। अतः शोधार्थी को अपनी रुचि और अनुकूल विषय का ही चयन करना चाहिए। किसी ऐसे विषय पर शोधकार्य नहीं करना चाहिए जो उनके अनुकूल न हो। शोध–विषय का चयन शोध–निर्देशक के परामर्श से ही करना चाहिए तथा शोध–निर्देशक का यह परम कर्त्तव्य है वे उसी विषय पर शोधकार्य कराना सुनिश्चित करें जिसमें उनकी रुचि और विशेष योग्यता हो, क्योंकि सही पथ–प्रदर्शक ही इस कार्य को सही गन्तव्य तक पहुँचाने में समर्थ होता है। शोध–विषय का चयन शोधार्थी को बहुत ही सोच–विचार कर करना चाहिए। शोध–विषय के महत्त्व पर पूर्ण–रूप से ध्यान देते हुए विषय का चयन करना चाहिए तथा यह तभी सम्भव हो सकता है जब शोधार्थी को अपने विषय का सामान्य ज्ञान अवश्य हो। विषयचयन के पश्चात् शोध–संक्षिप्तिका तैयार करते समय अधोलिखित तथ्यों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. शोधकार्य के विषय–चयन के महत्त्व पर सर्वप्रथम प्रकाश अवश्य डालना चाहिए। शोधार्थी द्वारा चयनित शोध–विषय की क्या उपयोगिता है?शोधार्थी द्वारा इसका उल्लेख करना नितान्त अनिवार्य हे।

2. शोधार्थी द्वारा जिस शोध–विषय का चयन किया गया है उससे सम्बन्धित पूर्वकृत शोध–साहित्य का सर्वेक्षण उसके द्वारा अवश्य किया जाना चाहिए। उस विषय में अब तक क्या कार्य किया गया है?इसका ज्ञान साहित्यिक सर्वेक्षण के द्वारा ही हो सकता है। शोधार्थी द्वारा उस विषय में पूर्वकृत कार्य का उल्लेख अपनी शोध–संक्षिप्तिका में अवश्य किया जाना चाहिए। 'सहितयोः शब्दार्थयोः भावः साहित्यम्' के अनुसार शब्द और अर्थ का एक साथ होना ही साहित्य कहलाता है। केवल काव्य को ही साहित्य नहीं माना जा सकता है। इसका क्षेत्र अत्यन्त ही विस्तृत है। इतिहास भी साहित्य है, क्योंकि इसमें भी शब्दार्थ की समष्टि होती है।

3. शोध–कार्य की पूर्णता के पूर्व ही उसकी सम्भावनाओं पर विचार अवश्य करना चाहिए। इसको 'प्राक्कल्पना' कहा जाता है। जब शोधार्थी शोध–कार्य कर रहा हो तो आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्तन भी कर सकता है। पुनः शोधकार्य के समय अध्यायों के अन्तर्गत तथ्यों को जोड़ना या कम करना विषय–निरूपण की आवश्यकता पर आधारित होता है।

4. विषय और शोध का सम्पूर्ण विवरण 'भूमिका के अन्तर्गत आता है तथा भूमिका का लेखनकार्य शोध–प्रबन्ध की पूर्णता के पश्चात् शोधार्थी द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त अध्यायों का विभाजन भी किया जाता है। जैसे यदि किसी काव्य का साहित्यिक सर्वेक्षण करना है तो भूमिका के पश्चात् उसका विभाजन अधोलिखित अध्यायों में किया जा सकता है–

किसी काव्य के साहित्यिक अध्ययन हेतु 'वस्तुनेतारसास्तेषां भेदकाः'' के आधार पर तीन अध्यायों में विभाजन किया जा सकता है– प्रथम अध्याय–कथावस्तु, द्वितीय अध्याय–नायक–नायिका तथा अन्यपात्र, तृतीय अध्याय– रस–निरूपण, चतुर्थ, पञ्चम और षष्ठ अध्याय के लिए आचार्य विश्वनाथादि के सिद्धान्त को स्वीकार किया जा सकता है, जो किसी भी उत्कृष्ट के काव्य हेतु होते हैं। यथा– गुण, अलङ्कार तथा रीतियाँ– कहा भी गया है कि 'उत्कर्षहेतवः प्रोक्ताः गुणालङ्काररीतयः'। इस प्रकार चतुर्थ अध्याय में गुण–दोष निरूपण, पञ्चम अध्याय में अलङ्कार–विवेचन तथा षष्ठ अध्याय में रीति–निरूपण किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत काव्य या नाटकादि के रचनाकार का सम्पूर्ण परिचय व उसकी साहित्यिक उपलब्धियों पर भी प्रकाश डाला जाता है। शोध–प्रबन्ध के अन्त में निष्कर्ष स्वरूप उपसंहार होता है। इसी प्रकार किसी भी काव्य के साहित्यिक अध्ययन में चाहे वह स्वतन्त्र रूप से हो अथवा दो ग्रन्थों का तुलनात्मक अध्ययन हो उसे भूमिका तथा उपसंहार के साथ उपर्युक्त अध्यायों में विभाजित करके यह महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पादित किया जा सकता है। इसी प्रकार, हम वेद, दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष, पुराणादि के तथ्यों के आधार पर अध्यायों का विभाजन तथा अन्य शास्त्रों और जीवनोपयोगी तथ्यों की दृष्टि से अध्यायों का विभाजन कर सकते हैं।

अध्यायों के वर्गीकरण के पश्चात् सम्भावित सन्दर्भग्रन्थों की सूची अकारादि वर्णक्रम में देनी चाहिए। इसमें सर्वप्रथम मूलग्रन्थ, उसके पश्चात् समालोचनात्मक ग्रन्थ तथा अन्त में पत्र–पत्रिकाओं का उल्लेख करना चाहिए।

**डॉ0 दिनेशमणि त्रिपाठी**
प्रधानचार्य
एल0 पी0 के0 इन्टर कालेज.
सरदार नगर बसडोला (गोरखपुर)
उ.प्र.

23

# दलित साहित्य की अवधारण

समिता, डॉ0 जयशंकर तिवारी

**सारांश** –

दलित साहित्य दलितों के मानवीय–मुक्ति के चिन्तन का आधार स्पश्ट करता है। यह आक्रोश, नकार चेतना और अस्मिता के पहचान की अभिव्यक्ति है जिसे कँवल भारती जी ''दलित साहित्य का मुक्तिकाल'' कहते है। देशकाल की परिस्थितियों के अनुसार समाज में समय–समय पर परिवर्तन होता रहता है, और साहित्य इसी समाज का साक्षी होता है। देश की विविधता के अनुरूप साहित्य में भी विविधता है अस्तु दलित साहित्य का भी अपना अलग वैचारिक आधार है। दलित साहित्य 'दलित' उत्थान के लिए लिखा गया साहित्य है। यह एक ऐसा साहित्य है जो अनुभूति के कड़वे सच पर आधारित है, जो जमीन से जुड़े दलित, शोषित, उपेक्षित वर्ग से सम्बन्धित दशा और दिशा को बताता है। दलित साहित्य के कुछ अपने मूलभूत सिद्धांत हैं– समाज में समता, बंधुता, स्वतंत्रता स्थापित करने के लिए तथा कथित उच्चवर्ग के लोगों के आन्तरिक असमानता अन्याय और सामाजिक व धार्मिक विशमताओं के विरूद्ध एहसास जागृत करने की शक्ति ही दलित साहित्य में उनकी कड़ी मेहनत के संघर्ष से निकली आवाज, उत्पीड़न की व्यथा, भूख–प्यास में दृष्टिपात होता है। यह काल्पनिक साहित्य नहीं है, न ही किसी का यशोगान करना इसका उद्देश्य है और न ही यह आत्मसंतुष्टि के लिए लिखा गया साहित्य है। दलित साहित्य आम लोगों का भुगता हुआ साहित्य है।

यद्यपि 'दलित' शब्द का आविर्भाव कहाँ से हुआ–इसका कोई पुश्ट प्रमाण नहीं मिलता है। किसी ने अनुसूचित जाति को बदनाम करने के कारण इसका प्रयोग किया–इसका भी कोई सीधा प्रमाण नही है। शब्दों की उत्पत्ति का एक विकास क्रम होता है। वह कहते सुनते, लिखते पढ़ते प्रचलन में आने लगते हैं और कुछ दिन बाद उनका अस्तित्व निर्धारित हो जाता है। 'दलित' शब्द के साथ भी ऐसा ही हुआ। 'दलित' शब्द सबसे पहले 1831 की मोल्सवर्थ डिक्शनरी में पाया गया। डॉ0 ऑम्बेडकर ने भी दलित शब्द का प्रयोग अपने भाशणों में किया है। ''1921 से 1926 के बीच दलित शब्द का प्रयोग स्वामी श्रद्धानन्द ने भी किया था। दिल्ली में दलितोद्धार सभा बनाकर उन्होंने दलितों के सामाजिक स्वीकृति की वकालत भी की थी। डॉ0 ऑम्बेडकर अधिकतर 'डिप्रेस्ड क्लास' शब्द का ही प्रयोग करते थे। अंग्रेज भी इसी शब्द का प्रयोग करते थे, और फिर यहीं से 'दलित' शब्द बना।''[1]

सन् 1972 में महाराश्ट्र में 'दलित पैंथर्स' नामक एक सामाजिक, राजनीतिक संगठन बनाया गया। प्रारम्भ में नामदेव ढसाल, राजा ढाले और अरूण कांबले प्रमुख नेताओं में शामिल थे। इसका गठन अफ्रीकी–अमेरिकी 'ब्लैक पैंथर्स' आन्दोलन से प्रभावित होकर किया गया था। यहीं से 'दलित' शब्द को महराश्ट्र में सामाजिक स्वीकृत मिल गई किन्तु अब तक 'दलित' शब्द उत्तर भारत में प्रचलित नहीं हुआ था।

''उत्तर भारत में 'दलित' शब्द को कांशीराम ने प्रचलित किया। दलित शोशित समाज के संघर्ष के बाद उत्तर प्रदेश में अब पिछड़े और अति पिछड़े वर्ग को दलित कहा जाने लगा।''[2]

1943 में 'अणिमा' नामक ग्रंथ संग्रह में लिखी एक कविता में राष्ट्र कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने भी 'दलित' शब्द का प्रयोग किया था। जो इसकी भी पुष्टि करता है कि यह शब्द प्रचलन में तो था, किन्तु बड़े पैमाने पर प्रयोग नहीं किया जाता था।

'दलित' शब्द का अभिप्राय पूर्णतः पीड़ित, शोषित, दबा हुआ, खिन्न उदास, टुकड़ा, खण्डित, तोड़ना, कुचलना, दबा हुआ, पिसा हुआ, मसला हुआ, रौंदा हुआ, विनष्ट हुआ था लेकिन अब अनुसूचित जाति को दलित बताया जाता है। अब 'दलित' शब्द पूर्णतः जाति विशेष को बोला जाने लगा। हजारों वर्षों तक अस्पृष्य या अछूत समझी जानी वाली उन अनेक शोषित जातियों के लिए सामूहिक रूप से यह प्रयुक्त होता रहा है जो हिन्दू धर्म शास्त्रों द्वारा हिन्दू समाज व्यवस्था में सबसे नीचे 'चतुर्थ' पायदान पर स्थित हैं और बौद्ध धर्म ग्रन्थ में पाँचवें पायदान पर 'चाण्डाल' हैं। संवैधानिक भाषा में इन्हें ही अनुसूचित जाति कहा गया है। भारतीय जनगणना **2011** के अनुसार भारत की जनगणना का लगभग **16.6 प्रतिशत** या **20.14 करोड़** आबादी दलितों की है। आज अधिकांश हिन्दू दलित बौद्ध धर्म के ओर आकर्षित हुए हैं, और हो रहे हैं क्योंकि बौद्ध धर्म अपनाने से हिन्दू दलितों का विकास हुआ है।

वर्तमान में जबकि 'दलित' शब्द केवल एक समुदाय विशेष का पर्याय बन चुका है तब इस शब्द के सच के मायने को जानना भी बेहद आवश्यक हो गया है। एक शब्द जब किसी समुदाय की पहचान बन जाए तो इस पर विचार करना आवश्यक हो जाता है कि आखिर क्यों वह एक शब्द पूरे समुदाय का प्रतिनिधित्व कर रहा है।

'दलित' शब्द की उत्पत्ति में यदि हम जाएँ तो यह 'शब्द संस्कृत भाषा के 'दल' धातु से बना है'[3] जिसका अर्थ है अन्य हिस्से से टूटा हुआ, तंगहाल, जिसके साथ उचित व्यवहार न किया जाता हो, दबा हुआ, कुचला हुआ। आर्य समाज द्वारा शुरू किये गये कार्यक्रम 'दलितोद्धार' के बाद यह शब्द एक समुदाय विशेष के लिए 1930 में हिन्दी और मराठी में उपयोग किया गया। 1930 में पूना से प्रकाशित समाचार पत्र 'दलित बन्धु' में इस शब्द का प्रयोग किया गया और संविधान निर्मात्री सभा के अध्यक्ष डॉ0 भीमराव रामजी ऑम्बेडकर ने अपने उद्‌बोधन में एक समुदाय विशेष के लिए इस शब्द का प्रयोग किया था।

शूद्र, अंत्यज, अवर्ण, अछूत और महात्मा गांधी द्वार प्रचलित 'हरिजन' अर्थात ईश्वर के जन (अछूत माने जाने वाले लोगों के साथ भेदभाव समाप्त करने की दृष्टि से महात्मा गांधी ने इस शब्द का उपयोग किया था) जैसे संबोधन की परिधि में विभिन्न जातियों का यह समुदाय आज अपने लिए दलित शब्द को अपना चुका है। दलित शब्द की उत्पत्ति को कुछ विद्वानों ने इस प्रकार से परिभाशित किया हैं–

'दलित पैंथर्स' ने अपने घोषणा पत्र में परिभाषित करते हुए कहा है–''दलित का अर्थ है अनुसूचित जाति, बौद्ध, कामगार, मजदूर, गरीब किसान, खानाबदोस जातियों आदिवासी और नारी समाज।''[3] यहां पर 'दलित पैंथर्स' ने 'दलित' शब्द को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है। यह कड़वा सच भी है कि दलितों की ओर प्रकारान्तर से मनुष्य की पीड़ा को अभिव्यक्ति देने का कार्य दलित शब्द करता है।

हिन्दी शब्दकोशों में ''**दलित'** शब्द का अर्थ मसला हुआ, खण्डित विनिष्ट किया हुआ है।''[4] ''जिसका दलन हुआ हो या जिसे बढ़ने न दिया गया हो, ध्वस्त या नष्ट किया गया हो।''[5]

**मानक हिन्दी, अंग्रेजी** शब्द कोश में ''दलित शब्द के लिए डिप्रेस्ड शब्द दिया गया है। जिसका अर्थ है दबाना, नीचा करना, झुकाना, विनष्ट करना, नीचे लाना, स्वर नीचा करना, धीमा करना, ग्लान करना तथा दिल तोड़ना है''।[6] दलित वर्ग का अर्थ है कि नीची जाति के लोग, अछूत, हरिजन, पीड़ित दबाये हुए, पद दलित, कुचले, सताए हुए लोग।

**डॉ0 नन्द कुमार वरठे** दलित शब्द को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि– ''दलित क्रांति बोध का प्रतीत है, क्रांति ध्वज का निशान, भारतीय संस्कृति और परम्परा के परिप्रेक्ष्य में विद्रोही मनुष्य की दुंदुभि है।''[7] इस परिभाषा के आधार पर कह सकते हैं कि दीनता, दासत्व, अपमान, जाति वर्ग, विश्व वन्धुत्व तथा क्रांतिबोध के अतिरिक्त मनुष्य की पीड़ा को अभिव्यक्त करने वाले जितने भी भावबोधों का ज्ञान जिस शब्द से हो सकता है वही दलित है। मोदनदास नैमिशराय दलित शब्द को और अधिक विस्तार देते हुए कहते हैं कि–''दलित मार्क्स प्रणीत सर्वहारा शब्द के लिए समानार्थी लगता है, लेकिन इन दोनों शब्दों में पर्याप्त भेद भी है। दलित की व्याप्ति अधिक है तो सर्वहारा की सीमित। दलित के अन्तर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक शोषण का अंतर्भाव होता है तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है। प्रत्येक दलित व्यक्ति सर्वहारा के अन्तर्गत आ सकता है लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते.....अर्थात् सर्वहारा की सीमाओं में आर्थिक विषमता का शिकार वर्ग आता है। जबकि दलित विशेश तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार होता है।''[8]

**डॉ0 मैनेजर पाण्डेय** दलित शब्द को परिभाषित करते हुए इस प्रकार कहते हैं ''जब मैं दलित शब्द का प्रयोग कर रहा हूँ तो मेरे ध्यान में वे हैं जिन्हें भाारतीय वर्ण व्यवस्था में शूद्र कहा जाता है या जिसे समाज में अछूत माना जाता है।''[9]

वर्ण व्यवस्था से उपजे अस्पृष्यता के भाव को व्यक्त करते हुये **डॉ0 पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी** ने लिखा है ''दलित एक संवेदन है, विचार है जिसका अर्थ दबाया गया मनष्य किसी भी जाति, वर्ण, धर्म, मत, पंथ एवं भौगोलिक क्षेत्र का हो दलित है।''[10]

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कह सकते हैं कि दीनता, दासत्व, अपमान, जाति, वर्ग, विश्व–वन्धुत्व तथा क्रांतिबोध के अतिरिक्त मनुष्य की पीड़ा को अभिव्यक्त करने वाले अंतःभावाभिव्यक्ति की समझ जिस शब्द से सिद्ध हो सकता है वही दलित है। दलित अस्पृष्यता शब्द की संकीर्ण भावनाओं की सीमाओं का अतिक्रमण कर सामाजिक दृष्टि से पीड़ित, शोशित व दमित वर्ग के रूप में व्यापकता को निरूपित करता है।

समुदाय विशेष के लिए 'दलित' शब्द का प्रयोग किया जाना और असमुदाय द्वारा सम्बोधन के रूप में इस शब्द को स्वीकारना दोनों ही प्रक्रियाएं एक नजर में समान दिखाई देती हैं, परन्तु मूलबोध में दृष्टिकोण का फर्क है। किसी हद तक यह दया और रोष का भी है। मानव स्वाभाव में किसी को दबा या कुचला हुआ मान लेने पर स्वयं की श्रेष्ठता का मिथ्याभिमान और उसके प्रति दया प्रस्फुटित होना एक साधारण सी बात है क्योंकि यह हमारे अहं को तुष्टि प्रदान करता है। परन्तु स्वयं को दबा, कुचला हुआ मान लेना एक साधारण बात नहीं है। यह सबसे कमजोर होने, अश्रेष्ठ होने, अक्षम होने, वंचित होने की अनेक कुंठाएं उत्पन्न करता है। यह कुंठाएं सम्मिलित होकर उस रोश को जन्म देती हैं, जो व्यक्तिगत से बढ़ते हुए समुदाय का सामूहिक आक्रोश हो जाता है। आज संगठनों द्वारा दलित अधिकारों के लिए किये जा रहे आन्दोलन के मूल में यही

आक्रोश और इस आक्रोश जनित प्रश्नों के जवाब का तलाश शामिल है। शाब्दिक अर्थ के अनुसार हर व्यक्ति जो आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक रूप से दबा हुआ है अर्थात् जिसका दैनिक जीवन किसी अन्य की इच्छा से नियंत्रित है, दलित है। वह किसी भी धर्म या जाति का हो सकता है। परन्तु आज यह शब्द एक समुदाय विशेष का पर्याय बन गया है। अब चाहे इसे 'दलित–यानि दबा हुआ' सम्बोधित किया जाय या दमित यानि दबाया हुआ।

यद्यपि 'दलित' शब्द का प्रचलन बीसवीं शताब्दी के छठे दशक के बाद प्रारम्भ हुआ। परन्तु इस प्रकार का साहित्य भारत में उस समय भी लिखा गया जब लिखने की कला मनुष्य ने सीखी। त्रिपिटकों में भी इस साहित्य का प्रभाव है। दूसरे शब्दों में 'दलित साहित्य' साहित्य की अमूल्य धरोहर है। जिनमें सर्वहारा वर्ग की अभिव्यक्ति है। हिन्दी नवजागरण के समय प्रेमचन्द, निराला, राहुल सांकृत्यायन ऐसे साहित्यकार हुए हैं, जिन्होंने अपने लेखन और चिन्तन में हिन्दी क्षेत्र की दलित समस्या को चित्रित करने की कोशिश की। लेकिन उसे हम सहानुभूति का ही साहित्य बताते हैं।

दलित साहित्य परम्परा का इतिहास काफी पुराना है। बुद्ध और कबीर के समय इसका बीजारोपण हुआ था। आरम्भिक दशा में यह अस्पष्ट अवश्य था। किन्तु इसका स्वरूप हिन्दी साहित्य में 8वें दशक में स्पष्ट हुआ है। दलित साहित्य की परम्परा हाल की ही बात नहीं है। इसके पीछे लम्बा इतिहास है। यह इतना व्यापक है कि उसकी कहीं कोई सीमा नहीं, न ही किसी एक भाषा से बंधा है, न किसी एक देश या धर्म से जुड़ा है। दलित साहित्य देश की सभी भाशाओं में उपलब्ध है और लिखा जा रहा है। दलित साहित्य दया, भावना व करूणा का साहित्य नहीं है, यह एक क्रांति का साहित्य है, विद्रोह का साहित्य है, समता का साहित्य है। यही मान्यता **अर्जुन डाँगले** का भी है। उनका कहना है कि '**दलित**' शब्द साहित्य के सन्दर्भ में नये अर्थ देता है। दलित यानि शोषित, पीड़ित समाज, धर्म व अन्य कारणों से जिसका आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक शोषण किया गया है, वही मनुष्य क्रांति कर सकता है, ऐसा दलित साहित्य का विश्वास है।

दलित साहित्य को कुछ विद्वान अलग–अलग ढंग से परिभाषित किये हैं–**डॉ0 सी0 वी0 भारती** दलित साहित्य को व्याख्यायित करते हुए कहते हैं कि–'नव युग एक व्यापक वैज्ञानिक, यथार्थपरक, संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है। जो कुछ भी तर्कसंगत, वैज्ञानिक परम्पराओं, पूर्वाग्रहों से मुक्त साहित्य सृजन है। हम उसे दलित साहित्य के नाम से संज्ञापित करते हैं।'[11] वे यथार्थपरक दृष्टि से मनुष्य के संवेदनशील साहित्य सर्जना की बात करते हैं। **डॉ0 धर्मवीर** जी अपने साहित्य लेखन में लिखते हैं कि–''दलित साहित्य वह है जिसे दलित लेखक लिखता है।'' अतः इनका मानना है कि दलित साहित्य दलितों द्वारा अनुभूति की हुई साहित्य है, इसे केवल भुगता हुआ व्यक्ति ही लिख सकता है।

दलित साहित्यकार **ओमप्रकाश बाल्मीकि** दलित समाज की धारणाओं, मान्यताओं एवं समाज व्यवस्था में परिवर्तन लाने एवं उन्हें समाज में प्रतिष्ठा दिलाने हेतु वैचारिक क्रांति का भाव व्यक्त करते हुए कहते हैं कि–''दलित साहित्य भाषावाद, जातिवाद, क्षेत्रवाद को नकारता है तथा पूरे देश को एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है। दलित शब्द उन्हें सामाजिक पहचान देता है, जिनकी पहचान इतिहास के पृष्ठों से सदा के लिए मिटा दी गयी। जिनकी गौरवपूर्ण संस्कृति, ऐतिहासिक धरोहर, कालचक्र में खो गयी।''[12]

दलित साहित्य की मूल भावना समता, स्वतंत्रता और बन्धुत्व है। इसे दलित साहित्यकारों ने दलित मुक्ति का हिस्सा बनाया। इसी को उन्होंने अपने आन्दोलन के गम्भीर सरोकारों से जोड़ा है। दलित साहित्य के केन्द्र बिन्दु में मानव है और दलित साहित्य मनुष्य के द्वारा मनुष्य के शोषण, उत्पीड़न, गैर बराबरी की भावना, ऊँच–नीच और छुआ–छूत को दूर कर समभाव और बन्धुत्व की स्थापना को मूल उद्देश्य में रखा है। ऐसा माना जाता रहा है कि परम्परावादी साहित्य के अतिरिक्त प्रगतिशील, मार्क्सवादी और क्रांतिकारी चेतना का साहित्य भी हमारे देश में समान्यतः लिखा जाता रहा है। किन्तु दलित साहित्यकारों का सवाल भी वाजिब है कि इन अनेक क्रांतिकारी और प्रगतिशील साहित्य के बावजूद भी दलितों के प्रताड़ना और छुआ–छूत को उस साहित्य में कहीं भी अंकित नहीं किया गया और न ही प्रगतिशील साहित्य में दलित आन्दोलन, ब्रह्मणवाद विरोधी आन्दोलन तथा सांस्कृतिक उत्थान या सांस्कृतिक क्रांति जैसा आन्दोलन भी चलाया गया। इसलिए दलित साहित्य का आविर्भाव अनिवार्य हुआ। दलित साहित्यकार मानते है कि बिना दलित हस्तक्षेप के न तो दलित जीवन को साहित्य में सृजित किया जा सकता है और न ही दलित जीवन के न्यायपूर्ण जीवन के लिए दलित आन्दोलन ही गठित किया जा सकता है। इसीलिए अन्य साहित्यों के साथ–साथ दलित साहित्य की प्रासंगिकता भी आवश्यक है। इस सम्बन्ध में **मोहनदास नैमिशराय** कहते हैं कि–''शोषक वर्ग के खिलाफ अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते हुए समाज–समता, बन्धुता तथा मैत्री की स्थापना करना ही दलित साहित्य का उद्देश्य है।''[13]

दलित चेतना का सम्बन्ध सीधे–सीधे दलित अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। जब दलित यह चेतता है कि मैं कौन हूँ तो एक तरफ यह पाता है कि अन्य मनुष्यों की तरह एक मनुष्य है। लेकिन दूसरी तरफ भारतीय अस्मितावादी देश में ब्राह्मणवाद के संजाल में फंसा

हुआ वह चौथे वर्ग का शूद्र है। शूद्रों में भी वह अछूत शूद्र है, यहीं पर दलित चेतना का अर्थ यह निकलता है कि वह उसे ब्राह्मणवादी व्यवस्था ने सयास, शूद्र, अन्त्यज, चाण्डाल, चमार, पासी, भंगी, बनाया है। इन शब्दों के मायने है कि मनुश्यता की श्रेणी में वह बिल्कुल निचले पायदान पर है। ब्राह्मणवाद ने शूद्रों को मनुष्य की श्रेणी में न रखकर पशुओं से भी बदतर माना है। अक्सर देखा जाता है कि लोग कुत्ते, बिल्ली पालते हैं, उसे अपने घरों में रखते हैं, उसको चूमते–चाटते हैं, उसके मल–मूत्र फेंकते हैं, उसका छुआ खाते हैं, उसे अपने साथ खिलाते हैं, उसे अपने बेडरूम में सुलाते हैं। किन्तु दलितों को न छूते हैं न छूने देते हैं, न उसका छुआ हुआ खाते हैं और न ही उसके घर का खाते हैं, न उसके साथ बैठकर खाते हैं, अछूत समझते हैं। अतः दलित चेतना के अस्तित्व में यह बात उभरकर आती है कि दलितों को बनाने वाला क्या कोई और है। इस प्रश्न के उत्तर में बुद्ध से लेकर फूले और ऑम्बेडकर तक ने यह निष्कर्ष निकाला कि मनुष्य को बनाने वाला या पैदा करने वाला कोई अधिभौतिक (ईश्वर) सत्ता नहीं है। दुनिया के निर्माण की तरह जीव उत्पत्ति का भी वैज्ञानिक कारण है। न ईश्वर है और न ईश्वर ने मनुष्य को पैदा ही किया है (सब कुछ एक ही प्रक्रिया के तहत पैदा होता है) और विनष्ट हो जाता है। सभी मनुष्य एक ही प्रक्रिया के अनुसार पैदा हुए हैं किन्तु ब्राह्मणवादी चिंतकों ने पूर्वकर्म के अनुसार दलितों को ईश्वर द्वारा निम्न वर्ग में पैदा होना सुनिश्चित किया है। और यह भी बताया है कि प्रारब्ध को भोगने के लिए दलितों को शूद्रवर्ण की निश्पत्तियों का अनुपालन करना होगा और इसी वजह से ईश्वर द्वारा उच्च वर्ग में रखे गये लोगों द्वारा अछूत सा व्यवहार किया जाता है। क्योंकि वेदों, पुराणों, श्रुतियों–अश्रुतियों, रामायण, महाभारत, गीता में ईश्वर ने दलितों को निम्न मानते हुए सेवक का काम सुनिश्चित किया है। दासत्व की इस मनमानी व्यवस्था के विरूद्ध दलितों की मानसिक अव्यवस्था को दलित चेतना कहा जाता है। दलित चेतना का मूलाधार ऑम्बेडकरवाद है। इसी सम्बन्ध में डॉ. गंगाधर पानताव ने कहा है कि–''दलित साहित्य की प्रेरणा न मार्क्सवाद है, न हिन्दूवाद है, न नीग्रो साहित्य है। दलित साहित्य की प्रेरणा केवल ऑम्बेडकरवाद है।''[14]

**सन्दर्भ–**


1. मानक अग्रेंजी हिन्दी कोश– सत्य प्रकाश पेज–362
2. दलित साहित्य का समाजशास्त्र– हरिनारायण ठाकुर पेज–376 (भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली)
3. भारतीय दलित साहित्य– मुख्य सम्पादक मनोज कुमार आर0 पटेल पेज–36
4. मानक हिन्दी कोश– सम्पादक रामचन्द्र वर्मा पेज–35
5. उच्चतर हिन्दीकोश–डॉ0 हरदेव बाहरी पेज–388
6. मानक अग्रेंजी हिन्दी कोश– सत्य प्रकाश पेज–362
7. दलित साहित्य आंदोलन और विकास– डॉ0 नन्द कुमार बरठे पेज–68
8. दलित सहित्य का सौन्दर्यशास्त्र–ओम प्रकाश बाल्मीकि पेज–14(राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली)
9. दलित साहित्य के प्रतिमान–डॉ0 एन0 सिंह पेज–68
10. दलित साहित्य के प्रतिमान–डॉ0 एन0 सिंह पेज–68
11. दलित सहित्य का सौन्दर्यशास्त्र–ओम प्रकाश बाल्मीकि पेज–14 (राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली)
12. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र–शरण कुमार लिंबाले पेज–52
13. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र–ओम प्रकाश बाल्मीकि पेज–23
14. दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र–ओम प्रकाश बाल्मीकि पेज–23



**समिता**
शोधछात्रा–हिन्दी
डॉ.रा.म.लो. अवध विश्वविद्यालय,
अयोध्या (उ.प्र.)
**डॉ. जयशंकर तिवारी**
एसो. प्रोफे. : हिन्दी विभाग
एल.बी.एस. डिग्री कॉलेज,
गोण्डा (उ.प्र.)

24

# आधुनिक भारत में सतत शिक्षा का एक मूल्यांकन

डॉ० नीरज कुमार, सुमन कुमारी

**सारांश** –

सर्वप्रथम प्लेटों ने सतत शिक्षा की अवधारणा दी। प्लेटों ने जन्म लेकर मृत्यु पर्यान्त अपनी सतत शिक्षा की योजना भी दी तथा पाठयक्रम भी प्रस्तुत किया जो कि निम्न प्रकार से है –

1. जन्म से 5 वर्ष का पाठयक्रम स्वास्थ्य शिक्षा एवं चरित्र निर्माण की कहानियाँ
2. 5 से 13 वर्ष का पाठयक्रम – संगीत, व्यायाम व गणित।
3. 13 वर्ष से 16 वर्ष का पाठयक्रम – बाध्य, संगीत, भजन व गणित के सूक्ष्म सिद्धान्त।
4. 16 से 20 वर्ष का पाठयक्रम – मुख्य रूप से सैनिक शिक्षा।
5. 20 वर्ष से 30 वर्ष का पाठयक्रम – नागरिकता का शिक्षण
6. 30 से 35 वर्ष का पाठयक्रम – राजनीतिकशास्त्र, दर्शन, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र आदि
7. 35 वर्ष से 50 वर्ष का पाठयक्रम – व्यवाहारिक शिक्षा का काल जिसमें योग्य नागरिक शासन व्यवस्था करेंगे।
8. 50 वर्ष से ऊपर का पाठयक्रम – आत्मज्ञान के लिये अध्यात्मशास्त्र, तर्कशास्त्र आदि।

भारत में भी आश्रम व्यवस्था सतत शिक्षा की सुन्दर योजना प्रस्तुत करती है। यहाँ पर 50 वर्ष के पश्चात वानप्रस्थी व संन्यासी आत्मज्ञान एवं जन शिक्षा का ही कार्य सतत रूप से करते है। आधुनिक भारत आचार्य विनोबा भावे ने सतत शिक्षा की सर्वोत्तम अवधारण प्रस्तुत की है। उनके दो सुन्दर सन्थ, शिक्षण विचार एवं शिक्षा विचार, इस विषय में अनुपम ग्रन्थ है। यहाँ पर हम उनकी कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत कर सकते है –

जिसने एक बार अध्ययन का स्वाद चख लिया, वह उसे फिर कभी नहीं छोड़ सकता – "ऋषि कहते है हर काम करो, पर उसके साथ ही 'स्वाध्याय–प्रवचने च'–स्वाध्याय और प्रवचन भी किया करो।....." गृहस्थश्रम के जितने भी काम किए जायें उनमें से प्रत्येक के साथ स्वाध्याय और प्रवचन भी अपेक्षित हैं और वहीं ठीक भी है।" "नित्य नई तालीम का मतलब है, 'जो कल थी, वह आज नहीं है और जो आज है, वह कल नहीं रहेगी, जैसे नदी का पानी। नदी बहती रहती है, लेकिन प्रतिक्षण उसका पानी नया होता है। वैसे ही रोज के अनुभव के आधार पर जो तालिम नित्य बदलती रहती है, वह है नित्य नयी तालिम।"

हमारे देश में शिक्षा में प्रशासन की आवश्यकता अंग्रेजी शासनकाल से अधिक जोर पकड़ गयी। सबसे पहले शिक्षा विभाग की स्थापना हमारे देश में सन 1855 ई० में हुई थी इसके पश्चात व्यक्तिगत संस्थाओं का उदय होना प्रारम्भ हुआ। जिसके परिणाम स्वरूप शासकीय और अशासकीय दोनों प्रयासों से शिक्षा का विकास होना प्रारम्भ हुआ। कुशल शिक्षा प्रशासन के माध्यम से हमारे देश में शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर विकास हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश की परिस्थितियों के बदलने पर शिक्षा के उद्देश्यों, मुख्यों, आदर्शो और मान्यताओं आदि सभी में परिवर्तन होना प्रारम्भ हो गया। देश में प्रजातंत्र शासन की स्थापना हो जाने से शिक्षा का महत्व और अधिक बढ़ गया और नवीन शिक्षा प्रशासन की आवश्यकता प्रतीत हुई। वर्तमान स्थिति में शिक्षा–प्रशासन का महत्व और आवश्यकता का अध्ययन, हम निम्न महत्वपूर्ण तथ्यों के आधार पर कर सकते है –

1. शिक्षा की सम्पूर्ण प्रक्रिया को व्यक्ति और समाज दोनों के हित में संचालित करने हेतु।
2. बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने हेतु।
3. शिक्षा में 'अवसरों की समानता' के आधार पर भारत के प्रत्येक नागरिक को समान रूप से शिक्षा प्रदान करने हेतु।
4. शिक्षार्थियों तथा शिक्षकों दोनों की उपलब्धियों में वृद्धि कराने हेतु।
5. सामाजिक आर्थिक राजनीतिक सांस्कृतिक और शैक्षणिक दृष्टि से बदलती हुई परिस्थितियों से शिक्षा, शिक्षार्थी और शिक्षकों को समायोजित कराने हेतु।
6. शिक्षा के कार्यो में कुशलता, सुगमता तथा सरलता उत्पन्न करने हेतु आदि

आज की स्थिति को देखते हुए शिक्षा प्रशासन का महत्व और आवश्यकता कई गुना बढ़ चुकी है। ऐसी स्थिति में जबकी आज शिक्षा का तिव्र गति से प्रसार हो रहा है, शिक्षार्थियों की संख्या में तेजी से वृद्धि हो रही है, विद्यालयों के कार्य क्षेत्र व्यापक होते जा रहे है, पाठयक्रम का स्वरूप विस्तृत होता जा रहा है, शिक्षा की नवीन पद्धतियों, रीतियों का विकास होता जा रहा है शिक्षा के उद्देश्य और आदर्शो में तेजी से परिवर्तन होता जा रहा है, विज्ञान और तकनीकी शिक्षा पर अधिक बल दिया जा रहा है तथा विद्यालयों का उत्तरदायित्व सामाजिक आर्थिक राजनीतिक दृष्टि से बढ़ता जा रहा है तो शिक्षा–प्रशासन की महत्ता और आवश्यकता किसी से छिपी नहीं रह जाती है। शिक्षा प्रशासन की महत्ता के कारण की वर्तमान स्थिति में हमारे देश में नहीं वस विश्व के सभी देशों में कुशल शिक्षा–प्रशासन पर अत्यधिक ध्यान दिया जाने लगा है और उसे

शिक्षा का गुणात्मक प्रसार करने हेतु एक आवश्यक साधन समझना जाने लगा है।

शिक्षा के क्षेत्र में भारत विश्व का सिर मौर रहा है। यद्यपि विश्व ने अनेक प्राचीन सभ्यताओं को जन्म दिया है, किंतु उनमें सर्वाधिक प्राचीन एवं आज तक अक्षण्ण सभ्यता भारतीय सभ्यता ही है। यद्यपि इतिहासकार भारत में शिक्षा का प्रारम्भ वैदिक काल से मानते है किंतु पूर्व वैदिक कालीन मोहनजोदड़ों तथा हडप्पा संस्कृतियों के गौरवान्वित पृष्ठ इस तथ्य को नकारते है। क्योंकि किसी भी सभ्यता में निवास करने वाला मानव बिना शिक्षा के उतने उत्कृष्ठ मानदण्ड स्थापित नहीं कर सकता। शिक्षा ने सदैव ऐसी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है और इस प्रकार शिक्षा मानवीय–समाजों की स्वाभाविक विशेषता के रूप में भारी है। समाजों के विकास के सभी चरणों में शिक्षा ने ही उनकी नियति के निर्माण में योगदान किया है और यहीं कारण है कि शिक्षा सतत जारी रही और उसका विकास कभी अवरूद्ध नहीं हुआ। मानवता के सर्वोत्तम आदर्शों का प्रकाश स्तम्भ शिक्षा ही रही है। इस दृष्टि से सामाजिक परिवर्तन का एक घटक होने के नाते शिक्षा ही समाज के सांस्कृतिक लोका चारों, आकांक्षाओं और सरोकारों को प्रतिबिम्बित करती है।

शिक्षाविदों के मूल्य परक शिक्षा को छात्र के सफल जीवन का आधार माना है। मूल्य शिक्षा के द्वारा ही छात्रों में समूचित जीवन मूल्यों, दृष्टिकोणों, व्यवहारों व भावनाओं सम्बन्धित शैक्षिक क्रियाओं एवं मानकों को सुव्यवस्थित रूप में, विकसित किया जाता है।

**शिक्षा की चुनौती** : नीति सम्बन्धी परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया गया है कि बहुवर्गीय समाज में शिक्षा को सर्वव्यापी और शाश्वत मूल्यों को प्रोत्साहित करना चाहिए, ताकि भारतीय जीवन जन – जन में राष्ट्रीय एकता की भावना बढ़े और संकीर्ण सम्प्रदायवाद, धार्मिक अतिवाद, हिंसा, अन्ध विश्वास व भाग्यवाद का उन्मूलन किया जा सके। साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मानव अकेला शुन्य में निवास करने वाला प्राणी मात्र नहीं है। उसकी मूल्य परक शिक्षा उसके विशिष्ट सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवेशों के सन्दर्भ से जुड़ी होनी चाहिए और विश्व जनीन व शाश्वत मूल्यों से भी उनका सम्बन्ध होना अति आवश्यक है। इस लिये समानता, बन्धुत्व, स्वतंत्रता, पर्यावरण, संरक्षक, वैज्ञानिक अभिवृत्ति, धर्म निरपेक्षता एवं समाजवाद आदि मूल्यों की शिक्षा की व्यवस्था प्रत्येक स्तर पर शिक्षा के श्रेय में महत्वपूर्ण आवश्यक है।

**सातवीं पंचवर्षीय योजना** का प्रारूप तैयार करते समय साक्षरता के महत्व को विशेष बल देते हुए, इसे एक मिशन के रूप में माना गया। यह अनुभव किया गया कि विकास का सम्बन्ध केवल सड़क निर्माण, कल–कारखाने के बनने तथा बड़ी–बड़ी बिल्डिंग बनाने तक ही सीमित होकर नहीं रह सकता। सर्वांगीण विकास का सम्बन्ध सर्वसाधारण के जनजीवन से है। इस सम्बन्ध बुनियादी तौर पर लोगों के जीवन से है। देश के विकास का अर्थ है वहाँ के जनजीवन की भौतिक, सांस्कृतिक, पर्यावरणिक तथा आध्यात्मिक उन्नति। जब तक लोग अपनी बात दूसरों तक पहुँचाने में समर्थ नहीं होंगे, लोगों को अधिकाधिक नयी बाते सीखने के अवसर नहीं मिलेंगे, तब तक ज्ञान–विज्ञान का आदान–प्रदान सम्भव नहीं और साक्षरता का संदेश घर–घर तक पहुँच नहीं सकता। राष्ट्र के विकास की यह एक महत्वपूर्ण शर्त है। हमारे देश में साक्षरता कार्यक्रमों पर करोड़ों रुपये खर्च किये जा चुके है किंतु आज भी हमारी आधी से अधिक जनसंख्या निरक्षर है तथा लाखों बच्चे विद्यालयी शिक्षण भी पूरा नहीं कर पाते हैं। सन 1984–85 तथा 1985–86 में ऐसे बच्चों की संख्या अग्रलिखित थी।

शिक्षा द्वारा देश का आधुनिकीकरण करने के बारे में आयोग ने निम्न सुझाव दिये है –

1. सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में आधुनिकीकरण करने के लिये विज्ञान पर आधारित टेकनोलॉजी को अपनाया जाए।
2. आधुनिककरण के लिये शिक्षा को एक महत्वपूर्ण साधन माना जाए और आधुनिकीकरण की प्रगतिसे शैक्षिक उन्नति की गति को सम्बन्ध किया जाये।
3. शिक्षा के द्वारा उत्सुकता को जाग्रत किया जाए और उचित दृष्टिकोणों तथा मान्यताओं का विकास किया जाए।
4. शिक्षा के द्वारा स्वतंत्र अध्ययन, स्वतंत्र विचार और स्वतंत्र निर्णय की आदतों का निर्माण किया जाये।
5. सामान्य व्यक्ति के शैक्षिक स्तर को ऊँचा उठाया जाये और एक ऐसे शिक्षित वर्ग का निर्माण किया जाये जिसमें समाज के सभी अंगों के व्यक्ति हो और उनके विश्वासों तथा आंकाक्षाओं पर गहरी भारतीय छाप लगी है।

आज का समाज विज्ञान पर आधारित प्रौद्योगिकी के कारण प्राचीन समाज से पूर्णताया भिन्न है। जिन समाजों और देशों में इस प्रकार की प्रौद्योगिकी का विकास किया गया है उनकी आश्चर्यजनक उन्नति हुई है, पर विज्ञान पर आधारित प्रौद्योगिकी का एक दूसरा पक्ष भी है। यह पथ है – सामाजिक और सांस्कृति। अतः देश के प्रौद्योगिक विकास के लिए सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोणों में भी परिवर्तन करना आवश्यक है। ऐसा किए बिना प्रौद्योगिक विकास निरर्थक सिद्ध होगा। इसलिये आयोग का यह सुझाव ठीक है कि शिक्षा के द्वारा उचित दृष्टिकोणों और मान्यताओं का विकास किया जाए।

आज शैक्षिक तकनीकी का स्वरूप अत्यन्त व्यापक हो चुका है तथा शिक्षा के किसी भी क्षेत्र में तकनीकी विहिन शिक्षा की कल्पना भी नहीं की जाती है। इसी के फलरूपरूप ज्ञान का विसकोर हो रहा है। तकनीकी उपकरणों से पूरी दुनिया एक गाँव में परिवर्तित हो गई है जिसे '' की संज्ञा दी गई है। टेलीफोन, टेलीविजन, कम्प्यूटर, इन्टरनेट आदि उपकरण आज हमारी शिक्षा व्यवस्था तथा प्रणाली की आवश्यक अंग बन गए है। जिनकी सहायता से सभी को

शिक्षा का समान अवसर प्राप्त हो सकता है यदि कोई व्यक्ति कितने ही दूर–दराज क्षेत्रों में ही क्यों न हो उसे इन उपकरणों के साथ–साथ शैक्षिक तकनीकी के विभिन्न रूपों, जैसे–शिक्षण तकनीकी, व्यवहार तकनीकी, अनुदेशन तकनीकी तथा इनसे सम्बन्धित उपागमों, डिजाइनों तथा सिद्धान्तों की सहायता से शिक्षण कार्य अत्यन्त रोचक सरल, सुगम तथा प्रभावी हुआ है, साथ ही शिक्षकों और छात्रों को भी अत्यन्त लाभ हुआ है। शिक्षक विभिन्न प्रविधियों, तकनीकियों आदि का आवश्यकतानुसार प्रयोग कर अपने शिक्षण को प्रभावी बनाते है। छात्र को स्वगति, स्वप्ररेणा तथा अधिकाधिक अभ्यास के अवसर मिलते है। भाषा प्रयोगशाला, अभिक्रमित अध्ययन आदि इनके जीवन्त उदाहरण है। आज विभिन्न विश्वविद्यालय तथा संस्थाओं में शैक्षिक तकनीकी का पाठय तथा शिक्षकों को मिलता है।

भारत में आधुनिक शिक्षा का सूत्रपात सन 1954 के वुड डिस्पैच के साथ हुआ। इसी के साथ भारत में शिक्षा पर्यवेक्षण का कार्य प्रारम्भ हुआ। इस डिस्पैच की सिफारिशों के आधार पर प्रत्येक प्रांत में शिक्षा विभाग बने तथा निरक्षकों की व्यवस्था की गई। 1896 से शिक्षा अधिकारी को तीन स्तरों पर रखा –

1. भारतीय शिक्षा सेवा
2. प्रान्तीय शिक्षा सेवा
3. अधीनस्थ शिक्षा सेवा

वर्तमान से यहीं तीन स्तर है। भारत में वर्तमान समय में शिक्षा पर्यवेक्षण का कार्य प्रधानाचार्य अथवा क्षेत्रीय अधिकारी करते है। क्षेत्रिय अधिकारियों के अन्तर्गत जिला विद्यालय निरक्षक तथा उसके अन्य सहायक अधिकारी आते है। कभी–कभी पर्यवेक्षण का कार्य राज्यीय अधिकारियों द्वारा भी सम्पादित किया जाता है। किंतु भारत में पर्यवेक्षण की व्यवस्था ठीक नहीं है। एक जिले में बहुत से विद्यालय होते है। एक व्यक्ति द्वारा इनका समुचित पर्यवेक्षण कदापि सम्भव नहीं है। इसके अलावा ये अधिकारी अपने कार्यालय कार्य में अधिक व्यस्त रहते है, उन्हें पर्यवेक्षण हेतु आवश्यक समय नहीं मिल पाता है। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में पर्यवेक्षण की अपर्याप्तता की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए मुदालियर आयोग ने निम्न समस्याओं को उल्लेख किया है –

1. जिस अनुपात में जिलों में विद्यालयों की संख्या बढ़ी है उस अनुपात में पर्यवेक्षण अधिकारियों की संख्या नहीं बढी है।
2. भारत में एक ही व्यक्ति द्वारा निरिक्षण तथा पर्यवेक्षण का कार्य किया जाता है। इससे पर्यवेक्षण अपने शुद्ध उद्देश्यों की प्राप्ति नहीं कर पाता है। पर्यवेक्षणकर्ताओं को अन्य कार्यो में व्यस्त रहना पड़ता है आदि।

मूल्य आधारित शिक्षा की अवधारणा वर्तमान युग की देन नहीं है अपितु यह सनातन और शाश्वत है जिस प्रादुर्भाव ज्ञान के अभ्युदय के साथ हुआ है। शैक्षिक उपागम मूल्य–संवर्धक होने के कारण संवैधानिक संरक्षण के विशेष क्षेत्र में आते हैं क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा सशक्त साधन है जिसके द्वारा समायोजन की भावना के विकास के साथ मानव में न केवल मानवीय गुणों की अभिवृद्धि होती है, अपितु, उसमें समविकास की भावना के साथ आत्मनिर्भरता से सम्बंध विभिन्न कौशलों का विकास किया जा सकता है। जिससे वे अपने आश्रितों का पालन–पोषण करते हुए राष्ट्रीय विकास की धारा में जुड़कर अपना महनीय योगदान दे सके। एतदर्भ भारतीय संविधान में शिक्षा के विस्तार और विकास का दायित्व केन्द्र और राज्य सरकारों को किया गया है, जिससे सम्प्रभुता सम्पन्न राष्ट्र की आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था के साथ–साथ राज्य क्षेत्रीय समस्याओं के निदान के लिये शिक्षण व्यवस्था को लागू कर सके। 42वें संशोधन से पूर्व शिक्षा संविधान की 7वीं अनुसूचि की द्वितीय सूचि की प्रविष्टि 11 के अनुसार एकशुन्य किया था। प्रविष्टि 11 इस प्रकार है –

शिक्षा जिसमें विश्वविद्यालय भी सम्मिलित है, सूचि प्रथम की 63, 64, 65 और सूची द्वितीय की प्रविष्टियों के अन्तर्गत, परन्तु 42वें संशोधन के पश्चात शिक्षा के संयुक्त सूचि में शामिल कर दिया गया और केन्द्र तथा राज्य दोनों पर शिक्षा का दायित्व हो गया है। शिक्षा सम्बन्धी संवैधानिक प्रावधान ने प्राथमिक, माध्यमिक, उच्चतर और विश्वविद्यालय स्तर पर बनी शिक्षण नीति के निर्धारण का मार्ग प्रशस्त किया, जिसमें मानव की बौद्धिक सम्पदा के विकास हेतु सामाजिक व्यवस्था का सुद्रढ़ता प्रदान करने वाली आर्थिक और सामाजिक योजनाओं को समाहित किया गया, जिससे सर्वकल्याण की भावना को जनमानस में विकसित किया जा सके तथा सभी के अधिकारों के संरक्षण के भावों के विकास के साथ कर्तव्य बोध की शिक्षा दी जा सके।

## सन्दर्भित पुस्तकें


1. डॉ० ब्रजकिशोर शर्मा, डॉ० महेन्द्र कुमार शर्मा व डॉ० मार्कण्डेय प्रसाद शर्मा, सतत शिक्षा (2007–08) अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा, उत्तर प्रदेश पृष्ठ संख्या – 32, 33
2. डॉ० उमेश चन्द्र कुदेसिया, शिक्षा प्रशासन (2007–08) अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा, उत्तर प्रदेश पृष्ठ संख्या – 4, 5
3. रश्मि चतुर्वेदी, डॉ० हेमंत खण्डाई, मूल्य शिक्षा (2013)ए०पी०अच० पब्लिकेशन्स नई दिल्ली पृष्ठ संख्या – 6, 7
4. डॉ० जी० एस० वर्मा, मूल्य शिक्षा, पर्यावरण एवं मानवाधिकार (2008) इन्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ उत्तर प्रदेश पृष्ठ संख्या – 117
5. गीता पुष्प शॉ, जॉयस शीला शॉ व रॉबिन शॉ पुष्प, प्रसार शिक्षा (2007–08) अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा, उत्तर प्रदेश पृष्ठ संख्या – 141
6. पी० डी० पाठक व जी० एस० डी० त्यागी, भारतीय शिक्षा के आयोग (कोठारी कमीशन सहित) (2007–08) अग्रवाल

पब्लिकेशन्स आगरा, उत्तर प्रदेश पृष्ठ संख्या – 23, 24
7. डॉ० सन्ध्या मिश्रा 'वत्स' शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्धन (2012) आर० लाल० बुक डिपो मेरठ, उत्तर प्रदेश पृष्ठ संख्या – 9
8. डॉ० रामपाल सिंह, शैक्षिक प्रबन्ध एवं विद्यालय संगठन (2007–08) अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा, उत्तर प्रदेश पृष्ठ संख्या – 75, 76
9. डॉ० भास्कर मिश्र, मूल्य आधारित शिक्षा (2014) कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली पृष्ठ संख्या – 189

**डॉ० नीरज कुमार**
राजनीति विभाग,
एस०एस०वी० कॉलिज, हापुड़
(उत्तर प्रदेश) भारत
**सुमन कुमारी**
(रिसर्च स्कॉलर) समाजशास्त्र विभाग
मोनाड यूनिवर्सिटी,
उत्तर प्रदेश

25

# ग्वालियर घराने की संगीत परम्परा में राजा मानसिंह तोमर का योगदान

प्रियंका पाण्डेय

**सारांश –**

तोमरों द्वारा ग्वालियर के सांस्कृतिक क्षेत्र में जो अभूतपूर्व योगदान दिया उसकी तुलना हम किसी से नहीं कर सकते। हिन्दू साम्राज्य व मुस्लिम साम्राज्य इन दोनों ही कालों का अन्त व विकास इतिहास के ऐसे कई बड़े ग्रन्थ हैं, जिनका विषय यह रहा है, और यही वह समय है, जब दिल्ली पर तोमर की पूर्ण गाथा हमें प्राप्त होती है। यहाँ पर हमारा सम्बन्ध उन तोमर शासकों से है, जिनके द्वारा ग्वालियर में शासन किया गया। ग्वालियर के तोमर शासकों के बारे में ज्ञात करने हेतु मात्र राजवंश की राजनैतिक कथा ही महत्वपूर्ण नहीं है, अपितु राजवंश के नरेशों द्वारा अपने बाहुबल व राज्यबल के अतिरिक्त ऐसा हृदय भी पाया था, जिसके द्वारा साहित्य संगीत व स्थापत्य इत्यादि कला के पोषक व आश्रयदाता भी रहे। राजा मानसिंह तोमर उन्हीं राजाओं में से एक रहे। अतः शोध पत्र के माध्यम से मानसिंह तोमर का ग्वालियर घराने में योगदान को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

**''ग्वालियर घराने की संगीत परम्परा में राजा मानसिंह तोमर का योगदान''**

ग्वालियर की संगीत परम्परा का आरम्भ राजा मानसिंह तोमर के समय से शुरू होता है। मानसिंह तोमर "1487–1516"[1] तक ग्वालियर के राजा रहे। यह स्पश्ट है कि शासक सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के समय के दौरान ही ग्वालियर एक शक्तिशाली केन्द्र बन गया था। मानसिंह तोमर के नाम से ग्वालियर सांगीतिक क्षेत्र से सम्बन्धित ऐसा कोई कलाकार नहीं है, जो इनके नाम से अवगत नहीं है।

मानसिंह तोमर शक्तिशाली शासक व कुशल कुटनीतिज्ञ होने के साथ ही वह कला प्रेमी अर्थात संगीत प्रेमी भी थे। एक दिन राजा मानसिंह शिकार पर गए, वहाँ रानी मृगनयनी जैसी अनुपम व सौन्दर्य की धनी स्त्री पर आसक्त हुए व महाराजा द्वारा रानी मृगनयनी के समक्ष शादी का प्रस्ताव रख दिया, मृगनयनी रानी द्वारा उत्तर दिया गया, सर्वप्रथम आप मेरे लिए एक महल बनवाइए, और जो मेरे गाँव से एक नदी निकलती है, उसका पानी उस महल तक पहुचाएँ, शर्त पूर्ण होने के उपरान्त ही मैं आपकी रानी का पद ग्रहण करुँगी।

"महाराज मानसिंह ने तब उनके लिए एक महल बनवाया जो गुर्जरी महल के नाम से प्रसिद्ध है"[2]। मानसिंह तोमर का विवाह रानी मृगनयनी के साथ हुआ जो स्वयं गायन शैली मे प्रवीण थी, रानी मृगनयनी गुजर कुल की कन्या थी, वह अपने सौन्दर्य व बल के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध थी। मृगनयनी अत्यन्त ही चतुर व सौन्दर्य की देवी थी। मानसिंह तोमर इसी सुन्दरता हेतु एक मन्दिर का निर्माण करना चाहते थे। वृन्दलाल वर्मा जी ने अपने उपन्यास में मृगनयनी व मानसिंह तोमर का पुरा चित्रण प्रस्तुत किया है। वह लिखते हैं कि राजा मानसिंह मृगनयनी से कहते हैं, मैं तुम्हारे लिए एक मन्दिर का निर्माण करना चाहता हूँ और जिसका नाम "मृगेन्द्र मन्दिर"[3] रखा जाए। परन्तु रानी मृगनयनी इससे सहमत न हुई अन्ततः इस मन्दिर का नाम मान मन्दिर रखा गया।

गुर्जरी महल का निर्माण भी महारानी मृगनयनी को देखकर ही मानसिंह द्वारा किया गया था। मानसिंह तोमर के राज्य काल में युद्ध भी हुए परन्तु साथ–साथ संगीत कला का आगमन अपने आप में अनूठा संगम रहा। आश्चर्य की बात यह है, कि एक तरफ राजा स्वयं युद्ध में जूझते रहे व दूसरी ओर ग्वालियर एक संगीत व कला का विशाल केन्द्र बन गया। परन्तु सत्यता यही है, कि राजा मानसिंह तोमर के राज्य काल में संगीत का नादमय स्वरुप व युद्ध की दुंदुभी सभी को एक साथ ही सुनाई दी। मानसिंह तोमर को संगीत की अपार सम्पदा वीरसिंह देव के राज्यकाल से कल्याणमल के राज्यकाल तक प्राप्त हुई। मानसिंह तोमर अपने बाल्यकाल के दौरान ही आश्चर्यजनक प्रतिभा के धनी थे, और जब मानसिंह तोमर को राज्य प्राप्त हुआ, तो वह और भी ऐश्वर्य के स्वामी हो गए। "गंगोलाताल की प्रशस्ति के अनुसार वे अपने आपको दूसरा कृष्ण ही मानते थे। गोपाचल उनका गोवर्धन था। यवनों की घनघोर घटा से दुखित पृथ्वी की रक्षा वह इसी गोवर्धन से करते थे।"[4]

राजा मासिंह तोमर द्वारा अपने पूर्वजों से भी कई अधिक धार्मिक सहिष्णुता का परिचय दिया अर्थात उनके द्वारा अपने राज्यकाल में मुस्लिम शासकों को भी आश्रय व संरक्षण प्रदान किया जिस प्रकार संगीत सभा में सभी हिन्दुओं को सम्मान प्राप्त था, उसी प्रकार मुस्लिम कलाकारों को भी उचित सम्मान प्राप्त होता था। अपनी प्रजा से किसी भी प्रकार का भेदभाव राजा मानसिंह तोमर द्वारा नहीं किया गया। जैन धर्म को पूरा प्रश्रय राजा मानसिंह तोमर द्वारा प्राप्त हुआ।

राजा मानसिंह तोमर द्वारा अपने पिता की मृत्यु के पश्चात राज्य को उचित रूप से सम्भाला गया। उनके द्वारा युद्ध की गतिविधियों में पहले प्रहार नहीं किया जाता और न ही ऐसी कोई भावना उनके मन में थी, और यह काबिलियत भी उनके अन्दर थी, कि कब किस शत्रु से कैसे युद्ध में विजय प्राप्त करनी है। संगीत की दृष्टि से "अंग्रेज

इतिहास लेखकों ने मानसिंह के राज्यकाल को तोमर शासन का स्वर्णयुग (goldan age of tom rule) कहा है।"[5]

राजा मानसिंह तोमर का राज्यकाल युद्ध नीति के क्षेत्र में भी महत्वपूर्ण था व संगीत के क्षेत्र में भी। राजा मानसिंह तोमर अपनी सभा में कलाकारों को देश विदेशों से बुलाया करते थे। ग्वालियर के हर घर के आँगन में मधुर संगीत की स्वर लहरियाँ विद्यमान थी। राजा मानसिंह तोमर द्वारा प्रबन्ध गायन शैली का स्वरूप हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया गया, जो आगे चलकर ध्रुपद के नाम से प्रचलित हुई।

"प्रबन्ध काव्य लेखकों में डूंगरेन्द्रसिंह काल के विष्णुदास के बाद अयोध्या निवासी मणिक कवि के अस्तित्व का पता चलता है। इसने सन् 1486 ई0 में बेतालपच्चीसी की कथा पद्य बद्ध लिखी थी।"[6] मणिक कवि के जीवन से सम्बन्धित कुछ जानकारी हमें प्राप्त होती है, कवि जी मूलतः अयोध्या के निवासी थे, मणिक कवि के पूर्वज जी भी कवि ही थे जिसका परिणाम स्वयं मणिक कवि रहे। मणिक कवि ग्वालियर आये यहाँ पर मणिक कवि को सिंघई खेमल से भेंट वार्ता के पश्चात खेमल जी उन्हें राजा के पास ले गये। मानसिंह तोमर के राज्य काल में कई प्रबन्ध गायन के कलाकारों द्वारा उनकी सभा में गायन किया गया।

"प्रबन्ध से ध्रुपद जैसे क्रान्तिकारी परिवर्तन स्थर्य प्रदान किया गया। तानसेन (1515–1595) सदृश्य व भूतों न भविष्यति गायक निर्मित हो सकने की पृश्ठ भूमि मानसिंह ने तैयार की।"[7] **मानकुतुहल की रचना** मानसिंह तोमर द्वारा की गई। मानसिंह तोमर द्वारा न ही मार्गी संगीत में परिवर्तन किया, वरन् मानसिंह तोमर द्वारा सिद्धान्तों को अपनाकर जनरूचि को व लोकरूचि को ही ध्यान में रख उसे बदल दिया, यह मानसिंह तोमर की दूरदर्शिता का ही परिणाम था, कि मानकुतुहल की रचना हिन्दी भाशा में की गई। ग्वालियर में कई बड़े–बड़े कलाकार एकत्रित हुआ करते थे। मानसिंह की यह इच्छा हुई, कि क्यों न एक ऐसी पुस्तक का निर्माण किया जाए, जिसमें सभी रागों का विस्तार, रागों की संख्या साथ में उन्हें लिपिबद्ध करना ताकि किसी भी विद्यार्थी को संगीत की शिक्षा ग्रहण करने में किसी भी प्रकार की कठिनाई का सामना न करना पड़े। यही विचार को लेकर "राग रागिनी और उनके पुत्रों का विस्तारपूर्वक वर्णन करके मानकुतुहल पुस्तक की रचना राजा मानसिंह के नाम से की गई।"[8]

अपने शब्दों में फकीरूल्ला साहब द्वारा मानसिंह की पुस्तक मानकुतुहल का फारसी भाषा में अनुवाद किया गया यह अनुवाद "1673 ई0"[9] में किया गया । मानसिंह के दरबार में साहित्य कवि तो थे ही साथ में प्रबन्ध गायन शैली के कलाकार भी उपस्थित थे। मानसिंह तोमर द्वारा ही ध्रुपद शैली का अविष्कार किया गया। राजा मानसिंह के दरबार में जितने भी कलाकार उपस्थित थे, राजा स्वयं संगीत विद्या पर उनसे चर्चा किया करते थे। फकीरूल्ला द्वारा ध्रुपद गायन शैली का विस्तार किया गया है। मानसिंह कालीन गायकों, नायकों द्वारा प्रचुर मात्रा में गीतों की रचना की गई। यह गीत मात्र लोकरूचि को ध्यान में रखकर ही रचे जाते थे। मानसिंह तोमर स्वयं ही गीतों की रचना किया करते थे। मानसिंह के राज्य में कई प्रसिद्ध गायक तो थे ही साथ में वादक गण भी उनकी सभा में उपस्थित थे। जिनमें "बैजू, बक्शू, चरजू, भगवान धोडू, महमूद लोहंग, एवं पाण्डवीय कर्ण।"[10] यह नाम उल्लेखनीय है। मानसिंह तोमर द्वारा स्वयं रागों के गीत लिखे जिनमें "सांवती, लीलावती, शाढ़व, तथा मानशाही कल्याण"[11] रागों के गीत सम्मिलित थे। बैजू मानसिंह तोमर के दरबार में ही रहे। मृगनयनी उपन्यास में वृन्दलाल वर्मा ने बैजू का संवाद मृगनयनी के साथ दिखाया है, उसमें बैजू एक अतिउत्तम संगीतकार थे ऐसा भी बतलाया गया है। मानसिंह के प्रिय मित्र में से एक थे बैजू अर्थात् बैजनाथ मिश्र, वृन्दलाल वर्मा जी बताते हैं, मानमंदिर जो मानसिंह द्वारा निर्मित है, उस पर खड़े होकर मानसिंह व रानी मृगनयनी वार्तालाप कर रहे थे। वहाँ सभा भवन के अन्तर्गत स्त्रियों के बैठने के लिए उचित व्यवस्था थी, वहाँ पर बड़े घर की स्त्रियाँ प्रायः विराजमान रहती थी। मृगनयनी रानी भी वहाँ पर उपस्थित थी व नगर की कुछ स्त्रियाँ। इस पर नायक बैजू ने एक होरी गाई।

**"लाड़ली, मान न करिये होरी के दिनन में।**
**कौन बिहारी बान.....**
**बरस दिना को खेल छोड़िके बैठी हो,**
**भोहे तान लाड़ली मान न करिये।"[12]**

बैजू द्वारा मानसिंह के साथ ध्रुपद गायकी का प्रचार–प्रसार किया गया, बैजू द्वारा जो ध्रुपद रचे जाते थे उनमें बैजू अर्थात बैजनाथ मिश्र के नाम का बोध भी होता है। "कहत बैजू बावरे सुनो हो गोपाल लाल।"[13] इस तरह उनकी रचनाओं में उनका नाम प्राप्त होता है। बैजू के संगीत से राजा मानसिंह अत्यन्त प्रभावित थे व रानी मृगनयनी भी बैजू के संगीत से आकर्षित हुई। अन्नतः मानसिह द्वारा अनुमति प्राप्त कर रानी द्वारा बैजू से विधिवत शिक्षा भी ग्रहण की गई इसके अतिरिक्त बैजू द्वारा "होरी गायन शैली और धमार ताल"[14] की रचना का श्रेय भी बैजू को ही प्राप्त होता है। बैजू स्वामी हरिदास जी के ही शिश्य थे।

बैजू की प्रतिभा और कला को जीवित रखने हेतु मानसिंह व रानी मृगनयनी द्वारा "ग्वालियर संगीत विद्यापीठ"[15] इस नाम की संस्था का आरंभ ग्वालियर में किया गया। बैजू के अतिरिक्त बक्शू भी ग्वालियर में मानसिंह तोमर की राज्यसभा में थे। बक्शू ग्वालियर के ही निवासी थे बक्शू को नायक की उपाधि प्राप्त थी, क्योंकि स्वर रचना के अतिरिक्त गायन कला में भी प्रवीण थे। राजा मानसिंह के दरबार में ध्रुवपद को निखारने में उनकी अहम भूमिका रही।

राजा मानसिंह के दरबार में बक्शू "1486–1516"[16] तक निवास करते रहे। मानसिंह तोमर बक्शू के विधिवत गुरू भी रहे और इनका संगीत भी राजा की सभा से ही आरंभ हुआ ऐसा माना जाता है, जैसे बैजू द्वारा अपने ध्रुपदों में नाम रचा गया वैसे ही बक्शू जी के ध्रुपद में

भी स्वयं नाम भी डाला गया इसके पश्चात बक्शू जी ने कई पदों का संग्रह किया और उसमें से ऐसे कई पदों को सर्वश्रेष्ठ पदों की श्रेणी में रखा गया वह सहसरस नाम के ग्रथ में प्रकाशित करवाये। "चार राग व चालिस रागनियों में विभाजित कर फारसी भूमिका सहित प्रकाशित किया इसके राग–ए–हिंदी, सहसरस, एक हजार ध्रुपद माला आदि अनेक नाम रखे गये"[17] ध्रुवपद की परंपरा का सफलता पूर्वक वहन करने में "बैजू, बक्शू, स्वामी हरिदास, इत्यादि गाायकों के अतिरिक्त तानसेन का विशेश योगदान है"[18]। इनके द्वारा ध्रुवपद गायकी का प्रचार–प्रसार अति तीव्र गति से किया गया। मानसिंह द्वारा भारतीय शास्त्रीय संगीत के प्रचार के लिए अतुलनीय कार्य किये गये। बड़ी कुशलता पूर्वक योजना बद्ध तरीके से मानसिंह तोमर द्वारा उनकी सभा में उपस्थित तीन नायकों को यह आदेश दिया गया कि, प्रत्येक के द्वारा एक–एक गीत संग्रह तैयार किया जाए।

"आइने–अकबरी के अनुसार नायक बक्शू, बैजू तथा भानू ने विश्णु पद तथा ध्रुवपद तथा होरी धमार के तीन संग्रह तैयार किये थे"[19] सभी संग्रह जन सामान्य के रूचि के अनुरूप ही इनको तैयार किया गया था।

**निष्कर्ष** –

मानसिंह स्वयं संगीत कला के मर्मज्ञ थे। मानसिंह की संगीत शास्त्र के प्रति रूचि अत्यन्त प्रगाढ़ थी, और संगीत मानसिंह के जीवन का एक अभिन्न अंग बन चुका था। मानसिंह तोमर एक कला प्रेमी, कुशल कुटनितिज्ञ, प्रजा पालक, भाव प्रणव व कला मर्मज्ञ थे, उनके व्यक्तित्व से यह स्पश्ट परिलक्षित होता है, कि वह भावी शासकों को एक नवीन पथ पर अग्रसर कर सकने में समर्थ थे। इस विवेचन से यह पूर्णतः स्पष्ट होता है, मानसिंह तोमर द्वारा संगीत के प्रचार और उन्नति हेतु अत्यधिक परिश्रम किया गया, जिसके द्वारा उनके राज्यकाल में संगीत की अनुठी छवि उभरकर सामने परिलक्षित हुई। संगीत का प्रचाार–प्रसार कर जन साधारण के लिए लोकप्रिय बनाया गया साथ ही ध्रुपद जैसी शैली का प्रचाार कर भारतीय संगीत में एक नवीन गायन शैली का सूरज प्रकाशमान हुआ।

**सन्दर्भ** –


1) द्विवेदी निवास हरिहर श्री, (1995), मध्य देशीय भाषा, काशी विश्वविद्यालय मुरार, पृष्ठ संख्या. 143
2) Encyclopedia of World History (पाचॅवा खण्ड), (1960), प्रकाशक ज्ञान मन्दिर विशारद भण्डारी चन्द्रराज श्री भानपुरा (मध्यप्रदेश), पृष्ठ संख्या. 1381
3) वर्मा वृन्दलाल, मृगनयनी (ऐतिहासिक उपन्यास), (1952), मयूर प्रकाशन ग्वालियर पृश्ठ संख्या. 387
4) द्विवेदी निवास हरिहर, (1906), ग्वालियर के तोमर, विद्यामंदिर प्रकाशन मुरार (ग्वालियर), पृष्ठ संख्या. 296, 297
5) वर्मा वृन्दलाल, मृगनयनी (ऐतिहासिक उपन्यास), (1952), मयूर प्रकाशन ग्वालियर पृष्ठ संख्या. 1
6) द्विवेदी निवास हरिहर श्री, (1995), मध्य देशीय भाषा, काशी विश्वविद्यालय मुरार, पृष्ठ संख्या. 144
7) चिंचौरे प्रभाकर, राजा भैया पूछवाले, (1983), मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल पृष्ठ संख्या. 3
8) द्विवेदी हरिहर निवास श्री, (2010), मानसिंह और मानकुतूहल, विद्यामंदिर प्रकाशन मुरार (ग्वालियर), पृष्ठ संख्या. 58
9) श्रीवास्तव हरिश्चन्द्र प्रो0, (1906), हमारे प्रिय संगीतज्ञ (ग्रन्थ) संगीत सदन प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या. 223
10) बांगरे राव महादेव अरूण डॉ0, (2011) ग्वालियर की संगीत परम्परा, कनिष्क प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या. 12
11) द्विवेदी निवास हरिहर, (1906), ग्वालियर के तोमर, विद्यामंदिर प्रकाशन मुरार (ग्वालियर), पृष्ठ संख्या. 301
12) वर्मा वृन्दलाल, मृगनयनी (ऐतिहासिक उपन्यास), (1952), मयूर प्रकाशन ग्वालियर पृष्ठ संख्या. 410
13) शर्मा स्वतंत्र प्रो0, (2014), भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, अनुभव पब्लिशिंग हाऊस हलाहाबाद, पृष्ठ संख्या. 161
14) श्रीवास्तव हरिश्चन्द्र प्रो0, (1977), हमारे संगीतज्ञ, संगीत सदन प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या. 54
15) गर्ग नारायण लक्ष्मी डॉ0, (2012), निबन्ध संगीत, संगीत कार्यालय हाथरस, पृष्ठ संख्या. 578
16) शर्मा स्वतंत्र प्रो0, (2014), भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेशण, अनुभव पब्लिशिंग हाऊस हलाहाबाद, पृष्ठ संख्या. 163
17) द्विवेदी निवास हरिहर, (1906), ग्वालियर के तोमर, विद्यामंदिर प्रकाशन मुरार (ग्वालियर), पृष्ठ संख्या. 301
18) श्रीखण्डे कला डॉ0, (1906), मध्य प्रदेश में शास्त्रीय संगीत की विकास यात्रा, निर्मल प्रकाशन दिल्ली, पृष्ठ संख्या. 31
19) द्विवेदी निवास हरिहर, (1906), ग्वालियर के तोमर, विद्यामंदिर प्रकाशन मुरार (ग्वालियर), पृष्ठ संख्या. 301



**प्रियंका पाण्डेय**
Net (S.R.F) U-SET
संगीत विभाग
एस0 एस0 जे0 परिसर अल्मोड़ा
कुमाऊँ विश्वविद्यालय नैनीताल
उत्तराखण्ड 263601
मो0 न0–7895651889

26

# नारी व्यथा का दस्तावेज : डॉ. मुक्ता

मंजू, डॉ0 रामरती

**सारांश** –

हरियाणा में स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण को उजागर करने में डॉ. मुक्ता मदान का एक विशिष्ट स्थान है। 20 मार्च 1951 को हरियाणा प्रदेश के भिवानी जिले में जन्मी डॉ. मुक्ता मदान शिक्षा, साहित्य और भक्ति की त्रिमूर्ति हैं। डॉ. मुक्ता ने अपने साहित्य में नारी व्यथा की अभिव्यक्ति को नजदीक से अनुभूत किया है। हरियाणा में बढ़ती बलात्कार की घटनाओं, कन्याभ्रूण के तेजी से बढ़ते जा रहे मामले, पुरुष का अहं तथा पुरुष द्वारा नारी को तुच्छ व भोग की वस्तु समझना, नारी का नगण्यता का चोला पहनाने वाले पुरुष की मानसिकता पर करारा व्यंग्य किया है। डॉ. मुक्ता ने अपने साहित्य की कथाओं और लघुकथाओं के जरिये विशेष बौद्धिक उठापटक या कलात्मक कलाबाजियों की कारगुजारी नहीं है, अपितु एक सहज सरल जिज्ञासु मन की स्वतः उद्भावना है। इनकी कविताएँ वर्तमान समाज की निरीहताओं से उपजी हैं। उनकी रचनाओं में नारी मन की व्यथा का सहज स्फुरित गान है। उनकी रचनाएँ मन की पीड़ा से पोषित हैं। जहाँ निरी भौतिकता का यथार्थ है, वहीं उसका समाधान भी है। प्रत्येक रचना को कवयित्री ने अपने मन से अनुभूत किया है और शब्द के अश्रुओं से सिक्त कर पाठक के समक्ष रखा है साथ ही सामाजिक, राजनैतिक विषयों को भी अपनी लेखनी से संस्पर्ष किया है। डॉ. मुक्ता ने निम्न व मध्यवर्गीय जीवन को, पाश्चात्य संस्कृति व वृद्धावस्था की टीस व पीड़ा को, सामाजिक बुराइयों को, अपनी कहानियों व उपन्यासों में दर्शाया है।

**प्रस्तावना**

साहित्य समाज का दर्पण होता है जो समाज में घटित होता है वही साहित्य में उकेरा जाता है। समय के साथ साथ साहित्य व समाज में परिवर्तन होते रहते हैं। प्रतिदिन परिवर्तित होने वाले संदर्भों को एक संवेदनशील व चेतना सम्पन्न साहित्यकार ही युग के अनुरूप अपने साहित्य में अभिव्यक्ति करने की क्षमता रखता है। साहित्य समाज के प्रत्येक क्षेत्र को अपने भीतर समाहित करने की क्षमता रखता है। साहित्य की उपादेयता के विषय में गजानन माधव मुक्तिबोध लिखते हैं, ''सामाजिक केवल निजी रागात्मक अनुभवों को प्रतिबिंब नहीं है बल्कि एक सामाजिक वास्तविकता और उसके द्वंद्वों को चित्रित करने वाला एक सशक्त माध्यम है।''[1]

भारतीय संस्कृति में वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक समाज में नारी की दशा दयनीय रही है। डॉ. मुक्ता मदान की रचनाएँ नारी यातनाओं का दस्तावेज हैं। यद्यपि आज शिक्षा के आलोक में नारी की चेतना ने करवट बदली है। अपने अपने अस्तित्व को पहचाना है। पुरुष के समकक्ष खड़ी होकर साहस के साथ अपने हर क्षेत्र में पदार्पण किया है। वह अब अबला नहीं है। लेकिन डॉ. मुक्ता की लघुकथाओं को पढ़कर हमारी चेतना में हड़कम्प मच जाता है। आखिर आज कितने प्रतिशत नारियाँ हैं, जो समर्थ और सक्षम हैं? सत्तर प्रतिशत महिलाएँ आज भी पुरुष के वर्चस्व के नीचे दबी यातना भोग रही हैं। इन लघु कथाओं को पढ़कर हमारी आँखें खुलती हैं। टी.वी. पर हम रोज देखते हैं कि नारी की इतनी उन्नति और प्रगति होने के बावजूद भी नारी आज कहीं भी सुरक्षित नहीं है। ''बलात्कार, बेटी की अपेक्षा, पति का सन्देह, पत्नी के प्रति दासी जैसा व्यवहार, बहुओं और बेटों का माँ के साथ दुर्व्यवहार, दहेज जैसे कि यन्त्रणाओं का कोष सुरसा की भाँति मुँह खोले नारी को निगलने को तैयार है।[2]

'अब और नहीं' कहानियों में लेखिका ने हर कोण से स्त्री की पीड़ा को ही उजागर किया है। पुरुष जैसा भी हो, उसके लिए सब क्षम्य है। 'सत्ता' का राजन दूसरी स्त्री से अनुचित सम्बन्ध रखता है। पत्नी के विरोध करने पर वह उस पर ही बरसने लगता है। अगर उसे उस पर विश्वास नहीं है तो वह छोड़कर जा सकती है। ''घर तो जन्म से औरत का होता ही कहाँ है?पिता के घर में वह पराई कहलाती है और पति को घर में रास्ते का पत्थर, जिसे जब चाहे जिन्दगी से निकाल बाहर फेंक दिया जाता है।''[3] इन सब भाव कथाओं को पढ़कर मन में बार–बार यही प्रश्न कौंधता है ... कब बदलेगी पुरुष की सोच। आज नारी उत्थान और शिक्षा के इतने प्रचार–प्रसार के बावजूद नारी ने अपने हालात और अपनी मानसिकता पर कुछ हद तक परिवर्तन कर लिया है। परन्तु पुरुष की मानसिकता में कोई अन्तर नहीं आया है। मध्यवर्गीय परिवारों में तो स्थिति ज्यों की त्यों है। डॉ. मुक्ता ने 'चक्रव्यूह' में औरत को सशक्त, सक्षम बनाया है। नारी के जीवन की त्रासदी यह है कि उसे सदियों से दोमय दर्जे का समझा गया है। कानून ने उसे समानता का अधिकार तो प्रदान किया है, परन्तु इसे पुरुष समाज ने आज तक अपनी भोग–विलास की वस्तु समझ रखा है। 'चक्रव्यूह' में औरत को शक्तिशाली बनाकर समाज के सामने प्रस्तुत किया है।

वह तूफानों संग खेली है
गमों की प्रिय सहेली है
संघर्ष में उसके जीवन का लक्ष्य
आत्म विश्वास उसकी धरोहर।[4]

वर्तमान समाज में आधुनिकता व मौलिकता में आकण्ड डूबा हुआ है और वह अपने संस्कारों व सम्बन्धों की गरिमा को तिलांजलि दे चुका है। आज समाज में चहूँ ओर धृष्टता व अनैतिकता का बोलबाला है। कोई भी रिश्ता इससे अछूता नहीं रह गया है। लेखिका ने पतित होते मानव मूल्यों को उजागर करने का भरसक प्रयास किया है। लेखिका का हृदय ऐसी ध्वस्त होती परम्पराओं को देख व्यथित है। जो कि उनकी 'एक आँसू' की कविताओं में दृष्टव्य है। दरकता विश्वास गिरता मूल्य, सामाजिक विघटन, मर्यादा की अवहेलना व रिश्तों का पतन देख लेखिका का हृदय क्षोभ से भर उठता है। उसी के परिणामस्वरूप परमात्मा के सम्मुख उसके उद्‌गार निकल जाता है।

इन्सान के दुष्कृत्यों को देख
लगता है भगवान भी शर्मिंदा है
शायद इसमें नहीं सामर्थ्य
इन्सान का सामना करने का
लगता है वह भी टूट गया है।[5]

अस्मिता डॉ. मुक्ता द्वारा रचित दूसरा काव्य–संग्रह है। यह काव्य संग्रह युगों युगों से उत्पीड़ित उपेक्षित नारी का दस्तावेज हे। इसमें कवयित्री ने नारी मन की आहत होती भावनाओं का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। कवयित्री कहती है – औरत की अस्मत न त्रेता युग में सुरक्षित थी, न द्वापर युग में। कलयुग ने तो नारी को नीलाम कर दिया है। वह न घर में सुरक्षित है, न ही बाहर। घर की चारदीवारी में भी उसकी इज्जत अपनों द्वारा लूटी जाती रही है। वह कभी महफिलों की शोभा बनती है तो कभी दिल को बहलाने वाली वस्तु समझकर उसे खाली बोतल की तरह उपयोग कर रास्ते में फेंक दिया जाता है। कोई नहीं समझता उसकी पीड़ा, दर्द उसके संत्रास को, देखकर भी अनदेखा कर दिया जाता है। गांधारी, द्रौपदी, सीता, उर्मिला, यशोधरा जिन्हें राजमहल में रहते हुए भी अपनों द्वारा दिए गए दंश झेलने पड़े, जो नासूर बन उन्हें आजीवन रुलाते रहे।[6] समाज में नारी पर बढ़ रहे अत्याचारों के कारण नारी की दयनीय दशा को देखकर कवयित्री खिन्न हो जाती है और ईश्वर पर कटाक्ष करते हुए कहती है कि क्या वह भी असहाय हो गया है, जो नारी पर बढ़ते जुल्मों को देखकर भी उसका मन पसीजता नहीं, मन विचलित नहीं होता। ये सब देखकर भी भगवान अंधा और बहरा हो गया है। सृष्टि के रचयिता भी यह सब देखकर मौन हैं फिर ऐसी सृष्टि बनाई ही क्यों?कवयित्री ने भगवान पर भी प्रश्न चिन्हत लगाए हैं।

''हे मालिक
तुमने भी टेक दिए हैं घुटने
ऐ मालिक
अब तुम भी
धृतराष्ट्र हुए।''[7]

मनुष्य को ईश्वर की सर्वोत्तम कृति कहा गया है और उसमें भी नारी को प्रधानता दी गई है। हमारे साहित्यकारों ने नारी के विषय में बहुत कुछ लिखा है – किसी ने अबला, तो किसी ने सबला, किसी ने प्रकृति, तो किसी ने शक्ति। इस प्रकार साहित्यकारों ने अपने विचारों के अनुसार नारी के बारे में बहुत कुछ लिखा है। नारी का सामान्य अर्थ है – नारी = न (नहीं), अरी (दुश्मन) अर्थात् जिसका कोई दुश्मन नहीं है, वह है नारी।''[8]

डॉ. मुक्ता स्वयं भी बेहद सोम्या, सजग, उदार–मना एवं महामना नारी है। उच्च शिखर तक सम्मानित, अलंकृत और पुरस्कृत नारी डॉ. मुक्ता बहुत कम बोलती हैं, परन्तु जितना बोलती हैं, बड़ी मधुर वाणी से नपे–तुले शब्दों का उच्चारण करती हैं। वह नारी मन के भीतर उतर जाने का हुनर जानती है, वह उनकी कहानियों को पढ़ने से पता चल जाता है। वह नारी मन और प्रकृति तत्त्व की कोमलता से भली प्रकार परिचित एवं अवगत हैं। यह उनकी कविताओं के मनन–मंथन से ज्ञात होता है। साहित्य के इतने सारे मणिक–मोतियों की माला उन्होंने शारदे माँ के लिए तैयार कर रखी है। डॉ. मुक्ता एक ऐसी लेखिका हैं जो एक हाथ से समाज से कुछ ग्रहण करती हैं, तो दूसरे हाथ से समाज की विरासत पिटारी में ब्याज समेत लौटाना भी जानती हैं।

**निष्कर्ष:.**

अतः हम कह सकते हैं कि डॉ. मुक्ता के साहित्य में अनुभूतियाँ हैं, भाव हैं, विचारों के मार्मिक स्थल हैं। नारी के प्रति संवेदना का भाव है वह अनुपम है। अंत में यही प्रार्थना है कि डॉ. मुक्ता चिरंजीवी हो, उनकी कलम सलामत रहे, उनकी विचार ऊर्जा बनी रहे और समय–समय पर समाज को अपनी लेखनी के माध्यम से प्रतिबिम्बित करती रहें।

## संदर्भ–सूची


1. आशीष कुमार मिश्रा, 'सूर काव्य की सामाजिक एवं साहित्यिक प्रासंगिकता', पृ. 36
2. डॉ. मुक्ता, 'अब और नहीं'
3. डॉ. मुक्ता, 'आखिर कब तक', 'सत्ता', पृ. 19
4. डॉ. मुक्ता, 'चक्रव्यू में औरत'
5. डॉ. मुक्ता, 'एक आँसू'
6. डॉ. मुक्ता, 'अस्मिता' भूमिका से।
7. डॉ. मुक्ता, 'अस्मिता', पृ. 14
8. भावना एन कालिया, 'महादेवी वर्मा के समग्र साहित्य में नारी चेतना'



**मंजू**
शोधार्थी, हिंदी–विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक–124001
म.नं. 1607/21, चुन्नीपुरा,
नजदीक सैनी स्कूल, रोहतक।

**डॉ0 रामरती**
शोध निर्देशक,
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक–124001

27

# मृदुला गर्ग की कहानियों में वृद्ध जीवन

**डॉ0 प्रिया कुमारी**

**सारांश** –

हम सजीव प्राणी लगातार बढ़ते है, सामाजिक, आर्थिक विकास के साथ अवस्था में भी। वृद्धा अवस्था से सभी को गुजरना है। प्रकृति का यही नियम है, जो आज नवीन है वह कल मलिन होगा, जो आज तरुण है कल वह वृद्ध होगा। शेक्सपियर ने अपनी रचना 'the seven age of man' (मनुष्य की सात अवस्थाएं) में मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक की सारी अवस्थाओं की चर्चा की है। इन अवस्थाओं में व्यक्ति का स्वभाव कैसा होता है, उनका पहनावा, चाल–ढाल, खान–पान आदि की चर्चा उन्होंने की है। इस रचना के अनुसार मनुश्य के सात अवस्थाएं होती है 1) नवजात शिशु 2) स्कूली बच्चा 3) किशोर 4) युवा 5) मध्यम आयु 6) वृद्धावस्था 7) मतिक्षीणता, मृत्यु। वृद्धा अवस्था में व्यक्ति का शरीर क्षृण होने लगता है, मांस हड्डियां छोड़ने लगती है, शरीर पतला हो जाता है, कपडे फिट नहीं होते, पिंडलियां सुख चुकी होती है, आँखों में चश्मा तथा पैर में चप्पल आ जाते है, पैसा का बटुआ पास नहीं होता मर्दानी आवाज बदल कर बच्चे की तीखी आवाज में बदल जाती है, दांत टुट जाते है जीवन की सारी आकांक्षाएं समाप्त हो जाती है। जिस अवस्था में उसे अपने परिवार और बच्चों की सबसे ज्यादा जरूरत होती है, उस अवस्था में कई बार बच्चें उन्हें अपनाने से मना कर देते है। यही वृद्ध व्यक्ति अपने बच्चों के पालन–पोशन में जीवन की सारी जमापूंजी लगा देते है, इस आशा में की वह जीवन भर सुखी जिंदगी जिये उसे कभी किसी भी चीज की तकलीफ न हो। पर ये बच्चे अपने वृद्ध माँ–बाप को छोड़ देते है ताकि उनकी खुशियों में बाधा उत्पन्न न हो। वृद्धों की यह समस्या बरसों से चली आ रही है वर्तमान में भी यह बरकरार है जिसमें जरा सा भी अंतर नहीं आया है। हम अपने आस–पास इस तरह की समस्या अक्सर देखते सुनते व पढ़ते है। आखिर अपने ही बच्चे अपने वृद्ध परिवारजन के साथ दुर्व्यवहार क्यों करते है शायद इसलिए की बलवान हमेशा निर्बल को सताता हैं शक्तिहीन शरीर, बलिश्ठ शरीर का विरोध भी करता है तो उससे कोई भय नहीं खाता। हमारे समाज में दलित समस्या, स्त्री समस्या, आदिवासी समस्या, किन्नर समस्या सामाजिक है पर वृद्ध समस्या परिवार से शुरु होता सामाजिक बन जाता है। मतलब परिवार के लोग ही परिवार के सबसे वरिश्ठ सदस्य जिसने परिवार का निर्माण किया उनकी ही अवहेलना करता है।

ऐसी अवहेलना, तिस्कार, अपमान, अकेलापन, अभद्र व्यवहार, मूलभूत आवश्कताओं से वंचित, मानसिक प्रताड़ना, प्रताड़ना के बाद भी अपनी अस्तित्व को बरकरार रखने का प्रयास मृदुला गर्ग की कहानियों में स्पश्ट रूप से नजर आती है। वृद्ध जीवन पर उनकी कहानियाँ 1970 ई. के बाद भारत में वृद्ध जीवन की स्थिति को दर्शाती है लगभग 50 साल के उनके लम्बे वृद्ध विमर्श की कहानियों में अन्य समस्याओं के साथ यह भी दिखलाया गया है कि वृद्ध अपने अधिकार के प्रति सजग है वह लड़ते है विद्रोह करते है। यह भी बता देने से पीछे नहीं हटते की बाप कौन है और बेटा कौन। अपने प्रति जागरूक है, अपने हक को जानते है। वृद्ध जीवन पर आधारित उनकी चर्चित कहानियों में कहानी संग्रह (क्रमशः) कितने कैदी (1975) की कहानी 'लौटना और लौटना', उर्फ सैम (1982) की कहानी उर्फ सैम, उधार की हवा, बांसफल, समागम (1996) की कहानी 'छत पर दस्तक', मेरे देश की मिट्टी,अहा (2001) की कहानी साठ साल की औरत, वो दूसरी (2014) की कहानी 'बेंच पर बूढ़े' इत्यादि।

मृदुला गर्ग ने जितनी भी कहानियों का सृजन किया है उनमें गहरी सामाजिक संवेदना है। कहानियां पढ़ते हुए ऐसा लगेगा हाँ ऐसा ही तो होता है समाज में। टी.वी., समाचारपत्र, सोशल मीडिया में हम अक्सर देखते सुनते है, वृद्ध माता–पिता के बच्चे छोड़कर हमेशा के लिए विदेश में बस गये, वृद्धों की देखभाल के लिए कोई नहीं होता जिससे कभी बंद कमरों में वृद्ध की लाश मिलती है या अकेले होने के कारण अपराधियों का यह आसान शिकार हो जाते है। उनकी हर कहानी समय और समाज को जोड़ती नजर आती है। उनकी कहानियों का परिवेश भारतीय जीवन के साथ–साथ विदेशी जीवन पर भी आधारित है। वर्तमान समय में लोगों का रुख ज्यादातर विदेशी जमींन की तरफ बढ़ रहा है। माँ–बाप पूरी कोशिश करते है की उनके बच्चे ऊँची से ऊँची शिक्षा हासिल करे। अपनी जिंदगी की पूरी कमाई बच्चों को विदेश में शिक्षित कराने में लगा देते है। पर बच्चे विदेश जाकर अपनी रीति, संस्कृति, आदर, सम्मान भूलकर अपने माता–पिता के हर व्यवहार में गलतियां निकालना शुरू कर देते है, अपमानित करते है, इस बात का अहसास दिलाते है कि उन्हें कुछ नहीं आता। माता–पिता के प्यार, स्नेह, दुलार से ज्यादा धन को महत्व दिया जाता है। ऐसी ही कहानी है 'लौटना और लौटना' कहानी का मुख्य पात्र है हरीश। जिसे पिता, उच्च शिक्षा के लिए अमेरिका भेजते है पर हरीश वही बस जाता है। पिता को यह आशा थी कि बेटा जब अमेरिका से लौटेगा तो उनका घर बनाने व

पुत्र के साथ रहने का सपना पूरा होगा, पर होता इसके ठीक विपरीत है। विदेश जाकर हरीश अर्थलोलुप मनोवृति के साथ भारत लौटता है, वह भी कुछ दिनों के लिए, भारत आने का उसका उद्देश्य विवाह करना था, साथ ही फूलबाग की जमींन पर घर भी बनवाता है। ये घर माता–पिता के लिए नहीं किराये पर लगाकार उसका पैसा अपने खाते में जमा करने का इंतजाम कर वापस लौट जाता है। आधुनिक बच्चों की मानसिकता पर मृदुला गर्ग लिखती है ''यथा समय हरीश का मनचाहा विवाह हो गया, दक्षिण यात्रा सम्पन्न हुई और मकान भी बनकर तैयार हो गया। पर बाबूजी का अपने मकान में रहने का स्वप्न पूरा न हो सका। जाते समय हरीश मकान किराये पर चढ़ा गया और किराये के रूपये अपने नाम से बैंक में जमा करने का बन्दोबस्त भी कर लिया।''[1] उसे अपने वृद्ध माता–पिता की तनिक भी चिंता नहीं। बात–बात पर अमेरीकि रहन–सहन को भरतीय रहन–सहन से तुलना कर माता–पिता को अपमानित करता है। औलाद यह भूल जाते है कि कल को वह भी वृद्ध होगें उन्हें भी सहारे की जरूरत होगी। इसी समस्या को कहानी 'उर्फ सैम' में चित्रित किया गया है। सावन प्रतान सिंह उर्फ सैम अमेरिका में बस गया है। जवानी के दिनों में उसे अपने वृद्ध पिता की चिंता न थी चिंता थी तो केवल धन अर्जित करने की। समय बीतने के साथ सैम को अपने बुढ़ापे की चिंता सताने लगती है। बुढ़ापे में वृद्धाश्रम की बजाय वह परिवार में रहना चाहता है। वृद्धावस्था का भय उसके इन शब्दों से प्रकट होता है ''बुढ़ापा आने पर, काम करने की ताकत खो जाने पर, कितने दिन साथ देगा यह रुपया। कितने दिन महफूज रह सकेगा वह अपार्टमेंट––जल्दी मर गये तो बात दूसरी है,–– ताऊ नब्बे तक जिये और पिता जी भी पचहतर छू रहे है। ताऊ की तरह सेहतमंद रहा तो भी चलेगा पर बाबा की तरह छह साल लकवे में रहना पड़ा तो?इलाज तक के लिए पैसा नहीं बचेगा।''[2]

'छत पर दस्तक' भी अप्रवासी भारतीय की कहानी है। बुजुर्गो का अकेलापन केवल भारतीयों की समस्या नहीं बल्कि विदेशी भी अकेलेपन से जुझ रहे है। साथ ही कहानी में यह भी दिखलाया गया है कि किस प्रकार भारतीय अपनी संस्कृति भूल कर स्वयं को अमेरिकी चाल ढाल में परिवर्तित कर देते है। माँ–बाप की नागरिकता, सदियों की विरासत, खून और नस्ल सब धरे रह जाते है और आदमी बिना गर्म में आये, बिना मदद या परवरिश नया जन्म ले लेता है। कहानी है नलिनी की, पति की मृत्यु व रिटायरमेंट के बाद स्वयं को अकेला महसूस कर वह अपने कैलिफोर्निया निवासी बेटे के पास रहने चली जाती है। पर बेटा इतना प्राइवेसी पसंद है कि माँ कभी बेटे के कमरे तक भी नहीं पहुँच पाती है। नलिनी स्वयं बेटे के साथ होते हुए भी अकेला महसूस करती है। नलिनी को अकेले कमरे मे बेचैनी महसूस होती है। अकेलेपन से ऊबी चुकी नलिनी उसके ऊपरी माले पर रहने वाले अकेले व्यक्ति की पदचाप पहचान कर बल्ले से ठक–ठक की आवाज पैदा करती है। दोनों व्यक्ति का ठक–ठक की आवाज ही अकेलेपन से बाहर आने का कारण बनता है। कहानी 'चौथा प्राणी' भी परिवार के बीच रहते हुए बीरेन नामक चौथे प्राणी की एकाकी जीवन को चित्रित किया गया है।

दुनिया तेजी से आगे बढ़ रहा है। नये–नये आविश्कार हो रहे है। नये–नये शब्दों का प्रयोग हो रहा है। बच्चों के लिए यह आम बात है पर बुजुर्गो के लिये यह नया है, उन्हें नई नई चीजे सिखनी पड़ती है। कोविड–19 के इस दौर में ऑनलाइन कक्षाएं शुरु हुई नई शिक्षिकों के लिए यह सहज था परन्तु रिटायरमेंट तक पहुँच चुके शिक्षिकों व सेवानिवृत शिक्षकों को लिए सिखना एक चुनौती थी। कई बार बच्चे ऑनलाइन कक्षाओं में गलतियां होने पर इनका मजाक बनाते थे। आज के युग में नेटवर्किंग बच्चों के जिंदगी का हिस्सा है पर बुजुर्गो को इन्हें सिखना पड़ता है। हमे उनकी मदद करनी चाहिए न कि उनका मजाक बनाना चाहिए। मृदुला गर्ग की कहानी 'बांसफल' में कुछ ऐसे ही संकेत मिलते है। कहानी में दादी और पोते की नोक–झोंक, वृद्धावास्था में वृद्ध का बच्चों जैसा व्यावहार आदि को दिखलाया गया है। दादी कुछ भी कहती है, पोता उसका मजाक बनाता है, अंग्रेजी में वह दादी को भला–बुरा कहता है ताकि दादी समझ न पाये। दादी जब कांटेक्ट लेंस लगाने की बात कहती है तो अजय (पोता) कहता है ''इस उम्र में आप कांटेक्ट लेंस लगायेंगी, आप भी वस्स''[3] अजय हँसता है और अपनी माँ से अंग्रेजी में कहता है ''बेवकूफी भरी बाते करती है ये''[4] दादी जब बागीचे के बारे मे बात करती है तो अजय बदतमीजी से कहता है ''बचीगा मेरे पापा का है, आपका या उस फटीचर माली का नहीं।''[5] अजय के एक और वाक्य को देखिए ''रोज रोज क्यो पकाती हो घिया– चने की दाल। अक्ल का इस्तेमाल नहीं कर सकती''[6] अजय बहुत बिगड़ा हुआ बालक है और उसके बिगड़ने का सारा इल्जाम बहु दादी पर लगाती है।

सेवानिवृत ऐसा शब्द है जिसमें व्यक्ति को कार्यालय के कार्य से मुक्ति मिल जाती है, अपनी इच्छाओं से नहीं। रिटायरमेंट के बाद नयी जीवन की शुरूआत होती है। जो इच्छाएँ, आकांक्षाएं अधुरी रह जाती है उन्हें पूरा करने का समय होता है। कोई भी वृद्ध व्यक्ति यह कभी नहीं चाहता की जिन बच्चों की परवरिश उन्होंने की हो वह सेवानिवृत होने के बाद उनके इसारों पर चले, इन्हीं बिन्दुओं पर लिखी गयी कहानी है 'उधार की हवा'। इस कहानी में मनीश व गिरीश दो पुत्रों के पिता है बाबूजी। बाबूजी जीवन अपने शर्तो पर जीते है। वह स्वयं को वृद्ध नहीं समझते उन्हें कब क्या करना है वह स्वयं तय करते है। जीवंत व्यक्त्वि व व्यंग्य करने में माहिर बाबूजी रिटायरमेंट के बाद किसी पर आश्रित नहीं रहना चाहते। उनका सपना है सेवानिवृत होने के बाद खेती करना और इसलिए वह अपने मित्र राधेश्याम के साथ मिलकर ग्रेट्यूएटी के पाँच लाख रूपये से जमीन खरीदते है। पर बच्चों का मन है जमीन बेच कर किसी पॉश इलाके में मकान खरीदा जाए, उपर एक भाई रहे और नीचे दूसरा भाई, बेटों के विचार है ''खेती में क्या रखा है। जमींन के दाम इन

पंद्रह सालों में बीस गुना हो गये, बेच–बाच कर किसी पाश कोलोनी में जमींन खरीद कर मकान बनवाया जाये। दो तल्ले का मकान हो, नीचे एक भाई रहे, ऊपर दूसरा। और बाबूजी? अरे उनका क्या है किसी के भी साथ रह लें। वरना अपना वह दो कमरोंवाला पुश्तैनी मकान ही क्या बुरा है।''[7] बेटों को बाबूजी से जमींन प्यारा है बाबूजी की किसी को चिंता नहीं। पर बाबूजी भी इनके बाबूजी थे इनके लाख मनाने के बावजूद वह जमींन बेचने को राजी नहीं होते है। यह कितनी शर्म की बात है बच्चें माँ–बाप के सपनों को भी बेंच कर अपने फायदे की बात सोचते है। 'उधार की हवा' उन कम कहानियों में है जिसमें मृदुला गर्ग जी ने बाबूजी के किरदार में नाटकीय या किस्सागों तत्व को नहीं जोड़ा है।

'बेंच पर बूढ़े' कहानी वर्तमान पृश्ठभूमि पर लिखी गयी है। जहाँ बच्चे टी.वी. नहीं यू–ट्यूब पर वेब सीरिज देखते है। हिन्दी की अपेक्षा अग्रेंजी भाशा को ज्यादा महत्व दिया जाता है। भारतीय भोजन की जगह विदेशी चाऊमीन, पिज्जा, चाईनीज फ्राईड राईस, चिली प्रौन, पास्ता ज्यादा पसंद किया जाता है। हम अधुनिकता की ओर तो बढ़ रहे है पर अपनी संस्कृति व बड़े–बुजुर्गो का सम्मान करना भूलते जा रहे है। इस कहानी में दो ऐसे बुजुर्गो का चित्रण किया गया है जिनकी मुख्य समस्या उनका अकेलापन तथा मानसिक शोशण है, जो अपने ही बेटे–बहु व पोते–पोतियों द्वारा दिया जाता है। कहानी है दो बुजुर्ग नितिन सोलंकी व बी.के. नामक व्यक्ति की जिनकी मुलाकत लोदी गार्डन में होती है। नितिन की पत्नी भाग्यवती स्वर्ग सिधार चुकी है। घर में बेटा (ध्रुव) बहु (मान्या) व दो पोती–पोतियाँ है। नितिन को पापा शब्द से नफरत हो चुकी है कारण उनका घर में कोई अस्तित्व नहीं। बेटे–बहु अक्सर नितिन व भाग्यवती पर बच्चों को बिगाड़ने का दोश लगाते है। भाग्यवती जब जीवित थी तो बहु उससे कहा करती थी ''सारा दिन ईडियट बॉक्स के सामने बैठी रहती है, बच्चे स्कूल से आएं तब बंद कर दिया करे, अदरवाइज उन्हें भी रोग लग जाएगा।''[8] वही बच्चे यू–ट्यूब पर अभद्र सिनेमा देखते है। नितिन को न स्वादिश्ट भोजन मिलता है न उसके पास खुद का फोन ही है। बेटे–बहु को एकांत देने के लिए वह अक्सर लोदी गार्डन में समय बिताते है। वही दूसरी ओर बी.के. की बहु आहार विशेशज्ञ है वह घर पर ही रहकर क्लांट को देखती है। उसे पसंद नहीं की ससुर बी.के. उसके क्लांट के सामने आये कारण वृद्ध होने के कारण वह कुछ अजीब सा दिखने लगे है। इस वजह से बी.के. सुबह नास्ते के बाद ही पूरा दिन बगीचे में बीताते है, कहानी का एक संदर्भ है जहां बी.के. नितिन से इस बारे में कहता है ''ग्रहकों के आने पर उसे मेरे घर पर रहना पसंद नहीं। इसीलिए सुबह नाश्ते के बाद से यहां, आई. आई. सी में आकर बैठ जाता हूँ''[9] नितिन बी.के से मजाकिया अंदाज में कहता है ''क्यों तू उन्हें आँख मारता है'' बी.के. अपनी करूण कथा सुनाता है ''मारता तो एतराज न होता। पर मैं काफी बूढ़ा दिखता हूँ, उसकी आवाज धीमी पड़ती गुम हो गई''[10] यह कितनी अजीब बात है जिस व्यक्ति ने घर–परिवार का निर्माण किया है उसे ही घर में रहने की जगह नहीं मिलती। इस कहानी में वृद्धो की आर्थिक स्थिति का भी चित्रण किया गया है नितिन का बेटा बड़ा अफसर है फिर भी नितिन के पास अपना फोन नहीं उधर बी के भी बस की सवरी कर आता जाता है। पर दोनों एक दूसरे से अपनी आर्थिक स्थिति को छूपाने की कोशिश करते है ताकि उनके परिवार पर दोश न लगे।

मृदुला गर्ग के साहित्य में वृद्धजनों से जुड़े तमाम सामाजिक, आर्थिक, नैतिक कारणों के साथ आधुनिकीकरण, भूमंडलीकरण और सामाजिक परिवर्तन के बदलते स्वरूप को दिखलाया गया है। हमारे देश में वृद्धों की संख्या में लगातार बढ़ोतरी हो रही है। संवेदनहीनता व मूल्यपतन के कारण वृद्धों की समस्या बढ़ रही है। इसी समस्या को ध्यान में रखकर सामाजिक स्तर पर वरिश्ठ नागरिकों के लिए सरकार व सार्वजनिक स्तर पर सुविधाएं उपलब्ध करवाई जा रही है। 'सामाजिक न्याय और आधिकारित मंत्रालय' वरिश्ठ नागरिकों के कल्याण से जुड़े मंत्रालय है। यह केंद्र सरकारों, राज्य सरकारों, गैर सरकारी संगठनों और नागरिक समाज के सहयोग से वरिश्ठ नागरिकों के लिए नीतियां व सुधार कार्यक्रम लागू करता है। उनके बेहतर स्वास्थ, अच्छी आर्थिक स्थिति, देखभाल, वृद्धाश्रम की व्यवस्था, डे केयर सेंटर, अच्छी दवाओं, मोबाइल चिकित्सा आदि पर ध्यान देता है। वृद्धजनों की स्थिति में सुधार के लिए कई नीतियां और कार्यक्रम बनाये गये है जो निम्न हैः–

1) 'वृद्धों के लिए समन्वित कार्यक्रम' (आईपीओपी) – 1992 में सामाजिक न्याय और आधिकारित मंत्रालय के द्वारा वृद्धों के लिए समन्वित कार्यक्रम लाया गया इसका मुख्य उद्देश्य जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं जैसेः– बुजुर्गो को निवास प्रदान करना, स्वच्छ भोजन, चिकित्सा देखभाल और मनोरंजन आदि उपलब्ध करना है। इसे और बेहतर बनाने के लिए 2008 व 2015 में संशोधन भी किया गया। संशोधन के बाद कई नयी परियोजनाएं जोड़ी गयी जैसे– वृद्धाश्रम का रखरखाव, राहत देखभाल गृहों का रखरखाव, बुजुर्गो के लिए बहुविध सेवा केन्द्रों का संचालन, मोबाइल चिकित्सा, भूलने की बीमारी से ग्रस्त बुजुर्गो की देखभाल के लिए डे केयर, वृद्ध विधवाओं के लिए बहुविध सुविधा देखभाल केन्द्र, फिजियोथेरेपी क्लीनिक, क्षेत्रीय संसाधन और प्रशिक्षण केन्द्र, बुजुर्गो के लिए हेल्पलाइन और परामर्श, स्कूलो/कॉलेजों के छात्र और छात्राओं को बुजुर्गो के प्रति संवेदनशील बनाने के लिए कार्यक्रम आदि।

2) राश्ट्रीय वृद्धजन नीति (एनपीओपी) – जनवरी 1999 में राश्ट्रीय वृद्धजन नीति लाया गया। इस नीति के अन्तर्गत वृद्धों की वित्त स्थिति व आहार सुरक्षा, स्वास्थ देखभाल, आश्रय, विकास में समान हिस्सेदारी दुर्व्यवहार और शोशण के खिलाफ सुरक्षा व बेहतर जीवन स्तर बनाने के लिए सेवाएं प्रदान कि गयी।

3) अंतरराश्ट्रीय वृद्धजन दिवस (आईडीओपी) और राश्ट्रीय पुरस्कार

– 1 अक्टूबर को हर साल अंतराश्ट्रीय वृद्धजन दिवस मनाया जाता है। इसकी शुरुआत वर्श 2005 मे हुई। इस दिन सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय द्वारा वरिश्ठ नागरिकों को समर्पित भव्य कार्यक्रम का आयोजन करता है। इस दिन वृद्धजनों के योगदान के प्रति आभार प्रकट करके उनकी समस्याओं के प्रति लोगों को जागरूक किया जाता है। देश में वृद्ध के प्रति उत्कृश्ट काम करने वाले प्रतिश्ठित वरिश्ठ नागरिकों और संस्थाओं के प्रयासों को नयी पहचान देने के लिए 2005 में वयोश्रेश्ठ सम्मान आरंभ किया गया।

4) माता–पिता और वरिश्ठ नागरिको का भरण पोशण और कल्याण अधिनियम 2007 लाया गया। इस अधिनियम के अंतर्गत न्यायाधिकरण ने बच्चों/रिश्तेदारों द्वारा माता–पिता/वरिश्ठ नागरिको के भरण पोशण को अनिवार्य और न्यायोचित माना हैं। रिश्तेदारों से उपेक्षा मिलने पर वरिश्ठ नागरिक संपत्ति का हस्तांतरण रद्द कर सकता है। वरिष्ठ नागरिको का परित्याग करनेवाला दंड का भागीदार होगा, निराश्रित वरिष्ठ नागरिकों के लिए वृद्धश्रम का निर्माण, वरिष्ठ नागरिको की संपत्ति और जीवन की सुरक्षा और वरिष्ठ नागरिको के लिए पर्याप्त चिकित्सा सुविधाएं आदि।

**निष्कर्ष**

वैश्वीकरण के इस दौर में वृद्धों की समस्या निरंतर बढ़ती जा रही है। सरकार व गैर सरकारी संगठनों द्वारा वृद्धों की सुविधाओं के लिए कार्यक्रम चलाये जा रहे है, परन्तु अपने घर को छोड़कर वृद्धाश्रम या डे केयर में बची जिंदगी जीने पर मजबूर वृद्धों की मानसिक स्थिति क्या होती होगी ये वे वृद्ध ही समझ सकता है। वृद्धों के प्रति हमारा इतिहास इतना संकुचित नहीं था, श्रवण कुमार और राम जैसे महापुरुश अपने माता–पिता की आज्ञा का पालन व उनकी देखभाल के लिए कुछ भी कर गुजरे का हौसला रखते थे। संयुक्त परिवार के समय वरिश्ठ परिवार सदस्य के पूछे घर का कोई कार्य नहीं करता था। वरिश्ठ नागरिक वो बहुमूल्य हीरा हैं जिनमें तजूर्बों व ज्ञान का भण्डार होता हैं। शायद ही हम इनके बिना दुनिया में आगे बढ़ सकते है। हमें वृद्धों के प्रति संवेदना जगाने की जरूरत है।

**संदर्भ सूची**


1) मृदुला गर्ग, संगति–विसंगति, 'लौटना और लौटना', नेशनल पब्लिशिंग हाऊस, (2008) पृ सं – 33
2) वही 'उर्फ सैम'–390
3) वही 'बांस फल'–425
4) वही –425
5) वही –426
6) वही – 426
7) वही 'उधार की हवा'– 421
8) https://www.hindisamay.com ( बेंच पर बूढ़े)
9) वही
10) वही


**आधार सूची**


1) भारत में वृद्ध, भारत सरकार सांख्यिकी एवं कार्यक्रम कार्यान्वयन, (2016)
2) विमल लाल, वृद्धावस्था का सच, नई दिल्ली, कल्याणी शिक्षा परिशद्, (2006)
3) डॉ कन्हैया त्रिपाठी, भारत जगाओ प्रतिभा देवीसिंह पाटील, नई दिल्ली, प्रवीण प्रकाशन, (2012)



**संर्पकः–**

**डॉ0 प्रिया कुमारी**

पूर्व शोधार्थी, हिन्दी विभाग,

राँची विश्वविद्यालय, राँची

पता – c/o गीता गुप्ता

**डॉ0 प्रिया कुमारी**

जे एस एम डी सी,

नेपाल हाऊस, डोरंडा

राँची, झारखण्ड

पिन – 834002

मो. – 6201860992, 8084015842

इमेल – priyakmr11@gmail.com

28

# हिन्दी कहानी साहित्य में सांस्कृतिक युगबोध 21 वीं सदी का प्रथम दशक

डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा

**सारांश** –

साहित्य समाज का दर्पण है। सामाजिक परिस्थितियों पर पैनी निगाह साहित्यकार की होती है वैसे तो समाज में रहने वाला प्रत्येक प्राणी परिस्थितियों का बोध करता है लेकिन साहित्यकार की पैनी दृष्टि प्रत्येक परिस्थिति से उत्पन्न होने वाली समस्याओं को समाज के समक्ष प्रस्तुत करते हुए समाज को सचेत एवं जागरुक करते हुए समाधान की ओर अग्रसर होने का प्रयास करती है वास्तव में साहित्य वह साधन है जो भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होकर अपने सौन्दर्य आकर्षण आदि से आम आदमी को प्रभावित करके आनन्दित करते हुए जनसाधरण का हित करत है।

संस्कृति शब्द की व्युत्पत्ति सम उपसर्ग के साथ संस्कृत की कृ धातु लगाने से हुई है। संस्कृत का सृजन संस्कार शब्द से माना जाता है जिसके आधार पर संस्कृति शब्द का अर्थ सुधारने वाली या परिकार करने वाली होगा। अतः परिष्कृत विचारों से प्रेरित नियमों की जीवन्त परम्परा को ही संस्कृति कहा जाता है। संस्कृति में किसी देश के संस्कार धर्म, मान्यताएँ, कलाएँ अदि सभी पक्ष समाहित हो जाते हैं। संस्कृति के संदर्भ में वासूदेव शरण अग्रवाल का कथन– ''मनुष्य ने देश और काल में विश्व के रंगमंच पर जो मन में सोचा है,कर्म से किया है, नही मानव की संस्कृति है। संस्कृति सम्पूर्ण जीवन को परिभाषित, परिष्कृत करने वाली जीवन व्यापी आचार पद्वति है।

संस्कृति का रुप एक बहती हुई नदी की धारा के समान है जिसमें मनुष्य के समस्त विचार, विश्वास, क्रियाकलाप एवं अभिवृत्तियों की ओर संकेत किया जाता है। रामधारी सिंह दिनकर का संस्कृति के सम्बन्ध में कथन– '' संस्कृति जिन्दगी का एक तरीका है और यह तरीका सदियों से जमा होकर उस समाज में छाया रहता है जिसमें हम जन्म लेते है इसलिए जिस समाज में हम पैदा हुए है अथवा जिस समाज से मिलकर हम जी रहे है उसकी संस्कृति हमारी संस्कृति है यद्यापि हम अपने जीवन में जो संस्कार जाम करते है वह भी हमारी संस्कृति का ही अंग बन जाते है और मरने के बाद हम अन्य वस्तुओं के साथ अपनी संस्कृति को विरासत भी अपनी सन्तानों के लिए छोड जाते है इसलिए संस्कृति वह चीज मानी जाती है जो हमारे सारे जीवन को थामे हुए है तथा जिसकी रचना और विकास में अनेक सदियों के अनुभवों का हाथ है यही नहीं बल्कि संस्कृति हमारा पीछा जन्म जन्मान्तर तक करती है।

मानव जीवन के संस्कारों का वह रुप संस्कृति है जिसमे मनुष्यों के कियाकलाापों, विश्वास्ते एवं समस्त विचारों का उल्लेख होता है। अनेकता मे एकता, समन्वय भावना, प्राचीनता–नवीनता, लौकिकता एवं पारलौकिकता विचारों का सुन्दर समन्वय भारतीय संस्कृति की पहचान है। धर्म का श्रेष्ठ स्थान, बडों के प्रति सम्मान, छोटो के प्रति स्नेह, परहित हेतु अपने सुखों का त्याग करना भारतीय संस्कृति की विशिष्ट उपलब्धि है। संस्कृति देश–विदेश की उपज होती है। उस देश के मौलिक वातावरण और उसमे पलित पोशित एवं परिवर्द्धित विचारों से उसका सम्बन्ध होता है। मानव जीवन को सद्मार्ग पर चलने के लिए संस्कृति प्रेरित करती है, जीवन स्तर को उन्नत बनाती है, मनुष्य के आचार–विचार, व्यवहार जीवन–पद्वति, लक्ष्य एवं आदर्शो का निर्माण करती है। इसके अनेक पक्ष है, संस्कृति का समावेश साहित्यकार में भी होता है, वह अपने कोमल भावों से साहित्य में संस्कृति का समावेश कर उसे सरस बनाता है। डॉ. देवराज के अनुसार– '' वास्तव में देखा जाए तो साहित्य का आधार पाकर संस्कृति की ऐतिहासिक परम्परा नष्ट होने से बच जाती है। मानव जाति के इतिहास में होने वाली सांस्कृतिक प्रगति मुख्यतया प्रतीकात्मक लेखों और ग्रन्थों के इतिहास में होने वाली संस्कृति प्रगति मुख्य तथा प्रतीकात्मकत लेखों और ग्रन्थों के रुप में सुरक्षित रहती है।

समाज या देश की संस्कृति के तत्त्वों से निर्मित होता है और उसके कृतित्र में वह साकार रुप में दिखाई देते है। विभिन्न भाव– भंगिमाओं के माध्यम से अपने साहित्य में उददेश्यपूर्ति करता है। सांस्कृतिक रुढ़ियो, परम्पराओं और दोशपूर्ण व्यवस्थाओं को मिटाकर उनके स्थान पर प्रगतिशील–मानवीय मूल्यों की स्थापना उददेश्य से ही वह साहित्य का सर्जन करता है। जिस साहित्य में सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति नहीं होती उसे साहित्याभ्यास मात्र ही समझा जाता है। हमारा साहित्य हमारी संस्कृति से अनुप्राणित है। विशेष क्षेत्र के विशिष्ट लोक जनमानस का सम्बन्ध लोक संस्कृति से होता है जैसे – बृजमण्डल की बृज संस्कृति राधा कृष्ण की रसमयी लोक लीलाओं से अनुप्राणित है। पंजाब की संस्कृति पर सिख गुरुओं की अमृतमयी वाणी का विशेष प्रभाव है। लोक साहित्य के रुप में लोक–मानस लोक संस्कृति अभिव्यक्त होती है। डॉ. रामस्वरुप

चतुर्वेदी के मतानुसार– ''लोक साहित्य के निर्माण के पीछे एक सामूहिक लोक मानस की कल्पना अनेक विद्वानों ने की है। उनकी विचारधाराओं के अनुसार लोक गीतो तथा लोक कथाओ आदि की रचना समस्त लोक मानस की कल्पना अनेक विद्वानों ने की है। उनकी विचारधाराओं के अनुसार लोक–गीतो तथा लोक कथाओं आदि की रचना समस्त लोक एक साथ करता है।

संस्कृति साहित्य एवं साहित्यकार के संदर्भ में विचार करने के उपरान्त अब हम प्रथम दशक के कहानी साहित्य में किस–किस सांस्कृति युगबोध का प्रभाव हमारी पीढ़ी पर पडा या प्रथम दशक में परिस्थितियों के अनुरुप सामाजिक वातावरण की क्या स्थिति रही इस विशय पर निम्न बिन्दुओं के माध्यम से विचार–विमर्श करेंगे।

धर्म के नाम पर भ्रष्ट आचरण– वर्तमन में मजहब एवं धर्म के नाम पर अपने धर्म को श्रेष्ठ स्थापित करना, धार्मिक उन्माद में अपनी दुष्प्रवृत्तियों को उच्च एवं सत्य सिद्वकरना,झगडा करना राश्ट के विकास की सबसे बड़ी बाधा है। आज देश में मुल्ला–मौलवियों , साधु–सन्तों,महन्तो, पुजारियों एवं मठाधीशो ने स्वयं को अल्लाह एवं भगवान मानकर धर्म की आड़ में घोर अनैतिक कार्यो को करने का ठेका ले लिया है। इनका मुख्य उददेश्य व्यावसायिकता एवं स्वार्थपूर्ति ही होता है। अपने उददेश्य की पूर्ति हेतु ये श्रद्वालुओं को पाखण्ड, चमत्कार एवं ढ़ोग द्वारा ढ़गने का कार्य करते है। इनके चंगुल में शिक्षित विद्वान, उच्चाधिकारी एवं राजनेता तक नहीं बच पाते क्योंकि भारतीय संस्कार एवं संस्कृति की जड़े इनके मानस में विद्यमान रहती है। अतीत में साधु–सन्त गॉव या शहर से दूर रहकर तपस्यारत रहते थे लेकिन आधुनिक युग में इनके रहन–सहन ,खान–पान में बदलाव आया है। ये सुख–सुविधाओं से परिपूर्ण जीवन जीने के अभ्यास हो चुके है।

भारत के विभिन्न धार्मिक स्थलों पर हम पण्डे–पुजारियों की लूट, व्यभिचार, श्रद्वालुओं पर बलात रुप से धन–संग्रह एवं मानसिक प्रताडना को मथुरा, काशी, द्वारिका, अयोध्या आदि स्थानों पर प्रत्यक्ष देख सकते है। ममता कालिया ने अपनी कहानी 'लडके' में इसी स्थिति के प्रति अपने विद्रोह को व्यक्त किया है। कहानी में अर्जुन नामक पात्र का कथन–' शाम तक यह सौ रुपये कमा लेगा। हमसे तो यही अच्छा है, दो जमात भै पढ़ा न हो, पर अच्छे–अच्छे पढ़े लिखो का शिकार करता है'। पंखुरी सिन्हा ने 'तीर्थ यात्रा' अर्थशास्त्र और ईश्वर'' नाम कहानी में धर्म–अधर्म के बीच के अर्थ को स्पश्ट करते हुए धर्मान्धता और धर्म के व्यावसायिकरण को प्रकाशित किया है। कोई भी दिन' कहानी पण्डितो के तुच्छ आचरण और व्यवहार को व्यक्त करती है– '' पण्डित होकर अपनी पत्नी को मारते हो जो आदमी ईश्वर की पूजा में दूसरों की सहायता करता है। उसका तो परम सात्विक आचरण होना चाहिए। इस तरह की हिंसक प्रकृति पण्डित जी होने के चरित्र के प्रतिकूल है'' लेखक के कहानी संग्रह 'किस्सा ए कोहनूर' के अध्ययन के पश्चात पाप–पुण्य, विश्वास–अन्धविश्वास, के मध्य का फर्क महसूस किया जा सकता है। सरल एवं निश्दल मन वाल व्यक्ति धर्म के वास्तविक अर्थ को न समझकर पाखण्डी साधु–सन्तों, पंडो के शिकार हो जाते है ऐसी स्थिति में ही धर्म की अवधारणा सम्प्रदायगत हो जाती है। अरविन्द कुमार सिंह ने 'विषपाठ' कहानी में महन्तों की नैतिक मूल्यहीनता एवं भ्रष्ट आचरण को प्रस्तुत करते हुए अग्रवाल धर्मशाला के महन्त ने ब्राहाणी विधवा स्त्री को फुसलाकर उसके साथ अनैतिक दुश्कर्म किया–' विधवा ब्राह्मणी पति की मृत्यु के बाद जेह की छाल– कपट और निर्दयता से त्रस्त थी। वह भटकती हुई विन्ध्याचल की शरण में आयी थी तभी बाबा विश्वनाथ शास्त्री भगवान के रुप में मिले लेकिन बाबा बाजारु निकला। वह जिस्म बेचता है'' हनुमत राव नीरव ने 'अधरानन्द की गंगी' कहानी में आश्रम, मठो में व्याप्त व्यभिचार एवं अनैतिक दुश्कर्म का पर्दाफाश किय है–' हम ब्रहम से एकाकार हो चुके है। तुम हममे समाकर हमारे साथ एकीकृत हो जाओ और ब्रह्म का पाओ। अधरानन्द ने ब्रहम प्राप्ति का सूत्र समझते हुए कहा । परितोश चकवर्ती की 'अंधेरा समुद्र' कहानी कर्मकाण्डी योगा पण्डितो द्वारा कर्मकाण्ड एवं मृत्यु सम्बन्धी संस्कारो के नाम पर आर्थिक एवं मानसिक शोशण को व्यक्त करती है। कहानी पात्र नरेन्द्र कहता है –' कैसी भयावह स्थितियों के भॅवर में फॅस गया हूँ मैं–– एक ओर अभाव का अन्धकार ..... दूसरी ओर स्वर्गीय पिता समाज–परिवार और संस्कारों से विमुख होने की विवशता।''

2. धन की लोलुपता हेतु विमुख संस्कारः– नयी आर्थिक नीति के कारण भौगोलिकता, निजिकरण एवं उदारीकरण से देश का आर्थिक विकास चरम की ओर उन्मुख तो हुआ है लेकिन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति ने अपने आदर्श ,आचरण, नैतिकता,मूल्य और विभिन्न उत्सवों पर निभाई जाने वाली रस्मों को धूमिल कर दिया है। मैत्रीय पुश्पा की कहानी 'अपना–अपना आकाश'' की विधवा वृद्र अम्मा अपने संचित श्रम एवं त्याग से अपनी संतानों को योग्य बनाकर श्रेश्ठ पदों पर आसीन करने में सहयोग करती है। शहरों की चकाचौध से प्रभावति होकर बेटे अपने गॉव की जड़ो एवं मॉ के त्याग, समर्पण, आशिर्वाद को भूलकर शहरी युवतियो से विवाह करते है जिसमे गॉव मे मॉ को मात्र औपचारिकताएॅ पूरी करने के लिए तथा संकीर्ण सी रस्मों को निभाने के लिए ही सूचित करते है। बेटो के कृत्यों से दुखी मॉ कहती है–; अब वे किसी को क्या बताती िकवे बुला ली, यही क्या कम था। वैसे उस समारोह में वे तीनो मेल ही कहॉ जा रहे थे। गॉव पूरा में वे भले ही मुखिनी बनी रही किन्तु

उनकी कोख जाए पुत्र के विवाह में वे लखिमा और बिन्दो को समेटे पीछे की कुर्सियों पर ढुकी–छुपी अजनबी सी बैठी रही थी। समथी के पूछने पर छोटा उन्हे बुला ले गया तो वे सहमी –सिकुडती रही आगे।। सपनो के धरातल पर कहानी में लेखक ने समलैगिकता, लिव इन रिलेशनशिप , स्वयंवर प्रथा आदि समस्याओं पर विचार किया है। प्रोफेसर महोदय पुरानी संस्कृति के प्रतीक होकर लिव इन रिलेशनशिप को देश की संस्कृति के लिए घातक मानते है तो दूसरी ओर छात्र–छात्राएँ इसको अपनाने में अपनी शान समझते है– लिव इन रिलेशनशिप अच्छी बात है मगर लडकी–लडकी के साथ रहे, लडका–लडके के साथ रहे तो और भी बेहतर है। इससे सम्बन्धों में कोई नैतिक गिरावट नहीं आएगी। कहीं सपनों के धरातल पर अपना अस्तित्व ही न मिल जाए। ..... लिव इन रिलेशनशिप पश्चिम की सभ्यता है वहॉ सेक्स फ्री होता है। हमारे देश की संस्कृति ऐसा करने की इजाजत नहीं देती है।

संयुक्त परिवारों का विघटन वर्तमान की सबसे बड़ी त्रासदी है। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से प्रेरित होकर नई पीढ़ी एकल परिवार को महत्ता देकर सुख बटोर रही है। पुरानी पीढ़ी पुराने संस्कारों को लेकर संयुक्त परिवार की नीव को जी–जान से चाहकर बचा पाने के प्रयास मे रत है। सीमा ओझा 'सन्नाटा' बाहर का' कहानी में नई पीढ़ी से संयुक्त परिवार विघटन न होने के लिए चिन्तित है–– बेटा इस घोसले के तिनके को एक–एक करके बटोरा है, जोड़ा है, समेटा है, संवारा है। यहॉ की आत्मीयता से हवा की सुगन्ध आती है। यहॉ सब अपने है, सो छोड़ा नही जाता। यह घोसला हमारी रचना है। इस रचना में हमारा भ्रम है। इस हमने शारीरिक , मानसिक, आर्थिक विरोधो से लडकर बनाया है। इसका अंश–अंश हमारी भावना की माला मे पिरोया हुआ है। इससे पृथक होकर जीना कठिन ही नहीं, असम्भव है हमारे लिए।

स्पश्ट है कि कहानीकारो ने परम्परागत नैतिक मूल्यों, आचार–विचारों में आए परिवर्तनो को सूक्ष्मता से व्यक्त करने का प्रयास किया है।

पाश्चात्य संस्कृति के प्रति मोह– पश्चिम में बसे यूरोपीय देशे इनकी सभ्यता एवं संस्कृति पाश्चात्य संस्कृति के नाम से जानी जाती है। इसके मूलाधार ईसाई धर्म, भौतिकतावाद, उपभोक्तावादी दृश्टिकोण, पाश्चात्य शिक्षा, समानता और व्यावसायिकता है। इस संदर्भ में अविनाश महाजन का कथन– '' पाश्चात्य संस्कृत के अंधाकरण की प्रवृति एवं दिशाहीन विवेक के कारण परम्परागत नैतिक मूल्यों में बिखराव की स्थिति उत्पन्न हुई। पाश्चात्य चिन्तन के प्रभाव से परम्परागत नैतिक मूल्य विघटन को बल मिला है। पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति से युवा वर्ग सबसे अधिक प्रभावित हुआ है। विदेशी वस्तुओं के प्रति तीव मोह, नशीले पदार्थो का सेवन, परम्परागत नैतिक मूल्यों के प्रति उपेक्षा एवं स्वच्छन्द भौतिक संस्कृत के निर्माण की ललक युवा वर्ग में उत्पन्न होने लगी है। पाश्चात्य संस्कृत के – '' नारी को स्वतन्त्रता देकर स्वावलम्बी तो बनाया लेकिन वह व्यक्तिवादी हो गई है, परिणाम–स्वरुप परिवार टूटने लगे है..... विवाह पूर्व और विवाहोत्तर सम्बन्ध मे मौन स्वच्छन्दता और उन्मुक्ता को बढ़ावा मिलने से सामाजिक मर्यादा और नैतिकता की अवहेलना होने लगी है। आर्थिक और शैक्षिक उन्नति ने मनुश्य के जीवन स्तर मे परिवर्तन कर दिया है। आज उसके पास जीवन की सभी आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध है। कहानी ' सुभदा' में लेखक श्रवण कुमार ने परिवार के आर्थिक तथा रहन –सहन में आए परिवर्तन पर अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए है– '' कहॉ पहले छोटी से छोटी चीज के लिए तरसना और कहॉ अब हर चीज की इराफत। जैसा चाहो, वैसा खाओ, जैसा चाहो वैसा पहनो, बढ़िया से बढिया साडी, बढिया से बढिया सूट। ..... कहॉ पहले गर्मी की तपिश से झुलसते हुए एक ही पंखे से गुजारा करना और कहॉ अब कूलर या ए.सी. की ठण्डक में सराबोर रहना। कहॉ पहले बस के पैसे बचाने के लिए कभी–कभी पैदल ही चल पडना, कहॉ अब दो कदम चलने से बचने के लिए भी कार का सहारा लेना।

पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति ने भारतीय रहन–सहन, विचारों को तो प्रभावित किया ही है साथ ही साथ खान–पान को भी प्रभावित किया है। मैत्रीय पुष्पा ने अपना–अपना आकाश कहानी में इसी समस्या को व्यक्त किया है। वृद्वा अभ्या ग्रामीण सभ्यता में पली–बढ़ी, वही पर अपने तीनो बेटो को शिक्षित किया, बच्चे शहरों में उच्च पदो पर पहूँचे। घर में जो बनता मॉ को भी वही दिया जातां। एक दिन बडे लडके की बहू ने दुबा सुना दिया था– '' अम्माजी, आज तो बच्चे चायनीज खाने की जिद कर रहे है उसी मे से आधा आपको भी दे देगे , खा लेना।

बाजारवाद एवं व्यक्तिवादिता – उदारीकरण से विकसित इस भौतिक चकाचौध ने जहॉ जड एवं पारम्परिक मूल्यों को खण्डित किया है वही कुछ नए नैतिक मूल्यो की सृजना भी को है वर्तमान युवा पीढ़ी पुरातन पीढ़ी के प्रति सम्मानीय एवं सकारात्मक भाव न रखकर परिवारिक परम्पराओं के प्रति आदरभाव को महत्त्व नही देती। युवा पीढ़ी अपना अच्छा–बुरा स्वयं तय करने लगी है, जड़ नियमों को इन्होने खुलकर विरोध किया है। मनोज कुमार पाण्डेय की कहानी ' चन्दू भाई नाटक करते है' में चन्दू कहता है'' मेरे नाटक करने से खान–दान की नाक कटती है और जब लोगो को आलतू–फालतू परेशान करते हो तब?जब घूस से जेब भरते हो तब?जब थाने में पिछले साल एक लड़की की इज्जत लूटी गई थी

तब तो आप की नाक और भी लम्बी हो गई थी न।

वर्तमान संक्रमित व्यवस्था ने पारिवारिक संवेदनाओं को सोख लिया है। वर्तमान युवा पीढी स्वर्थी, व्यक्तिवादिता पूर्ण मानसिकता से ग्रस्त है। उमा शंकर चौधरी की कहानी अयोध्या बाबू सनक गए है'' में अयोध्या बाबू से उनका पुत्र बिभ्याशु कहता है– ' आज 31 अक्टूबर है और मॉ की सेवानिवृन्ति 30 मार्च को है, अगर 30 मार्च के बाद उनका निधन होता है तो हमारे हाथ मात्र उनकी पेन्शन आएगी लेकिन यदि इससे पहले उनका निधन होता है तब एक मेरी नौकरी... ..... हमे व्यवहारिक स्तर पर आकार सोचना होगा। आखिर क्यों हमे अपना हाथ में आया अवसर गवाऍ। वास्तव में भौतिकता के इस युग में परिवार टूटने से बचाने के लिए हमें नए नैतिक मूल्यों को पहचातने हुए भौतिकता एवं रिश्ते में तालमेल बैठाने की आवश्यकता है।

आधुनिकता की चकाचौध ने ईश्वरीय सत्रा से भी युवाओं को दूर कर दिया है। परमपिता परमेश्वर के प्रति समर्पण, त्याग की निश्चल भावना रखने की आस्तिकता कहा जाता है। प्राचीन काल से ही विभिन्न धर्मो, पुराणों, ग्रन्थो में ईश्वर की सत्रा एवं महिमा को स्वीकार किया गया है। अमिताभ विरचित दुख के पुल से' कहानी संग्रह की कहानी ाड के इस और की हरियाली' में धार्मिक मूल्यों में आई गिरावट के फलस्वरुप प्रस्फटित आक्रोश को व्यक्त करते हुए कहता है– ' विज्ञान का युग है यह। ईश्वर वीश्वर कुछ नही होता । धर्म जनता की अफीम है। मन्दिर–मस्जिद एजेन्सिया है। पाखण्ड और मुल्ला पण्डित उसके एजेन्ट। अमिताभ की अन्य कहानी 'भटकी हुइ आवाज' में भी भगवान के प्रति अनास्थावादी प्रवृति को आलोक शर्मा के शब्दों में व्यक्त किया गया है– ' डू टू श्योर सर?मीराबाई किसी मूर्ति से प्रेम करती थी?कोई पत्थरो से क्या प्रेम करेगा सर?जरुर गिरधर गोपाल कोई हाडमांस का जीव होगा। पत्थर से प्रेम करने पर घर वाले क्यो नाराज होगे, समाज क्यो टोकेगा?

यदि आधुनिक या पुरानी पीढ़ी का कोई नास्तिक व्यक्ति ईश्वरीय सत्रा को नकारता है तो किसी भी विपदा के समय वह ईश्वरीय सत्रा की ओर अग्रसर होता है।

विज्ञापनों की संस्कृति पर प्रभाव– भूमण्डलीकरण का लाभ उठाकर बहुराष्टीय कम्पनियॉ समाज में अवसरवाद, आस्तावाद, विलोसोन्मादवाद और मुक्खडता को बढावा दे रही है। भूमण्डलीकरण ने भारत में उन्मुक्त जीवन शैली को बढ़ावा दिया है। भारतीय लोगो का सामाजिक जीवन मर्यादाओ और नैतिकता के बन्धन से नियन्त्रित रहता था पर आजकल सभी लोग स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त जीवन जीने के इच्छुक है। जिम्मेवारियों से विमुखता, अवैध सम्बन्धों को बढ़ावा तथ एश्वर्यपूर्ण जीवन जीने की इच्छा सब पाश्चात्य सभ्यता की देन है। बिना विवाह किए साथ रहना लिव इन रिलेशनशिप पाश्चात्य सभ्यता का भारतीय सभ्यता पर पड़ने वाला दुष्प्रभाव है।

**निष्कर्षः**

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में हम निष्कर्शतः कह सकते है कि आधुनिक समाज में भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों का पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति के प्रभाव स्वरुप निरन्तर कुण्ठाराघात हो रहा है। सांस्कृति विरासत के रुप मे धर्म, तीज–त्यौहार, नैतिकता का भविष्य भी असुरक्षित एवं धुंधला दिखाई पड रहा है। समाज मे पनपती फुहडता एवं अर्धनग्नता, पर संस्कृति अथवा पाश्चात्य संस्कृति के मोह में निज संस्कृति की मूल्य विघटनशीलता, जीवन में बढ़ते जंकफूड के प्रयोगो ने रहन–सहन, वेशभूशा, खान–पान आदि सभी को प्रभावित किया है।

**संदर्भ**


1. डॉ0वासुदेव अग्रवाल साहित्य और संस्कृति पृष्ठ 3
2. धीरेंद्र वर्मा हिंदी साहित्य कोश पृष्ठ 690
3. रामधारी सिंह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ 65
4. डॉ देवराज संस्कृति का दार्शनिक विवेचन पृष्ठ 208
5. ममता कालिया 10 प्रतिनिधि कहानियां पृष्ठ 43
6. पंखुरी सिन्हा किस्सा एक कोहिनूर कहानी संकलन पृष्ठ 75
7. अरविंद कुमार सिंह उसका सच पृष्ठ 39
8. डॉक्टर मुक्ता कथा यात्रा पृष्ठ 228
9. परितोष चक्रवर्ती अंधे समुद्र पृष्ठ 116
10. मित्रों पुष्पा 10 प्रतिनिधि कहानियां पृष्ठ 14
11. सीमा ओवर सन्नाटा बाहर का आजकलपत्रिका अक्टूबर 2010 पृष्ठ 41
12. अविनाश महाजन उषा प्रियंवदा की कहानियों में टूटते जीवन का यथार्थ पृष्ठ 69
13. सचेतन दुबे अनिल 21वीं सदी की 21कहानियां पृष्ठ 131
14. वही 131
15. वही पृष्ठ 131
16. छत्रिय पुष्पा सिंहार पृष्ठ 9
17. मनोज कुमार पांडे चाहतों 223
18. उमाशंकर चौधरी अयोध्या बाबू सनक गए हैं पृष्ठ 51
19. वेदप्रकाश अमिताभ दुख के पुल से पृष्ठ 6
20. वही पृष्ठ 35



**डॉ0 प्रवीण कुमार वर्मा**

सह–प्रोफेसर

हिन्दी विभाग

गोस्वामी गणेश दत्त सनातन धर्म महाविद्यालय,

पलवल, हरियाणा

सम्पर्क सूत्र 9910905120

29

# डॉ0 मुक्ता के कथा साहित्य में सामाजिक संवेदना

मंजू,डॉ. रामरती

**सारांश** –

हरियाणा के भिवानी जिले में 1951 में जन्मी डॉ. मुक्ता साहित्य जगत् के लिए अपरिचित नाम नहीं है वरन् एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। डॉ. मुक्ता ने अपने साहित्य में सामाजिक संवेदना को अनेक रूपों में उकेरा है। आज के इस भयावह दौर में समाज में बढ़ते हुए अनाचार, पापाचार, कदाचार, अराजकता व घटते मानव–मूल्यो को देखकर मन व्याकुल हो उठता है। ऐसे विषाक्त वातावरण में अपने भावों पर नियन्त्रण रखना असम्भव है। लेखिका ने सामाजिक विसंगतियों, विद्रूपताओं, बढ़ते अनाचार, शाश्वत मूल्यों का पतन, बिखरते रिश्तों, विषबेल की तरह फैलती अनास्था, टूटन, मरते अहसासों और जज्बातों को देखा, अनुभव किया तो उन्हें शब्दबद्ध करने में स्वयं को रोक नहीं पायी। उन्होंने अपने साहित्य को लघुकथाओं व भाव कथाओं का गुलदस्ता बनाया है, जिसमें मानवीय जीवन के विभिन्न रूपों को संजोया है। इस गुलदस्ते में कहीं फूलों की महक मन को आन्दोलित करती है, तो कहीं कांटों की चुभन मन को उद्वेलित करती है। पुरुष की अहंवादिता, पति–पत्नी के संबंधों में अलगाव, दहेज हत्याएं, मानसिक यातनाएं, परिवारों का बिखराव हो या कामकाजी महिलाओं की घर–बाहर की समस्याएं, बलात्कार, घरेलू–हिंसा ये सभी संवेदनाएं उनके अभिव्यक्ति का विषय बनी हैं। इतना ही नहीं पुरानी पीढ़ी के प्रति नयी पीढ़ी की संवेदनाहीनता भी आज समाज को मूल्यहीन बना रही हैं।

**प्रस्तावना**

साहित्य और समाज दोनों का घनिष्ट संबंध है। ये दोनों एक–दूसरे के सहयोगी हैं। एक के अभाव में दूसरा अधूरा है। साहित्य को समाज से अलग नहीं किया जा सकता है और न ही समाज को साहित्य से क्योंकि साहित्य का केन्द्र मानव रहता है और मानव एक सामाजिक प्राणी है। साहित्यकार अपने साहित्य में मानव की भावनाओं, अनुभूतियों एवं विचारों को लिपिबद्ध करता है। साहित्य में समाज के हर पहलू पर विवेचन एवं चिन्तन किया जाता है। हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार, ''साहित्य में उन सभी बातों का जीवन्त विवरण होता है, जिसे मनुष्य ने देखा है, अनुभव किया है, सोचा है और समझा है।''[1] समाज निर्माण व उसके पथ प्रदर्शन का उत्तरदायित्व भी साहित्य पर ही है। डॉ. मुक्ता के साहित्य में संपूर्ण रचनाकर्म सामाजिक संवेदना को ही प्रतिबद्धता प्रदान करता है।

भारतीय समाज में परिवार समाज की महत्त्वपूर्ण इकाई है। वह समाज का प्राथमिक समूह है। परिवार का निर्माण विवाह के परिणामस्वरूप होता है। श्री रामनारायण यादवेन्दु के अनुसार, ''परिवार स्वाभाविक प्रेम के आधार पर टिका है। उसका मुख्य प्रयोजन है – शैशवकाल में बाल–बालिकाओं का भरण–पोषण, परन्तु साथ ही साथ परिवार प्रेम, सहानुभूति, मातृ–प्रेम, पितृ–प्रेम और मानव–प्रेम की आरम्भिक शिक्षा प्रदान करता है। परिवार मानव शिक्षा की प्रारम्भिक पाठशाला है। परिवार का मूलाधार हैं – दाम्पत्य संबंध।''[2]

'अब और नहीं' कहानी–संग्रह में 'तार–तार हुए सपने' में एक परिवार पोते ही चाह में सास–ससुर और परिवार में खुशी की लहर तो दौड़ी, पोते को पाकर वह फूले नहीं समा रहे थे लेकिन पोता तो विदेश पढ़ाई करने चला गया। वे बेटे की स्वच्छन्दता, विदेश गमन, वहीं पर शादी–एक के बाद एक होम होते अरमान सह नहीं पाए। पूरा परिवार बिखर गया ''मैंने अरमान को उसकी माँ की बिगड़ती दशा के बार में सूचित किया तो उसने व्यस्तता की बात कहकर घर लौटने की बात टाल दी।''[3] वंश बेल को बढ़ाने के लिए केवल बेटा चाहिए, यह हमारे समाज की विडम्बना है।

'आखिर कब तक' भाव कथा संग्रह में स्त्री की यातना का जो पक्ष यहाँ उजागर हुआ है वह विरल है। ये भावकथाएँ स्त्री मुक्ति के मार्ग में परिवार को अवरोधक नहीं मानती हैं बल्कि इन भावकथाओं की नायिकाओं की काफी हद तक सहमति इस सच्चाई से है कि स्त्री समानाधिकर की लड़ाई पुरुष के साथ मिलकर ही लड़ी जा सकती है। ये नायिकाएँ प्रायः ऐसे घर की कल्पना करती हैं, जिसमें स्त्री और पुरुष दोनों की बराबर की साझेदारी है। ''सौरभ अपनी पत्नी पर बरस पड़ा। यह तुम्हारा घर नहीं मेरा ऑफिस है। यहाँ एक ही रिश्ता है एम्प्लायर और इम्प्लाई का। यहाँ सबके साथ एक जैसा व्यवहार होगा।''[4] संयुक्त परिवारों के विघटन का दुष्परिणाम बच्चों, बड़े बुजुर्गों को भोगना पड़ रहा है। बच्चों में तनाव, अकेलेपन की समस्या पाई जा रही है। एकल परिवार में सबसे अधिक उपेक्षा एवं तिरस्कार बुजुर्गों का हो रहा है। 'एक आँसू' कविता–संग्रह में वृद्धावस्था और पाश्चात्य संस्कृति के दुष्परिणामों का वर्णन किया है। 'आँसू' अव्यक्त संवेदनाओं के प्रतीक हैं। बुजुर्गों को बच्चों के साथ और देखभाल की आवश्यकता होती है, लेकिन समाज में बुजुर्गों का एक तबका ऐसा है जो अपनों के बीच में, अपने ही घरों में तिरस्कृत व उपेक्षित जीवन यापन कर रहा है। अगर ऐसा न होता तो क्या वृद्धाश्रम यूँ खुले होते, हर वृद्ध की अपनी दास्तान न

होती।

''आज वह निःसहाय, निरीह, लाचार
आश्रित दूसरों की दया पर
कर रही है जीवन–यापना
बहाते हुए आँसू हर दिन, हर पल।''[5]

डॉ. मुक्ता वृद्धावस्था पर अधिक संवेदनशील दिखाई पड़ती है तथा समाज को जागृत कर रही है। माता–पिता को मान–सम्मान की आवश्यकता होती है, पैसों की नहीं। बच्चे विदेश चले जाते हैं। सालों तक अपने माता–पिता से मिलने भी नहीं आते या फिर जो बुजुर्ग घरों में हैं उन्हें तरह–तरह से अपमानित किया जाता है। 'अनहोनी' भाव कथा में ''अनामिका ससुर के साथ बहुत बुरा व्यवहार करती थी। वे सारा दिन नौकर की तरह काम करते,उसकी जली–कटी सुनते, परन्तु उफ तक नहीं। एक दिन उसने ससुर के गले में बाहें डाल उनसे न जाने क्या कहा कि उन्होंने अगले दिन का सूरज नहीं देखा।''[6]

'खामोशियों का सफर' कहानी संग्रह में डॉ. मुक्ता ने अपनी कहानियों में केवल कोरी कल्पना नहीं, अपितु जीवन की कटु सच्चाइयों पर आधारित वर्णन किया है।

ये कहानियाँ यथार्थ सामाजिक घटनाओं पर रचित दिशा–निर्देश के साथ–साथ दूषित दर्दनाक जीवन–शैली को नकारते हुए स्त्री वर्ग को आगे बढ़ने की, उन परिस्थितियों का त्याग कर निरंतर साहस का संदेश देते हुए अपना मार्ग स्वयं निर्मित करने की प्रेरणा प्रदान करती है। 'शायद वह कभी लौट आए', 'प्रेम में सजी तस्वीर', 'तपस्विनी', 'आराध्या', 'काश इन्सान समझ पाता', 'अपना घर', अग्नि परीक्षा' आदि कहानियाँ हैं। पति–पत्नी के अविश्वास तथा टूटते रिश्तों को दर्शाती है। आपसी संबंधों से विश्वास खत्म होता जा रहा है। हर कोई अपने स्वार्थों की पूर्ति ही चाहता है। भला इससे किसी की जान भी जाए तो गम नहीं होता। 'अग्नि परीक्षा' कहानी में ''एक सप्ताह पश्चात् उन्हें पता चला कि पंकज की दुल्हन घर छोड़कर अपने दोस्त के साथ भाग गई है। अब पंकज की हत्या का कारण समझ में आने लगा कि उनके बेटे पंकज का शत्रु दुल्हन का प्रेमी सुधीर ही हो सकता है।''[7] 'रेत होते रिश्ते', 'अस्मत के बदले रोटी', 'पुल', 'खून इतना सफेद क्यों', 'सावन का अंधा' आदि में सामाजिक कुरीतियों को दर्शाया है। 'पुल' नामक लघुकथा में भ्रष्टाचार को दिखाया है। हैरत होती यह देखकर कि समाज के हर वर्ग में संवेदनहीनता सुरसा के मुख की भांति बढ़ती जा रही है। ''चारों ओर मचा तांडव, हाहाकार, रोते–बिलखते बच्चे, चीत्कार करते लोग और मीडिया की घायल व चश्मदीद इंसानों को ढूंढती निगाहें सोचने पर विवश कर देती हैं''[8] न जाने कितने लोगों की जानें गईं पुल के टूटने से, कितने बूढ़े और बच्चे घायल हुए होंगे लेकिन रिश्वतखोरी ने सभी को दबा दिया क्योंकि चारों ओर भ्रष्ट लोग बैठे हैं। गरीबी एक ऐसा अभिशाप है जिसे कोई भी व्यक्ति इसे अपने जीवन में देखना नहीं चाहता। एक गरीब व्यक्ति का जीवन सुबह–शाम रोटी की चिंता में समाप्त हो जाता है। दिन निकल जाता है पर रात को भूखे पेट नींद नहीं आती, क्योंकि पेट को खाना चाहिए। 'तकदीर का लिखा' भाव कथा में गरीबी को दर्शाया है ''बरसों से लोगों के घरों को बुहारने और जूठन साफ करते वह सदैव प्रसन्नचित रहती थी। उसके चेहरे पर कभी किसी ने थकान नहीं देखी थी। सबसे हँसती–बोलती, बतियाती हिरणी की चाल से दौड़ती–भागती देर रात तक वह लौटी और सुबह छह बजे मालकिन के द्वार पर दस्तक दे देती थी।''[9] गरीब आदमी के जीवन की एक ही चाह है दो वक्त की रोटी जुटाना है। भ्रूण हत्या जैसी ज्वलन्त समस्या से कवयित्री क्षुब्ध दिखाई देती है। भ्रूण हत्या की मार्मिक अभिव्यक्तिपरक कविताओं, 'अजन्मी', 'प्रश्न', 'अस्तित्वहीन', 'अनुनय' में इन्होंने व्यथा वेदना को वाणी दी है। 'अनुनय' कविता में मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है।

''माँ! मुझसे
मत छीन
जन्म लेने का अधिकार
इस संसार में
मुझे भी
यह दुनिया देख लेने दे
मैं तुम्हें कभी परेशान नहीं करूँगी।''[10]

माँ तो ममता की प्रतिमा होती है। माँ वात्सल्य से भरपूर होती है। माँ को भी कटघरे में खड़ा कर उस पर भी व्यंग्य किया है। दहेज जैसी भयावह बुराई को भी उन्होंने अपने काव्य में दर्शाया है। एक पिता अपनी मासूम बेटी को पालता है, पोषता है तथा उसमें अच्छे संस्कारों को पोषित करता है। फिर भी दहेज के लालची लोग इस बात को नहीं समझ पाते हैं। कोई अपने घर से सुई देकर खुश नहीं होता, लेकिन एक पिता अपनी पाली–पोषी बेटी सौंप देता है। कितना बड़ा त्याग करता है। चंद पैसों के लालच में उसे डराया जाता है, मारा जाता है, फिर जलती लकड़ी के साथ भी पीटा जाता है। अंत में वह अग्नि को समर्पित कर दी जाती है।

''गमों ने दी दस्तक उसके घर द्वार
किया जाने लगा उससे
जानवरों से भी बदतर व्यवहार
उसके पिता से की गई एक
लाख की मांग
वह बेचारा था असमर्थ और लाचार।।''[11]

'विवाह बनाम व्यापार' नामक कविता के द्वारा एक पिता की लाचारी व्यक्त की है तथा समाज को जागृत करने का प्रयास किया है। एक पिता अपनी पुत्री को लेकर कितना संवेदनशील होता है। चंद स्वार्थी लोग उसकी इस लाचारी व बेबसी का फायदा उठाते हैं। ऐसे लोभी, लालची समाज को जागृत करने का प्रयास किया है।

**निष्कर्ष**

डॉ. मुक्ता के कथा साहित्य का बारीकी से निरीक्षण करते हैं तो यह तथ्य उभरता है कि समय के साथ–साथ चलने वाली साहित्यकारा है, इनके साहित्य में सामाजिक बुराइयों पर करारी चोट की गई है। इनका साहित्य सामाजिकता से जुड़कर समाज के यथा रूप को हमारे सामने चित्रित करता है और समाज को जागृति प्रदान करता है।

**संदर्भ–सूची**


1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'साहित्य सहचर', पृ. 3
2. श्री रामनारायण यादवेन्द्र, भारतीय नीति विज्ञान, पृ. 162
3. डॉ. मुक्ता, 'अब और नहीं', पृ. 11
4. डॉ. मुक्ता, 'आखिर कब तक', पृ. 90
5. डॉ. मुक्ता, 'एक आँसू', 'अतीत की स्मृतियाँ', पृ. 13
6. डॉ. मुक्ता, 'आखिर कब तक', 'अनहोनी', पृ. 88
7 डॉ. मुक्ता, 'खामोशियों का सफर', पृ. 96
8. डॉ. मुक्ता, 'रेत होते रिश्ते', पृ. 74
9, डॉ. मुक्ता, 'बँटा हुआ आदमी', पृ. 9
10.डॉ. मुक्ता, 'अस्मिता', पृ. 111
11.डॉ. मुक्ता, 'एक आँसू', पृ. 71



**मंजू**
शोधार्थी, हिंदी–विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर, रोहतक–124001
म.नं. 1607/21, चुन्नीपुरा,
नजदीक सैनी स्कूल, रोहतक।

**डॉ0 रामरती**
शोध निर्देशक,
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
अस्थल बोहर,
रोहतक–124001

30

# नाटक – सजीवता का पर्याय

मधु सिंगला

**सारांश –**

साहित्य– समाज की यथार्थ था का दर्पण। साहित्य जिसमें संपूर्ण हित की भावना हो। ईश्वर ने अनगिनत रंगों से सृष्टि रूपी एक मंच का निर्माण किया और उस के रंगों को जीवंत रखते पसंद के पात्र मानव के रूप में रचे। मानव को संवेदना प्रदान की और अभिव्यक्ति के लिए भाषा। भारतीय संस्कृति के अनुसार उत्पत्ति के मूल में ब्रह्म विद्यमान है। ब्रह्म वेदों के सृष्टा हैं जो सनातन संस्कृति का आधार हैं।

"नाटक एक जीवंत अनुभव है जो अपने जीवन तथा रंगमंच पर ही प्राप्त करता है। नाटक के सही कसौटी रंगमंच ही है। रंगमंच को उसका निकष मानकर ही उसकी निजी सत्ता की खोज संभव है। नाट्य कृति और रंगमंच एक दूसरे के कार्य और कारण हैं दूसरे स्तर पर एक दूसरे के पूरक और यहां तक कि एक दूसरे के पर्याय भी।"1

नाटक के अवयव नट –नट ,नृत्य, वाद्य, संगीत, संवाद, कथावस्तु रंगमंच को निर्धारित करें तो नाटक की परिभाषा अलग ही बनती है। संस्कृत भाषा के कवि कालिदास की सशक्तता कवि रूप में कम और ष्अभिज्ञान शाकुंतलम्ष की ख्याति को देखते हुए नाटककार के रूप में ज्यादा प्रतीत होती है।ष नाटक ना केवल साहित्य है और न केवल रंगमंचीय कला। यही उसकी जटिलता है। वह एक स्वतंत्र साहित्य विधा के रूप में और विशिष्ट कला के रूप में पहचानी जानी चाहिए।"2

नाटक मानव जीवन का अभिन्न अंग है। जीवन में प्रतिदिन अनेक घटनाएं घटित होती हैं और मानव जीवन पर उसका प्रभाव अलग–अलग तरीकों से पड़ता है। मानव मुख्य विभिन्न प्रकार की भंगिमाओं का नृत्य और बालक की स्वभाविक क्रीड़ा ही मानो स्वाभाविक अभिनय हैं। कहा जा सकता है कि अभिनय और मानव का दैनिक जीवन से संबंध है। नाटक के मूल में चार मनोवृतियां कार्य करती हैंरू– अनुकरण, आत्मविस्तार, जातिरक्षा, आत्मभिव्यक्ति यही मनोवृतिया नाटक में जीवंतता की परिचायक होती हैं। जैसे–जैसे मानव जीवन का विकास होता गया अभिनय और नाटक का रूप भी बदलता गया। तकनीकी सुविधाओं व संसाधनों की प्रगति ने नाटक में परिवर्तन अवश्य किए और यह परिवर्तन वर्तमान नाटक के संदर्भ में अत्यधिक सजीवता का अनुभव प्रदान करते हैं।ष नाट्य स्वर कहीं परंपरावादी है, तो कहीं सुधारवादी, कहीं पीड़ा जनित है ,तो कहीं परिवर्तन के पोषक हैं ,कहीं विघटन के समर्थक ,तो कहीं विद्रोहात्मक। अनेक नव्य रूपों में समय–समय पर नाटक अपनी केंचुली बदलता रहा और गतिशील रहा।3

नाटक सभी के द्वारा आस्वाद्य होने के कारण एक विशिष्ट जनप्रिया कला है। जिसमें हर आयु वर्ग और क्षेत्र वर्ग की रुचि संभव है। नाटक में प्रत्यक्षता होने के कारण रुचिकर व बोधगम्यता अधिक होती है। नाटक की जीवंतता इस तरह से भी रही है इसका संबंध विशेष बुद्धिजीवी वर्ग से ना होकर धार्मिक व्यक्तियों, ज्ञानियों ,शांतिप्रिय, हास्य प्रिय तथा विलासी प्रवृत्ति के व्यक्तियों के लिए उपयोगी व मनोरंजन कारी है। इसमें अधम,मध्यम ,उत्तम सभी श्रेणी के व्यक्तियों को संश्रय मिलता है।ष बालस्वरूप वह नाना प्रकार के भावों से संपन्न एवं नाना अवस्थान्तरात्मक है।

जिसमें श्रुति है, स्मृति है, सदाचार है ,ज्ञान– विज्ञान है, वेद– विद्या है, इतिहास है, कथा है, विनोद है। वह मानव जीवन की शाश्वत प्रवृत्तियों का स्पर्श करने वाला एक सार्वभौम साधन है।4
नाटक की जीवंतता का आधार यह भी है कि इसका क्षेत्र अत्यधिक व्यापक है। नाटक द्वारा किसी भी देश उसकी मान्यताएं, संस्कृति और परंपरा को प्रस्तुत किया जा सकता है। नाटक में इतिहास, राजनीति, मनोविज्ञान, धर्म, और विज्ञान न जाने कितने ही क्षेत्रों को प्रस्तुत किया जा सकता है। नाटक में केवल उपदेशात्मकता और सुधारवाद नहीं होता बल्कि सृष्टि निर्माण और रचनात्मकता का भविष्य भी होता है। नाटक का आकार और पात्रों का सीमित होना इसका विशेष आकर्षण है। रंगमंच पर गिरता पर्दा, बदली हुई तस्वीर और एक पात्र जो कई किरदारों की भूमिका अदा करता है वह इतना रोमांचकारी होता है कि दर्शक स्वयं जिंदगी की बदलती तस्वीर और व्यक्ति के परिवर्तन को महसूस कर पाता है। संकुचित सीमा, थोड़े दृश्यों में कथावस्तु का विकास और इसके साथ–साथ चरित्र संबंधी भावों के उतार–चढ़ाव, अंतर्द्वंद, गुण –दोष, कशमकश इत्यादि का चित्रण जितनी सहजता से दर्शाया जाता है यही सहजता नाटक को अन्य गद्य विधाओं से सर्वथा भिन्न करती है। जीवन की दुरूहता और जटिलता को नाटककार द्वारा जब पात्रों द्वारा अभिव्यक्त करता है तब वह ध्यान रखता है की पात्र का व्यक्तित्व जीवित रहे कोई कठपुतली मात्र बनकर ना रह जाए। वह पात्र इतना प्रभावशाली हो कि दर्शकों को न केवल प्रभावित करें अपितु उसके मन के किसी कोने को झकझोर कर रख दें। नाटक एक जनप्रिया कला है। प्रत्येक काल , प्रत्येक क्षेत्र ,प्रत्येक आयु वर्ग में जीवंत रहती है। जीवंतता का एक अन्य प्रमुख कारण इसकी भाषा शैली है। गद्य–

पद्य किसी भी प्रकार के साहित्य की उत्कृष्टता में उसकी भाषा की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। आधुनिक समय में नाटककार यदि किलिष्ट ,संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग सामाजिक नाटक में करने लगे तो नाटक की असफलता पूर्ण निश्चित है। जटिल वाक्य, द्विअर्थी शब्द,संदिग्ध वाक्य विन्यास भाव अभिव्यंजना में सक्षम नहीं होते।[5] पात्रों के भावों के उतार–चढ़ाव के अनुसार कहीं स्वभाविक तथा व्यावहारिक भाषा शैली की आवश्यकता होगी ,कहीं दलित ,कहीं मधुर एवं काव्यात्मक शैली की तो कहीं प्रौढ़,गंभीर एवं विचार प्रधान शैली की। भाषा की सुबोधता ,मधुरता एवं सजीवता के प्रति संस्कृत नाटककार भी बहुत सजग रहे हैं।5

समय अनुसार आवश्यक रहा है कि नाटक की भाषा में ताजेपन का समावेश हो। नाटककार प्रतीकों का, बिम्बों का सहारा इसलिए लेता है जिससे वह बदलते समय में विभिन्न लयों से तादात्म्य स्थापित कर सकें। भाषा की ताजगी अपने संदर्भ का ताज हो ,भाषा व स्थिति में साम्यता हो रंग अनुभूति हो और अभिनय की संभावनाएं उसमें निहित हों।

"यदि सफल नाटक लिख दिए गए तो साहित्यिक भाषा और बोलचाल की भाषा की दूरी कम हो जाएगी। बहुत से शब्द निरर्थक और प्राण हीन साबित कर पीछे डाल दिए जाएंगे ,धीरे–धीरे साधारण शब्द में अर्थ ग्रहण कर लेंगे और इनको आधार बनाकर एक नई साहित्यिक भाषा |"6

नाटक की जीवंतता यूं भी बनी रही है कि जीवन के स्थाई भाव सुरक्षित और संरक्षित रहें पर नाटक की गति काल अनुरुप भंगिमाओं के परिवर्तन द्वारा प्रगति पाती रही।यही कारण है कि आज नाटक का वो बीज वटवृक्ष के रूप में परिणत हो चुका है और अपनी शाखा को निरंतर विस्तृत करता जा रहा है। समय –समय पर जब भी भारतीय समाज सांस्कृतिक, सामाजिक , राजनीतिक परिवर्तनों के मोड़ से गुजरा है तब–तब सशक्त साहित्यकारों ने येअनुभव किया कि परिवर्तित सामाजिक वास्तविकता की यथार्थ अभिव्यक्ति यदि करनी है तो वह केवल नाटकों द्वारा संभव है। नाटक का उद्देश्य मात्र मनोरंजन करना कभी था ही नहीं। देशकाल और वातावरण की बदलती परिस्थिति के अनुसार नाटकों का आधार चाहे ऐतिहासिक हो, धार्मिक हो, सांस्कृतिक हो या राजनैतिक अन्य कुछ भी हो परंतु राष्ट्रीयता की भावना सदैव नाटकों में जीवंत रही है ।भाव पक्ष और कला पक्ष को सजीवता प्रदान करती नाटकों की कथा वस्तु, कलाकारों का अभिनय सदैव समाज को जागृत करता आया है। नाटक की गतिशीलता ने समाज को सक्रियता की दिशा दिखाई है ।बीसवीं शताब्दी के नाटकों का आधार बेकारी, नारी की स्वतंत्रता, नैतिक मूल्य ,राजनीति ,प्रेम का नया रूप इत्यादि रहा है।

उच्च वर्गीय समाज हो या निम्न वर्गीय अथवा मध्यमवर्गीय नाटक हर आयु वर्ग ,हर क्षेत्र में अपनी जड़े गहरी ही करता रहा है। शिल्प के दृष्टिकोण से अनेकानेक परिवर्तन समय अनुसार परिलक्षित होते रहे हैं ।यही गति नाटकों की प्रगति की परिचायक है। भारत सरकार के प्रोत्साहन में ललित कला अकादमीश की स्थापना हुई अकादमी ने देश में विद्यमान नाटक मंडलियों और रंगमंच को पल्लवित करने एवं नए रंगमंच का निर्माण करने की योजना बनाई। रंगमंच मे विविध प्रयोग होने लगे। चक्रिल रंगमंच का भी निर्माण हुआ। विभिन्न देशों में विकसित होने वाली नाट्यशालाओं के अध्ययन के लिए योग्य कलाकार दूर–दूर देशों में भेजे जाने लगे जो यूरोप अमेरिका की नवीन नाट्य प्रणालियों का विधिवत परीक्षण करते हैं और अपने देश के वातावरण अनुरूप नई नाट्य पध्दतियों का प्रयोग भी कर रहे हैं।[6]।7

**निष्कर्षः**

आधुनिक समय में नाटकों की जीवंतता ऐसे भी है कि न जाने कितनी ही शौकिया रंगमंडलियां आज भी गावों ,शहरों में सक्रिय हैं।युवाओं का समूह विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में भी नाटकों में अभिनय करने का जुनून रखते हैं। दिल्ली के कितने ही बड़े –बड़े ऑडिटोरियम में आज भी नाटक और अधिक संजीदगी से अभिनीत किये जाते हैं ।जिनका उद्देश्य मात्र मनोरंजन नहीं ,जीविका उपार्जन नहीं अपितु वर्तमान समय की जटिलताओं और समस्याओं को उजागर करना है। सांस्कृतिक गरिमा को बनाए रखते हुए आधुनिक नाटक सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और साहित्यिक हर क्षेत्र में अपना वर्चस्व कायम रखे हुए हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूचीः–


1-रंगमंच और नाटक की भूमिकाः लक्ष्मीनारायण लाल,पृष्ठ 14

2-मोहन राकेश और उनके नाटकः गिरीश रस्तोगी, पृष्ठ 11–12

3-हिंदी नाटक आज तक,डॉक्टर वीणा गौतम,पृष्ठ संख्या– 14

4-हिंदी नाटक रूसिद्धान्त और विवेचनः डॉक्टर गिरीश रस्तोगी, पृष्ठ संख्या–19

5---हिंदी नाटक रूसिद्धान्त और विवेचन,डॉक्टर गिरीश रस्तोगी, पृष्ठ संख्या–46

6----आधुनिकता के पहलूः नाटक की भाषा में बनावट,पृष्ठ संख्या–76

7----हिंदी नाटक और रंगमंच,डॉक्टर सुरेश वशिष्ठ, पृष्ठ संख्या–51



**मधु सिंगला**

सहायक प्रोफेसर

अग्रवाल महाविद्यालय

बल्लभगढ़ (हरियाणा)

9711267335

31

# हिंदी की लोकप्रियता में विज्ञापन की भूमिका

**प्रमिला देवी**

**सारांश** –

संचार–क्राति के इस युग में विज्ञापनों का महत्त्व निर्विवाद है। यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि आज का युग विज्ञापन का युग है। सुबह आँख खुलते ही विज्ञापनों का विस्फोट आरंभ हो जाता है और रात को सोने तक यह सिलसिला जारी रहता है । समाचार पत्र–पत्रिका, आकाशवाणी, दूरदर्शन, सिनेमा आदि सभी जनसंचार माध्यमों में विज्ञापन का वर्चस्व दिखाई देता है। वास्तव में आज के युग का प्रत्येक क्षण विज्ञापन से भरा हुआ है । अतः विज्ञापन उत्पादक और उपभोक्ता के मध्य एक महत्त्वपूर्ण सेतू है जो उत्पादन की संपूर्ण व्याख्या उपभोक्ता के समक्ष प्रस्तुत करता है । वर्तमान तकनीकी युग में हम देखते हैं कि विज्ञापनों के बढ़ते प्रभाव ने हिंदी को भी लोकप्रिय बना दिया है। सबसे पहले विज्ञापन 'ाब्द से परिचित होना आवश्यक है । ''विज्ञापन का शाब्दिक अर्थ वि+ज्ञापन यानी कि विशेष सूचना देना । विज्ञापन को अंग्रेजी में ।कअमतजपेमउमदज कहते हैं जिसे संक्षेप में ।कण् भी कहते हैं । यह शब्द स्ंजपद भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है जनता को सूचित करना । दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि जन–जन तक सूचना या जानकारी पहुँचाना विज्ञापन का काम है। विज्ञापन कई तरह के होते हैं जैसे सूचनापरक, संस्थागत, औद्योगिक, वित्तीय, वर्गीकृत और वैवाहिक आदि । विज्ञापन के माध्यम भी कई तरह के होते हैं जैसे इलैक्ट्रॉनिक, मुद्रित तथा दृष्य–श्रव्य आदि।''विज्ञापन विक्रय कला का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं अनिवार्य तत्त्व है। विज्ञापन लोगों को वस्तु के बारे में संक्षिप्त शब्दों में अधिक से अधिक जानकारी देता है तथा संबंधित उत्पादित वस्तु के बारे में उपभोक्ता के मन में विश्वसनीयता पैदा करने की पूरी कोशिश करता है । विज्ञापन को उसी भाषा में प्रेषित करना चाहिए जिस भाषा को समझना सामान्य जनता के लिए ग्राही हो । हिंदी इसके लिए सबसे उपयुक्त भाशा है भाषा और विज्ञापन एक दूसरे से जुड़े हुए हैं। आज कोई भी वस्तु बिना विज्ञापन के नहीं बिकती । चाहे वह साबुन हो, टूथ–पेस्ट हो, डिटरजैंट हो या बिस्कुट या फिर चॉकलेट हो । विज्ञापनों के माध्यम से आज हिंदी का खूब प्रचार–प्रसार हो रहा है। केबल टी.वी. पर जितने भी चैनल हैं सभी में विज्ञापन ही विज्ञापन नजर आते हैं। न्यूज चैनल तक में विज्ञापनों की भरमार है। यही कारण है कि आज विज्ञापन के जरिए हिंदी विश्व भाषा बनती जा रही है। टी.वी. पर अधिकांश चैनल केवल हिंदी के मनोरंजन प्रधान कार्यक्रम दिखा रहे हैं। कुछ चैनल ही सूचना परक कार्यक्रम प्रस्तुत करते हैं। इन सभी चैनलों में विज्ञापनों की होड़ लगी हुई है। कारण है श्रोता और दर्शक। आज भारत में 73 प्रतिशत लोग हिंदी जानते हैं। हिंदी भाषा क्षेत्र में 100 प्रतिशत अर्धहिंदी–भाषा क्षेत्र में 80 प्रतिशत तथा गैर हिंदी भाषा क्षेत्र में 20 से 80 प्रतिशत दर्शक हिंदी के होंगे तो निश्चित रूप से विज्ञापन भी हिंदी में होंगे । इसका मुख्य कारण है विज्ञापन की भाषा प्रयुक्ति अपनी एक विशिष्टता लिए हुए हैं। विज्ञापनों में प्रयुक्त हिंदी की विशेशता है उसकी शब्द–शक्ति और भावबोध का तत्त्व, जो विज्ञापन के उद्देश्य की पूर्ति हेतु सक्षम सिद्ध होते हैं। एक सक्षम एवं सफल विज्ञापन के लिए चार गुणों का होना आवश्यक माना गया है – (1) आकर्षक मूल्य (2) श्रवणीयता एवं सुपाठ्यता (3) स्मरणीयता तथा (4) विक्रय की 'ाक्ति । विज्ञापन के इन चार गुणों को रूपायित करने के लिए उसकी अभिव्यक्ति हेतु संदर्भ एवं स्थिति के अनुरूप भाषा एवं उसमें प्रयुक्त शब्दों का रूप बदलता रहता है। विज्ञापन में शब्द के सामर्थ्य को पहचान कर उसकी प्रयुक्ति की जाती है। विज्ञापन में जीवंतता एवं आकर्षण आ जाता है । जैसे 'और' शब्द सामान्य रूप से इतना परिचित है कि लगता है उसमें कुछ विशेष बात नहीं हो सकती । किंतु जब यह 'और' शब्द विज्ञापन में प्रस्तुत किया जाता है तब पता चलता है कि उसमें कितनी 'ाक्ति समाहित है और टी.वी. की दुनिया में अब एक नया धमका–ऑटानिका! और हार्लिक्स अब नए पैक में । इसी प्रकार अनेक शब्द या वाक्यांश देखे जा सकते हैं। विज्ञापन में, इस प्रकार, शब्द के सामर्थ्य को पहचानकर उसे वैशिष्ट्यपूर्ण आयामों में प्रस्तुत किया जाता है।'' बाजार और हिंदी की अनुकूलता का एक बड़ा उदाहरण यह हो सकता है कि पिछले पाँच–सात वर्षों में संचार माध्यमों पर हिंदी के विज्ञापनों के अनुपात में सत्तर प्रतिशत उछाल आया है। इसका कारण भी साफ है । भारत रूपी इस बड़े बाजार में सबसे बड़ा उपभोक्ता वर्ग मध्य और निम्नवित्त समाज का है। जिसकी समझ और आस्था अंग्रेजी की अपेक्षा अपनी मातृभाषा या राष्ट्रभाषा से अधिक प्रभावित होती है। उत्तर आधुनिक माध्यम टी.वी. अपने विज्ञापनों से लेकर करोड़पति बनाने वाले अतिशय लोकप्रिय कार्यक्रमों तक में हिंदी को बोलता भर है, लिखता अंग्रेजी में ही है । इसके बावजूद यह सच है कि इसी माध्यम के सहारे हिंदी अखिल भारतीय ही नहीं बल्कि वैश्विक विस्तार के नए आयाम छू रही है । विज्ञापनों की भाषा और प्रमोशन वीडियो की भाषा के रूप में सामने आने वाली हिंदी शुद्धतावादियों को भले ही न पच रही हो, युवा वर्ग ने उसे देशभर में अपने सक्रिय भाषा कोश में शामिल कर लिया है।

आज के युग में बिना विज्ञापन के किसी भी वस्तु का विक्रय संभव नहीं । डॉ. अर्जुन तिवारी के अनुसार – ''विज्ञापन मनमोहिनी विक्रय कला है जो विलासिता की वस्तु को अपरिहार्य बनाती है। अच्छा विज्ञापन ग्रहकों का ध्यान अपनी और आकर्षित करता है। हिंदी अपनी लचीली प्रकृति के कारण स्वयं को सामाजिक आवश्यकताओं के लिए आसानी से बदल लेती है। इसी कारण हिंदी के अनेक ऐसे क्षेत्रीय रूप विकसित हो गए हैं जिन पर उन क्षेत्रों की भाशा का प्रभाव साफ–साफ दिखाई देता है। अंग्रेजी भले ही विश्व भाशा हो, भारत में वह डेढ़–दो प्रतिशत की ही भाषा है। इसी लिए भारत के बाजार की भाषाएँ भारतीय भाषाएँ ही सिद्ध हो सकती है, अंग्रेजी नहीं। और उन सबमें हिंदी की सार्वदेशिकता पहले ही सिद्ध हो चुकी है।

यह सभी जानते हैं कि इलैक्ट्रॉनिक मीडिया/ प्रिंट मीडिया / सिनेमा और टी.वी. चैनलों की चकाचौंध ने हिंदी को एक नया आयाम दिया है। एक नई दुनिया दी है । आज रेडियो और टी. वी. ने अपनी एक अलग हिंदी विकसित की है। आज हिंदी के कई टी.वी. चैनल हैं। मीडिया में हिंदी चैनल के बढ़ते प्रभाव को देखते हुए कई अंग्रेजी चैनल भी अब हिंदी की ओर मुड़ने लगे हैं। चाहे वह डिस्कवरी चैनल हो या कोई अन्य चैनल । उन्हें पता है कि यदि देश के ग्रामीण स्तर तक पहुँचना है तो बात हिंदी में करनी पड़ेगी। व्यापार को स्थापित करने हेतु ग्राहक की भाशा में ही बोलना पड़ता है। पूरे देश तक पहुँचने के लिए हिंदी की उंगली पकड़ कर ही चलना होगा । हिंदी उनकी मजबूरी है क्योंकि व्यापार के विस्तार के लिए हिंदी–भाषी लोगों तक पहुँचना बहुत जरूरी है। भाषा वहीं जिंदा रहती है जो अधिक सुरक्षा देती हो। आज, हिंदी विज्ञापन व्यवसाय बन गया है। इसने कई लोगों को रोजगार के सुनहरे अवसर प्रदान किए हैं। हिंदी की तो बिंदी भी बोलने लगी है। हिंदी के जरिए आज अमिताभ बच्चन हिंदी फिल्म जगत के साथ–साथ विज्ञापनों की दुनियाँ में छाये हुए है। विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने समझ लिया है कि विदेशी माल को हिंदुस्तानी बाजार में बेचने के लिए हिंदी में विज्ञापन देना जरूरी है। उनके विज्ञापन आम बोलचाल की हिंदी में होता है, जिनमें प्रचलित अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी भाषा के भी शब्द होते हैं। जैसे (1) लाईफ हो तो ऐसी (2) यही है राइट चॉयस बेबी (3) दाँतों में दर्द है नया टूथ पेस्ट ट्राई किया (4) इफैक्ट सही, साईड इफैक्ट नहीं (5) धुलाई का हीरो मैल को कर दे जीरो (6) ये दिल मांगे मोर (7) ठंडा मतलब कोका कोला आदि ।

**निष्कर्षः**

अतः सारांश रूप में कह सकते हैं कि हिंदी के प्रचार–प्रसार और विस्तार में मीडिया जगत एक अहम भूमिका निभा रहा है। विदेशी चैनल हिंदी में बात करने लगे हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियां हिंदी में सेवाएँ देने लगी है। इंटरनेट पर विदेशी साइट्स हिंदी में काम कर रही है। हिंदी विज्ञापनों के जरिए, अब यह उम्मीद की जा रही है कि हिंदी के प्रचार–प्रसार को एक नई दिशा मिलेगी, एक नई गति मिलेगी । क्योंकि हिंदी जन सामान्य की भाषा है और वह विज्ञापन की भी भाषा है। हिंदी का महत्त्व विज्ञापन के लिए अपरिहार्य और महत्त्वपूर्ण है।

**संदर्भ**


1. ओम प्रकाश सेठी, भारतीय संस्कृति साहित्य और राजभा''ाा हिंदी, पृ''ठ 120
2. दंगल झाल्टे, प्रयोजनमूलक हिंदी : सिद्धांत और प्रयोग, पृ0 227
3. डॉ. भोला नाथ तिवारी, जनसंचार समग्र ।



**प्रमिला देवी**
असिस्टैंट प्रोफेसर
(हिंदी विभाग)
कन्या महाविद्यालय, खरखौदा
(सोनीपत)

32

# मेवाती संस्कृति एवं लोक नाट्यः–

प्रो0 (डॉ0) जयकरण यादव

**सारांश** –

लोक नाट्य से तात्पर्यः– लोक नाट्य मनुष्य की आदम प्रवृति के धोतक हैं जो विभिन्न रूपों में प्रत्येक क्षेत्र अलग–अलग नाम प्रचलित रहे हैं जैसे– कठपुतली, गवरी, कानबलिया, सांग, नुक्कड़ नाटक, नहड़ा मंच जैसे विभिन्न रूप राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में प्रचलित हैं। उसी तरह मेवात क्षेत्र में बात साहित्य तथा लोक नाट्य संगीत में मिलते हैं। जिनमें 'निहाल दे', 'पण्डून कौ कड़ा', बात साहित्य मिलते हैं। जिनमें मेवाती संस्कृति की झलक मिलती है। यह विभिन्न क्षेत्रों में अपनी अलग–अलग पहचान बनाती है तथा क्षेत्रीय लोगों का पर्याप्त मनोरंजन करने के साथ–साथ विभिन्न प्रकार की शिक्षा भी प्रदान करती है। यूं तो नाटक के लिए रंग मंच की तथा विभिन्न प्रकार की वेशभूषा तथा अन्य उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है लेकिन लोक नाट्यों के लिए इन सभी ताम–झाम की जरूरत नहीं पड़ती। लोक कलाकार साधारण वेश–भूषा में भी विभिन्न प्रकार से हाव–भाव प्रकट करके व्यंगात्मक शैली में लोगों का मनोरंजन करते हैं।

मेवाती लोक नाटयों का विकास मेवात क्षेत्र में 'मेव' जाति के आविर्भाव के साथ–साथ ही मेवाती लोक नाट्यों का विकास मिलता है, लेकिन इनका प्रकाशन बहुत बाद में हुआ। कुछ लोक नाट्य जो मेवात क्षेत्र में पहले प्रचलित थे लेकिन अभाव में लुप्त हो गये हैं। लेकिन आज जो मेवाती लोक नाटय मिलते हैं उनमें 'निहाल दे' तथा 'पण्डून कौ कड़ा' अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं, जो मेवाती संस्कृति की धरोहर हैं, जो अन्य भाषा–भाषी क्षेत्रों में यह देखने को नहीं मिलता है क्योंकि लोक नाट्य दृष्य रूप में होने के कारण जन समुदाय का मनोरंजन करने तथा आकर्शित करने की क्षमता इनमें अधिक होती है। किसी भी देश का लोक साहित्य उस देश की सभ्यता, संस्कृति, धर्म, रीति–रिवाज, कला एवं साहित्य सामाजिक आकांक्षाओं का सूक्ष्म अवकलन करने में सहायक होता है।

पौराणिक नाट्यों में लखमी चन्द के 'सत्यवान सावित्री' सांग में सावित्री की पति भक्ति एवं सत का महत्व बताया है। सतीत्व के बल पर ही वह अपने पति के प्राण यमराज से वापिस ले लेती है। असंभव को भी संभव बना देती है जैसे–

यम के दूत खड़े साहमी न्यू मुश्किल भारी होगी।
पतिव्रता के मुख से सज्जनो अग्नि जारी होगी।।

मेवाती संस्कृति के लोक नाटय समाज का दर्पण हैं। मेवाती संस्कृति की झलक मिलती है। समाज के रीति–रिवाज, खान–पान, रहन–सहन, वेष–भूषा एवं पारिवारिक स्थिति की पहचान अपने क्षेत्र में विशेष रूप से भिन्न है। मेवाती लोक नाट्य कोई राजनैतिक नहीं है, पर अपने क्षेत्र विशेष में राजनैतिक घटनाओं की जानकारी रखते हैं और मेवाती लोक नाटय समाज को नीति परक उपदेश देने में विशेष पहचान बना रखी है, जैसे–

घर की खांड छोड़ कै नै क्यूं चौरी का गुड़ भावै
तू पर त्रिया मैं डूबण लाग्या लाज शर्म ना आवै।
भोजन वाको खाय जो जात–बिरादर होय
कहां पके हांडी में सांच बताओ मोय।

मेवाती लोक नाट्यों में, मेवाती संस्कृति के मनोरंजन का अथाह भण्डार भरा पड़ा है। मेवाती लोक नाट्य जनता का विशुद्व मनोरंजन करवाते हैं। मेवाती नाट्य कवि जब नायिका के सौन्दर्य का चित्रण जब ये कवि करते हैं तो दर्शक, श्रोता बार–बार वाह–वाह पुकार उठते हैं।

नाक सुआ सा मुंह बटुआ सा, दांतो पै मेख जड़ी सै।
गोल–गोल मुंह चन्दा सा सुथरी शान निराली सै।।

मेवाती लोक नाट्य सामाजिक संस्कृति के क्षेत्र में अपनी विशेष पहचान बनाई है। मेवात लोक कवियों ने राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक कुरीतियों पर व्यंग किये, जिसके अन्तर्गत बाल–विवाह, बहु विवाह, वृद्वविवाह, आचरणहीनता, लालची प्रवृति, फैशन आडम्बर आदि पर कटु व्यंग किये हैं, जो समाज को सही दिशा दिखाने के साथ–साथ लोगों का मनोरंजन भी कराते हैं।

मेवाती लोक नाट्यों में आँचलिक भाषा शैली रूपक के रूप में काम आई है और अन्य भाषाओं से भिन्न है। मेवाती लोक नाट्य 'निहाल दे' , 'पाण्डून को कड़ा' की इन नाट्यों में ग्रामीण अंचल भाषा का प्रयोग किया है जो मेवाती क्षेत्र विशेष में अपना महत्व रखती है। जैसे–

छोड़ गया मझधार में, मुझे दीखै आर न पार।
जल कर मर जाउं बाग में तीजों का त्योंहार।।

आजा पिया तोहे गले से लगा लूं वारूं अपना जिया।
बिछड़ा बालम आन मिला है, धन–धन भाग हमारा किया।।

मेवाती लोक नाट्यों में सभी प्रकार के लोक नाट्यों की भाषाओं का समावेश नहीं हो पाता है। जैसे मैदानी, पहाड़ी, पठारी तथा रेगिस्तानी लोक नाट्य का वर्गीकरण किया जा सकता है। लेकिन मेवाती लोक नाट्यों का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता है।

ये नाटक अपने क्षेत्र में विशेष रूप से इनका प्रचलन है। मेवाती लोक नाटकों में ग्रामीण अंचल विशेष भाषा का प्रयोग किया है जो गागर में सागर भरती है। अन्य नाटकों की भाषा से भिन्न है।

मेवाती हास्य नाटकों में मेवाती संस्कृति को जागरूक करने की शिक्षा प्रदान करते हैं। मेवाती लोक नाटयों का समाज को अनुशीलन करने पर हमें उनमें कुछ नाटक ऐतिहासिक, सामाजिक, पौराणिक ये नाटक विभिन्न रहस्यों से जुड़े हुए चरित्रों के वृतांतो से युक्त मिलते हैं। मेवात के ऐतिहासिक नाटक जैसे– 'दरिया खाँ ससबदनी की बात', 'चन्द्रावत गुजरी की बात', 'पाँच पहाड़ की बात', 'राजा वासुकी की बात' इन मेवाती नाट्यों में राजाओं का राजनीतिक चरित्र, उनमें वीरता का भाव, राष्ट्रीय जागरूकता का संदेश देकर यह नाटक लोगों में वीरता का भाव जगाता है।

रह–रह पण्डू मत डरो, खड़ो रहो या ढोड़।
मैं कौंता को भींव हूं, परबत दूंगो तोड़।।
कौंता अपने महल में खड़ी उपाड़े केश।
तो बिन अरजन भारती सूनो है सब देश।।

मेवाती लोक नाट्यों में नृत्य प्रधान नाटकों की प्रधानता है। इन नाटकों में प्रेम का भी वर्णन मिलता है। मेवाती संस्कृति के सात्विक प्रेम झलक इन नाटकों में दिखाई देती है। जैसे – 'निहाल दे', 'लाल मोहन की बात', 'पिंगला भरथरी', नृत्य प्रधान लोक नाटकों का गायन निम्न प्रकार से प्रस्तुत किया गया है–

तेरा यार बुगला, दिलदार बुगला, थानेदार बुगला।
नींद नशे में सोवै सै, तेरी मां ने वो लेकै उड़ गया।
तेरा यार बुगला, दिलदार बुगला, थानेदार बुगला।

मेवाती लोक नाट्य प्रेम व गायन के रूप में अन्य नाटकों से भिन्न है। मेवाती लोक नाट्यों में मनोरंजन के साथ–साथ बाल विवाह, दहेज प्रथा आदि सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार किया गया है। समाज को जागरूक किया है।

**निष्कर्ष**

मेवाती लोक नाट्यों में विद्यमान सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्थितियों का चित्रण भी किया है। मेवाती लोक नाट्य वर्तमान समय में भारतीय समाज की संस्कृति, रीति–रिवाज, रहन–सहन तथा समाज में अनेक कुप्रथाएं वर्तमान समय में भी प्रचलित हैं। उनका यथार्थ वर्णन मेवाती लोक नाटकों में किया है ऐतिहासिक लोक नाटकों के माध्यम से राजनीतिक विसंगतियों और भ्रष्ट नेताओं की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है। राजनेता किस प्रकार एक दूसरे पर आरोप–प्रत्यारोप लगाते हैं और गरीब लोगों का प्रशासन के माध्यम से शोषण किया जाता है । उसका यथार्थ चित्रण इन नाटकों में किया है। मेवाती लोक नाट्यों में गरीब लोगों की अर्थिक स्थिति का वर्णन किया है। साहूकार, जमींदार किस प्रकार किसानों की जमीन पर लगान लगाते हैं और उनका आर्थिक शोशण करते हैं ये मेवाती लोक नाट्यों, मेवाती संस्कृति की यथार्थ स्थिति का चित्रण किया है।

**संदर्भः–**


1. मेवाती बाल साहित्य : सं. अनिल जोशी, पृ. 19
2. निहाल दे एक विवेचनः डॉ. अनिल भारद्वाज, डॉ. रामकुमार भारद्वाज, पृ. 50
3. अलवर दर्शन, अनिल जोशी, पृ. 32
4. मेवाती संस्कृति का अध्ययन एवं अवलोकन : सिद्दिक अहमद मेव, पृ. 66
5. मेवात का इतिहास, डॉ. अनिल जोशी, पृ. 51
6. चिराग–ए–मेवात वर्ष 5 अंक विशेशांक जनवरी 2005, डॉ. अनिल जोशी, पृ. 29



**प्रो0 (डॉ0) जयकरण यादव**
हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय
रोहतक
मौ0 न0 9929179255

33

# लोकगीत का स्वरूप और महत्त्व

डॉ0 कंचन पुरी

**सारांश** –

प्रत्येक मनुष्य में चाहे वह सभ्य हो या असभ्य, स्वानुभूति को स्वर देने की इच्छा अवश्य होती है। शायद ऐसा इसलिए है क्योंकि वह एक सामाजिक प्राणी है। जब उसकी रागात्मक प्रवृत्ति लयात्मक होकर निकलती है, तभी वह गीत का रूप ग्रहण करती है। मानव के मन की सहज–सरल अभिव्यक्ति लोकगीतों में होती है। सरल हृदय की सरल अभिव्यक्ति ही 'लोकगीत' की आत्मा है। लोकगीत मौखिक व परम्परागत रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी संक्रमण करता हुआ जीवित रहता है। इसमें एक प्रकार की ताजगी और जिन्दादिली मिलती है जो रचित व लिखित साहित्य में उस अनुपात में नहीं होती है जितनी लोकगीतों में होती है। लोकगीतों की उत्पत्ति के संबंध में देवेन्द्र सत्यार्थी जी का कहना है–'कहां से आते हैं इतने गीत?जीवन के खेत में उगते हैं ये सब गीत। कल्पना भी अपना काम करती है, रसवृत्ति और भावना भी, नृत्य का हिलोरा भी–पर ये सब हैं खाद। जीवन के सुख, जीवन के दुःख, ये हैं लोकगीत के बीज।'[1] लोकसाहित्य विशेषज्ञ डॉ. सत्येन्द जी का कथन है–'जब लोकमानस आनन्द से गद्‌गद् हो उठता है या वेदना का स्रोत प्रवाहित होने लगता है तो स्वतः–प्रेरित भावलहयिां लोकमानस से प्रवाहित होने लगती हैं–ये ही लहरियां लोकगीत नाम से अभिहित होती हैं–न इनकी रचना का कोई स्वरूप है, न नियमावली। न ही लोकगीतों के मूल रचयिता का पता है।'[2] मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होने के कारण समूह से विलग होकर अपनी जीवन–यात्रा नहीं चला सकता है। लोकगीत सामूहिक अभिव्यक्ति है इसीलिए उसमें ऐसी सभी स्थितियों की अभिव्यक्ति मिलती है, जो मनुष्य को एक सामूहिक जीवन में बांध देती है। लोकगीत का स्वरूप और अधिक स्पष्ट हो जाता है जब हम अन्य विचारकों के मत को जानते हैं–

'It's seed lies in community singing.'[3](लोकगीत का मूल जातीय संगीत में है।)

'A folk-song is s spontaneous out-flow of the people who live in a more or less primitive conditions."[4](लोकगीत उन लोगों के स्वतःस्फूर्त बहिर्वाह है जो कमोबेश आदिम परिस्थितियों में जीवन बिताते हैं।)

'लोकगीत किसी संस्कृति के मुंह–बोलते चित्र हैं।'[5]

'आदिम मनुष्य–हृदय के ज्ञानों का नाम लोकगीत है। मानव–जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करुणा की, उसके रुदन की, उसके समस्त सुख–दुःख की कहानी इनमें चित्रित है।'[6]

'सामान्य लोकजीवन की पार्श्वभूमि में अचिन्त्यरूप से अनायास ही फूट पड़ने वाले मनोभावों की लयात्मक अभिव्यक्ति लोकगीत कहलाती है।'[7]

'लोकगीत मानवीय कृतित्व की वह सामान्य धरोहर है जो विश्व–मानव की भूमि पर प्राप्त हुई है।'[8]

'लोकगीत सर्वसामान्य की बहुश्रुत परम्परा के स्वतः स्फूर्जित उद्‌गार हैं।[9]

'लाकगीत हमारे जीवन–विकास की इतिहास हैं।'[10]

'लोकगीत मानव–हृदय की प्रकृत भावनाओं की तन्मयता की तीव्रतम अवस्था की गति है, जो स्वर और ताल को प्रधानता न देकर लय या धुन–प्रधान हाते हैं।'[11]

उपर्युक्त कथनों पर विश्लेषात्मक दृष्टि डालें तो यह ज्ञात होता है कि लोकगीतों का मानव– जीवन से घनिष्ठ संबंध है। एक प्रकार से लोक–जीवन हमारे देश व समाज के प्राचीन गौरव एवं आदर्श की अभिव्यक्ति जिस माध्यम से करता है, उसे लोकगीत कहा जा सकता है।

लोकसाहित्य के सभी रूपों में लोकगीतों ने अपना विशेष स्थान बना लिया है। वैसे भी लोकगीतों का महत्त्व निर्विवाद है। मौखिक परम्परा से उपजे ये गीत विभिन्न कालों व स्थानों की बोलियों, सामाजिक व सांस्कृतिक स्थिति व ऐतिहासिक एवं राजनैतिक पहलुओं का ज्ञान प्राप्त करने में हमारे सहायक हो सकते हैं। एक प्रकार से लोकगीत हर क्षेत्र के विशेष अध्ययन के लिए साधन– रूप में हमारे लिए उपयोगी हो सकते हैं।

लोकगीत को न नया कह सकते हैं और न पुराना। वह तो उस जंगली वृक्ष के समान होता है जिसकी जड़ें अतीत की गहराईयों में होती हैं और उसमें नित नवीन शाखाएं, नई पत्तियां व नए पुष्प खिलते रहते हैं। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने अपने शब्दों में लोकगीतों का सामाजिक महत्त्व को प्रतिपादित कर दिया है–'लोक के साथ सम्पर्क में रहकर हमारे जीवन में रुके हुए स्रोत फूटकर बहने लगेंगे ओर रस–ग्रहण करके टूटे हुए तन्तु फिर अपने तार से जुड़ सकेंगे।'[12]

हरद्वारी लाल शर्मा जी ने कहा भी है कि 'लोकगीत लोक की अभिव्यक्ति है, आम सामान्य और समष्टि की।'[13] लोकगीतों में धरती की सौंधी गंध आती है इसीलिए इनको हरद्वारी लाल शर्मा जी ने–धरती के गीत' कहा है।[14] शर्मा जी की दृष्टि में लोकगीतों में निम्न

दस लक्षण होते हैं–'1. लोक की अभिव्यक्ति, 2. अन्तश्चेतन अथवा प्राथमिक भावों की अभिव्यक्ति, 3. लोच, जीवन्तता, सहज और छन्द, व्याकरण तथा रीति के बन्धनों से मुक्त, 4. अलिखित और अनाम, 5. भाषा में नहीं बोली में गाये गये, 6. गेय गुण, 7. मन्त्र अथवा जादू का प्रभाव अथवा मार्मिकता, 8. नृत्य और लय का प्राधान्य, 9. सामूहिकता एवं 10. स्त्रियों की प्रमुखता।'[15]

लोकगीतों में जनजीवन का पारम्परिक एवं स्वाभाविक चित्र सुलभ होता है। हमारा सारा सामाजिक जीवन संगीतमय है, इसलिए भारतीय समाज में प्रत्येक अवसर व कर्म को लोक–गीतों के द्वारा संगीतमय बना दिया गया है। जीवन के प्रत्येक उत्सव व संस्कार के लिए लोक–गीत प्रचलित हैं और इन विशेष आयोजनों पर गाए जाते हैं और ये सभी पीड़ी–दर–पीड़ी परम्परागत रूप से प्राप्त हुए हैं। वैसे भी जन्म–विवाह आदि सभी मांगलिक उत्सवों को लोकगीत अनुपम मनोहरता प्रदान कर देते हैं।

लोकगीतों के अपने छन्द होते हैं, जिन्हें लोक–छन्द कहा जाता है। ये लोक–छन्द हैं–सोहर, विरहा, आल्हा, लोरी, झूमर, सावन, फगुआ, चक्की, बरवै। प्राचीन, भक्त, रीति तथा आधुनिक कवियों ने अपने काव्यों में लोक–छन्द ही अपनाये हैं क्योंकि सभी कवि लोक–कवि पहले हैं बाद में कुछ ओर। दोहा, चौपाई, छप्पय, कवित्त, सवैया, रोला, पद आदि सभी लोक–भाषा के छन्द हैं और इन्हीं छन्दों को कवि जन अपनाते आये हैं। इन सभी छन्दों का नामकरण विषय–भावों के अनुसार ही होता है जो अपने लोक–जीवन की सरस, मार्मिक व स्वाभाविक अभिव्यक्ति करने में सक्षम हैं। लोकगीत लोक–छन्द(लोक–लय), लोक–रुचि, लोक–निधि, लोक–दृष्टि, लोक–भावना, लोक–रीति, लोक– नीति, लोक–पक्ष, लोक–स्वर, लोक–धुन, एवं लोक–स्वीकृति आदि पर सर्जित व निर्मित होती हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि इन्हीं से प्रेरित व प्रभावित होकर समस्त गायक व कवि अपने गीतों व काव्यों की सर्जना करते हैं। सभी गायक व कवियों का मूल प्रेरणा अपने क्षेत्र का लोक जन–जीवन ही होता है। इस दृष्टि से तो साहित्यिक कहे जाने वाले चन्दवरदायी, विद्यापति, मीरा, कबीर, सूर, तुलसी, बिहारी, भूषण, घनानन्द, हरिऔध, प्रसाद, निराला, पन्त, महादेवी वर्मा, बच्चन, सुमन, माथुर, अज्ञेय आदि सभी लोक–कवि ही हैं।

लोक के गीत गाने वाला ही लोक–गायक होता है। डॉ. कृष्ण चन्द्र शर्मा के शब्दों में 'लोक– गायक किसी वर्ग विशेष का प्रतिनिधि नहीं। उसकी वाणी में समूचे–राष्ट्र की भारती बोलती है। वह समाज के प्रत्येक स्तर पर खड़ा होकर अपना संदेश सुनाता है–और उसकी पहुंच सब तक तथा सब की उस तक होती है। वह दूसरों के प्राणों में अपना घर बनाता है। उनकी जिह्वा पर बैठ कर अपना प्रचार करता है। फिर भला, इतने चलते–फिरते पुस्तकालयों में उसकी कृतियां सुरक्षित रहते, उनके खोने–विस्मृत होने का उसे क्या भय है।'[16]

लोकगीतों के रचयिता अज्ञात होते हैं। इन गीतों की पृष्ठभूमि में अनेक वर्षों की परम्परा होती है। लोकगीतों का मूलरूप सुरक्षित नहीं रहता है। इसका मूल कारण यह है कि कोई गीत एक कंठ से दूसरे कंठ में मुक्त संचरण करता हुआ ग्राम, क्षेत्र और प्रान्त की सीमाएं पार कर जाता है। हमारे देश के प्रत्येक क्षेत्र में लोकगीतों के असंख्य रत्न भरे पड़े हैं जो भारतीय जन–जीवन को पूर्णरूपेण व्यक्त करते हैं।

लोक–गीतों की विशेषता यह है कि ये जहां पहुंचते हैं वहीं की माटी में रंग जाते हैं और वहीं की भाषा और लय का रूप धारण कर लेते हैं। इसी उदारता के कारण मगही, मैथली, भोजपुरी, छत्तीसगढ़ी, बुन्देली, कन्नैजी, ब्रज, अवधी आदि के लोक गीत परस्पर कुछ स्थानीय परिवर्तनों के साथ समान रूप से गाए जाते हैं। लोक–गीतों में वो शक्ति है जो हमारी आत्मा को प्रकृत–पुरातन आनन्द लोक में विचरित करा सके। लोकगीतों का जन–जीवन हमारे से गहन व शाश्वत संबंध रखता है और ऐसा इसलिए हैं क्योंकि जन–जीवन जन–वाणी का अनुसरण जो करता है।

**निष्कर्ष**

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि हमारा लोकसाहित्य भाव, भाषा और व्यंजना शक्ति से सम्पन्न हैं। इनके संग्रह और संरक्षण की समुचित व्यवस्था वांछित है। आज हमारे धर्म, संस्कृति एवं शिक्षा पर अनेक प्रभाव पड़ रहे हैं जिनसे हमारे जीवन में कृत्रिमता, भाव–शून्यता और विकृति उत्पन्न हो रही है। वैसे भी हमारी संस्कृति को सर्वाधिक क्षति दृश्य–साहित्य अर्थात् फिल्मों, धारावाहिकों आदि ने पहुंचायी है। समाज में अपराधों का प्रसारण दृष्य–साहित्य में परोसी गयी अश्लीलता, नग्नता, लूट, हत्या आदि अपराध कर्मों को दिखाने से हुआ है। आजकल मांगलिक अवसरों पर लोकगीतों की अपेक्षा फिल्मी गीतों का बोल–बाला रहता है। वर्तमान की इस परिस्थिति में हमारे पूर्वजों की लोकगीतों की अमूल्य सांस्कृतिक धरोहर लुप्त हो रही है। इसे बचाने के लिए समाज के प्रबुद्ध वर्ग को विशेष ध्यान देना चाहिए जिससे लोकगीतों के संरक्षण के साथ–साथ उसके प्रचार का प्रयास हो सके। इसमें प्रत्येक परिवार व परिवार के बड़ों को भी विशेष ध्यान देना होगा तभी लोकगीत व लोकसंस्कृति सजीव रह सकेगी। यदि ऐसा हुआ तो इस शोध–पत्र का मुख्य उद्देश्य पूर्ण हो सकेगा।

**सन्दर्भ**


1. धरती गाती है, देवेन्द्र सत्यार्थी, पृ. 178।
2. लोकवार्ता की पगडंडियां, सत्येन्द्र, पृ. 160।
3. Meet my people, Devendra Satyarthi, Page 194.
4. A Study in Orrison Folk-Lore, K.B. Dass, Introduction, Page 1.
5. आजकल, नवम्बर 1951, वासुदेव शरण अग्रवाल।

6. राजस्थान के लोकगीत, पूर्वाद्ध, सूर्यकिरण पारीक व नरोत्तम स्वामी, प्रस्तावना, पृ. 1–2।
7. हाड़ौती लोकगीत : सत्येन्द्र, चन्द्रशेखर भट्ट, प्राक्कथन से।
8. Grimm : Encyclopaedia Britanica-Vol. IX, Page 447.
9. Percy : Encyclopaedia Britanica-Vol. IX, Page 448.
10. मैथली लोक–साहित्य का अध्ययन, तेज नारायण लाल, पृ. 16।
11. साहित्य सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति अंक, शान्ति अवस्थी, पृ. 37।
12. धीरे बहो गंगा, वासुदेवशरण अग्रवाल,(ले. देवन्द्र सत्यार्थी, आमुख से।
13. लोक साहित्य, सम्पादक डॉ. सुरेश चन्द त्यागी, लोक–गीत, हरद्वारी लाल शर्मा, पृ. 137।
14. वही, पृ. 138।
15. वही, पृ. 138।
16. लोक जीवन के स्वर, डॉ. कृष्ण चन्द्र शर्मा, संस्करण 1977, कुरु लोक संस्थान, मेरठ, प्रस्तावना से पृ. 2।

**डॉ0 कंचन पुरी**
एसोसिएट प्रोफसर व हिन्दी विभागाध्यक्षा,
रघुनाथ गर्ल्स पी. जी. कॉलेज,
मेरठ
(उत्तर प्रदेश)

34

# Title: Covid-19 Crisis and the Indian Economy

**Dr. Deepa Juneja**

Thirty years ago, India decided to change its course of history. The year 1991 was a path breaking year in India's economic destiny. The serious problem of BOP & external debt arised economic crisis. To curb these crises, Narasimham committee introduced liberalized polices in 1991 & Indian Economic Institutions started the multiple reform agendas to improve the broader economic balance sheet & to move the path of development. But now after the completion of 30 years of reforms, a serious problem has been raised again before the Indian Economy i.e. Covid-19 crisis. Covid-19 Pandemic has devastated Indian Economy completely. It has jeopardized the economic well being of millions. Just as the Economic reforms of 1991 helped the Indian Economy to curb the economic crisis, today again, we need to design a reliable reform agendas which not only increase the level of GDP but also increase the level of growth rate that will be greater than the beginning of Corona Pandemic. So, the objectives of this paper are to explain the state of Indian Economy before the Corona pandemic and after 1991 reforms, to study the impact of the crisis on different sectors of the economy and to suggest the possible remedies for economic rejuvenation.

**Key words:** Economic reforms 1991, Covid-19 Crisis, Indian Economy.

**Introduction**

Thirty years of liberalized policy started in 1991 have been completed in year 2021. Reforms of 1991was a historical event which completely changes the nature of economy. The serious problem of BOP in year 1991 arised economic crises. A multiple reform agendas were introduced to develop and to reform the Indian Balance Sheet. But now after 30 years of reforms, a big problem has been raised again before the Indian Economy i.e. Covid -19 Crisis.

Over the last one year the covid-19 pandemic has caused an unprecedented global crisis. Covid-19 i.e. CORONA VIRUS DISEASE 2019 has great impact on our Indian economy. It has shaken the economy of all the countries of the world. Each country is dealing with its impact as per their own capabilities and requirements. According to World Bank report, this pandemic came in India at that time when Indian Economy was already facing the period of recession because of more pressure on financial sector. Indian economy is stated as the low middle income country of the world. Some features like low per capita real income, low rate of capital formation, higher population below poverty line, poor social and economic infrastructure, agricultural based economy low level of international trade tagged it as a developing economy in the world. Within 21 days of lockdown announced on March 23, 2020, Indian has to face demand depression and high rate of unemployment which reduced the supply side and jeopardized the economic and social well being of millions of people. Covid-19 is an ongoing pandemic & WHO has declared the outbreak of Public Health Emergency of International concern. So India is fighting two wars in a way, one is the Corona Pandemic and the other is Economic Crises. On the domestic front, India is already dealing with very low demand almost in every sector including MSMEs, Aviation Sector, Auto Sector, Real Estate, Retail, Tourism, Pharma Sector, IT Sector and Textile Sector The country's unemployment rate is at 27.1%, the highest ever, indicating the blood bath in the wake of the corona virus pandemic & the lockdown. Some of the services & technology sectors won't see recovery any time soon. Their incomes have evaporated suddenly, and

there is very little hope for these industries to earn a pre-covid level income anytime soon. There will be a high degree of uncertainty about the future which will affect the investment component of the economy. Autonomous Investment is an important part of GDP and delayed investment would make the recovery tougher. Therefore Government should learn from previous crisis and they should increase their expenditure because demand driven recession can be countered with government spending.

**Objectives of the paper**

1. To explain the state of Indian Economy after 1991 reforms or before the Corona pandemic.
2. To study the impact of Covid-19 crisis on different sectors of the Indian economy.
3. To suggest possible remedies for economic rejuvenation.

**Data & Methodology**

The research has been done by using secondary sources of data such as journals, literature, reports, book, newspapers, magazine etc.

**State of Indian Economy after 1991 reforms or before the Corona pandemic:**

In 1991 Narasimham Rao committee introduced various liberalized policies when India was facing severe economic crisis due to external debt. The crisis happened largely due to in- efficiency in economic management in the 1980s, the revenues that government was generating were not enough to meet the expenses. Therefore Indian government had to borrow from foreign Banks to pay the debt and economy were caught into debt trap. To curb this crisis, India approached the international institutions such as World Bank and IMF for the loan and received 7 million $ to manage this Crisis. As a result of which these International organizations expected India to open its door to international trade with other countries by removing the strict- restrictions such as tariff and non-tariff barriers. Hence India adopted the LPG reform i.e. liberalization, Privatization and Globalization under the economic reforms. On July 24, 1991, the Finance Minister presented the Union Budget- in Lok Sabha which changed many things in a single brush of stroke. Some major changes were:-

❖
- ndia moved to more flexible exchange rate policy

❖
- reed up capital markets

❖
- iberal financial sector

❖
- lobal investors to invest in India

❖
- RTP act 1970 were removed & business were given freedom to grow big

❖
- any import tariffs were also removed to make the domestic economy more competitive

any things had changed since then. India' GDP (Gross Domestic Product) had grown almost 10 times from $266 billion in 1991. The country had become world' fifteen largest economy. Poverty rates had become halved from 45.3% to 21.9% and the number of poor people fell from 630 million to 360 Million that too when population rose from 88 crore to 135 crore. Per capital income has been risen from Rs. 538 in 191 to Rs.12,140 in 2020 which had brought most essentials & some luxuries within the reach of many more Indian households. But suddenly the covid-19 crisis devastated India' economy and pushed India' middle class towards poverty. Due to Corona Crisis India' Global Hunger Index (GHI) of 116 countries slips to 101$^{h}$position in 2021. In this case, India is also behind his neighboring countries like Pakistan, Bangladesh & Nepal. Whereas China, Brazil & Kuwait achieved top rank. Their GHI score is less than five. In 2021 India' GHI score is 27.5. The Impact of corona virus pandemic in India has largely distracted economic activities. Almost all sectors of Indian economy have been adversely affected. Domestic demand & exports have been sharply decreased.

**mpact of Covid-19 Crisis on different sectors of the**

**Economy:-**

**ovid-19 crisis toll Agriculture on deepens :** The 2[d]wave of covid-19 pandemic has taken a vicious toll on agriculture sector. Due to shortage of logistic and labour supply, the agricultural industry, which accounts for around 18% of the GDP, was finding it difficult to cope up with this massive burden. Thecrops have been planted were ready to be harvested. However there was a serious concern that a large amount of the crops would decay in the fields due to lack of logistics, transportation, packing and labour. Similarly the cultivation of coffee and tea aso has come to a halt. Due to lockdown, operating activities of APMC Mandis (Agricultural Produce Market Committee) had been closed and the Farmers were not prepared for these chaos.

**anufacturing sector gets a hit:**Due to the shutdown, India' manufacturing & production sectors such as ITC, L& T, Grasim Industries, Dabur India, Aditya Birla Group, Ultra Tech Cement, Bharat Forge & a slow of other prominent names have all halted their production. Numerous logistic & motor firms such as Hero Hona, Maruti and Escorts had no choice but comply with the lockdown imposed by the government and therefore had to shut down operations until the government announced unlocking.

wing to the legalities involve as in essential and non-essential goods during the lock down circumstances , practically all E-commerce businesses, including Flip Kart, Amazon, and big baskets, have started focusing their sales primarily on vital goods. Te police were allowing only those delivery people who are bringing critical products to access.

lthough India' service industry will not be able to prevent the heavy bite of the corona virus' lockdown scenario, the organized sector such as Education, IT, as well as knowledge will be able to execute its jobs from home to some level, reducing losses. To preserve social distance, the live events business has been totally shut down. The sector isexpected to have lose roughly INR 3000 crore. Due to the steps imposed by the government in response to cowed-19, the software based cab sector has been completely flattened and faced huge losses.

**orsening Financial and Fiscal Outlook :** he countrywide lockdown imposed to prevent the spread of the corona virus had a negative impact on the economy and sectors. According to India' Investment Information And Credit Rating Agency (ICRA) The economic growth of India will experienced a steep down trend in Q4 of FY 2020, and it can be predicted to dip to 4.5 percent . They also expect GDP growth to be limited to roughly 2 percent in FY 2021says the report. ICRA has raised concern for Indian' home market, which will be severely impacted by China disrupted logistic chains. It will not only slow down home production due to the shortage of raw-materials, but it will also result in drop in global exports.

**ressure on Banking Sector:**Covid-19' global influence on the Indian economy has indeed begun to be revealed in its monster form. The banking sector was the first one to bear the brunt of the damage. Day after day, the Indian rupee falls to an all-time records against the US dollar. The fastfall of the rupee has created an unusual scenario for Indian companies wishing to discharge their debs in US dollars.

**ressure on Aviation and Tourism Sector:** he aviation & Tourism both contribute roughly 2.5 percent and 9 percent of our GDP, respectively. In fiscal year 2018-19 the tourism industry serviced around 43 million people. The very first business to severely impacted by the outbreak were aviation & turism COVID, it appears, will have a greater impact on these sectors than 9/11 as well as the financial crisis of 2008. Since the beginning of the Covid-19 pandemic both these industries have been experiencing serious cash flow problems and are facing a pobable layoff of around forty million people, or 70% of the total employed. Both white-collar and blue-collar occupations will be affected.

**orsening Pharmaceutical Sector:** ince the onset of the Covid-19 outbreak, the pharmaceutical has been on the increase, particularly in India the largest manufacture of

generic pharmaceuticals. It has been booming in India, supplying Hydroxychloroquine around the world, especially to the K, US, Canada as well as the Middle East, with a market share of $ 55 billion by the start of 2020. The epidemic has caused a recent increase in the price of raw ingredients manufactured in China. Generic pharmaceuticals have been hit the most because of he industry' significant reliance on imports, interrupted supply chains and labour shortage caused by social alienation.

**orsening Indian Oil and Gas Sector :** he Indian oil and gas sector is important in the global, perspectiveit is the world' third-largest energy user, trailing only the United Stated and China, and accounts for 5.2 per cent of global oil demand. As automotive & industrial manufacturing plummeted along with commodities and passenger travel fell due to the nationwide lockdown. he demand for transportation fuels reduced. Despite the fact the crude prices fell during this time, the government raised excise & special excise tax to compensate for the lost revenue Additionally the road cess was raised too.

**ossible Remedies: The Road Ahead for Economic rejuvenation.**

The Road ahead is tougher & even more daunting than 1991. However this is not the time to rue about, what has not been achieved during this pandemic rather we should focus on what we can achieve in next 30 years through taking the reforms to their logicalend. With the right mix of appropriate government responses we can fulfill the dream of economy of sustainable abundance and equitable prosperity by 2051. To realize this, the Prime Minister of India announce self-reliant Indian model (Aatmanirbhar bharat while addressing to nation on 12$^{h}$May. The Indian model of development should focus on creating wealth for the people at the bottom of the economic pyramid. Ease of doing business should be improved more in India, Executives Regulation should be minimized. Economic decoupling from china i need of hour otherwise we will not realize full potential of Aatmanirbhar Bharat. Moreover for the success of self-reliant Indian model, (Aatmanirbhar Bharat), there is need to increase the quality of domestic product because due to less competition in mrket from foreign products, quality of product may decline. Self-reliant model should be regulated properly, if not regulated properly it may lead to monopoly in the market & monopoly leads to disaster. Trade tariff should be reduced because increasing trde tariff may upset other countries & they can also impart huge tariff retrospectively. Moreover to increase the rate of employment in India, government should open various sectors to private enterprises or privatize the loss making Public Sector Units (**SU.**

ublic expenditure should be increased in India. At present, public expenditures for fulfilling extensive demand of MANREGA & providing more finance for vaccination are more desirable because it proves as a safety net.

**ndian Economy has to be Rejuvenate with Technological Power:** his is the era of technological enhancement. The e-conversion of various economic schemes & projects will certainly yield a positive impact on the country as a whole. More and more digitalization & cashless transactions, will be suitable measure to check eakages & discrepancies in the entire process. Banking and Financial system has to be strengthen by introducing various measures such as recapitalization, insolvency and bankruptcy code and DBT (Direct Banking Transfers) to farmer and definitely it will b a satisfactory action towards the same.

he supply of necessary goods and services should be increased because reduced supply of goods & services to meet higher demand could create mid-term shortages and price increases.

**onclusion :**On the bright side, Indian government may use this position to expend its economy by increasing their provision of monetary welfare to citizens and by ensuring businesses have access to the funds. So the government must prioritize economic measures in ordr to grow the economy,

as well as the evident social and political agenda so that India becomes one of the most economically advanced country of the world.

**References**


- https://government.economictimes.indiatimes.com/news/economy/opinion-impact ofcovid-19-on-indian economy75021731https://en.m.wikipedia.org/wiki/economic-impact_of_covid-19_pandemic in India.
- https://www.the hindu.com /business/economy /covid-19/toll-on Indian.
- https://timesofindia.indiatimes.com/reddirblog/midweekred/impactof-covid-19on Indian economy -26770/
- https://www.livemint.com/news/economy
- https://en.m.wikipidea.org/wiki/economic-impact of covid-19 pandemic in India
- https://www.financialexpress.com/economy/imapct-on-indian-economy-after-the covid-19-second-wave/2275353/



**Dr. Deepa Juneja,**

Assistant Professor,

Department of Economics,

Sat Jinda Kalyana College,

Kalanaur (Rohtak)

Email Id: drdeepajuneja@gmail.com

35

# प्राचीन हिन्दू विधि में दायभाग व्यवस्था

डॉ0 सुनीता देवी

**सारांश** –

प्राचीन हिन्दू कानून के अंतर्गत पुत्र, पौत्र एवं प्रपौत्र समान रूप से पारलौकिक फल देने वाले होने के कारण प्रमुख उत्तराधिकारियों की कोटि में आते हैं। मनु, वशिष्ठ और विष्णु ने पुत्र के द्वारा लोकजय, पौत्र के द्वारा आनन्त्य और प्रपौत्र के द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति का उल्लेख किया है।[1] अतः प्राचीन हिन्दू विधि में पुत्र के पश्चात् उत्तराधिकार का क्रम निम्नलिखित है–

**पत्नी को उत्तराधिकार** – यदि कोई व्यक्ति पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र के बिना ही मर जाता है, तो उसके धन के उत्तराधिकार के विषय में याज्ञवल्क्य के द्वारा निम्न प्रावधान किया गया है।[2] पत्नी, पुत्रियाँ, माता–पिता, भाई, भाइयों के पुत्र, गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति, बन्धु, शिष्य और ब्रह्मचारी में पहले–पहले के न होने पर उसके बाद वाले व्यक्ति धन के उत्तराधिकारी होते हैं। विज्ञानेश्वर ने उत्तराधिकार के विषय में शंख को उद्धृत करते हुए यह कहा है कि पुत्रहीन व्यक्ति का धन उत्तराधिकार में उसके भाइयों के द्वारा प्राप्त किया जाता है और भाइयों के न होने पर माता–पिता अथवा बड़ी पत्नी को प्राप्त होता है।[3]

**माता–पिता को उत्तराधिकार** – अपने पुत्र के उत्तराधिकार के रूप में माता–पिता के स्थान के विषय में मध्यकाल के निबन्धों में एक मत नहीं है। याज्ञवल्क्य ने पुत्र के मर जाने के पश्चात् उसके उत्तराधिकार के लिए माता एवं पिता की वरीयता के विषय में कोई संकेत नहीं किया है। विष्णु धर्मसूत्र ने पुत्र की मृत्यु के पश्चात् उसके धन के उत्तराधिकारी के रूप में पिता का स्थान माता से पहले रखा है।[4]

मनुस्मृति में एक स्थान पर यह कहा गया है कि पुत्रहीन व्यक्ति की मृत्यु के बाद उसके धन के उत्तराधिकारी उसके पिता और भाई होते हैं।[5]

दायभाग की विधि के अनुसार उत्तराधिकार में पिता का स्थान माता से पहले आता है।[6] मिताक्षरा शाखा के अंतर्गत 'माता' शब्द उत्तराधिकार के विषय में सौतेली माता को सम्मिलित नहीं करता है।[7] बम्बई को छोड़कर कहीं भी विमाता (सौतेली माता) सपत्नी के पुत्र का उत्तराधिकार नहीं पाती क्योंकि नियमानुसार स्त्रियों को तो उत्तराधिकार मिलती नहीं, केवल वहीं पर छूट है जहाँ स्मृति वचन स्पष्ट हैं, अन्यथा सम्पत्ति सौतेली माता के रहने पर भी उसको न जाकर राजा को ही जाती है, परन्तु उसे भरण (जीवन–वृत्ति) मिलता है।[8] बम्बई में वह गोत्रज सपिण्ड विधवा के समान उत्तराधिकार पाती हैं, परंतु गोत्रज सपिण्डों में उसे बहुत दूर का स्थान प्राप्त है। यदि विधवा पुनर्विवाह कर ले और उसका वह पुत्र, जो प्रथम पति से उत्पन्न हुआ है, बिना सन्तान, विधवा पत्नी, पुत्री या दौहित्र के मर जाए तो उसकी पुनर्विवाहित माता को उसका उत्तराधिकार प्राप्त हो जाता है, परन्तु यदि वह पहले उत्तराधिकार पा चुकी है और उसके पश्चात् पुनर्विवाहित होती है तो प्रथम उत्तराधिकार से वंचित हो जाती है।[9] अपने पुत्र से उत्तराधिकार में प्राप्त सम्पत्ति पर माता का अधिकार सीमित होता है अर्थात् वह जीवन पर्यन्त उसका उपभोग तो कर सकती है, परन्तु उस सम्पत्ति का विघटन नहीं कर सकती है, जब तक कि विधिक आवश्यकता न हो।[10]

**दौहित्र (पुत्री का पुत्र) को उत्तराधिकार** – पुत्रियों के अभाव में पुत्री का पुत्र उत्तराधिकार प्राप्त करता है क्योंकि पितरों को पिण्डदान करने के कृत्य में दौहित्र और पौत्र समान माने जाते हैं।[11] मनु और नारद ने भी पुत्र और दुहिता को तुल्यसन्तति माना है।[12] मनु ने पुत्रहीन व्यक्ति के सम्पूर्ण धन को दौहित्र के द्वारा प्राप्त किए जाने का विधान किया है, क्योंकि वह एक पिण्ड अपने पिता को और दूसरा पिण्ड अपने नाना को देने का अधिकारी है।[13] मनु के अनुसार संसार में पौत्र तथा दौहित्र में कोई भेद नहीं है, क्योंकि उन दोनों के माता–पिता मृत स्वामी के शरीर से ही पैदा हुए हैं।[14] मनु ने कहा है कि पौत्र तथा दौहित्र में भेद सिद्ध नहीं होता क्योंकि दौहित्र भी पौत्र के समान ही इस परलोक में नाना का उद्धार कर देता है।[15] जीमूतवाहन के द्वारा उद्धृत किए गए बृहस्पति के वचन से भी दौहित्र के द्वारा अपने माता और मातामह के धन को उत्तराधिकार में प्राप्त किए जाने के विधान की पुष्टि होती है।[16] जिस प्रकार दौहित्र के द्वारा दिए जाने वाले पिण्ड के कारण दुहिता को पिता के धन में अधिकार मिलता है, उसी प्रकार उसी पिण्डदान के कारण दुहिता के पुत्र के द्वारा भी मातामह के धन में स्वामित्व को प्राप्त किया जाना उचित ही है। पी.वी. काणे ने मातामह की सम्पत्ति में दौहित्रों के द्वारा बराबर–बराबर भाग पाए जाने के विधान का प्रतिपादन किया है जो कि आधुनिक हिन्दू विधि में मान्य है।[17] कारण यह है कि मिताक्षरा शाखा के अंतर्गत उत्तराधिकारी में माता का स्थान प्रथम और पिता का स्थान बाद में है, जबकि दायभाग शाखा के अंतर्गत उत्तराधिकारियों की सूची में माता का स्थान पिता के बाद आता है।

**भाई एवं भाई के पुत्रों को उत्तराधिकार** – याज्ञवल्क्य एवं विष्णु के मत से माता–पिता के अभाव में भाई उत्तराधिकार पाते हैं[18] और उनके अभाव में भाई के पुत्र उत्तराधिकार के अधिकारी होते हैं। परन्तु इस विषय में एक मत नहीं है, क्योंकि मनुस्मृति के अनुसार भाइयों को माता–पिता से पहले उत्तराधिकार मिलता है। विष्णुधर्मसूत्र के अनुसार भाई को माता के बाद उत्तराधिकार प्राप्त होता है और माता को पिता के अभाव में उत्तराधिकार मिलता है।[19] विष्णु के वचन के आधार पर ही दायभाग ने मृत व्यक्ति की सम्पत्ति को ग्रहण करने का उत्तराधिकार पिता के बाद माता को और माता के बाद भाई को माना है।[20] मिताक्षराकार विज्ञानेश्वर ने पिता के अभाव में भाइयों को उत्तराधिकारी माना है। मनु ने भी पुत्रहीन व्यक्ति का धन उत्तराधिकार में प्राप्त करने के अधिकार के रूप में पिता अथवा भाई को माना है।[21] भाइयों में भी सहोदर और सौतेले में से उत्तराधिकार

प्राप्त करने में प्राथमिकता सहोदर भाइयों को प्राप्त है क्योंकि सहोदर भाई एक ही माता से उत्पन्न होते हैं, जबकि सौतेले भाइयों की माताएं अलग–अलग होती हैं। दायभागकार ने उत्तराधिकार के विषय में सहोदर भाई को सौतेला भाई की अपेक्षा प्राथमिकता दी है। दायभागकार जीमूतवाहन के अनुसार सहोदर भाई मृत भाई के तीन मातृपूर्वजों को पिण्डदान कर सकता है, परन्तु सौतेला भाई ऐसा करने का अधिकारी नहीं है।

**उत्तराधिकारी के रूप में अन्य जन** – मिताक्षरा के मत से बन्धुओं के अभाव में मृत व्यक्ति का उत्तराधिकारी उसका आचार्य होता है। आपस्तम्ब धर्मसूत्र के अनुसार भी उत्तराधिकार का यही क्रम स्वीकार किया गया है। आचार्य के अभाव में शिष्य और शिष्य के अभाव में सब्रह्मचारी (गुरुभाई) को उत्तराधिकारी माना गया है।[22] गौतमधर्मसूत्र के अनुसार गुरुभाई के अभाव में ब्राह्मण का धन किसी श्रोत्रिय (वेदज्ञ ब्राह्मण) के द्वारा उत्तराधिकार में प्राप्त किया जाना चाहिए।[23] सभी प्रकार के उत्तराधिकारियों का अभाव होने पर ब्राह्मण का धन किसी ब्राह्मण के द्वारा ही ग्रहण किया जाता है, राजा के द्वारा नहीं।[24] यही बात मनुस्मृति में भी कही गई है। ब्राह्मणेत्तर वर्णों का धन राजा के द्वारा ही उसी स्थिति में ग्रहण किया जाता है जब मृत व्यक्ति का कोई उत्तराधिकारी शेष न हो।[25]

## संदर्भ ग्रंथ सूची


1. पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेणानन्त्यमश्नुते। अथ पुत्रस्य पौत्रेण ब्रध्नस्याप्नोति विष्टपम्।। मनु. 9.137
2. पत्नी दुहितरश्चैव पितरौंभ्रातरस्तथा। तत्सुता गोत्रजा बन्धुशिष्यसब्रह्मचारिणः।। एवामभावे पूर्वस्य धनभागुत्तरोतरः। स्वर्यातस्य ह्यपुत्रस्य सर्ववर्णेश्वयं विधिः।। याज्ञ. 2 135–136.
3. शंखेनापि–मिताक्षरा (याज्ञ. 2.135.)
4. तदभावे पितृगामि। तदभावे मातृगामि। वि.ध.सू. 17.6–7
5. पिता हरेदपुत्रस्य रिक्थं भ्रातर एव वा। मनु. 9.185,
6. पितुरभावे मातुराधिकारः दायभाग 11.4.1
7. The word 'Mother' in the Mitakshra does not include a step mother. Kane, P.V. : History of Dharamshastra, Vol. III, P. 724
8. पी.वी. काणे, धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग 2. पृ. 917
9. हिन्दू विडोज रीमैरज एक्ट, 1856, परिच्छेद–2.
10. The mother succeeding to her son takes only a limited ostate i.e. she cannot alienate it except for legal necessity. Kane, P.V. : History of Dharmashstra Vol.III, P. 724.
11. यथाह विष्णु : मिताक्षरा (याज्ञ. 2.135)
12. यथैवात्मा तथा पुत्रेण दुहिता समा। मनु 9.130, नारद – 13.50
13. दौहित्रो ह्रखिलं रिक्थमपुत्रस्य पितुर्हरेत्। स एव दद्याद् द्वौ पिण्डौ पित्रे मातामहाय च।। – मनु. 9.132
14. पौत्रदौहित्रयोर्लोके न विशेशोऽस्ति धर्मतः। तयोर्हि मातापितरौ संभूतौ तस्य देहतः।। – वही 9.133.
15. पौत्रदोहित्रयोर्लोके विशेशो नोपपधते। दौहित्रोऽपि ह्यमुत्रैनं सन्तारयति पौत्रवत्।। – वही 9.139
16. दायभाग, 1.2.17.
17. The daughter's sons inherit per capita and not per stripes. Kane, P.V. History of Dharamshastra, Vol. III. P.720.
18. पत्नी दुहितरश्चैव पितरौ भ्रातरस्तया। याज्ञ. 2.134.
19. तदभावे पितृगामि। तदभावे मातृगामि। वि.ध.सू. 17.6–7.
20. दायभाग 11.5.1.
21. मनु. 9.185
22. तत्सुतागोत्रजा बन्धुशिश्यसब्रह्मचारिणः।। याज्ञ 2.135.
23. असंभवे त्वेतेशां श्रोत्रियो वेदविच्छिश्टो विप्रतिपत्तौ यदाह। गौ. ध. सू. 2.10.48
24. मिताक्षरा (याज्ञ. 2.135)
25. अर्हायं ब्राह्मणद्रव्यं राज्ञा नित्यमितिस्थितिः। इतरेशां तु वर्णानां सर्वाभावे हरेननृपः।। मनु. 9.189.



**डॉ0 सुनीता देवी**
सहायक प्रोफेसर
संस्कृत विभाग, आर्य गर्ल्ज कॉलेज,
अम्बाला छावनी
स्थायी पता – मकान नं. 532,
सैक्टर–20, हुड्डा, कैथल,
हरियाणा
पिन कोड – 136027
फोन नं. – 09467674118

36

# बनारस घराने में तबले का उद्भव एवं क्रमिक विकास

डॉ0 गोविन्द सिंह बोरा, मेघा पन्त

**सारांश**–

संगीत वह कला है जो जीवन को परम आनन्द की अनुभूति कराती है। संगीत का उद्गम मानव जाति के विकास के साथ ही माना जाता है। मानव मन के साथ ही इस कला का विकास होता रहा है। समस्त ललित कलाओं में संगीत का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना गया है। संगीत का मानव जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय संगीत का विकास प्रागैतिहासिक काल से माना जाता है। इसके प्रमाण हमें प्राचीन शिल्प कृतियों से प्राप्त होते हैं। डा. सुधा श्रीवास्तव के अनुसार ''संगीत कला में गीत, वाद्य और नृत्य इन तीनों का बोध होता है। इससे यह प्रमाणित होता है कि तीनों विधाओं में अंतःसम्बन्ध है और तीनों एक दूसरे पर आश्रित हैं। गायन का अस्तित्व सर्वप्रथम माना गया है क्योंकि स्वर और लय की अभिव्यक्ति मानव कण्ठ द्वारा सर्वप्रथम निष्पादित हुई।''[1] बनारस को प्राचीन काल से ही संगीत का केंद्र माना गया है। इस घराने की स्थापना पं- राम सहाय जी ने की।

भारतीय शास्त्रीय संगीत के विकास में घरानों का प्रारम्भ वैदिक काल से ही माना जाता है क्योंकि इस काल में शिष्य अपने गुरू के पास जाकर ज्ञान अर्जित करता है और यही गुरू–शिष्य परम्परा का आधार है और यही परम्परा घराना परम्परा के रूप में भारतीय संगीत में देखी जा सकती है। संगीत में घराने का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है। घराना शब्द का मूल घर से बना है, जो संस्कृत के गृह शब्द से बना है, जिसका अर्थ वंश, सम्प्रदाय, परिवार, कुटुम्ब, कुल, वंश परम्परा, घर इत्यादि है। घराना शब्द का साधारण अर्थ केवल वंश या कुल से माना जाता है। भारतीय संगीत में घराना या सम्प्रदाय गुरू तथा शिष्य के संयोग से बनता है। यह गुरू–शिष्य परम्परा शास्त्र तथा कला दोनों के लिए आवश्यक मानी गई है। संगीत कला के सम्बन्ध में योग्यता की परख रसिकों के सामने सफल प्रदर्शन में है।[2] घराना एक प्रकार की विशिष्ट शैली को माना जा सकता है। जब कोई विशिष्ट या अद्वितीय प्रतिभा का व्यक्ति अपनी कला में अपनी प्रतिभा व योग्यता से विशिष्टता का निर्माण करता है तो उसकी अपनी एक नवीन शैली का निर्माण होता है, इसी को घराना परम्परा कहा जाता है। घराना भारतीय संगीत परम्परा का द्योतक रहा है। गुरू अपने शिष्यों को जो कुछ भी सिखाता, शिष्य उसे तद्रूपेण आत्मसात करता है तथा अपने गुरू की परम्परा को आगे वंश अथवा शिष्यों के माध्यम से आगे बढ़ाता है तो यह घराना कहलाता है। प्रत्येक घराने की अपनी अलग विशेषता होती है। कोई भी घराना प्रतिष्ठित तभी माना जाता है जब वह पीढ़ी दर पीढ़ी उसी रूप में निरन्तर चलता रहता है।

**बनारस घराना**– बनारस उत्तर प्रदेश का सबसे प्राचीन शहर माना जाता है। विश्व में ऐसा कोई नगर नहीं है जो बनारस (वाराणसी) से बढ़कर प्राचीनता, निरन्तरता एवम् मोहक आदर का पात्र हो। लगभग तीन सहस्त्राब्दियों से यह पुनीतता ग्रहण करता आ रहा है। इस नगर के कई नाम प्रचलित है जैसे– वाराणसी, अविमुक्त, काशी इत्यादि। हिन्दूओं के लिए यह नगर अटूट धार्मिक पवित्रता, पुण्य एवम् विद्या का प्रतीक रहा है। न केवल हिन्दू धर्म अपने कतिपय सम्प्रदायों के साथ यहाँ फलता–फूलता आया है अपितु संसार के एक बहुत बड़े धर्म– बौद्ध धर्म के सिद्धान्त भी यहीं उद्घोषित हुए हैं।[3] यह देश की धार्मिक, सांस्कृतिक नगरी के रूप में प्रसिद्ध है और साहित्य, कला, धर्म, संगीत सभी क्षेत्रों में इस नगर की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। संगीत में गायन, वादन तथा नृत्य के विकास में बनारस का स्थान अद्वितीय है। आदि काल से ही बनारस के मन्दिरों में भजन, कीर्तन के रूप में संगीत का प्रचार–प्रसार होता रहा है। वेद–पुराणों में भी इस नगरी की सांगीतिक गतिविधियों, धार्मिक कर्मकाण्डों तथा कला साधकों के बारे में उल्लेख प्राप्त होता है।

बौद्ध साहित्य में उल्लेख है कि वाराणसी में एक प्रसिद्ध विश्वविद्यालय था, जिससे संलग्न एक संगीत विद्यालय भी था। इस संगीत विद्यालय में देश के श्रेष्ठ संगीत के विद्वानों को शिक्षक के रूप में नियुक्त किया गया था। इस संगीत विद्यालय में न्यूनतम 500 विद्यार्थी अध्ययन करते थे।[4] बनारस आज भी शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी स्थान रखता है। बाबा विश्वनाथ मन्दिर में भी गायन व वादन का कार्यक्रम प्रतिदिन होता है। इस कारण से संगीत का प्रभाव वहाँ के सामान्य लोक जीवन में भी दिखाई देता है। यहाँ के नागरिकों को गायन, वादन व नृत्य आदि का अनुभव संगीत के महोत्सवों, तथा मन्दिरों आदि के माध्यम से प्राप्त होता रहता है। यहाँ के संगीतज्ञों ने

देश में ही नहीं अपितु विश्व में भी अपना विशेष स्थान बनाया है।

वाराणसी के कलाकार बाहर न गए हों ऐसी बात नहीं है, परन्तु वाराणसी से उनका भावनात्मक लगाव ऐसा रहा है कि वह वाराणसी से अपने अस्तित्व को क्षण भर के लिए भी अलग नहीं कर पाते हैं। कलाकारों के निरन्तर आगमन के कारण मुख्यतः कत्थक कहे जाने वालों का बहुत बड़ा समाज बनारस के कबीरचौरा मुहल्ले में बस गया।[5]

प्राचीन काल से ही बनारस को संगीत का केन्द्र माना गया है। भगवान शिव की नगरी प्राचीन काल से ही धार्मिक, सांस्कृतिक, सम्प्रदाय व मन्दिरों की नगरी मानी गई है। वाराणसी की संगीत परम्परा लगभग 300–400 वर्ष पुरानी मानी गई है। बनारस घराने की अपनी ही अलग विशेषता है जो अन्य घरानों में हमें प्राप्त नहीं होती है। बनारस घराने की संगीत परम्परा में गायन में ध्रुपद, धमार, खयाल, ठुमरी, चैती वाद्यों में तबला, सारंगी, शहनाई, सितार, वायलिन तथा नृत्य में कत्थक आदि श्रोताओं को आनन्द विभोर कर देते हैं। यही कारण है कि बनारस की संगीत परम्परा लोकप्रिय होने के साथ ही समृद्धशाली बनती जा रही है और गायन, वादन तथा नृत्य की विविध शैलियों को गौरवान्वित करती जा रही हैं। वर्तमान समय में सुप्रसिद्ध व बहुचर्चित बनारस घराना लगभग डेढ़ सौ वर्ष प्राचीन माना गया है। उससे पहले इसका उल्लेख किसी भी पुस्तक में अथवा किसी भी अभिलेख में हमें प्राप्त नहीं होता है। उस समय बनारस घराना, स्वतन्त्र घराने के रूप में अस्तित्व में नहीं था। बनारस घराने की स्थापना का श्रेय पं. राम सहाय जी को है। बनारस में संगीत का बहुत बड़ा समाज कबीर चौरा में कथक कलाकारों का है, जिनका व्यवसाय ही संगीत है। ऐसे ही एक संगीत व्यवसायी कथक परिवार में जन्म हुआ पं. राम सहाय जी का, जिन्होंने पहले से बनारस में विद्यमान तबले की परम्परा को अपने अथक प्रयास से स्वतंत्र रूप से 'बनारस घराने' के रूप में स्थापित किया। कथकियों का ज़िक्र महाभारत और वाल्मीकि कृत रामायण में भी हमें प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों के अनुसार ये लोग जगह–जगह घूमकर काव्य गायन और नृत्य के माध्यम से पुराण कथाएं सुनाते थे। कथकिये वस्तुतः मन्दिरों से सम्बद्ध कुछ ऐसे ब्राह्मण होते थे जिनके नृत्य ईश आराधना के अविच्छिन्न अंग होते थे। कालान्तर में उन्होंने मन्दिर का एकान्त जीवन छोड़ दिया और संगीत प्रेमी अवध के नवाबों के तड़क–भड़क वाले दरबारों में आ गए।[6] पं. राम सहाय जी के पूर्वज पितामह श्री सिया सहाय जी जौनपुर (उत्तर प्रदेश) के मड़ियाँहू तहसील के अन्तर्गत ग्राम– गोपालपुर के मूल निवासी थे। कालान्तर में अपने संगीत व्यवसाय की उत्तरोत्तर उन्नति की कामना से पं. रामसहाय जी के पिता श्री प्रकाश सहाय का परिवार वाराणसी के कबीरचौरा मुहल्ले में आकर बस गया। दूसरे भाई प्रयाग सहाय आदि के परिवार ने अवध के नवाबों की पहली राजधानी अयोध्या एवम् बाद में बनी राजधानी लखनऊ को अपना कार्यक्षेत्र बनाया।[7]

पं. रामसहाय जी के जन्म के सम्बन्ध में हमें कई मत प्राप्त होते हैं। कुछ विद्वान इनका जन्म सन् 1780–1790 ई. के बीच हुआ मानते हैं वहीं कुछ विद्वान इनका समय सन् 1830– 1886 ई. तक मानते हैं। पं. किशन महाराज के अनुसार ''काशी में शिवकाल से ही डमरू, नक्कारा, ढोल व मृदंगम इत्यादि चर्मवाद्य बज रहे हैं परन्तु जिस प्रकार तारागणों के बीच चन्द्रमा का उदय होना अति शोभायमान लगता है, ठीक उसी प्रकार काशी के चर्मवाद्य वादकों के बीच 18वीं शताब्दी यानि सन् 1797ई. में रामसहाय नामक बालक का जन्म हुआ।[8] बचपन से ही पं. रामसहाय अद्भुत, विलक्षण प्रतिभा के धनी थे। जब ये केवल दो वर्ष के थे तब अपने चाचा का रखा हुआ तबला घण्टों पीटते रहते थे और इसी छोटी आयु में तबले का सर्वप्रथम पाठ ''धा धा ति ट धा धा ति ना'' ठीक तरह से बोलने लगे थे। अतएव लगभग 5 वर्ष की आयु से बालक रामसहाय की प्रारम्भिक शिक्षा पिता प्रकाश सहाय द्वारा प्रारम्भ हो गई। 9 वर्ष की अल्पायु में ही राम सहाय बहुत अच्छा एवम् प्रभावी तबला बजाने लगे थे।[9] पं. राम सहाय के चाचा प्रगास सहाय लखनऊ दरबार के नर्तक थे, जिनसे मिलने के लिए राम सहाय लखनऊ गए। लखनऊ दरबार में राम सहाय का भी तबला वादन हुआ। उस कार्यक्रम में लखनऊ घराने के प्रख्यात तबला वादक उस्ताद मोंदू खाँ भी उपस्थित थे। उस्ताद मोंदू खाँ राम सहाय के तबला वादन से अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने राम सहाय को तबले की शिक्षा प्रदान करना स्वीकार किया। राम सहाय ने लगभग 12 वर्षों तक उस्ताद मोंदू खाँ से तबले की शिक्षा ग्रहण की। यह बीच में किसी कार्यवश उस्ताद मोंदू खाँ 6 महीने के लिए लखनऊ से बाहर चले गए तब उनकी पत्नी जो तबले के पंजाब घराने से सम्बन्धित थीं ने उन्हें 500 पंजाब घराने की गतें सिखाई थी।[10]

शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् राम सहाय बनारस वापस आये तथा अपनी योग्यता तथा कौशल से आपने तबला वादन की एक नवीन शैली का निर्माण किया, जो आज बनारस घराने के रूप में प्रतिष्ठित है। और पं. राम सहाय की वादन शैली को ही वर्तमान समय में बनारस बाज के नाम से पुकारा जाता है।

पं. राम सहाय ने जिस घराने और बाज को आविष्कृत

किया वह ध्रुपद–धमार के साथ मृदंग की जगह पर, नृत्य के साथ खुले रूप में, सितार व सरोद के साथ मधुर रूप में एवम् सुगम तथा लोक संगीत के साथ नक्कारा, खोल और ढोलक आदि की जगह पर बजने लगा। इसके अलावा स्वतन्त्र वादन की एक नई शैली भी पं. रामसहाय ने आविष्कृत और विकसित की। इन सबका परिणाम यह हुआ कि बनारस बाज ने अन्य प्रचलित शैलियों से एक अलग स्थान प्राप्त कर लिया।[11]

पं. राम सहाय ने अपने छोटे भाई जानकी सहाय, भतीजे भैरो सहाय तथा अपने शिष्यों को तबले की शिक्षा प्रदान करना आरम्भ किया और यहीं से बनारस घराने की शुरूआत हुई। पं. राम सहाय ने अपने भाई गौरी सहाय के पुत्र पं. भैरव सहाय को अपने घराने का उत्तराधिकारी बनाया और उन्हें तबले की शिक्षा दी। उन्होंने अपने शिष्यों – बैजू महाराज, भगत जी, पं. प्रताप महाराज आदि को तबला वादन की शिक्षा प्रदान की।

पं. राम सहाय के अनुज जानकी सहाय भी एक कुशल तबला वादक थे। इनके वंशजों तथा शिष्यों में रघुनन्दन नाथ, गोकुल जी, महादेव चौधरी, बीरू मिश्रा, श्याम मिश्र, इत्यादि हैं।

पं. रामसहाय के पाँच सर्वप्रथम शिष्य हुए, पं. बैजू महाराज, पं. रामशरण, यदुनन्दन, प्रताप मिश्र तथा भगत जी जिन्हें उन्होंने तबला वादन की शिक्षा प्रदान की तथा वे तबले के सुप्रसिद्ध कलाकार हुए। पं. राम सहाय के अन्य शिष्यों में विश्वनाथ, केदारनाथ, जगन्नाथ मिश्र तथा गोकुल जी बड़े ही प्रकाण्ड विद्वान हुए जिन्होंने बनारस घराने की परम्परा को आगे बढ़ाया। इन्हीं वंशजों और शिष्यों के कारण बनारस घराने का वंश वृक्ष विकसित होता चला गया।

पं. राम सहाय के शिष्य बैजू महाराज फर्द के प्रकाण्ड विद्वान माने जाते हैं। उनके पुत्र सूरज प्रसाद तथा शिव प्रसाद बनारस घराने के वंशज कलाकार हैं। रामशरण जी एक प्रसिद्ध तबला वादक हुए, इनके पुत्र दरगाही जी तबले के साथ–साथ गायन व सितार के भी प्रसिद्ध व कुशल कलाकार थे। इनके प्रथम पुत्र पं. विक्रमादित्य मिश्र उर्फ बिक्कू महाराज तबले के प्रसिद्ध कलाकार थे। इन्हें संगीत जगत ने 'ख़लीफा' की उपाधि से अलंकृत किया। दरगाही जी के अन्य पुत्र सरयू प्रसाद गायन में और पं. गोवर्धन मिश्र उर्फ गौहरी प्रसाद मिश्र सारंगी के सुप्रसिद्ध कलाकार हुए। पं. दरगाही जी के शिष्य पं. सियाजी मिश्र, पं. रामदास मिश्र, जद्दनबाई, सिद्धेश्वरी देवी, पं. नन्द किशोर मिश्र आदि प्रमुख कलाकार हैं।

पं. विक्कू महाराज के शिष्यों में पुत्र पं. गामा महाराज, पुत्र रंगनाथ मिश्र, पद्मभूषण पं. सामता प्रसाद मिश्र 'गुदई महाराज', पं. भोलानाथ पाठक 'मृदंगाचार्य' आदि प्रसिद्ध कलाकार हुए। लल्लन बाबू, नन्द किशोर मिश्र, पं. अनोखेलाल मिश्र, रामजी मिश्र, व इनके शिष्य महापुरूष मिश्र, छोटेलाल मिश्र आदि ने इनकी वंश परम्परा को आगे बढ़ाया।

पं. यदुनन्दन का नाम पं. रामसहाय की वंश परम्परा में एक श्रेष्ठ तबला वादक के रूप में लिया जाता है। परन्तु इनकी वंश परम्परा के बारे में हमें कोई उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। इनके पुत्र पं. पुरूषोत्तम मिश्र व इनके शिष्य पं. कृष्ण कुमार गांगुली 'नाटू बाबू' इस क्षेत्र में प्रसिद्ध तबला वादक हुए। पं. पुरूषोत्तम मिश्र के शिष्य पं. श्याम लाल मिश्र, इनके शिष्य पं. लालजी श्रीवास्तव एक प्रसिद्ध तबला वादक हुए।

पं. राम सहाय के चौथे शिष्य पं. प्रताप महाराज थे। नेपाल के राजा जंगबहादुर ने इनके तबला वादन से प्रभावित होकर इन्हें अपने दरबार में नियुक्त किया था। प्रताप महाराज ने माँ काली की उपासना कर उन्हें प्रसन्न किया था और सिद्धि प्राप्त की थी। पं. प्रताप महाराज के पु. जगन्नाथ थे। इनके पुत्र शिव सुन्दर तथा वाचा मिश्र हुए। वाचा मिश्र के पुत्र पं. सामता प्रसाद मिश्र थे जिन्हें गुदई महाराज के नाम से भी जाना जाता है। गुदई महाराज बनारस घराने के सुप्रसिद्ध तबला वादक हुए।

पं. राम सहाय के पाँचवें शिष्य का नाम भगत जी था जो तबले के प्रकाण्ड विद्वान कहे जाते थे। इनके पास तबले की बोल बन्दिशों का अक्षय भण्डार था। इनकी शिष्य परम्परा में पं. भैरो प्रसाद मिश्र, बुन्दी महाराज, पं. दीनू मिश्र, श्याम जी मिश्र, ढाका के अता हुसैन खाँ भाटे, पं. मौलवीराम मिश्र (ममेरे भाई) इत्यादि कलाकारों का नाम प्रसिद्ध है।

प्रसिद्ध तबला वादक पं. अनोखे लाल मिश्र जिन्हें 'ना धिं धिं ना' के जादूगर के नाम से भी जाना जाता है, इनके पुत्र रामजी मिश्र भी तबला जगत के सुप्रसिद्ध कलाकार हुए। इन्हीं की वंश परम्परा का वर्तमान में मदन मिश्र प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

पं. राम सहाय जी के वंशजों में भाई गौरी सहाय के पुत्र भैरव सहाय उत्तराधिकारी हुए। पं. भैरो सहाय के पुत्र भैरव सहाय के पुत्र पं. बलदेव सहाय भी प्रसिद्ध तबला वादक हुए। इनके चार पुत्र हुए– पं. दुर्गा सहाय, पं. देवी सहाय, पं. लक्ष्मी सहाय एवम् भगवती सहाय, जिन्होंने पं. राम सहाय की वंश परम्परा को आगे बढ़ाया। इसी क्रम में शारदा सहाय एक प्रसिद्ध तबला वादक हुए। इनके

शिष्यों में केदारनाथ, जगन्नाथ, पं. दरगाही मिश्र, कण्ठे महाराज आदि हैं। इसी क्रम में पद्म विभूषण पं. किशन महाराज का नाम बनारस घराने में बड़े आदर से लिया जाता है।

वर्तमान समय में पं. पूरन महाराज, कुमार लाल, संजू सहाय, अरविन्द कुमार आजाद इत्यादि बनारस घराने के सुप्रसिद्ध कलाकार हैं। संजय सहाय, विष्णु सहाय, दीपक सहाय देश विदेश में बनारस घराने का प्रस्तार कर रहे हैं।

बनारस घराना सबसे नवीनतम घराना माना जाता है। अपनी अलग विशेषताओं के कारण अन्य घरानों से भिन्न माना जाता है। इस घराने में तबला वादन का प्रारम्भ उठान से किया जाता है। बनारस बाज या शैली में तबले के बोलों के अलावा पखावज के बोलों का भी प्रयोग होता है। इस शैली में धेटे धेध्ट गदि गन, धेड़ान केकेनक, धेधेनक, धिग धिना आदि बोलों का अधिक प्रयोग किया जाता है। इस घराने में स्याही के बोलों का प्रयोग अधिक किया जाता है। बनारस घराना एकल वादन के साथ–साथ संगति के लिए भी प्रसिद्ध है। कत्थक, गायन व तन्त्री वाद्य के साथ संगत भी इस घराने में प्रचुर मात्रा में देखी जाती है। तबले में मैदान का प्रयोग अधिक करते हैं और तबले में खुला बाज बजाने की प्रवृत्ति अधिक पायी जाती है।

**उपसंहार**– बनारस घराना सबसे नवीनतम घराना माना जाता है, जिसे गुरू–शिष्य परम्परा या आनुवंशिक रूप से पारित किया गया है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के विकास व संगीत को और अधिक समृद्धशाली बनाने में घरानों का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। घराना पीढ़ी दर पीढ़ी चलने वाली वह परम्परा है जो वर्तमान समय में भी हमारे शास्त्रीय संगीत में विद्यमान है। इसी क्रम में घरानों में बनारस घराने का योगदान अतुलनीय है। प्राचीन समय से वर्तमान समय तक संगीत की शिक्षा गुरू–शिष्य परम्परा के द्वारा ही प्रदान की जाती रही है। गायन वादन तथा नृत्य के साथ ही तबले की वादन शैली के विकास में भी बनारस घराने का स्थान महत्वपूर्ण है। पं. राम सहाय के द्वारा बनारस के तबला घराने की स्थापना की गई और उनकी वंश परम्परा व शिष्य परम्परा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रही। इसी कारण वर्तमान समय में भी बनारस घराने के तबले का प्रचार–प्रसार देश में ही नहीं अपितु विदेशों में भी हो रहा है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**–


1– श्रीवास्तव सुधा, भारतीय संगीत के मूलाधार, पृष्ठ– 11

2– श्रीखण्डे सुरेश गोपाल, हिन्दुस्तानी शास्त्रीय गायन की शिक्षा प्रणाली, पृष्ठ– 2

3– उपाध्याय आचार्य बलदेव, काशी की पाण्डित्य परम्परा, पृष्ठ– 18

4– सेन अरूण कुमार, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, पृष्ठ– 16

5– रॉय सुरेश व्रत, बनारस की संगीत परम्परा, छायानट अंक–44

6– मिश्रा सुशीला, लखनऊ की संगीत परम्परा, पृष्ठ– 18

7– मिश्र कामेश्वर नाथ, काशी की संगीत परम्परा, पृष्ठ– 268

8– किशन महाराज, संगीत की जननी है काशी, सन्मार्ग (पत्रिका)1986, पृष्ठ– 61

9– शर्मा भगवत शरण, ताल प्रकाश, पृष्ठ– 358

10– मिश्र विजयशंकर, तबला पुराण, पृष्ठ– 39

11– मिश्र विजयशंकर, अन्तर्नाद : सुर और साज, पृष्ठ– 50



**डॉ0 गोविन्द सिंह बोरा**
विभाग प्रभारी संगीत
एम0बी0जी0पी0जी0कालेज, हल्द्वानी, नैनीताल
उत्तराखण्ड, 263139

**मेघा पन्त**
शोधार्थी,
एम0बी0जी0पी0जी0कालेज, हल्द्वानी, नैनीताल
उत्तराखण्ड, 263139

37

# डॉ0 हरिशरण वर्मा कृत नाटक संग्रह मंगलसूत्र में वृद्ध विमर्श

डॉ0 प्रवेश कुमारी

**सारांश**–

भाव और विचार बड़ी तेजी से बदलता है, लेकिन समाज उस तरह नहीं बदला करता। वह बदलता है , परन्तु उसके बदलाव की गति बहुत धीमी रहती है। समाज भी सदियों से अपना चोला बदलता आ रहा है। बीसवीं सदी से समाज में बदलाव तेज हुआ है। आदमी जब से तकनीकी पर आश्रित हुआ है और समाज की महत्त्वपूर्ण संस्था परिवार और परिवार का महत्वपूर्ण सदस्य मुखिया की हालातों में काफी बदलाव हुआ है। इक्कसवीं सदी में मुखिया का कद घटकर बौना ही नहीं हुआ बदल भी गया है। परिवार का मुखिया सदियों से दादा –दादी हुआ करते थे जो अब माता–पिता पर आकर ठहर गया है। माता–पिता भी माता–पिता जैसेनहीं, बड़े भाई –बहन जैसा भी नहीं रह सका, वह लगभग दोस्त –सा लगता है और एक दिन वह भी नहीं रह जाता है अपित दुश्मन –सा लगने लगता है और एक दिन घर से बाहर का रास्ता दिखाने में देर नहीं लगती सो घर से बेदखल वृद्धाश्रम में शरण पाता है। घर का मुखिया जल्दी ही मुखियापन से मुक्त कर दिया जाता है। वृद्धावस्था का जीवन, पारिवारिक संबंध और रिश्तों में आ रही गिरावट व विचलन को साहित्य की विधा नाटक साहित्य के माध्यम से देख सकते हैं। इतिहास की गति में परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व स्वाभाविक प्रक्रिया है। परम्परा जनसमूह के अतीत के अनुभव, इतिहास तथा पूर्वजों द्वारा प्राप्त जीवन दर्शन की संचित सम्पदा है, तो आधुनिकता तर्कशील विवेक सम्मत मनुष्यता के वृहद परिप्रेक्ष्य में समकालीन जीवन मूल्यों का समपुंज। आधुनिकता में वक्त का तकाजा है तो परम्परा में पुरातनता का आग्रह। सभ्यता की उन्नति की प्रक्रिया में परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व और उसके समाहार की प्रक्रिया साथ–साथ चलती है। यह जानते हुए भी कि परम्परा सभ्यता के इतिहास की जीवन्त सम्पदा है, उस पर भावुक दृष्टि से रीझने की जरूरत नहीं है, बल्कि विवेकशील होकर उसके सम्यक मूल्यांकन की जरूरत है। वृद्ध हमारे समाज के लिए परंपरा के प्रतीक हैं, तो युवा आधुनिकता के। परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व सामाजिक प्रक्रिया तो है ही साथ ही व्यक्तिगत प्रक्रिया भी है।

**बीज शब्दः** वृद्ध , लहुलुहान , सम्मान , सत्ता तंत्र, आधुनिकता, द्वद्वं, मुखिया

**विमर्शः**

विचारों की अनवरत में श्रंखला के क्रम में .चिंतन होने से उसका स्वरूप बदलने लगता है। यह समाज के लिए आवश्यक भी है। जिस समाज में विचारों पर ताला लगा होता है वह अपने आसपास के वातावरण के लिए सिरदर्द बन जाता है। विमर्श व्यक्ति विशेष से प्रारंभ होते हुए समूह विशेष में बदल जाता है और यही इसकी विशेषता है। अर्थात समाज उन विचारों को मान्यता देता है। विमर्श विचारों को महत्त्व देने के साथ–साथ उसके प्रचार–प्रसार में भी सहायता करता है। समाज को बदलने में विमर्श का बहुत बड़ा योगदान है। भारत में विमर्शों का दौर आजादी के बाद सत्तर के दशक में शुरू हुआ जैसे –दलित विमर्श, स्त्री विमर्श ,वृद्ध विमर्श ,बाल विमर्श आदि।

**वृद्ध विमर्श**–

वृद्ध विमर्श का अर्थ है वृद्धावस्था की परिस्थितियों, घटनाओं आदि का चिन्तन करना अर्थात वृद्धावस्था की समस्याओं को समझकर उनके लिए उचित समाधान करना। हिंदी साहित्य में दलित स्त्री विमर्श की भांति वृद्ध विमर्श की धमक सुनाई दे रही है क्योंकि आज के युवा पीढ़ी ने नवीन जीवन शैली अपनाते हुए इस चकाचौंध की दुनिया में अपने जीवन का ही ख्याल रख रही है अपने पुराने जर्जर बूढ़े पीढ़ी के प्रति सेवा भावना नग्न होता दिख रहा है। बूढ़े या वृद्ध के प्रति नग्न सेवा आज के बदलता परिवेश दोषी है

हिन्दी और भारतीय भाषा ही नहीं बल्कि विश्व साहित्य का एक बहुत बड़ा हिस्सा वृद्ध माता–पिता की सत्ता से टकराता, जूझता, लड़ता और कई बार लहुलुहान होता नजर आता है। डॉ. हरिशरण वर्मा द्वारा रचित नाटक'' मंगलसूत्र ''में भी वृद्ध मां की लड़खड़ाहट और लहूलुहान होते जज्बातों को दिखाया गया है। जिज्ञासा और प्रश्नाकुलता से लबरेज नचिकेता अपने वृद्ध पिता से शापित होता है। पिता वाजश्रवा अपने पुत्र नचिकेता को शाप देता है, 'जा मैं तुझे यम को देता हूँ।' यह सजा थी प्रश्न और शंका करने की, स्वतंत्र ढंग से सोचने की, बाप से, बुजुर्ग से अर्थात वृद्ध से अलग अपना मत रखने की। नचिकेता जैसे–तैसे यम तक पहुंचता है और आत्मा जीवन तथा इच्छाओं के बारे में प्रश्न करता है। वृद्ध के सत्ता–तंत्र से सीधे–सीधे टकराने वाला कदाचित नचिकेता पहला व्यक्ति है। डॉ हरिशरण वर्मा कृत नाटक'' मंगलसूत्र ''भी इसी सत्ता–तंत्र से टकराता हुआ दिखाई देता है।

मंगलसूत्र नाट्य कृति में मंगलसूत्र और कुलदीपक दोनों नाटकों को स्थान दिया गया है। अभिनेता की दृष्टि से दोनों नाटकों में रंगसूत्र के समुचित योजना है मंगलसूत्र नाट्य कृति का दूसरा भाग ''कुलदीपक' कुल सात पुरुष पात्र और सात ही नारी पात्र हैं।

नाटक की समस्त कहानी तीन भाइयों और माता श्रीमती रेशमी जो कि विधवा है और विधवा के साथ–साथ वृद्धा भी हैं, के इर्द – गर्द घूमती है। रेशमी का पति सरकारी कर्मचारी था जो कि सेवानिवृत्ति के पश्चात अपने पुश्तैनी मकान में अपनी पत्नी के साथ रहता था ,लेकिन उसके स्वर्गवास के बाद रेशमी अपने तीन बेटों के पास कुछ –कुछ समय के लिए रहती है।परंतु वहां पर उसे अपनी बहू और बेटा तथा पोता–पोती से जो आशा थी वह सब कुछ उसके विपरीत था। रेशमी अपनी बहू बेटों पर बोझ बन गई थी। वह सोचती हैं कि जब उसका पति कमाता था तो तीन –तीन बच्चों का पेट एक साथ पालता था, लेकिन अब जब उसके तीनों बहू और बेटे कमा रहे हैं तो भी मैं बोझ बन गई हूं। उसकी बड़ी बहू रेणू बात–बात पर उसे ताने देती हैं –

रेणू–जब तक सौरभ की शादी मुझसे नहीं हुई थी उस समय तक वह आपका बेटा था। शादी के पश्चात वह केवल मेरा पति है। आपका उस पर और उसकी कमाई पर कोई अधिकार नहीं। आपके पास दो बेटे और हैं उन पर जाकर अपना अधिकार जमाओ।

रेशमी – बेटा मेरा अधिकार तो केवल अपने पति पर था, सो उन्हें ईश्वर ने अपने पास बुला लिया।

रेणू – आप भी जाओ ना उन्हीं के पास ,हमारी जान को कुछ आराम मिले।

रेशमी– रेणु की बातें सुनकर बहुत दुखी होती है उसके अपने बेटे पर अब उसका कोई अधिकार नहीं है यह एहसास उसकी बहू उसे कराती है। रेशमी सोचती है कि क्या यही दिन देखने के लिए मां–बाप पुत्र की कामना करते हैं? रेशमी का बेटा सौरभ भी कुछ कम नहीं है वह भी बिना पैसे की मां की वृद्धावस्था में सेवा करने के लिए तैयार नहीं है। सौरभ अपनी मां से कहता है कि –

सौरभ –आप रोहतक का मकान बेचकर उसके पैसे मुझे दे दो ,फिर आप समस्त जीवन मेरे साथ ही रहना।

रेशमी – बेटा मुझे तो तीनों बेटे एक समान हैं। यह पक्षपात तो मैं नहीं कर सकती । तीनों का बराबर का हिस्सा है।

उपर्युक्त उदाहरण आज के समाज की जीती – जागती तस्वीर है। बेटे को केवल मां का पैसा चाहिए तभी वह मां की सेवा करेगा अन्यथा मां को अपने पास रखने के लिए तैयार ही नहीं होता। आज अधिकांश परिवारों में वृद्धों के साथ इसी प्रकार का बर्ताव किया जाता है। रेशमी की दूसरी बहू भी रेशमी के साथ अच्छा व्यवहार नहीं करती। जब रेशमी उसके साथ रहने के लिए जाती हैं तो वह अपनी नौकरानी को हटा देती है और सारा काम रेशमी को करना पड़ता है। मनीषा जो कि रेशमी के दूसरे बेटे निखिल की पत्नी है वह कहती है –

रेशमी– आज मेरी बाजू में दर्द है आयोडेक्स मल दो।

मनीषा – मैं आपकी नौकर नहीं लग रही हूं, झाडू पोंछा और बर्तन मांजने ना पड़े इसलिए यह बहाना अच्छा लगाया है।

रेशमी – घर के कार्यों के लिए मेहरी क्यों नहीं लगा लेते ,जो मेरे आते ही उसे हटा दिया।

मनीषा – जो अनाज खाती हो उसकी पूर्ति कहां से होगी।

रेशमी – तो महरी इसलिए हटाई है।

मनीषा – हां यहां रहना है तो सब काम करना पड़ेगा।

यह केवल इस घर में ही नहीं बल्कि अधिकांश घरों में वृद्ध के साथ नौकरानी जैसा बर्ताव किया जाता है मां–बाप अपने साथ–साथ अपने बच्चों को भी ऐसे संस्कार दे रहे हैं कि वह भी अपने दादा – दादी से अच्छा बर्ताव नहीं करते। रेशमी जब अपने मझले बेटे के पास रहने जाती है और बेटे के मकान को अपना मकान समझती है तो यह उसकी बहुत बड़ी भूल है 'क्योंकि उसकी पोती रिया कहती है –

रेशमी – यह मकान तो तुम्हारा ही है, मैं अपना नहीं बना रही हूँ ।परंतु जिस समय मकान बना था उस समय तुम्हारे बाबा ने आधे से अधिक पैसे दिए थे। क्या मेरा यहाँ रहने का अधिकार नहीं ?

रिया – कौन–सा हमारे सामने दीए थे। तू यहां से चली जा, हम तुझे रखना नहीं चाहते वरना यह चप्पल देखी हैं इनसे पिटाई करूंगी।

वृद्धावस्था मैं व्यक्ति सम्मान की कल्पना करता है, उम्मीद करता है। वह चाहता है कि उसके बच्चे उसका आदर करें उससे प्रेम करें ,परंतु इस सब से हटकर उसका अपमान किया जाता है। उसके अपने घर में कोई भी अपना –सा प्रतीत नहीं होता। उसका अपना कोई घर नहीं होता। जिस उम्र में आराम से जीवन व्यतीत करना चाहता है उस उम्र में उसे एहसास कराया जाता है कि यहां तुम्हारा कुछ भी नहीं है। माता–पिता को अपने बच्चों से सिवाय निराशा के कुछ नहीं मिलता। अपवाद हर जगह होते हैं परंतु समाज में रेशमी के जैसी स्थिति बहुत सारी वृद्धों की देखने को मिलती है। ऐसा नहीं है कि सिर्फ वृद्धावस्था में अपमान और निरादर ही मिलता है। रेशमी के अपनी छोटी बहू और बेटे जो उसे भरपूर प्रेम भी देते हैं और उनका सम्मान भी करते हैं।

इसमें दो राय नहीं कि वृद्धों का भरपूर सम्मान होना चाहिए। जो समाज अपने बुजुर्ग का सम्मान नहीं कर पाता उससे दूषित और घृणित समाज की कल्पना भी दुष्कर है। वृद्धों की चिंताएं, समस्याएँ और सरोकार पर गंभीरता से बात होनी चाहिए। भूमंडलीकरण और एकल परिवार की वजह जिस तरह उनकी दुनिया सिकड़ी–सिमटी है, उस पर विचार किया जाना चाहिए और वृद्धों के लिए विकल्प की तलाश की जानी चाहिए।

वृद्ध विमर्श का एक दूसरा पहलू भी है कि समाज की प्रगति और विकास में जो कारक आड़े आते हैं, उनमें एक वृद्ध भी हैं। वे प्रत्येक परिवर्तन को संदेह की नजरों से देखते हैं, और उसका विरोध करते हैं। चूंकि भारतीय परम्परा में वृद्धो की बातों को सम्मान देने का, उनके निर्णय के विरुद्ध नहीं जाने का एक रिवाज रहा है इसलिए उन परिवर्तनों में कई परिवर्तनों को स्थगित करना पड़ता है। संयुक्त

परिवार की कई लड़कियाँ तो दूर लड़के भी 'दादा प्रेम' के कारण बाहर पढ़ने नहीं जा पाते हैं, बगैर दहेज शादी नहीं कर पाते हैं, धार्मिक रुढियों और अंधविश्वासों के मकड़जाल से मुक्त नहीं हो पाते हैं। धन का अपव्यय करने पर विवश होते हैं, प्रेम विवाह तो कर ही नहीं पाते हैं। यह सब वृद्ध–दृष्टि का फल है। कहने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय समाज का कोढ़ वर्णव्यवस्था अंतरजातीय विवाह से ही समाप्त हो सकती है। किन्तु जिस समाज का वृद्ध और उसका सत्तातंत्र प्रेम–विवाह की छूट नहीं देता हो वह अंतरजातीय विवाह का छूट कैसे दे सकता है?

निष्कर्ष : वस्तुतः हम कह सकते हैं कि डॉ हरिशरण वर्मा कृत नाटक संग्रह' ''मंगलसूत्र ''के अंश 'कुलदीपक' में दर्द विमर्श को दिखाया गया हैनाटक का अंत सुखद है क्योंकि रेशमी के दोनों बड़े बहू और बेटों को आखिर में अपनी गलती का एहसास हो जाता है और वह अपनी मां से माफी भी मांग लेते हैं। अतः कह सकते हैं कि वृद्ध विमर्श साहित्य में प्रारम्भ से ही शामिल रहा है आज भी इसका प्रयोग साहित्य में हो रहा है। वृद्ध विमर्श का साहित्य में प्रयोग वृद्धों के लिए सम्मान का मार्ग है तथा युवा पीढ़ी के लिए उनकी सफलता का मार्ग है। वृद्धों के अनुभवों व संस्कारों से युवावर्ग के जीवन मूल्यों में हो रहे विघटन को रोका जा सकता है। सिमोन द बुआ के हवाले से यह कहा गया है कि "अब यह सामाजिक संस्थाओं और राजनीतिज्ञों का काम है कि किस प्रकार वे समाज के इस हताश वर्ग के लिए काम करें और उन्हें जीवन के अंतिम दिनों में ढाढ़स बंधाएँ. क्या हमारे सामजसेवी और नेता इसके लिए तैयार हैं?यह एक यक्ष प्रश्न है!!!"

**संदर्भ सूची :**


1. harmehta-blogspot com
2. Wikipidia com-
3. सीमोन द बुआ, द से किण्ड सेक्स, पृ० 95
4. डॉ. हरिशरण वर्मा, मंगलसुत्र, पृ 124
5. वही. पृ. 124
6. वही, पृ.134
7. वही, पृ.137



**डॉ0 प्रवेश कुमारी**
सहायक प्रोफेसर (हिन्दी–विभाग)
बाबा मस्तराम विश्वविद्यालय,
अस्थल बोहर (रोहतक) हरियाणा

38

# जनपद बदायूँ के विकास केन्द्रों एवं औद्योगिक सम्भाव्यता का भौगोलिक विश्लेषण

डॉ0 विवेक शर्मा

**सारांश–**

औद्योगीकरण विभिन्न प्रकार से सामाजिक–आर्थिक क्षेत्रों में विकास की गति को बल प्रदान करता है। जनपद बदायूँ में कृषि आधारित उद्योगों का विकास तेजी से हुआ हैं। अध्ययन क्षेत्र का अक्षांशीय विस्तार 27° 39' से 28° 29' उत्तरी अक्षांश एवं देशान्तरीय विस्तार 78° 16' से 79° 41' पूर्वी देशान्तर के मध्य है जिसका क्षेत्रफल 5168 वर्ग किलोमीटर हैं। कुल जनसंख्या 31.25 लाख व्यक्ति है। 'कृशि' यहॉ की मुख्य आर्थिक क्रिया है। सकल प्रतिवेदित क्षेत्रफल का 82.50 प्रतिशत है। यहॉ पर संगठित क्षेत्र की 425 इकाईयां कार्यरत है जिसमें 12550 व्यक्ति कार्यरत हैं। जबकि असंगठित क्षेत्र में 4250 इकाईयां एवं 22150 श्रमिक कार्यरत है। यहॉ पर औद्योगिक इकाईयों की स्थापना में पूँजी एवं तकनीकी की कमी देखने को मिलती है जिसको सुधारने की नितान्त आवश्यकता है तथा सरकारी–स्तर से योजनाओं का क्रियान्वयन किया जाना चाहिए।

**प्रस्तावनाः**

'औद्योगीकरण' आर्थिक विकास की वह व्यवस्था है जिसमें राश्ट्रीय साधनों के अधिकांश भाग का उपयोग तकनीकी दृष्टि से आधुनिक विविधतापूर्ण राष्ट्रीय उद्योग के विकास के उद्देश्य से किया जाता है जो सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था के विकास की गति बढ़ाने तथा आर्थिक–सामाजिक पिछड़ेपन को दूर करने की क्षमता रखते हो। औद्योगीकरण विभिन्न प्रकार से सामाजिक–आर्थिक क्षेत्रों में विकास की गति को बल प्रदान करता है यथा–रोजगार प्राप्ति के अवसरों में वृद्धि, रेलवे व परिवहन संगठनों को अधिक मात्रा में वस्तुओं के स्थानान्तरण का अवसर, व्यापारिक क्षेत्रों का विस्तार, प्रशासन को उत्पादन व बिक्री करों के रूप में अधिक आय की प्राप्ति, पूँजी निर्माण परिस्थितियों का प्रसार, प्राथमिक क्रियाओं पर निर्भरता में कमी, आय स्रोतों तथा तकनीकी सुधार के कारण कृशि, खनन व पशुपालन व्यवसाय में सुधार, बाजार में वस्तुओं की मांग व आपूर्ति में वृद्धि आदि महत्वपूर्ण उपलब्धियों के कारण राश्ट्र अथवा क्षेत्र का सन्तुलित विकास तीव्र गति से होने लगता है और अन्त में राश्ट्र सबल एवं सक्षम होने के साथ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लेता है। जनपद बदायूँ की एक मात्र आर्थिक क्रिया 'कृशि' है जिस पर अनवरत गति से बढ़ रही जनसंख्या का दबाव बढ़ता ही जा रहा है। परिणामस्वरूप क्षेत्रीय स्तर पर कृषि का परम्परागत स्वरूप, कृषकों के समक्ष संसाधनों का अभाव, प्रति हेक्टेयर उपज में कमी, खाद्यान्न फसलों में मोटे अनाजों की बहुलता, आय की सीमितता के कारण न्यूनक्रय शक्ति, रोजगार की कमी, शिक्षा का निम्न स्तर आदि आर्थिक विकास की प्रक्रिया को बाधित किए हुए है। अध्ययन क्षेत्र के सम्पूर्ण विकास के लिए यह परम आवश्यक है कि औद्योगिक क्षेत्र के प्रति अधिक से अधिक ध्यान दिया जाये। औद्योगिक विकास को उच्चतम गति प्रदान करने हेतु समस्याओं के निराकरण सम्बन्धी सुझाव देना व भावी रूपरेखा प्रस्तुत करना ही अध्ययन का मुख्य उद्देश्य है।

**अध्ययन क्षेत्रः**

प्रस्तुत शोध–पत्र का अध्ययन क्षेत्र जनपद बदायूँ है। गंगा एवं रामगंगा दोआब में स्थित जनपद बदायूँ का अक्षांशीय विस्तार 27° 39' से 28° 29' उत्तरी अंक्षाश एवं देशान्तरीय विस्तार 78° 16' से 79° 41' पूर्वी देशान्तर के मध्य स्थित हैं। इसका भौगोलिक क्षेत्रफल 5168 वर्ग किलोमीटर है तथा औसत ऊँचाई 497 फुट से लेकर 605 फुट तक हैं। जनपद बदायूँ के उत्तर में सम्भल (मुरादाबाद), रामपुर तथा बरेली जनपद, दक्षिण में अलीगढ़, एटा तथा फर्रूखाबाद जनपद, पूर्व में शाहजहॉपुर और पश्चिम में बुलन्दशहर जनपद स्थित है।

प्रशासनिक दृष्टि से जनपद बदायूँ में 01 जनपद मुख्यालय, 06 तहसील मुख्यालय, 18 विकासखण्ड मुख्यालय, 164 न्यायपंचायत, 1069 ग्राम पंचायत एवं 2081 आबाद ग्राम स्थानीय प्रशासन एवं निकायों की दृष्टि से 06 नगर पालिका परिशद एवं 17 टाउन एरिया, 24 पुलिस स्टेशन, 08 विधान सभा क्षेत्र एवं 01 लोक सभा क्षेत्र हैं। कुल जनसंख्या 31.25 लाख व्यक्ति एवं जनघनत्व 750 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर है।

ऐतिहासिक दृष्टि से 256 ई0पूर्व0 में अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ यहां बौद्ध बिहार और एक किला बनवाकर इसे बुद्धमऊ नाम दिया था। बाद में यहीं बुद्धमऊ, बुदाम, बधाऊँ से परिवर्तित होते–होते बदायूँ नाम से जाना जाता हैं। बदायूँ में ग्यारह पाल वंशी शासकों ने राज्य किया, उस समय बदायूँ बोदग्यता के नाम से जाना जाता था। तोमरवंशी शासकों के समय यहॉ की मुद्रा को ''भदायूँ'' के नाम से जाना जाता था।

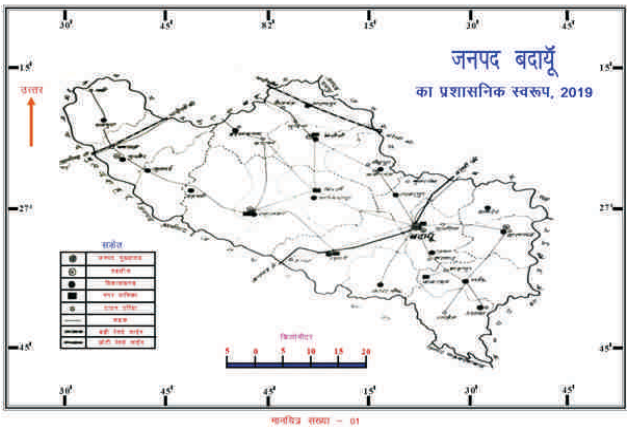


**प्राकृतिक दशायें:**

जनपद बदायूँ 'रूहेलखण्ड मैदान' में फैला एक समतल मैदानी भू–भाग है। इस मैदानी भू–भाग का ढाल उत्तर–पश्चिम से दक्षिण–पूर्व को है। गंगा, रामगंगा, सोत, अरिल, महावा, भैंसोर एवं टिकटा यहॉ की प्रमुख नदियां व बरसाती नाले है। गंगा खादर क्षेत्र में वर्शा ऋतु में बाढ़ का प्रकोप बना रहता है। यहॉ पर परतदार अवसादी चट्टानों का विस्तार है जिनकी गहराई 1000–1500 मीटर है तथा इनका निर्माण गंगा–रामगंगा व उनकी सहायक नदियों द्वारा लाई गई हिमालयन अवसाद के निक्षेपण से हुआ है। ये चट्टानें प्रवेश्य, रन्ध्रयुक्त व मुलायम है। यहॉ की जलवायु उष्णतर मानसूनी प्रकार की है। यहॉ का वार्षिक तापमान 25.50 डिग्री सेन्टीग्रेट, औसत वर्शा 110 सेन्टीमीटर, सापेक्षिक आर्द्रता 70 प्रतिशत एवं औसत वायु की गति 5.50 किलोमीटर प्रति घण्टा है। लघुशीतकाल, लम्बी ग्रीष्म ऋतु, ग्रीष्म ऋतु में गर्म 'लू' हवाओं का चलना, शीतकालीन चक्रवातीय वर्शा अन्य मुख्य विशेषताएं है। उपजाऊ जलोढ़ मिट्टी की उपलब्धता के कारण यह क्षेत्र कृषि प्रधान है। उत्तरी भागों में चीका, दोमट जलोढ़, मध्य भागों में 'खादर' तथा दक्षिणी क्षेत्र में दोमट कटेहर तथा उदला व भूड़ मिट्टी देखने को मिलती हैं। खनिज पदार्थो की दृष्टि से यहॉ पर नदियों से 'रेह' प्राप्त होती हैं। मानसूनी पतझड़ी प्राकृतिक वनस्पति, वनों का क्षेत्र 1.33 प्रतिशत, सामाजिक व कृषि वानिकी में सड़कों, नहरों, मेढ़ों व वृक्षारोपण अन्य मुख्य विशेषताऐं है। जल संसाधनों के अन्तर्गत नहरें, नदियां, तालाब व झीलें सम्मिलित है तथा अवमृदा जल स्तर की गहराई 5.00 मीटर है।

**आर्थिक दशायें:**

जनपद बदायूँ आर्थिक दृष्टि से पिछड़ा है। आज भी यहॉ की प्रमुख आर्थिक क्रिया कृषि एवं पशुपालन है क्योंकि कुल कार्यशील जनसंख्या का 55 प्रतिशत भाग कृशि व पशुपालन क्षेत्र में ही कार्यरत है। इस प्रकार 8.5 लाख व्यक्तियों को कृषि क्षेत्र से प्रत्यक्ष रोजगार प्राप्त है। इसके साथ ही 425310 हेक्टेयर भूमि पर कृषि कार्य किया जाता है जो कुल क्षेत्रफल का 82.50 प्रतिशत है। 310725 हेक्टेयर भूमि पर एक से अधिक वार फसलों का उगाया जाना सिंचाई की महत्ता को स्पष्ट करता है। शस्य गहनता 175 प्रतिशत है। सकल बोया गया क्षेत्रफल 685550 हेक्टेयर है जिसमें गेहूँ 40 प्रतिशत, चावल 28 प्रतिशत, मोटे अनाज 2.75 प्रतिशत, दलहन 2 प्रतिशत, तिलहन 2 प्रतिशत, गन्ना 7 प्रतिशत, आलू 5 प्रतिशत एवं साग–सब्जियां 4 प्रतिशत भाग पर उगाई जाती है। कुल पशुधन सम्पदा 15.50 लाख है जिसमें महिशवंशीय पशुधन 4.50 लाख सम्मिलित है।

जनपद बदायूँ में कुल विद्युत उपभोग 325450 किलोवाट प्रति घण्टा है जिसमें कृषि क्षेत्र में प्रयुक्त विद्युत शक्ति उपभोग 25. 50 प्रतिशत है। यहॉ पर चीनी विनिर्माण, मेन्थाघास से ऑयल आसवन व बोल्ड क्रिस्टल निर्माण, कागज व गत्ता विनिर्माण, चावल, आटा, मैदा, वनस्पति घी, हथकरघा उद्योग जैसे कुटीर व वृहद उद्योगों का विकास हुआ है जो मुख्यतः कृषि क्षेत्र पर ही आधारित है। बदायूँ, बिसौली, सहसवान, दातागंज, बिल्सी एवं गुन्नौर मुख्य व्यापारिक केन्द्र है। बरेली–अलीगढ़ एवं बरेली–मथुरा दो मुख्य रेलमार्ग, राष्ट्रीय मार्ग–93, राज्य मार्ग–43 एवं अन्य मार्ग गुजरते है। संचार साधनों में 323 डाकघर, 925 पी0सी0ओ0 एवं 85 प्रतिशत मोबाइल कनेक्शन उपभोक्ता है। बैकिंग सुविधाओं के अन्तर्गत 67 राष्ट्रीयकृत बैंक, 31 अन्य–गैर राष्ट्रीयकृत बैंक, 55 किसान ग्रामीण बैंक, 21 जिला सहकारी बैंक एवं 175 सहकारी समितियॉ कार्यरत है।

**स्वतन्त्रता से पूर्व:**

जनपद बदायूँ में स्वतन्त्रता से पूर्व ही आधुनिक उद्योगों का विकास प्रारम्भ हो चुका था क्योंकि 1920 में असंगठित क्षेत्र के अन्तर्गत 04 इकाईया थी जिसमें 29 श्रमिक कार्यरत थे जबकि 10 वर्ष पश्चात् 1930 में असंगठित क्षेत्र की 15 इकाइयों में 117 श्रमिक कार्यरत थे अर्थात् पिछले 10 वर्षो में इकाइयों की संख्या में 275 तथा श्रमिकों की संख्या में 303.45 प्रतिशत की वृद्धि हुई। 1940 में संगठित क्षेत्र के अन्तर्गत 03 इकाईयों का शुभारम्भ हुआ जिनमें 1561 श्रमिक कार्यरत थे। जबकि असंगठित क्षेत्र के अन्तर्गत इकाईयों की संख्या 53.33 प्रतिशत बढ़कर 23 तथा श्रमिकों की संख्या 74.36 प्रतिशत बढ़कर 204 हो गयी। उस समय जनपद बदायूँ परम्परागत एवं हस्तशिल्प उद्योगों की दृष्टि से एक प्रसिद्ध क्षेत्र रहा था। इन उद्योगों के अन्तर्गत बदायूँ, बिसौली, सहसवान एवं गुन्नौर प्रसिद्ध क्षेत्र थे।

**स्वतन्त्रता के पश्चात् का स्वरूप:**

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जनपद बदायूँ में कृषिगत कच्चे माल पर आधारित उद्योगों का तीव्र गति से विकास हुआ। जनपद बदायूँ में 1950 में वृहद स्तरीय उद्योगों के अन्तर्गत 02 इकाईयॉ कार्यरत थी जिनमें 1437 श्रमिक थे जो अब 10 है जिनमें 5500 श्रमिक कार्यरत है जिनमें 02 चीनी मिल, 01 रासायनिक खाद, 03 खाद्य तेल निर्माण एवं 04 अन्य इकाईया कार्यरत है। 1950 में

लघु व मध्यम स्तरीय उद्योगों से सम्बन्धित इकाईयों की संख्या 91 थी जिसमें 1755 श्रमिक कार्यरत थे जो अब 550 हो गई जिनमें 3850 श्रमिक कार्यरत है। कुटीर एवं हस्तशिल्प उद्योगों से सम्बन्धित इकाइयों की संख्या 1276 थी जिनमें 1547 श्रमिक कार्यरत थे जो अब 2450 हो गई जिनमें 5985 श्रमिक कार्यरत है। इस वृद्धि के प्रमुख कारण परिवहन एवं संचार साधनों का द्रुत गति से विस्तार, तकनीकी स्तर में सुधार, क्षेत्रीय स्तर पर गन्ना, दलहन एवं तिलहन उत्पादन में बढ़ोत्तरी, मूल्यों में वृद्धि, जनसंख्या वृद्धि के कारण मांग में तीव्रता है।

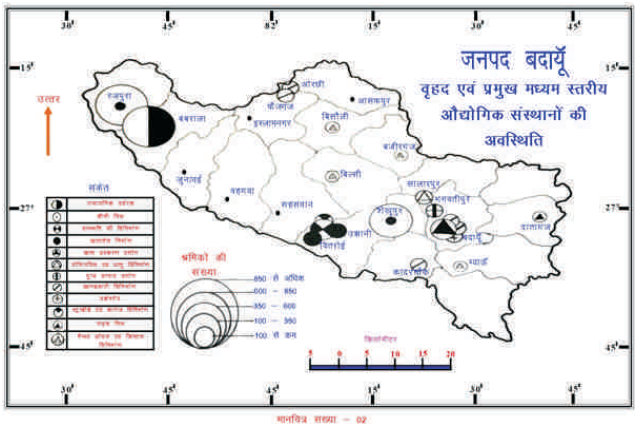


**औद्योगिक पारदृष्य:**

जनपद बदायूँ में संगठित क्षेत्र की 425 इकाईयां कार्यरत है जिनमें कार्य कर रहे श्रमिको की संख्या 12550 है। इनमें से अधिकांश इकाईया व श्रमिक कृषि आधारित उद्योगों से सम्बन्धित है। चीनी एवं खाण्डसारी उद्योग में 85 औद्योगिक इकाईया व 4995 श्रमिक कार्यरत है। जबकि 03 खाद्य तेल निर्माण की इकाईयों में 375 श्रमिक कार्यरत है। इसके अलावा जनपद बदायूँ की संगठित क्षेत्र की एक मुख्य इकाई जो रासायनिक खाद निर्माण से सम्बन्धित है, में 1250 श्रमिक कार्यरत है। जबकि इस औद्योगिक इकाई में 200 करोड़ रूपये का पूँजी निवेश हुआ हैं । संगठित क्षेत्र की सभी इकाइयों में कुल 2200 करोड़ रूपये का पूँजी निवेश हुआ हैं जो समस्त उद्योगों में कुल पूँजी निवेश का 90 प्रतिशत है। असंगठित क्षेत्र के अन्तर्गत 4250 औद्योगिक इकाइयों में 22150 श्रमिक कार्यरत है।

**औद्योगिक क्षेत्र:**

सामान्यतः जनपद बदायूँ जैसे कृषि प्रधान क्षेत्र में औद्योगिक क्षेत्रों का परिसीमन और भी दुरूह कार्य हो जाता है क्योंकि यह विरल अवस्था में हैं। अधिकांशतः कृषि क्षेत्र पर आधारित औद्योगिक क्षेत्रों का विकास हुआ है जिनका विवरण निम्न प्रकार है:–

**1.बदायूँ–उझानी औद्योगिक क्षेत्र:**

यह क्षेत्र जनपद बदायूँ के उत्तर में सलारपुर से लेकर दक्षिण में वितरोई तक है। यहॉ पर खाद्य तेल निर्माण, साबुन मिल, पेपर मिल, शीतगृह, मेन्था ऑयल, बोल्ड क्रिस्टल, फ्लैग निर्माण आदि से सम्बन्धित अनेक इकाईया कार्यरत हैं। इसके अलावा एक वृहद् स्तरीय चीनी मिल शेखूपुर में, लोहा विनिर्माण से सम्बन्धित एक वृहद इकाई सालारपुर में, दुग्ध अवशीतलन से सम्बन्धित एक इकाई भगवतीपुर में, आलू चिप्स निर्माण से सम्बन्धित एक इकाई श्यामनगर में तथा फ्रोजिन बेजी टेबिल से सम्बन्धित एक वृहद स्तरीय औद्योगिक इकाई बदायूँ में कार्यरत है।

**2.बबराला–रजपुरा औद्योगिक क्षेत्र:**

यह क्षेत्र जनपद बदायूँ के उत्तरी–पश्चिमी भाग में तहसील गुन्नौर के अन्तर्गत बड़ी रेलवे लाईन के तथा मुरादाबाद–आगरा राश्ट्रीय मार्ग संख्या–93 के दोनों ओर फैला है। इसके अन्तर्गत 01 वृहद स्तरीय औद्योगिक इकाई यूरिया/अमोनिया निर्माण एवं 01 चीनी मिल स्थित है। गुन्नौर, जमालपुर, रसूलपुर दुपटाकलां, बसन्तपुर, फरीदपुर आदि इस औद्योगिक क्षेत्र के अन्य प्रमुख केन्द्र है।

**3. इस्लामनगर–फैजगंज औद्योगिक क्षेत्र:**

इस क्षेत्र का विस्तार तहसील बिसौली के अन्तर्गत है जो मुख्यतः सड़क के किनारे–किनारे फैला हुआ है। इसके अन्तर्गत सामान्य इंजीनियरिंग एवं कार्यशालायें, मैन्था उत्पाद, स्टील विनिर्माण हथकरघा उद्योग, कताई व बुनाई उद्योग, फर्नीचर उद्योग, आटा व चावल मिल आदि से सम्बन्धित अनेक इकाईयां कार्यरत है। ओरछी, रामनगर, नूरपुर, पिनौनी, सुल्तानगढ़, कोठा, चन्दोई आदि मुख्य है।

**4.बिसौली–वजीरगंज औद्योगिक क्षेत्र:**

यह औद्योगिक क्षेत्र जनपद बदायूँ के उत्तरी भाग में मुरादाबाद–फरूर्खाबाद राज्य मार्ग पर स्थित है। बिसौली, वजीरगंज तथा सैदपुर इस औद्योगिक क्षेत्र के प्रमुख केन्द्र है। इसके अन्तर्गत आलू आधारित शीतगृह, गुड़ खाण्डसारी निर्माण, आटा, मैदा तथा चावल निर्माण, खाद्य तेल निर्माण, फर्नीचर निर्माण, कताई–बुनाई उद्योग, मैन्था उद्योग सामान्य इंजीनियरिंग, कृशि यन्त्र निर्माण, मोमबत्ती निर्माण, स्टील एवं जाली, ग्रिल व शटर निर्माण, कताई, रंगाई व छपाई आदि से सम्बन्धित अनेक औद्योगिक इकाईयां स्थापित है।

**5. कादर चौक–उसहैत औद्योगिक क्षेत्र:**

यह क्षेत्र जनपद बदायूँ के दक्षिणी–पूर्वी भाग में बदायूँ एवं दातागंज तहसीलों के अन्तर्गत फैला है। कादर चौक, अलापुर, म्याऊँ तथा उसहैत इस औद्योगिक क्षेत्र के प्रमुख केन्द्र है। गुड़ व खाण्डसारी निर्माण, हथकरघा उद्योग, खाद्य तेल, आटा व दाल प्रसोधन, कृषि मशीनरी निर्माण से सम्बन्धित अनेक औद्योगिक इकाईयां कार्यरत है।

**6. बिल्सी–सहसवान औद्योगिक क्षेत्र:**

यह औद्योगिक क्षेत्र जनपद बदायूँ के दक्षिणी–मध्य भाग में विस्तृत है। सहसवान तथा बिल्सी इस औद्योगिक क्षेत्र के दो महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्र है। सहसवान में केवड़ा तथा गुलाब का

इत्र निकाला जाता है जबकि बिल्सी अनाज, गुड़, रूई व घी की प्रसिद्ध मण्डी हैं। इसके अलावा मैन्था उद्योग, गुड़ निर्माण, शीतगृह, खाद्य तेल निर्माण, कृषि यन्त्र एवं उपकरण निर्माण, धूपबत्ती व अगरबत्ती विनिर्माण, मसाला निर्माण, मुर्गीपालन आदि मुख्य है। इस औद्योगिक क्षेत्र के अन्तर्गत खितौरा, रफीनगर, तिगरा, खैरपुर खैरात, बहबलपुर, मुहम्मदपुर आदि मुख्य औद्योगिक केन्द्र है।

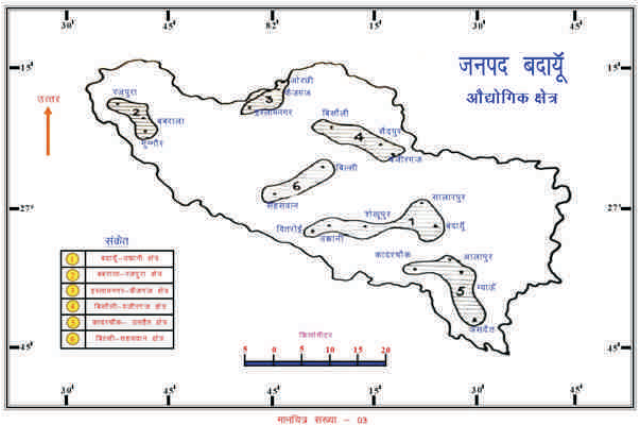


**क्षेत्रीय स्तर पर औद्योगीकरण की प्रमुख समस्याएं:**

जनपद बदायूँ की अधिकतर औद्योगिक इकाईयां पूँजी के अभाव से ग्रस्त हैं। नवीन औद्योगिक इकाईयों की स्थापना के लिए भूमि की खरीद, भवन निर्माण, आधुनिक यन्त्रों की खरीद, कच्चे माल की उपलब्धता, उत्पादन के भण्डारण, उत्पादन को विक्रय करने, श्रमिकों के वेतन भुगतान, करों की अदायगी एवं आधुनिकीकरण के लिए विशाल मात्रा में पूँजी की आवश्यकता पड़ती है। मौसम की अनुकूलता व प्रतिकूलता का प्रभाव प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से उद्योगों पर परिलक्षित होता है। गन्ना, धान, मैन्था, तिलहन तथा दलहन जैसे कृशिगत कच्चे माल की प्राप्ति में कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है। उद्योगों के विकास को प्रभावित करने में श्रम आपूर्ति का महत्वपूर्ण योगदान है। श्रम के अभाव में उत्पादन एवं उद्योगों का विकास व निर्धारण नहीं किया जा सकता हैं। जनपद बदायूँ में भी पर्याप्त मात्रा में एवं सुचारू रूप से विद्युत आपूर्ति एक गम्भीर समस्या है जिससे उद्योगों की स्थापना एवं विकास कार्य सीधे–सीधे अवरूद्ध एवं प्रभावित हो रहे है। ग्रामीण क्षेत्र जो कि कच्चे माल व अन्य संसाधनों के प्रमुख स्रोत है, उचित व पर्याप्त मात्रा में परिवहन के साधनों की समस्या से ग्रस्त हैं। ग्रामीण उद्योगों के सामने पूँजी की न्यूनता, प्रशिक्षण केन्द्रों का अभाव, परिवहन के साधनों की कमी, परम्परागत उद्योगों का पतन, जोखिम उठाने की सीमितता आदि प्रमुख समस्यायें है। ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर एवं खाण्डसारी उद्योगों को छोड़कर किसी अन्य प्रकार के लघु उद्योगों का विकास नहीं हो पा रहा है। भौगोलिक जटिलताओं, संसाधनों के अभाव और सम्पर्क साधनों की कमी से जूझते ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र भी सुविधा और जानकारी के मामलों में काफी पीछे है। नगरीय व ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों के आर्थिक दृश्टिकोण से पिछड़ा होने के कारण प्रति व्यक्ति आय कम है। आम लोगों की क्रय क्षमता कम है जिसका उद्योगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

**औद्योगिक सम्भाव्यता एवं प्रादेशिक नियोजन:**

जनपद बदायूँ के औद्योगिक विकास में पूँजी मुख्य आधारशिला है। पूँजी की समस्या को दूर करने के लिए सरकार द्वारा उद्यमियों को कम से कम ब्याज दर पर दीर्घकालीन ऋण उपलब्ध कराना चाहिए। भविष्य में मैन्था उद्योग एक महत्वपूर्ण उद्योग के रूप में विकसित होगा। इसके अतिरिक्त चीनी व खाण्डसारी उद्योग, वनस्पति घी निर्माण, आटा व मैदा मिलें, चावल मिलें, दाल प्रशोधन, आलू चिप्स निर्माण, सोया–कचरी निर्माण, स्ट्राबोर्ड व गत्ता निर्माण, कागज निर्माण, लकड़ी का सामान, प्लाईवुड, आरा मशीन, शीत भण्डार गृह, फल तथा सब्जी प्रसंस्करण, दुग्ध पदार्थो का विनिर्माण आदि से सम्बन्धित औद्योगिक इकाईयों की स्थापना तथा विकास को प्रमुखता मिलने की सम्भावना है क्योंकि इनके लिए स्थानीय स्तर पर ही कच्चे माल की विशाल मात्रा में आपूर्ति की जा सकती है। इसके अतिरिक्त मॉग पर आधारित उद्योगों में सामान्य इंजीनियरिंग, कृशि यंत्र विनिर्माण, रोलिंग मिल, साबुन निर्माण, प्लास्टिक का सामान, मोमबत्ती, धूपबत्ती, अगरवत्ती, मुद्रण व प्रकाशन आदि से सम्बन्धित औद्योगिक इकाइयों के विकास की अधिक सम्भावना है।

जनपद बदायूँ में औद्योगिक विकास की प्रक्रिया को तीव्र करने के लिए तथा इस क्षेत्र की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ बनाने के लिए सन् 2031 तक 1.86 लाख अतिरिक्त श्रमिकों को विभिन्न औद्योगिक इकाइयों में रोजगार उपलब्ध कराने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है जिसकी प्राप्ति के लिए दो प्रकार के लक्ष्य रखने होंगे। प्रथम–संगठित, असंगठित व ग्रामोद्योग क्षेत्र की वर्तमान कार्यरत औद्योगिक इकाइयों का विस्तारीकरण करके 48000 श्रमिकों को रोजगार देने की योजना है। इसमें से 8000 श्रमिकों को संगठित क्षेत्र में तथा 31000 श्रमिकों को असंगठित क्षेत्र में रोजगार देने की योजना हैं चूँकि अधिक लाभ प्राप्ति की आशा में श्रमिक कुटीर व ग्रामोद्योग से असंगठित क्षेत्र की इकाइयों की ओर भागते है इसीलिए कुटीर एवं ग्रामोद्योग में केवल 9000 श्रमिकों को ही रोजगार प्रस्तावित है। द्वितीय– सम्भावित नवीन 14678 इकाइयों को स्थापित करने की योजना का प्रस्ताव है जिनमें 138500 श्रमिकों के लिए रोजगार प्राप्ति का लक्ष्य रखा गया है। संगठित क्षेत्र में 378 नवीन औद्योगिक इकाइयों में 48500 श्रमिकों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने का लक्ष्य है जबकि असंगठित क्षेत्र में 14300 नवीन औद्योगिक इकाइयों में 90000 श्रमिकों को रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा गया है।

————————

1 अहमद, एम0 1958 : 'हिस्टोरिकल एनेलायसिस ऑफ स्मॉल स्केल इण्डस्ट्रीज
2 वारन्सन जे0 1967 : मेन्यूफैक्चरिंग प्रॉब्लम्स इन इण्डिया, सायरोक्यूज
3 चौधरी, एम0आर0 1970 : इण्डियन इण्डस्ट्रीज डेवलपमेन्ट एण्ड लोकेषन ऑक्सफोर्ड
4 चटर्जी, ए0सी0 1908 : नोटस् ऑन द इण्डस्ट्रीज ऑफ द यूनाइटैड प्रोविन्सेज, गर्वनमेन्ट प्रेस, इलाहाबाद
5 माउन्त्जे, ए0बी0 1978 : इण्डस्ट्रिलाइजेषन एण्ड डवलपमेन्ट कन्ट्रीज लन्दन
6 माथुर, एस0पी0 1955 : इकोनोमिक ऑफ स्मॉल स्केल इण्डस्ट्रीज, बाम्बे
7 मिलर, ई0 डब्ल्यू 1962 : ए ज्योग्राफी ऑफ मैन्यूफैक्चरिंग, न्यू जर्सी
8 राव, एम0जेड0 1952 : कोटेज एण्ड स्मॉल स्केल इण्डस्ट्रीज ऑफ यू0पी0 कानपुर
9 डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ उत्तर–प्रदेष 1981
10 जिला विकास पुस्तिका अर्थ एवं संख्या प्रभाग जनपद बदायूँ 2018

**डॉ0 विवेक शर्मा**
भूगोल विभाग
निवास–बडा महादेव, चन्दौसी,
जिला – सम्भल,
पिन – 244412
महाविद्यालय– एस0एच0 डिग्री कॉलेज,
पवांसा (सम्भल)
मोबाइल–9368240224

39

# डॉ0 हरिशरण वर्मा के नाटकों में महिलाओं की स्थिति

**डॉ0 सुमन राठी, पूनम**

**सारांश–**

भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति सदैव एक समान नही रही है। समाज में फैली अनेक बुराईयों का जिम्मा सिर्फ महिलाओं पर ही फोड़ा जाता है यदि हम भारतीय नाटकों की बात करे तो हम देख सकते है कि भारत में बहुत बड़ी संख्या में नाटकों में महिलाओं को हर स्थिति का जिम्मेदार बनाया जाता है। महिलाओं को ही सभी प्रकार के रीति–रिवाज सभी प्रथा निभाने का जिम्मा दिया जाता है। एक साहित्यकार समाज के सभी पहलुओं पर प्रकाश डालकर अपनी रचना के माध्यम से लोगों तक पहुँचाता है।

इसी प्रकार डॉ0 हरिशरण वर्मा ने भी अपनी लेखनी की ताकत से समाज में फैली हर बुराई और अच्छाई का वर्णन अपने नाटकों में बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। उन्होंने नाटकों में दहेज प्रथा, बाल–विवाह, गरीबी की समस्या, नशाखोरी और बढ़ती जनसंख्या आदि को भली प्रकार से उठाया है। इनको नाटकों में महिलाओं की सभी प्रकार की स्थिति देखने को मिलती है।

वैदिक एव उत्तर वैदिक काल में महिलाओं को गरिमामय स्थान प्राप्त था। पौराणिक काल में शक्ति का स्वरूप मानकर उनकी अराधना की जाती थी। किन्तु 11वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के मध्य में भारतीय महिलाओं की स्थिति दयनीय हो गई। मध्यकाल में विदेशियों के आने से भारतीय स्त्रियों की स्थिति गंभीर हो गयी। अशिक्षा और रूढ़िवादी विचारधारा में जकड़ती चली गई और घर की चार दिवारों में कैद होकर रह गयी।

कुछ समाज सेवी संस्थाओं ने नारी शिक्षा पर बल दिया। इसी कारण सती प्रथा निषेध अधिनियम, हिन्दु विधवा पुनर्विवाह अधिनियम, बहु विवाह रोकने के लिए वेटिव मैरिज एक्ट पास कराया। इस सभी कानूनो के परिणामस्वरूप भारत में महिलाओं की स्थिति में काफी सुधार देखने को मिला।

इसके बाद 20वीं सदी के उत्तरार्द्ध और 21वीं सदी के प्रारम्भ में महिलाओं की स्थितियों में कुछ सुधार देखने को मिला। 21वीं सदी के पश्चात् भारतीय लेखकों ने अपने नाटकों के माध्यम से भारतीय महिलाओं की स्थिति का विस्तारपूर्वक वर्णन अपने नाटकों व अन्य लेखो में किया।

आधुनिक हिन्दी साहित्य जगत में अनेक साहित्यकारों ने अपनी लेखनी के माध्यम से समाज में फैली हर प्रकार की समस्या को अपनी रचनाओं के माध्यम से समाज को उनसे अवगत कराने का भरपूर प्रयास किया है। आधुनिक भारतीय साहित्यकारों में एक नाम डॉ0 हरिशरण वर्मा का भी है उन्होंने हिन्दी साहित्य को अपनी रचनाओं के माध्यम से और भी सफल बनाने का प्रयास किया है। डॉ0 वर्मा ने अपने नाटकों में महिलाओं की स्थितियों को भली प्रकार उजागर किया है। उन्होंने नाटकों में एक पढ़ी लिखी महिला से लेकर एक गरीब घरों में काम काने वाली अनपढ़ महिला तक का वर्णन अपने नाटकों में किया है।

उनके नाटकों को पढ़कर पता चलता है कि आज भी समाज में महिलाओं की स्थिति ज्यों कि त्यों बनी हुई है। उनके नाटकों में चंचल नामक पढ़ी–लिखी लड़की से लेकर गरीब लाचार कांता तक कर वर्णन मिलता है। नाटकों के माध्यम से वर्मा जी ने गरीबी का भी बहुत स्पष्ट वर्णन किया है। उन्होंने अपने नाटक 'आत्महत्या' के माध्यम से बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार गरीबों की दुनिया का कोई महत्व नही रहता शराब की लत किस प्रकार की धनी परिवार को गरीब बना देती है और इतना गरीब की उस गरीबी के कारण परिवार का मुखिया परिवार को मारने की सोच लेता है।

वर्मा जी ने नाटकों में आम जीवन से जुड़ी समस्याओं का दर्शाया गया है। वर्मा जी नाटक 'नारी उत्थान में' बताया गया है कि किस प्रकार एक पढ़ी–लिखी लड़की चंचल का जीवन बर्बाद हो जाता है उसका प्रेमी पैसे के लालच में आकर उसका सारा पैसा लेकर उसे धोखा देकर भाग जाता है उसके बाद उसका पूरा जीवन ही बदल जाता है। ना जाने उसे कितनी कठिनाईयों का सहन करना पड़ता है। समाज में उसकी छवि भी खराब हो जाती है और उसे बहुत सारी मुसीबतें उठानी पड़ती है। नारी का जीवन कष्टों से भरा देखा जाता है। इसी प्रकार 'गृह लक्ष्मी' नाटक में भी वर्मा जी दर्शाया है कि परिवार विघटन की तरफ जा रहे है। उसमें किस प्रकार से नारी, जब अपने भविष्य को ठीक करने के लिए नौकरी करने का निर्णय लेती है और फिर उनके परिवार में स्थितिया बदल जाती है। कृष्णा और हरीश के झगड़े होने लगते है।

इसी प्रकार दहेज प्रथा के कारण भी देखा जा सकता है कि समाज में अनेक कुरीतियाँ फैली हुई है। समाज में दहेज के लोभी लोग दहेज के व्यपारी नारियों को मारने का प्रयास करते हैं जाने कितनी ही नारियां समाज में दहेज के कारण अपना जीवन समाप्त कर लेती है या उन्हें अलग–अलग ढंगों से मार डाला जाता है। इसी प्रकार का उदाहरण वर्मा जी के नाटक संस्कार में देखा जा सकता है। संस्कार नाटक में प्रजा नामक एक बहु जो सर्वगुण सम्पन्न है परन्तु दहेज के लोभ के कारण उसकी सास उसे मारने का निश्चय कर लेती है और अपनी बेटी को ही दुर्घटनाग्रस्त कर लेती है। इस प्रकार से वर्मा जी के नाटको से पता चलता है कि समाज किसी प्रकार से नारियों को अपनी इच्छा अनुसार ही जीने पर मजबूर करता है। यदि समाज चाहे तो ही नारी नौकरी करे या अपने परिवार की तमाम जिम्मेदारियों को निभाते हुए ही वह अन्य कार्य आदि कर सकती है अन्यथा नही। समाज में रहते हुए महिलाओं को समाज की सभी प्रकार की बातों को ध्यान में रखकर जीवन जीना पड़ता है। अपनी इच्छा से महिला कुछ भी करने में असमर्थ मानी जाती है। जो भी महिला अपनी इच्छा से कोई कार्य करती है या विचारों से खुली रहती है तो उसे समाज में हीन दृष्टि से देखा जाता है। उसे सब की जहरीली नजरों से गुजरना पड़ता है।

भारतीय समाज आज आधुनिक समाज बन चुका है पर फिर भी कही ना कही वह आज भी रूढ़ियों में ही फंसा हुआ है। परिवार को सभी इच्छाओं को ध्यान में रखकर ही कोई महिला अपना जीवन व्यतित कर सकती है वरना उसे समाज व परिवार दोनों से किनारा करना पड़ता है।

वर्मा जी ने अपने नाटक 'आत्महत्या' में गरीबी का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। उनहेंने बताया है कि किस प्रकार एक परिवार गरीबी के कारण बिखरता है किस प्रकार नशे की लता एक भले पुरे परिवार को बर्बाद कर देती है। 'आत्महत्या' नाटक में नायक प्यारे अपने परिवार को गरीबी के कारण मार देना चाहता है। वह नशे का आदि है शराब की लत उसे यह सब करने पर मजबूर कर देती है। इस नाटक में शराब पर बड़ा व्यंग्य किया गया है। शराब किस प्रकार इस परिवार को बर्बाद कर देती है। यह वर्मा जी ने अपने नाटक में दर्शाया है।

**निष्कर्ष :**

इस प्रकार हम कह सकते है कि डॉ0 वर्मा ने अपने नाटकों के माध्यम भारतीय समाज में फैली हर समस्या को दर्शाया है। उन्होंने अपने नाटकों के माध्यम से बताने का प्रयास किया है कि किस प्रकार भारतीय महिलाओं को समस्याओं का सामना करना पड़ता है। किस प्रकार से पढ़ी–लिखी स्त्रियों को भी समाज की दयनीयता का सामना करना पड़त है। किस प्रकार परिवार के कारण अपनी इच्छाओं को दूर रखकर जीने का सफल प्रयास करती है। गरीबी के कारण हर समस्या को स्वीकार करके जीना पड़ता है। किस प्रकार दहेज लोभी समाज में रहकर अपना जीवन व्यापन करना पड़ता है। सभी गुणों से सम्पन्न स्त्री को भी दहेज के कारण उसके गुणों को महत्वहीन समझा जाता है।

अतः समाज में महिलाओं की स्थिति को सुधारने का निरन्तर प्रयास करते रहना चाहिए और समाज से दहेजप्रथा, नशाखोरी, रूढ़िवादी विचारधारा को समाप्त करने का प्रयास करते रहना चाहिए।

**संदर्भ ग्रन्थ**


1. नारी उत्थान – डॉ0 हरिशरण वर्मा
2. संस्कार – डॉ0 हरिशरण वर्मा
3. आत्महत्या – डॉ0 हरिशरण वर्मा
4. भ्रष्टाचार – डॉ0 हरिशरण वर्मा
5. वचन – डॉ0 हरिशरण वर्मा
6. नारी उत्थान – डॉ0 हरिशरण वर्मा



शोध–निर्देशिका
**डॉ0 सुमन राठी**
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक

शोधार्थी
**पूनम**
हिन्दी विभाग
बाबा मस्तनाथ विश्वविद्यालय,
रोहतक
09416058844

40

# भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के काव्य में आधुनिक बोध

डॉ0 स्नेह लता गुप्ता

**सारांश–**

आधुनिक हिन्दी साहित्य के जन्मदाता भारतेन्दु हरिश्चंद्र का कृतित्व एवं व्यक्तित्व बहुत विराट था। उन्होंने अपने काव्य में प्राचीन और नवीन का ऐसा सामंजस्य किया कि वे भारत की प्राचीन परम्परा को साथ लेकर भी साहित्य में सर्वथा आधुनिक और क्रान्तिकारी नायक माने जाते हैं। वे अपने समय के ऐसे प्रतिभाशाली साहित्यकार एवं सम्मोहक व्यक्तित्व थे, जिनसे उस समय के सभी छोटे–बड़े हिन्दी लेखक एवं कवि प्रभावित थे। उनके नेतृत्व में देखते देखते हिन्दी लेखकों और कवियों का एक बहुत बड़ा मण्डल तैयार हो गया। उन्होंने अपनी अदम्य आत्म शक्ति से राष्ट्रीय और सामाजिक जागरण पैदा करने और ब्रिटिश हुकूमत से लोहा लेने के लिए एक नहीं अनेक क्षेत्रों में मंच स्थापित किये। भारतेन्दु जी का आधुनिकता–बोध राष्ट्रीय जागरण, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक आदि अनेक क्षेत्रों में देखा जा सकता हैं। भारतेन्दु की 'हरिश्चद्रं चन्द्रिका' के माध्यम से ही सर्वप्रथम परिमार्जित हिन्दी के दर्शन हुए। उन्होंने भाषा–संस्कार केवल गद्य के क्षेत्र में नहीं, अपितु कविता के क्षेत्र में भी किया। यही कारण है कि हिन्दी प्रेमियों ने उन्हें वर्तमान हिन्दी का जन्मदाता तक कहा है।

**शोधपत्र**

आधुनिक हिन्दी के जन्मदाता भारतेन्दु का रचना–संसार जितना विराट है, उतना ही क्रान्तिकारी और बहुआयामी भी। वे अपने समय की हिन्दी–नौका के प्रमुख मांझी थे। उन्होंने अनेक क्लब, सभा, संस्थाएं तथा पुस्तकालय स्थापित किये। हरिश्चन्द्र के साहित्यिक कृत्तित्व पर मुग्ध होकर पं0 रामेश्वर दत्त व्यास ने 1880 में ''सार–सुधा–निधि'' पत्र में उन्हें ''भारतेन्दु'' की उपाधि से अलंकृत किया। भारतेन्दु का साहित्यिक व्यक्तित्व नाटक, निबन्ध, उपाख्यान, काव्य आदि विभिन्न क्षेत्रों में समान कुशलता के साथ अभिव्यक्त हुआ है। प्रत्येक क्षेत्र में वे आधुनिक हिन्दी साहित्य के जनक रूप में सामने आते हैं। उन्होंने अपने काव्य में प्राचीन और नवीन का ऐसा सामंजस्य किया कि वे भारत की प्राचीन परम्परा को साथ लेकर भी साहित्य–क्षेत्र में क्रान्तिकारी नायक माने जाते हैं।

**साहित्यिक नेतृत्वः–**

हिन्दी साहित्य के इतिहास में भारतेन्दु के आविर्भाव के साथ एक नये युग का सूत्रपात हो गया। प्राचीन युग के संस्कारों में पले और बड़े हुए भारतेन्दु ने नये युग की चेतना को मुखरित किया। एक राजभक्त परिवार से आने के बावजूद भारतेन्दु साम्राज्यवादी सुधारवाद के असर से दूर थे। इससे स्पश्ट समझा जा सकता है कि भारतेन्दु को अपने ही संस्कारों से कितना संघर्श करना पड़ा होगा। अकृत्रिम सहृदयता, निरन्तर जागरूकता, दानशीलता तथा अनन्य प्रतिभा ने उन्हें अपने युग का श्रेश्ठ साहित्यिक नेता बना दिया। वे अपने युग के ऐसे प्रतिभाशाली व्यक्तित्व थे, जिनसे उस समय के सभी छोटे–बड़े हिन्दी लेखक व कवि प्रभावित थे। उनका साहित्य–सन्देश हिन्दी प्रदेश के कोने–कोने तक पहुॅचा और देखते–देखते हिन्दी लेखकों और कवियों का एक बहुत बड़ा मण्डल तैयार हो गया।

राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक दृश्टि से भारतेन्दु का युग घोर जटिलताओं और प्रतिकूलताओं का युग था। ब्रिटिश सरकार की कठोर दमन नीति के विरूद्ध खड़ा होना खतरे से खाली नहीं था। ऐसी स्थिति में जनता का सीधा संघर्श में उतरना तो दूर की बात थी, उन्हें एक मंच पर ला खड़ा करना भी कठिन था, लेकिन भारतेन्दु की आत्म–शक्ति इतनी व्यापक थी कि राश्ट्रीय जागरण और सामाजिक जागरण पैदा करने के लिए तथा ब्रिटिश हुकूमत से लोहा लेने के लिए उन्होंने एक नहीं, अनेक क्षेत्रों में मंच स्थापित किये। रचनाकारों को एकजुट करने के साथ–साथ उनकी रचनाओं के प्रकाशन का साधन जुटाना भी बेहद जरूरी था। अतः भारतेन्दु ने ''कविवचनसुधा'' 1889, हरिश्चन्द्र मैगजीन 1873, बालबोधिनी 1874 आदि पत्रिकाओं का सम्पादन किया। इन पत्रिकाओं में प्रकाशित भारतेन्दु के सम्पादकीय एवं समय–समय पर उनके द्वारा लिखे अनेक विचारोत्तेजक लेख–टिप्पणियॉ तथा अन्य लेखकों की रचनाऍ इस बात की गवाह हैं कि उनका मूल उद्देश्य ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरूद्ध भारतीय जनता को जाग्रत करना था, उन्हें चेतना–सम्पन्न और ऐक्यबद्ध करना था। यह काम बड़ा ही चुनौतीपूर्ण था। फलतः भारतेन्दु को ब्रिटिश सरकार का कोपभाजन भी बनना पड़ा।

**राष्ट्रीयताः–**

भारतेन्दु राष्ट्रीय काव्यधारा के प्रवर्त्तक के रूप में हमारे सामने आते हैं। भारतेन्दु का हिन्दी साहित्य में पदार्पण युगीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में तथा राष्ट्रीय काव्यधारा के प्रारम्भ के दृश्टिकोण से एक

अभूतपूर्व घटना है। सांस्कृतिक जागरण के क्षेत्र में जो कार्य स्वामी दयानन्द ने किया, भाषा और साहित्य के क्षेत्र में वही कार्य भारतेन्दु ने किया। उनके प्रयत्न से ही गद्य की भाषा को एक निश्चित और सुस्थिर रूप मिला। सांस्कृतिक पुनर्जागरण की नवचेतना के विकास के लिए उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया। महान भारतीयों के गरिमामय अतीत का गौरव गान करके उन्होंने देशवासियों को उनके कर्त्तव्य के प्रति जागरूक किया और अंग्रेज शासकों की शडयन्त्रपूर्ण नीतियों का निर्भयतापूर्वक रहस्योद्घाटन किया। उनकी कतिपय रचनाओं से राजभक्ति का आभास मिलता है, किन्तु उनकी समस्त रचनाओं का सूक्ष्म अध्ययन करने पर उनकी स्वदेश–प्रेम की नीति स्पश्ट हो जाती है। उन्होंने 1857 की चेतना को सांस्कृतिक वैचारिक नवजागरण का रूप दिया ही, उनके राजनैतिक सारतत्व को कुंठित किये बिना साहित्य एवं समाज को क्रान्तिकारी सुधारवाद का रास्ता भी दिखाया। भारतेन्दु ने तत्कालीन राजनीतिक समझ और राजनीतिक चेतना को स्वर प्रदान किया था और जातीय स्तर पर घर कर गये पराधीनता बोध को झकझोरा था। कवि भारत के सुसंस्कृत और समृद्ध ऐतिसाहिक स्थलों का स्मरण कराकर भारतीयों के सुप्त स्वाभिमान को उद्बुद्ध करने का भी प्रयास करता है –

**''हाय पंचनद, हा पानीपत अजहुँ रहे तुम धरनि विराजतहाय चित्तौर निलज तू भारी। अजहुँ खरो भारतहि मंझारी।जा दिन तुव अधिकार नसायो। ताही दिन किन धरनि न समायो। 1**

1857 में अंग्रेज भारतीयों की संगठन–शक्ति को बुरी तरह कुचल चुके थे, जिससे जनता में नैराश्य तथा पराजय–बोध भर गया था। भारतेन्दु ने भारत के प्राचीन गौरव का चित्रांकन करते हुए जनता में आत्मविश्वास भरा जनता को ब्रिटिश सरकार की सम्पूर्ण शोशक नीतियों तथा उनकी शासन–पद्धति से भी परिचित कराया। इस तरह सांस्कृतिक नवजागरण के उपरान्त कवि ने सशस्त्र क्रान्ति का आह्वान किया –

**''अरे वीर एक बेर उठहु सब फिर कित सोए**
**लेहु करन करवाल काढ़ि रन–रंग समोए।**
**परिकर कटि कसि उठो बंदूकन भीर–भीर साधो**
**सजौ जुद्ध–बानो सब ही रन–कंकन बांधो।'' 2**

भारतेन्दु की परवर्ती दो राजनीतिक कविताओं–विजय वल्लरी (1889) तथा विजयिनी विजय वैजयन्ती (1889) में भारत के दुख–कश्टों का अतिशय वर्णन है, किन्तु एक जगह भी भारतमाता या किसी अन्य से आग्रह नहीं है कि वह सुधार के लिए महारानी विक्टोरियां और राजकुँवर से बातचीत स्थापित करे, अपना दुखड़ा सुनाएं इनके स्थान पर भारत की ऐतिहासिक गौरव गाथाएँ हैं, जो स्पश्ट संकेत देती हैं कि भारत का इतिहास रोकर दुखड़ा सुनाने का नहीं, संघर्श का है। वस्तुतः भारतेन्दु हिन्दी के प्रथम राष्ट्र–कवि कहे जा सकते हैं।

भारतेन्दु जी ने राष्ट्रीय जागरण का संदेश जन साधारण तक पहूँचाने का भगीरथ प्रयत्न किया। इस नवजागरण में साहित्य, समाज, राजनीति और आर्थिक व्यवस्था सभी कुछ शामिल है। स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात भारतेन्दु ने राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना से 20 साल पूर्व ही कर दिया था। और तो और उन्होंने विदेशी वस्त्रों के बहिश्कार का भी प्रचार किया था। इस प्रकार वे राष्ट्रीय नवजागरण के अग्रदूत हैं। भारतीयों को राष्ट्रीय सम्मान और उनके अधिकार मिलें, इसके लिए वे हिन्दी क्षेत्र में प्रथम प्रवक्ता हैं। जब कांग्रेस का जन्म भी नहीं हुआ था तथा ''स्वराज्य'' के नाम से भी कोई परिचित नहीं था तब भारतेन्दु ने 'स्वत्व निज भारत गहै' की उद्घोषणा कर दी थी। उनके लेखन में ब्रिटिश राष्ट की आलोचना उत्तरोत्तर बढ़ती ही नहीं जाती, तीव्रतर भी होती जाती है। कानून पर यह व्यंग्य देखें–

**''नई–नई नित तान सुनावै। अपने जाल में जगत फंसावै।**
**नित–नित हमें करे बल–सून। क्यों सखि सज्जन, नहिं कानून।'' 3**

**सामाजिक क्षेत्र में:**

भारतेन्दु ने अपने समय के हिन्दू समाज की समस्याओं की ओर भी ध्यान दिया। विधवा विवाह, बाल विवाह, समुद्र–निशेध, छुआछूत की भावना आदि अनेक समस्याएँ उनके सामने थीं। समाचार–पत्रों के माध्यम से उन्होंने उनके विरूद्ध सामाजिक आन्दोलन चलाया। उन्होंने अपने काव्य में अपने युग की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक विशमता का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख दिया है। उनके सम्पूर्ण साहित्य में नवजागरण के तत्व बिखरे पड़े हैं। उस समय जबकि नारी–समाज की अधोगति चरम सीमा पर थी, ''नारि नर सम होहि'' कहकर उन्होनें नारी प्रगति की दिशा में एक नई मशाल जनाई। वे भारतीय नारी के उन्नयन के समर्थक थे और वे उसे हिन्दू संस्कृति के सॉचे में ढालकर आगे बढ़ाना चाहते थे।

**धार्मिक क्षेत्र में:**

धर्म के क्षेत्र में भारतेन्दु ने धार्मिक रूढ़ियों का विरोध किया। भक्ति की अनन्यता के होते हुए भी उनमें धर्मान्धता नहीं थी। वह प्रत्येक धर्म तथा सम्प्रदाय का मूल ध्येय उसी विश्वसृष्टा को समझते थे तथा उसके प्रति भक्ति करना ही सर्वस्व मानते थे। ''मानहै एक गोपालहि को'' कहते हुए भी ''जे प्रेमीजन कोउ पथ'' उनका आदर्श था। कबीर

की भॉति उन्होंने बाह्याडम्बरों का खण्डन करके धार्मिक क्षेत्र में क्रान्ति का आदर्श प्रस्तुत किया–

**''पियारो पैये केवल प्रेम मैं**
**नहिं ज्ञान में नाहिं ध्यान मैं नाहिं करम–नेम मैं**
**नाहिं भारत मैं नहीं रामायन नहि मनु में नहिं वेद में**
**नहि झगरे में नाहिं युक्ति मैं नाहिं मतन के भेद में। 4**

धार्मिक सम्प्रदायों के बाह्याचारों में धर्म का मूल स्वरूप नष्ट प्रायः हो जाता है। भारतेन्दु ने सभी धर्मावलम्बियों को फटकारते हुए कहा –

**''धरम सब अटक्यों याहि बीच**
**अपुनी आपु प्रशंसा करनी दूजैन कहनो नीच**
**यहै बात सब सबने सीखी है का वैदिक का जैन**
**अपनी अपनी ओर खींचनो एक लैन नहिं दैन। 5**

**साहित्यिक क्षेत्र में:**

भारतेन्दु का पूर्ववर्ती साहित्य सन्तों की कुटिया से निकलकर राजाओं और रईसों के दरबार में पहुॅच गया था। वह मनुष्य को देवता बनाने के उद्देश्य से विरहित होकर मनोविनोद का साधन बन गया था। भारतेन्दु ने कविता को इस अधोगति से उबारा। उन्होंने सामन्ती राजदरबारों का यशोज्ञान एवं मनोरंजन करने वाली कविताओं की दिशा मोड़ दी। कविता अब राजदरबारों की क्रीतदासी न रहकर सम्पूर्ण समाज के हृदय की साम्राज्ञी बनने लगी। भारतेन्दु ने काव्य में समाज–सुधार, देश–प्रेम जैसे नवीन विषयों का प्रवेश कराया, किन्तु उन्होंने प्राचीनता का पूर्णतया बहिष्कार नहीं किया। भारतेन्दु युग का समय प्राचीन और नवीन विचारधाराओं के संघर्श का काल था और उस समय ऐसा सर्वतोमुखी प्रतिभावान साहित्यिक अपेक्षित था, जो केवल प्राचीनता की खिल्लियॉ न उड़ायें अपितु प्राचीनता की सार्थकता का नवीनता के साथ सामंजस्य कर सके। ठीक ऐसे ही समय प्रतिभाशाली साहित्यिक के रूप में भारतेन्दु जी का उदय हुआ। काव्य में पुरानी परिपाटी की निर्वाह करते हुए भी साहित्य में नवीन प्रगति के प्रवर्त्तन तथा उन्नयन में योग देने वाले कवियों का आरम्भ भारतेन्दु जी से ही होता है। भारतेन्दु ने एक तरफ तो काव्य को फिर से भक्ति की मंदाकिनी में स्नान कराया और दूसरी तरफ उसे दरबारीपन से निकालकर लोक–जीवन की नई प्रवृत्तियों का उसमें समावेश भी कराया। उपदेशमय मनोरंजन तथा विनोदपूर्ण छोटी–छोटी कविताऍ भी लिखी जाने लगीं। हास्य रस को नये ढंग के आलम्बन दिये गये और वीर रस के लिए आलम्बनों का अन्वेशण पौराणिक तथा ऐतिहासिक ग्रन्थों में किया जाने लगा। साहित्यिक क्षेत्र में भारतेन्दु की मौलिक देन को हम निम्न क्षेत्रों में देख सकते हैं–

**<u>भाषा विषयक:</u>**

भारतेन्दु की ''हरिश्चन्द्र–चन्द्रिका'' के माध्यम से ही परिमार्जित हिन्दी के प्रथम दर्शन हुए। वे स्वयं मानते थे कि सन् 1873 ई0 से हिन्दी नई चाल में ढली। नई चाल से उनका तात्पर्य यह था कि इस समय उन्होंने जिस भाशा की नींव डाली, उसमें किसी प्रकार का बन्धन नहीं था और न किसी प्रकार से कृत्रिम रूप से वह गढ़ी हुई थी। वस्तुतः भारतेन्दु और उनके सहयोगियों ने जिस प्रकार की भाशा में अपने लेख और ग्रन्थ लिखे, वह बहुत स्वाभाविक और भाव–प्रकाशन में समर्थ भाशा थी। भारतेन्दु का प्रभाव भाशा के प्रचार क्षेत्र में बड़ा व्यापक रहा। 19वीं शताब्दी के अन्त में भाशा के सम्बन्ध में लोकमत को सचेत करने के लिए जिस प्रकार के उद्योग हुए, उन्होंने हिन्दी भाशा के आन्दोलन को वास्तविक जन आन्दोलन का रूप दे दिया। इसी जन आन्दोलन ने हिन्दी को जन–भाषा बनने की ओर बराबर उन्मुख बनाये रखा। भारतेन्दु की प्रेरणा से ही हिन्दी जन–भाषा बनी। मातृभाषा हिन्दी के महत्व पर वे बराबर लिखते रहे–

''अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुण होत प्रवीन
पे निज भाशा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन
निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को शूल।'' **6**

भारतेन्दु की भाषा में हिन्दी का बहुत ही संयत और स्वच्छ रूप मिला। उन्होंने भाशा संस्कार केवल गद्य के क्षेत्र में ही नहीं, अपितु कविता के क्षेत्र में भी किया। उन्होंने भाषा को अत्यन्त परिमार्जित तथा मधुर रूप देते हुए उसके साहित्य में समयानुकूल नये विषयों की पुस्तकों का निर्माण कर उसको विशेश प्रगतिशील बनाया। यही कारण है कि हिन्दी प्रेमियों ने उन्हें वर्तमान हिन्दी का जन्मदाता तक कहा है। भारतेन्दु के हाथों बृजभाषा के संकुचित कैनवास को अभूतपूर्व विस्तार प्राप्त हुआ। उसमें भक्ति और श्रृंगार के अतिरिक्त अन्य विषयों के चित्रण की भी शक्ति आ गई। उन्होंने अवधी की भी इसी प्रकार श्री–वृद्धि की। आज की पत्रकारिता का कोई ऐसा रूप नहीं जिसका बीज भारतेन्दु में न हो। इस क्षेत्र में व्यंगविधा के तो वे प्रणेता थे। उनका व्यंग बहुआयामी था।

**निष्कर्ष:**

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी साहित्य में एक क्रान्तिकारी व्यक्तित्व लेकर अवतारित हुए। साहित्य के क्षेत्र में उन्होंने जितना काम किया। उतना किसी और ने नहीं किया। '' भारतेन्दु का नाम निराशा के समुद्र में आशा का टापू था। भारतेन्दु नाम था, गुजरती अन्धेरी रात में और एक ताजा किरण का। भारतेन्दु नाम था, राष्ट्र की सुप्त चेतना में नवीन स्पन्दन का। भारतेन्दु नाम था इस देश के नवजागरण का। वे भारत के नवजागरण के अग्रदूत हुए।'' **7**

भारतेन्दु उन थोड़े–से महान लेखकों में है, जो जिस समय इतिहास

में होते है, उसी समय इतिहास बदल रहे होते हैं। ऐसे महान लेखकों का स्मरण हर दौर में होता रहता है वे अपने पीछे एक ऐसी गतिशील परम्परा भी छोड़ जाते हैं जिससे उनका कृतित्व बदले हुए समय में भी एक नई सार्थकता पा लेता है।

**संदर्भः**


1 भारतेन्दु सुधा, पृ0 17
2 भारतेन्दु सुधा, पृ0 19
3 भारतेन्दु सुधा, पृ0 22
4 भारतेन्दु सुधा, पृ0 41
5 भारतेन्दु समग्र, पृ0 38
6 भारतेन्दु सुधा, पृ0 9
7 भारतेन्दु समग्र, पृ0 27



**डॉ0 स्नेह लता गुप्ता**
हितकारी बुक डिपो,
गुरूद्वारा रोड़, आदर्शनगर – 3
मोदीनगर – 201204, जि0 गाजियाबाद
फोन नं – 8384813125
ई मेल – snehala80@gmail.com

41

# वर्तमान में समान नागरिक संहिता की उपादेयता

आकांक्षा पटेल

**सारांश–**

हमारे देश में एक दण्ड संहिता है जो देश में धर्म , जाति , जनजाति और अधिवास की परवाह किये बगैर सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू होती है। लेकिन हमारे देश में विवाह, तलाक, गुजारा–भत्ता, उत्तराधिकार, गोद लेने के सम्बन्ध में एक समान कानून नहीं है और ये विशय व्यक्तिगत कानूनों द्वारा नियंत्रित होते हैं। समान नागरिक संहिता के तहत कानूनों का ऐसा समूह तैयार किया जायेगा जो धर्म कि परवाह किये बगैर सभी नागरिकों के व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करेगा। इससे न केवल धार्मिक आधार पर महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को समाप्त करने में मदद मिलेगी बल्कि देश के धर्म निरपेक्ष ढांचे को मजबूत बनाने और एकता को बढ़ावा देने में भी मदद मिलेगी।

डॉ0 अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था कि – देश में भारतीय दण्ड संहिता है जो सभी नागरिकों पर समान रूप से लागू है। सम्पत्ति हस्तान्तरण कानून जो कि सम्पत्ति से जुडे. मामलो का नियमन करता है , पूरे देश में समान रूप से लागू है। फिर ऐसे में शादी, तलाक, संपत्ति, उत्तराधिकार जैसे कुछ क्षेत्र हैं । वहां समान रुप से कानून क्यों नहीं लागू किया जा सकता है। यह बात डॉ0 अम्बेडकर ने 1943–44 में कही थी लेकिन आज भी कुछ विशयों पर विभिन्न धर्मों के अलग–अलग कानून हैं। जैसे– मुस्लिम, ईसाई, पारसी, समुदाय के अपने पर्सनल लॉ है। ( ईसाई मैरिज एक्ट 1872, पारसी मैरिज और डिवोर्स एक्ट 1936,) जबकि हिन्दू, सिक्ख, जैन, बौद्ध हिन्दू सिविल कानून से संचालित है।

समान नागरिक संहिता का व्यवहारिक अर्थ है कि देश के सभी धर्मों के नागरिकों के लिये पारिवारिक मामलों में समान धर्म निरपेक्ष कानून का होना। अर्थात विवाह, तलाक, गोद लेने, उत्तराधिकार एवं पत्नी एवं बच्चों का गुजारा भत्ता के मामलें में सभी नागरिकों को समान अधिकारों का मिलना। इन अधिकारों के मिलने से मानव–मानव के बीच सम्बन्धों का निर्धारण हो सकेगा। जैसे पति–पत्नी का रिश्ता क्या होगा, उनके अधिकार क्या होंगें, बच्चों के अधिकार क्या होंगे इत्यादि। क्योंकि सरला मुद्गल केस में पति–पत्नी दोनो हिन्दू लेकिन पति ने दूसरी शादी करने के लिए धर्मान्तरण कर लिया क्योंकि मुस्लिमों में तीन शादियां कर सकते हैं। हालांकि हिन्दू मैरिज एक्ट के पहले तक हिन्दूओं में भी बहुपत्नी प्रथा प्रचलित थी लेकिन इस केस में सुप्रीम कोर्ट ने दूसरी शादी की अनुमति नहीं दी क्योकि शादी धर्मांतरण करके की जा रही थी वहीं दूसरी तरफ शाहबानो केस में देखा गया है कि विवाह के 40 वर्श होने एवं पांच बच्चों की मां होने के बावजूद शाहबानो को तलाक देकर घर से बाहर निकाल दिया गया। पत्नी एवं बच्चों को सम्पत्ति या गुजारा भत्ता तक नहीं मिल सका। तब उच्चतम न्यायालय ने कहा था कि '' महिला कोई उपभोग की वस्तु नहीं है कि आप उपभोग करिये और फेंक दीजिए।''

समान नागरिक की अवधारणा का विकास तब हुआ जब औपनिवेशिक भारत में ब्रिटिश सरकार ने वर्श 1935 में अपने रिपोर्ट अपराधों, सूबूतों एवं अनुबन्धों जैसे विषयों पर भारतीय कानून के संहिताकरण पर बल दिया। लेकिन हिन्दू एवं मुसलमान के व्यक्तिगत कानूनों में एकरूपता लाने का प्रयास नहीं किया। फिर वर्श 1941 में हिन्दू कानून को संहिताबद्ध करने के लिए बी0एन0राव समिति का गठन किया गया। इनकी सिफारिशों के आधार पर हिन्दू, जैन, बौद्ध, सिख के कानूनों को संहिताबद्ध करके हिन्दू कोड बिल के रूप में 4 अलग–अलग कानून पारित किए गए। इसके साथ ही सभी धर्मों में सामाजिक एवं आर्थिक न्याय की स्थापना कि लिए इस विशय को नीति निदेशक तत्व के तहत अनुच्छेद 44 में शामिल कर दिया गया। जहां कहा गया कि– राज्य भारत के समस्त राज्य क्षेत्र के लिए समान नागरिक संहिता प्राप्त करने का प्रयास करेगा। इस मामले में उच्चतम न्यायालय के कुछ निर्णय भी मील के पत्थर साबित हुए। जैसे–

1. सरला मुदगल वाद 1995 जिसमें पति ने दूसरी शादी करने के लिए मुस्लिम धर्म को अपना लिया , जिसको सुप्रीम कोर्ट ने अवैध घोषित कर दिया।
2. डेनियन लतीफी एवं शाह बानो केस में सुप्रीम कोर्ट में मुस्लिम समाज में भी गुजारा भत्ता पर समान कानूनी प्रावधान किया।
3. वहीं शायरा बानों मामलें में सुप्रीम कोर्ट तथा तीन तलाक अधिनियम के पारित हो जाने से तलाक के मामले में भी समानता विद्यमान हो गई।

समान नागरिक संहिता की जरूरत के लिये कुछ मामलों पर ध्यान देना जरूरी हो जाता है जैसे–

1. मुस्लिम पर्सनल लॉ में तलाक के बाद पुरूषों को तुरन्त शादी

करने का हक जबकि महिला को शादी के लिए चार माह दस दिन का इंतजार करना पड़ता है।

2. हिन्दू मैरिज एक्ट शादी के एक साल तक तलाक की अर्जी नहीं दी जा सकती है।
3. ईसाई के शादी के दो साल बाद तक तलाक की अर्जी नहीं दी जा सकती है।

इस परिप्रेक्ष्य मे देखा जाये तो सभी धर्मों की अच्छी व्यवस्था को लिया जाये इससे विभिन्न धर्मों की विविधता बनी रहेगी। जैसे आप शादी किसी भी तरीके से करे अर्थात फेरे लें,चर्च में करें,निकाह पढ़े,रजिस्ट्रार आफिस में करें, लेकिन आप तलाक कैसे देंगें कैसे पत्नी को अधिकार मिलेगा, सम्पत्ति में हिस्सा कैसे बनेगा इसको समान कर सकते है।

कानूनी प्रावधानों से समान नागरिक संहिता की तरफ एक कदम

**1. गोद लेने के लिए** – जूवेनाइल जस्टिस केयर एण्ड प्रोटेक्शन आफ चिल्ड्रेन एक्ट 2000 में वर्श 2014 में संशोधन करके सभी धर्मों के व्यक्तियों को गोद लेने की अनुमति दे दी गई। जबकि गार्जियनशिप एण्ड वार्ड्स एक्ट 1896 के तहत हिन्दू ,सिक्ख, जैन, बौद्ध, को छोड़कर बाकी धर्मों के लोग अभिभावक तो बन सकते थे लेकिन बच्चा गोद नहीं ले सकते थे।

**2. शादी के लिये** – 1954 का विशेश विवाह अधिनियम के तहत कोई भी पुरूष या महिला किसी भी धर्म, जाति के पुरूष या महिला से शादी कर सकता है अर्थात् इसमें न धर्म बीच में आता है न जाति। इसमें विवाह, तलाक, गुजारा–भत्ता इत्यादि सभी के लिये नियम लिखित रूप से विद्यमान है।

**3. गुजारा–भत्ता के लिए** – इण्डियन सक्सेशन एक्ट बाकि धर्मों के लिए जबकि हिन्दू सक्सेशन एक्ट हिन्दू धर्म के लिए विद्यमान है।

लेकिन इन सबके बावजूद कुछ लोगों का मानना है कि सरकार को धार्मिक मामलो में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। वहीं दूसरा प्रश्न उठाया जाता है कि समान नागरिक संहिता संविधान के अनुच्छेद 25 का उल्लघंन करता है। जो कहता है कि अन्तःकरण की और धर्म को अबाध रूप से मानने , आचरण और प्रचार करने की स्वतंत्रता है। लेकिन धार्मिक स्वतंत्रता के अधिकार की कुछ सीमायें निर्धारित हैं जैसे –:

– लोक व्यवस्था

– स्वास्थ्य

– सदाचार

– समाज कल्याण और सुधार इसी के तहत भारतीय समाज मे सदियों से चली आ रही अमानवीय परम्पराओं – सती प्रथा, बालिका विवाह, नर बली प्रथा, और बहु–विवाह जैसी प्रपथाओं का समापन किया गया। दूसरी तरफ किसी मन्दिर के पूजारी को वेतन मिलेगा या चढ़ावे का हिस्सा मिलेगा, इसका निर्धारण करना सरकार का विशय है न कि यह धार्मिक मामला । वहीं दूसरी तरफ अनुच्छेद 21 के तहत मिले जीवन के अधिकार में गरिमापूर्ण जीवन का अधिकार समाहित है। इसी के तहत सुप्रीम कोर्ट ने तीन तलाक को अवैध घोशित किया ।

इन दोनों प्रश्नों के आलोक में समान नागरिक संहिता का सूक्ष्मता से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि यह न तो धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप है न ही किसी अनुच्छेद का उल्लंघन है । यह सिर्फ समान कानून की बात करता है न कि पूजा पद्धति, शादी करने के तरीके या तलाक पर रोक की। ऐसे में सरकार का अपने नागरिकों को ऐसे अमानवीय अत्याचारों से बचाने का संवैधानिक दायित्व है।

गोवा की समान नागरिक संहिता– गोवा राज्य ने 1870 में पुर्तगाली नागरिक संहिता को अपनाया। जिसके कारण गोवा में सभी नागरिकों के लिये समान नागरिक संहिता लागू है। इसके तहत किसी विवाहित जोड़े में पति या पत्नी द्वारा अधिग्रहीत सभी परिसंपत्तियों में दोनों को संयुक्त स्वामित्व होता है। यहां तक कि माता–पिता भी अपने बच्चों को पूरी तरह से सम्पत्ति से वंचित नही कर सकते हैं। उन्हें अपनी संपत्ति का कम से कम आधा हिस्सा अपने बच्चों को देना पड़ता है जबकि अभी देश के अन्य हिस्सों में हिन्दू धर्म में माता–पिता के पैतृक सम्पत्ति में ही बच्चों को हिस्सा मिलता है न कि माता–पिता द्वारा खुद खरीदी गयी सम्पत्ति में। गोवा में सभी धर्मों के लोग रहते हैं। जनजाति, ईसाई, पारसी, हिन्दू, मुस्लिम सभी हैं। लेकिन यहां पर कभी नहीं सुना गया कि मेरे धर्म के तरीकों का हनन हो रहा है।

समान नागरिक संहिता के विभिन्न पहलूओं को देखते हुए चार विकल्पों पर विचार किया जा सकता है–

1. हर धर्म का अपना अपना कानून हो ।
2. हर धर्म के अपने कानून हो किन्तु किसी से भेदभाव न करते हुए आधुनिक मूल्य के हों।
3. एक ही कानून हो अर्थात इण्डियन सिविल एक्ट या इण्डियन मैरिज एक्ट, इण्डियन गुजारा–भत्ता एक्ट और सभी धर्मों के इससे सम्बन्धित कुछ–कुछ अच्छाइयों को लेकर कानून बने।
4. सभी धर्मों के लिए एक ही कानून लेकिन समान नागरिक संहिता लागू होते ही – हिन्दू मैरिज एक्ट का संपिड विवाह हाथ से छूट जायेगा। सक्सेशन एक्ट सभी के लिए बराबर होने की दशा में हिन्दू संयुक्त परिवार को टैक्स में जो छूट मिलती है उसे छोड़ना पड़ेगा।

उपरोक्त विकल्पों इण्डियन मैरिज एक्ट पर विचार किया जा सकता है जिसमें यह लिखा जाये कि आप विवाह किसी भी तरीके से करे इसमें राज्य का कोई हस्तक्षेप नहीं होगा लेकिन जैसे ही विवाह हो जाता है उसका रजिस्ट्रेशन अनिवार्य होगा और पति पत्नी के तलाक के नियम होगें, पत्नी और बच्चों के गुजारा भत्ता के नियम होगें , उत्तराधिकार के नियम होगें। तलाक फेमिली कोर्ट से ही मिलेगा न कि किसी पर्सनल लॉ से ।

ऐसा नहीं है कि हिन्दू कानून को मुस्लिम, पारसी, ईसाई लोगों पर थोपा जायेगा बल्कि जहां–जहां भी अच्छी बात है वहां से उस व्यवस्था को लिया जायेगा । नागरिकों को यह बिल्कुल नहीं लगना चाहिए कि समान नागरिक संहिता आने से हमारी विविधता समाप्त हो जायेगी । इससे किसी व्यक्ति के व्यक्तिगत, सामाजिक या धार्मिक या अन्य किसी अधिकार का हनन नहीं होगा ।

**निष्कर्ष**–

समाजिक न्याय की स्थापना के लिए महिलाओं से सम्बन्धित कानूनों का धर्म निरपेक्ष होना जरूरी है क्योंकि सब कानून तो लिंग या धर्म के हस्तक्षेप से मुक्त हो गये है जैसे नौकरी करना, यातायात नियम कों तोड़ना, टैक्स जमा करना इत्यादि सभी कानून लिंग और धर्म के हस्तक्षेप से रहित है इस प्रकार समान नागरिक संहिता नागरिकों के धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप किये बगैर सभी नागरिकों के व्यक्तिगत अधिकारों की रक्षा करेगा। इससे न केवल धार्मिक आधार पर महिलाओं के खिलाफ भेदभाव को समाप्त करने में मदद मिलेगी बल्कि देश की एकता एवं अखण्डता को बढ़ावा देने में भी मदद मिलेगी।

## संदर्भ सूची


1 देश देशान्तर संसद टीवी 14 सितम्बर 2019

2 देश देशान्तर संसद टीवी 10 जुलाई 2021

3 डिस्कशन टुडे संसद टीवी 12 मार्च 2021.11.21

4 टाइम ऑफ डिबेट संसद टीवी 15 अक्टूबर 2016

5 दा विग पिक्चर संसद टीवी 5 जुलाई 2016

6 दा विग पिक्चर संसद टीवी 15 अक्टूबर 2015



**आकांक्षा पटेल**
असिस्टेंट प्रोफेसर
समाजशास्त्र
महिला पी जी कालेज, बहराइच
पिन कोड 271801

42

# Universalisation of Commerce Education System Through Schooling Governance In Nep 2020

**Dr. Amit Agrawal and Dr. Vinai Kumar Sharma**

**Abstract**

Good schooling governance is vital because of its role in attracting foreign student and colleges. Strong schooling governance system not only ensure a country & long-term success but also, enable administration to allocate resources more efficiently, which increases the likelihood that stakeholders will obtain a higher rate of return. There is a tremendous pressure of society on schools to improve the quality of education. Open schools have to play a very important role in achieving the objective of universalisation of commerce education and despite massive expansion of educational facilities in secondary schooling, a large number of adolescents and youths in the concerned age groups will not be able to take advantage of formal schooling during stipulated school hours that often coincide with the productive labour required in rural areas for agriculture and in urban areas for a variety of income generating activities particularly for lower middle class and poor families. Schooling governance plays pivotal role in shaping educational and economic prospects of developing countries. Since schooling governance deals with the right and responsibilities of a school/College management, its board and various stakeholders and when everyone is honest about his duties and transparent in his work, the situation is bit impressive from different angles because it is a signal of strong and good schooling governance. It is necessary to design, create and establish alternative educational provisions for such prospective learners. As a result of experimentation and initiatives in Open and Distance Learning (ODL) the Open Schooling system has emerged as an alternative school education system. This paper contains detail analysis of schooling governance architecture of schooling. However, a series of recommendations or suggestions have also been made of further improvement of schooling governance practices for better result and monitoring.

**KEY WORDS:** Good governance, ODL, E-Governance; ICT.

**INTRODUCTION**

Schooling governance is the set of process, customs, policies, laws and institution affecting the way a schooling system is directed, administered or controlled. Schooling governance is "the system by which Schooling are directed and controlled". It involves regulatory and market mechanisms, and the roles and relationships between a Schooling management, its board, its administration and other stakeholders, and the goals for which the is Schooling governed. Much of the contemporary interest in Schooling governance is concerned with mitigation of the conflicts of Schooling is controlled. An important theme of Schooling governance is the nature and extent of accountability of people in the Schooling. A related but separate thread of discussions focuses on the impact of a Schooling governance system on economic and education efficiency, with a strong emphasis on shareholders' welfare. India has been harnessing the benefits provided by the Information & Communication Technologies (ICT) to provide integrated governance, reach to the citizens faster, provide efficient services and citizen empowerment through access to information. The Central level, the government has extensively promoted the use of IT in managing its internal processes and has drawn up a 'Minimum Agenda of E-Governance'.. The government has enacted IT Act 2000 which provides legal status to the information and transactions carried on the net. Several State Governments have also taken various innovative steps to promote E-Govemance and have drawn up a roadmap for IT implementation and delivery of services to the citizens on-line.

**What Is Good Schooling Governance?**

The Learning Forum reflected on the current global crisis and examples of failed and ineffective governance. This led to discussion of why good governance is important, and how fundamental principles are needed in an autonomous ODL or other education system - as with all autonomous institutions that serve public interests.

Much has been written about good governance, both in higher education and in the corporate sector by international contributors. Clearly, in the corporate and banking sectors over recent years many bitter lessons have been learned. This includes examples like Enron in the United States and Satyam in India, where boards of governors failed in their essential duties. Higher education can gain from these experiences, but the different circumstances of learning institutions should not become limited in seeking to follow any current corporate model. In regard to good governance the public and not for profit sectors have much also to contribute:

- Good governance is essential to the grant or assertion of autonomy. Boards of governors, by embracing good governance approaches, accept unequivocally their own collective and individual responsibilities.
- Good governance creates a sound, ethical and sustainable

strategy, acceptable to the institution as a whole and other key stakeholders.

Good governance underpins and supports the mission and purpose of the institution. Without such shared intent in purpose and delivery a Board of governors will be weak.

• Good governance oversees the implementation of such strategy through wellconsidered processes and procedures in an open, transparent and honest manner.

• Good governance is not optional.

The key principles and challenges for governance were further summarized at the for you as follows:

**For institutions and their governing bodies : governing bodies should:**

• Be unambiguously and collectively responsible or oversight

• Keep its effectiveness under objective review.

• Act as the custodian of values, mission and purpose

• Assert its autonomy and accountability.

**For states:**

• Establish clear criteria for interventions.

• Embed in finance policy support for higher education and institutional mission.

• Establish deliverable policies for public benefit, which include a clear place for education

• Create autonomous structures for institutions.

**Schooling governance therefore calls for three factors :**

1. Transparency in decision-making,

2. the accountability is for the safeguarding the interests of the stakeholders and,

3. Accountability which follows from transparency because responsibilities could be fixed easily for actions taken,

Education implies the process of teaching, training and learning, especially in schools or colleges or Open Distance Learning, to improve knowledge and develop skill. India today stand poised to reap the benefits of a rapidly growing economy and a major demographic advantage that will see the country having the largest pool of young people in the world in next few decades. There in now need to utilities this young talent pool in institution building and for creating excellence in the field of secondary education with integration of academic & vocational courser and capability building. This is precisely the requirement of a 'knowledge society' and India has to be a leader in the world. The 2011 census in ducats that literacy level is about 74.04% with nearly 314 million non-literates. The 21st century is the century of IT revolution. To meet the challenges of time ICT are a major factor in shaping the new global economy and producing sapid changes in society. Computer ETV, internet, E-mail, print and electronic media, digital devices, FM Radio etc. E-Learning in naturally suited to instance learning and flexible learning.

Open education is characterized by the removal of 'restrictions, exclusions and privileges' (Richardson, 2000). It provides an alternative curricular route to students who are not able to cope with the rigid curriculum and fixed timeframe of the traditional school system. To many students and parents, however, it is regarded as a secondary choice, considered after they have not been able to access or secure 'success' in the existing regular school system. It is considered as a non-contact educational delivery system, though its interactive learning materials are more learner friendly than the textbooks as the sole means of learning in many schools. The growth of information and communication technology in recent years and its application in education is reducing the distance between open education system and 'not-open' system. Children in regular schools are accessing information with the help of modem educational technology and the Internet. They are becoming active partners in knowledge production, as they would do in the open system. Teachers are changing their role and are becoming facilitators. Schools are becoming learning places for dialogues and exchange.

**SCHOOLING/INSTITUTIONAL GOVERNANCE IN INDIA**

Governance refers not so much to what School/ institutions do but how they do it; the ways and means by which an institution sets its directions and organizes itself to fulfill its purpose. Governance can be understood generally to involve "the distribution of authority and functions among the units with in a larger entity, the modes of communication and control among them, and the conduct of relationships between the entity and the surrounding environment."

Good governance facilitates decision making which is rational, informed, and transparent, and which leads to organizational efficiency and effectiveness. An important characteristic of good governance is that of probity. Decision making should ensure that varying interests are appropriately balanced, that the reasons behind competing interests are recognized, and that one interest is not endorsed over others on arbitrary grounds.

Institutions necessarily have to develop new capacities for internal governance when the locus of responsibility or decisions about student admission, staffing, curriculum, and the use of financial resources is shifted to the institutional level. A central consideration is the relationship of institutional governance to the state, primarily the extent of institutional autonomy and its effect on institutional performance. An interesting policy question arises in respect of managing such a transition: should the devolution of responsibilities await demonstration of an institution's capacity to manage them, or does the capacity to manage increased responsibilities only develop once they are devolved ?

"Accountability" is the flip side of the autonomy coin. It is the responsibility that An institution assumes in

return for the freedom accorded it. Different dimensions of accountability can be illustrated by the basic questions: Who is accountable to whom, for what purposes, for whose benefit, by what means, and with what consequences?

The constraints of centrally managing a system that needs to be flexible and responsive have become clear. The management of very complex academic communities cannot be Done effectively by remote civil servants, and the task should be left to institutions themselves. Giving npi

of their academic freedoms.

Procedural autonomy refers to the authority of institutions in essentially non Academic areas such as revenue raising and expenditure management, non academic staff appointments, purchasing, and entering into contracts. Procedural autonomy includes the freedom of an institution to manage its administrative affairs and expend the financial resources at its disposal in a prudent way to give effect to its priorities.

A useful distinction can be made between "substantive" autonomy and "procedural" (or operational) autonomy. Substantive autonomy refers to the authority of institutions To determineacademic and research policy including what and how to teach, whom to admit as students, whom to employ and promote in academic staffing appointments, what to research and publish, and the awarding of degrees.

**Methodology**

The validity of any research is based on the systemic method of data collection and analysis. Both primary and secondary data were used for the paper. The Primary data were collected two hundred sample respondents from Delhi-Noida-Ghaziabad-Champawat-Moradabad city. The data there collected from the primary sources of information were arranged systematically and sequentially to from simple table. Secondary data were also collected for the study from simple table. Secondary data were also collected for the study from the head office, District office, school and college. Apart from these data, the leaching journals, magazines, books and website relating to schooling governance were also referred for this study. 200 people were made subjects. Out of these 50 were teacher, 100 students, 20 were officer working in education department, and 30 were parent of student. These data are analyzed/ sorted with the help of SPSS, STATA, Mini tab and other computer programmers.

**Objective of Study:** The focus of the study in on the following objectives

1. To know about the benefits of the schooling governance.
2. To know about the formula to governance.
3. To know about the limitations of governance.
4. To know about the reasons why governance plans fail.

Reasons Why Schooling Governance Plans Fail (barriers) In planning we are always thinks in advance and planning is concerned with future only and future are always uncertain. A multi-disciplinary approach involves absorbing from multiple disciplines to define and apply new ways of understanding complex situations. There are several barriers to implementing schooling governance in education:

**Reasons why schooling governance plans fail**

Analytic Table No. 1

| S.No. | Reasons | Ranks |
|---|---|---|
| A | Failure to get management involved right from the start. | 01 |
| B | Failure to obtain employee commitment | 02 |
| C | Lack of the relationships between process, technology and organization | 03 |
| D | Failure to coordinate | 04 |
| E | Failure to understand to stake holders demand | 05 |
| F | Insufficient conformation sharing among stakeholders | 06 |
| G | No follow through after initial planning | 07 |
| H | Under-estimation of time requirements | 08 |
| I | Over-estimation of resource competence. | 09 |
| J | Inability to predict environmental reaction | 10 |

Source : Self Survey

The analysis of the above table no.l says that the first rank reason for schooling governance system is failure to get management involved right from the start. Second reason is Failure to obtain employee commitment and next is Lack of the relationships between process, technology and organization

**Some key educational issues**

The rate and nature of educational development varies significantly in the different countries, the challenge being for countries to formulate realistic priorities and address specific concerns that are most relevant to their needs and their pace of development.

- The provision of basic education services with particular reference to the needs of marginalized and under-served groups, such as :

*S* Girls/Women,
V Minorities,
*S* The disadvantaged (SC,ST,OBC),
*S* Learners with special needs,
*S* Refugees;

- Good governance and management of resources;
- Enhancement of community participation, including the ownership of schools and training
- institutions;
- Development of effective education strategies and schemes for poverty reduction;
- Improvement of education quality and learning achievements
- Promotion of greater attention to the pivotal role of

teachers as agents for educational

- progress and social change;

Benefits Of Schooling Governance

A schooling Governance approach to running our schooling system is useful for the following reasons:

**Benefits of schooling Governance**

Analytic Table No.2

| S.No. | Point of Benefits | Ranks |
|---|---|---|
| A | It given degree of discipline | 01 |
| B | Clarity of vision | 02 |
| C | It provider a basic for classifying individual responsibilities | 03 |
| D | Insurance a rational allocation of resources | 04 |
| E | Increase performance level | 05 |
| F | Better understanding of the rapidly changing environment | 06 |
| G | Helps in formulating better strategies | 07 |
| H | Provider sharper focus | 08 |
| I | Helps managers to think ahead & anticipate problems | 09 |
| J | Improves coordination | 10 |
| K | It represents a framework for control of activities. | 11 |
| L | Provides systematic approach to uncertainties | 12 |
| M | It encourages forward thinking | 13 |
| N | It helps integrate the behavior of individuals. | 14 |
| 0 | It creates a framework for internal communication among personnel. | 15 |

Source : Self Survey

The analysis of the above table no.2 says that the first rank benefit point for schooling governance system is it given degree of discipline. Second rank point is Clarity of vision, and other benefits are It provider a basic for classifying individual responsibilities, Insurance a rational allocation of resources, Insurance a rational allocation of resources, Better understanding of the rapidly changing environment and etc.

**Limitations of Schooling Governance :**

Make all governance services accessible to the stakeholder in his locality, throughout educational services delivery study centers. However, there seems to be numerous issues and limitations on the road to the successful realization of schooling governance in Indian context. The greatest limitation in the evaluation of communication interventions in the context of democracy and governance projects is the difficulty in isolating the effects of the communication initiative from other factors contributing to the desired change. In some cases, secular trends (e.g., related to greater exposure to media from other countries) may influence change in outcome variables in ways that are difficult to quantify. In other cases, if communication is "embedded" in a larger intervention, which frequently is the case, it becomes nearly impossible to isolate the effects of communication from the effects of other components in the intervention.

**Limitations of schooling Governance**

Analytic Table No.3

| S.No. | Limitations Point | Ranks |
|---|---|---|
| A | Lack of commitment | 01 |
| B | Inadequate information bases for action planning | 02 |
| C | The premises do not hold valid the strategy or plans | 03 |
| D | Several opportunities may be over looked | 04 |
| E | Lack of realism | 05 |
| F | Implementation of the strategy in not effective | 06 |
| G | Poor preparation of line manager | 07 |
| H | Costly exercise | 08 |
| I | Mi sunderstanding | 09 |
| J | The attempt to apply a universal strategy. | 10 |

Source : Self Survey

The analysis of the above table no.3 says that the first rank limitation point for schooling governance system is Lack of commitment. Second rank point is Inadequate information bases for action planning, and other limitation are The premises do not hold valid the strategy or plans, Several opportunities may be over looked, Several opportunities may be over looked, Lack of realism, Implementation of the strategy in not effective and etc.

**Conclusion**

Countries and school systems choosing a holistic approach to access and success are more likely to succeed in reaching education for all. There is hope in Schooling governance and e-governance only. This task of ODL Schooling, technical, other education can be very nicely handled by this tool of e-govemance. It has already proved its application in various areas of economy. The Central Government, State Government, Technical Institutions and Academia should take the lead and play a pivotal role in inspiring and influencing all those connected with Schooling education to implement e-governance to enhance the quality of education system and to root out mismanagement. There is a conflict between the two poles of centralization/decentralization. We can think of the conflict between involvement and rules for assessment as one between the logic of modernization and logic of democratization. One outcome of the ways was new divisions within the school organization that was also accompanied with new systems of dividing children through the newly created monitoring and assessment systems.

**RECOMMENDATIONS :**

- Accessibilities of new technologies, computer etc to both teachers and student.
- Involvement of teachers in planning classroom use of statewide technologies and learning environment.
- ICT technology will be especially effective when combined with other technology.
- Schooling governance system may be used as an importance instrument for planning and execution of different activities in schooling.
- Consultative meeting requires specific skills to brings out

objective and meaningful ideas and opinion from different stakeholders.

- Schooling may be invited to act as a resource person in the capacity development programme. Develop goals and objectives consistent with the vision and mission.
- Develop measurement and feedback systems for each major process (such as curriculum development, student intake, teaching, etc.
- Public Private Partnerships/Public training institutions will be promoted, particularly, in rural, border, hilly and difficult areas, where the private sector may find it difficult to invest.
- Form cross-functional teams to improve major processes. Ensure that all the customers of each process are directly involved in the improvement effort.
- Implement systems to hold the gains that are made.
- Document all improvement exercises.
- The schooling may identify the deficiencies among stakeholders with respect to their test taking skills and conduct remedial training for it with the active involvement of stakeholders for the better performance.
- The administration may be encouraged to set the individual targets for their stakeholders keeping in view their pervious performances and in consultation with the stakeholders.
- Develop a manual on schooling governance with the help of expects in the field. A mechanism may be devised to scientifically indentify the interest and talent of student.
- Strategy to identify the strength and weaknesses.
- Prepare remedial programme for their better performance. Develop and communicate throughout the school a shared vision and mission that re-enforce the needs of its Student.
- Governance programme is being implement in schooling system with its true spirits. There is an increased bureaucracy and administration to monitor the school through increased differentiation in management, involvement of local and national politicians.
- The MHRD, NCERT, NIOS, NIC and other, may in the initial phase, develop diagnostic tool and provide technical support in devising the remedial programmes.
- Train all teams in techniques consistent with the nature of their activity;
- It will be desirable to send a team of a few officials comprising faculty from NIC, NCERT, MHRD, Subject expert to the school, the board, schooling department for observing and understanding the process of operationalisation of its novel practices, document the same and use it in their programmes.
- Goal setting and feed back process is interesting and meaning full, if adopted with certain modifications, may proved to be instrumental to bring improvement in the performance of different stake-holders. Recognize a school as a system with interacting subsystems, namely, a social/cultural subsystem dealing with human interactions and motivation, a technical subsystem involving the transformation processes, and a management subsystem that integrates the whole.
- Administration Support for utilization of new technologies.
- Readily available technical assistance.

**References**


1) Arcot, Sridhar, Bruno, Valentina and Antoine Faure-Grimaud, "Corporate Governance in the U.K.: is the comply-or-explain working?" (December 2005).
2) Bowen, William, 1998 and 2004, The Board Book: An Insider's Guide for Directors and Trustees, New York and London, W.W. Norton & Company, ISBN 978-0-393-06645-6
3) Clarke, Thomas & Chanlat, Jean-Francois (eds.) (2009) "European Corporate Governance " London and New York: Routledge, ISBN 978-0-415-40533-1
4) Denis, D.K. and J.J. McConnell (2003), International Corporate Governance. Journal of Financial and Quantitative Analysis, 38 (1): 1-36.
5) Dignam, A and Lowry, J (2006) Company Law, Oxford University Press
6) Edwin Keiner: Education governance and social integration and exclusion: interviews with german teachers, school heads and system actors.
7) Feltus, Christophe; Petit, Michael; Vernadat, Francois. (2009). Refining the Notion of Responsibility in Enterprise Engineering to Support Corporate Governance of IT, Proceedings of the 13 th IF AC Symposium on INCOM'09, Moscow, Russia
8) Garrett, Allison, "Themes and Variations: The Convergence of Corporate Governance Practices in Major World Markets," 32 Denv. J. Int'l L. & Pol'y).
9) Haidar, Jamal Ibrahim, 2009. "Investor protections and economic growth," Economics Letters, Elsevier, vol. 103(1), pages 1-4, April.
10) Kellie Morrison, Thomas G. Griffiths and James G. Ladwig: Australian teachers: educational governance and its relationship with social inclusion and exclusion
11) La Porta, R., F. Lopez-De-Silanes, and A. Shleifer (1999), Corporate Ownership around the World. The Journal of Finance, 54 (2): 471-517.
12) Lindblad, S & Popkewitz, T. S. (Eds): Listening to Education Actors on Governance and Social Integration and Exclusion.
13) Mohr, Kroschel, Keiner, E : Education Governance and Social Integration and Exclusion. Transition Points and Drop Outs in the Context of Statistics in Germany.
14) Nafsika A., Martin Lawn and Jenny Ozga :Educational

Governance and Social Integration
15) Ozekmekgi, Abdullah, Mert (2004) "The Correlation between Corporate Governance and Public Relations", Istanbul Bilgi University.
16) Popkewitz, T, Lindblad, S & Strandberg, J (1999): Review of Research on Education Governance and Social Integration and Exclusion. Uppsala reports on education no 35.
17) Simola, Hannu & Rinne, Joel: National Changes in Education and Education Governance
18) Skau, H.O (1992), A Study in Corporate Governance: Strategic and Tactic Regulation
19) Tricker, Adrian, Essentials for Board Directors: An A-Z Guide, Bloomberg Press, New York, 2009

**Dr. Amit Agrawal and Dr. Vinai Kumar Sharma**
Faculty of Commerce
Government Raza P. G. College,
Rampur - 244901 (Rampur),
Uttar Pradesh, India

43

# दिल्ली घराने में गाई जाने वाली 200 प्रकार की तानें

डॉ0 जगदीश कुमार

**सारांश–**

दिल्ली घराने के **"ख़लीफा गायक"** उस्ताद इक़बाल अहमद खाँ साहब के अनुसार – हमारा जो घराना है यह ख़्याल का बहुत प्राचीन घराना है। इस घराने में तानों के जितने प्रकार सुनने को मिलेंगे वह अन्य किसी घराने में सुनने को नहीं मिलेंगे। **"संगीत मार्तण्ड"** उस्ताद चाँद खाँ साहब की डायरी में लिखित तानों के 200 प्रकार प्राप्त होते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक **"लुगाते मौसि़की"** में इन सभी तानों का विवरण प्रस्तुत किया है। यह दिल्ली घराने की ख़ास विशेषता है।[1]

**दिल्ली घराने में गाई जाने वाली तानों के नाम**

दिल्ली घराने में गाई जाने वाली तानों के नाम

1ण उचक तान
2ण उखेड़ तान
3ण ऐंच तान
4ण उड़ान तान
5ण उछाल तान
6ण उलझाव तान
7ण उतराव तान
8ण अड़ंगे की तान
9ण बंद तान
10ण बिजली कड़क तान
11ण बादल गरज तान
12ण बलदार तान
13ण बनाव तान
14ण बढ़ाव तान
15ण बहाव तान
16ण बोल तान
17ण भंडारे की तान
18ण बुलंद तान
19ण फेंक तान
20ण फैलाव तान
21ण फंदे की तान (एक सुर की तान)
22ण पेंचदार तान
23ण फुलझड़ी की तान
24ण परछाव की तान
25ण फिरकी की तान
51ण झलक तान
52ण झपकी तान
53ण जोड़–तोड़ की तान
54ण जोशीली तान
55ण नपीतुली तान
56ण चक्करदार तान
57ण चमकदार तान
58ण चढ़ाव तान
59ण चुनाव तान
60ण चुना चुनी की तान
61ण चकाचौंध तान
62ण छलांग तान
63ण छलक तान
64ण चौगुन की तान
65ण चौपल्ली तान
66ण छूट की तान
67ण चौखी तान
68ण चमकीली तान
69ण हल्का तान
70ण हल्की तान
71ण हसीन तान
72ण हुस्न अफरोज़ तान
73ण हिसार तान
74ण खला की तान
75ण जमाव तान
26ण फैलान तान
27ण पतली तान
28ण फुसलाव तान
29ण फुसफुस तान
30ण पिलपिली तान
31ण पिचकारी की तान
32ण पछाड़ तान
33ण तिगुन की तान
34ण तीन सप्तकों की तान
35ण तलवार काट तान
36ण शेर फिगन तान

37ण तीरंदाज़ी की तान
38ण ठहराव तान
39ण टिकाव तान
40ण ठुमरी की तान
41ण टप्पा तान
42ण टेड़ी तान
43ण ठप्पा तान
44ण सलासी तान
45ण समरा तान
46ण तीव्र तान
47ण झपक तान
48ण झपट तान
49ण झुलाव तान
50ण झूला तान
76ण झंकार तान
77ण झलका तान
78ण झकोला तान
79ण ख़ुशनुमा तान
80ण ख़ंदो तान
81ण ख़लीफ तान
82ण ख़लकी तान
83ण ख़ुमा तान
84ण धरका तान
85ण धक्का तान
86ण धमाका तान
87ण धकेल तान
88ण धीमी तान
89ण दोहरी तान
90ण दमक तान
91ण दमदार तान
92ण दिलकश तान
93ण दिलफरेब तान
94ण दौगुन की तान
95ण दौपल्ली तान
96ण रपट तान या रपटती तान
97ण रची तान
98ण रसीली तान
99ण रियाज़ी तान
100ण रदीक काफिया
101ण जमजमा की तान
102ण ज़रीन तान
103ण ज़र–निग़ार तान
104ण सूत–मींड की तान
105ण सपाट तान
106ण सुनहरी तान
107ण सुथरी तान
108ण सुर बहाव की तान
109ण श्रृंगार तान
110ण शफाफ तान
111ण शेर–दहाड़ तान
112ण शिरीन तान
113ण ज़मीर तान
114ण तिरतिरी तान
115ण तरार तान
116ण तरहदार तान
117ण ज़रीफ तान
118ण इल्मी तान
119ण अमली तान
120ण ग़िलाफी तान
121ण फिरफिरी तान
122ण कुवती तातक तान
123ण कुल्फी बंद तान
124ण कुल्फीदार तान
125ण खेंच तान 126ण खटका तान
127ण खटकदार तान
128ण खड़क तान
129ण खुलाव तान
130ण खंक तान
131ण कड़क तान
132ण खुली बंद तान
133ण कुदाई तान
134ण गद्दा धमाका तान
135ण घुमाव तान
136ण गिराव तान
137ण घुलाव तान
138ण गमक की तान
139ण गोरख धन्धे की तान
140ण गिरह गुलझट्टी की तान
141ण गटकरी की तान
142ण गुल झट्टीदार तान

143ण लचाव–घुलाव की तान
144ण लोचदार तान
145ण लचकदार तान
146ण लहकदार तान
147ण लडंत की तान
148ण लहरी तान
149ण लम्बी तान
150ण क़ाफिया रदीक तान
151ण सवाल जवाब की तान
152ण नक़्श निगार की तान
153ण नूर अफ़्शा तान
154ण मरोड़ तान
155ण मुर्की की तान
156ण भंडाव तान
157ण मरोड़ीदार तान
158ण मुरक तान
159ण नौरस तान
160ण नूरपाश तान
161ण नूरोज़ तान
162ण हलकी तान
163ण हाथी चिंघाड़ तान
164ण चकतरफी तान
165ण गमक की छूट की तान
166ण लहक की छूट की तान
167ण हिक्के की तान
168ण तीनों निखादों की उड़ान तान
169ण उलट–पलट तान
170ण फव्वारे की तान
171ण बल पे बल की तान
172ण लूट की तान
173ण मुँह बंद तान
174ण फिरकी की तान
175ण उल्टी छूट की तान176ण समेट की तान
177ण बराबर की तान
178ण डयौढ़ी तान
179ण लपट तान
180ण झपट तान
181ण शुफाफ तान
182ण ज़मज़मे की तान
183ण सरगम की तान
184ण लहक की सरगम की तान
185ण गमक की सरगम की तान
186ण खटके की सरगम की तान
187ण दो दाने की तान
188ण तिहाई की तान
189ण अरबीर की तान
190ण अखीर तान
191ण बढ़ाऊ तान
192ण पहाड़ तान
193ण तिपल्ली की तान
194ण धोखा तान
195ण गोता तान
196ण मढ़ाऊ तान
197ण सुलझाव तान
198ण दाँव–पेंच की तान
199ण हिंडोले की तान
200ण जैसा जाना वैसा आना तान2

**दिल्ली घराने में गाई जाने वाली कुछ तानों का संक्षिप्त**

**1. गोरख धन्धे की तान :**

इस तान को गोरखधन्धे की तान इसलिए कहा गया है क्योंकि जिस प्रकार गोरखधन्धा होता है यानि उलझा हुआ धन्धा। इस तान में स्वर उलझते जाते हैं इसलिए इसे गोरख–धन्धे की तान कहते हैं।

**2. कुल्फीबन्द तान :**

यह तान बहुत ही मशहूर तान है और इस तान को **"संगीत मार्तण्ड"** उस्ताद चाँद खाँ साहब खूब गाया करते थे।

**3. फव्वारे की तान :**

जैसे फव्वारा चालू होता है तो उसका पानी नीचे से ऊपर जाता है फिर ऊपर की ओर जाकर वह नीचे से छोटा होता जाता है और फिर ऊपर जाकर खुल जाता है, फिर फव्वारा बहने लगता है। इस तान में स्वरों का क्रम भी इसी प्रकार रहता है। इसे फव्वारे की तान कहते हैं।

**4. रदीक क़ाफिया की तान :**

यह बहुत ही खूबसूरत तान है दरअसल रदीक और क़ाफिया शायरी से संबंधित है। मिर्ज़ा ग़ालिब साहब की एक बहत ही मशहूर ग़ज़ल है।

हर एक बात पे कहते हो कि तू तू क्या है
तुम ही कहो के ये अंदाज़े गुफ्तगू क्या है
रगों में दौड़ने फिरने के हम रहे कायल
जब आँखें न रहे तब तक तो फिर ये लहू क्या है

तू, तुम, गुफ्तगू, लहू इस ग़ज़ल में ये लव्ज़ इस्तेमाल किए गए हैं

ये क़ाफिया है। तू क्या है, क्या है ये लव्ज़ रदीक हैं। रदीक को

शायरी से ताल्लुक रखने वाले ख़ूब जानते हैं। रदीक बदला नहीं जाता यह एक ही होता है। इन्हीं ग़ज़ल के लव्ज़ों को खूबसूरत अंदाज़ में गाकर प्रस्तुत करना, रदीक क़ाफिया की तान कहलाती है।

**5. ख़ला की तान :**

ख़ला का अर्थ है अन्तराल जैसे कि तीनताल में 16 मात्राएं होती हैं धा धिं धिं धिं, धा धिं धिं धा, धा तिं तिं ता ता धिं धिं धा जब एक मात्रा में दूसरी मात्रा के बीच जो अंतराल होता है उस अंतराल को खला की का नाम दिया जाता है। जैसे कि एक बल है नि नि ध़ नि, नि नि ध़ नि, इस एक बल को 6 प्रकार से गाया जा सकता है। इसे ख़ला की तान कहते हैं।

**6. लपेट की तान :**

जब एक तान को दूसरी तान से जोड़ा जाता है और उसमें स्वरों को एक साथ लपेट दिया जाता है, तो वह लपेट की तान कहलाती है।

**7. बिजली कड़क तान :**

इस तान का संबंध बरसात के मौसम से है जिस तरह बिजली कड़कती है उसी प्रकार गले से स्वर निकलते हैं। यह बहुत ही कठिन तान है। इसकी आवाज़ बिजली की तरह कड़कने की तरह होती है।

**8. बादल गरज तान :**

जिस प्रकार बरसात के दिनों में बादल गरजता है। इस ताने को भी उसी प्रकार गाया जाता है। इसकी आवाज़ बहुत धीमी और मीठी तथा भारी होती है। इस बादल गरज तान कहते हैं।

**9. तीरंदाज़ी की तान :**

यह बहुत ही खूबसूरत तान है जब तीर को कमान में रखकर खींचा जाता है, जब उसे थोड़ा सा खींचा जाता है तो वह थोड़ी दूर जाता है जब ज्यादा खींचा जाता है तो वह बहुत दूर जाता है और जिस जगह निशाना लगाया जाता है और वह वहीं जाकर लगता है, इसी भाव को तानों द्वारा दिखाना तीरंजादी की तान कहलाती है।

**10. फिरकी की तान :**

जब दीपावली के दिनों में हम आतिशबाजी में एक फिरकी जलाते हैं, तो वह गोल–गोल होकर स्पीड से घूमती जाती हैं। इसी प्रकार इस तान में स्वर भी गोल–गोल होकर घूमते हैं इस प्रकार गोलाई में घूमने वाले स्वरों को फिरकी की तान कहा जाता है।**11. लपट की तान और झपट की तान :**

इन दोनों तानों में दो लोग होने चाहिए जिससे कि एक व्यक्ति के स्वरों को दूसरे व्यक्ति लपट कर ला सके और पहले व्यक्ति की तान को दूसरा बीच झपट ले। इन दोनों तानों में यही प्रक्रिया रहती है। इसे लपट की तान व झपट की तान कहते है।

**12. दिल फरेबतान :**

जो तान दिल को चुरा ले, वह दिल फरेब तान कहलाती है। जिस प्रकार हम पानी में मछली को पकड़ते है तो वह हाथ से फिसल जाती है और दिल को चुरा लेती है। इस प्रकार इस तान के स्वर भी पकड़ में नहीं आते है जिसे हम दिल फरेब तान कहते हैं।

**13. मुंह बंद तान :**

इस तान को मुंह बंद करके गाया जाता है, जिसे मुंह बंद तान की संज्ञा दी गई है। इस तान को गाने के लिए बहुत अधिक रियाज़ की आवश्यकता होती है । यह एक कठिन तान है ।

**14. शेर दहाड़ तान :**

जिस प्रकार शेर दहाड़ता है ठीक उसी प्रकार से इस तान को दहाड़ कर गाया जाता है जिसे हम शेर दहाड़ तान कहते हैं ।

**15. हाथी चिंघाड़ तान :**

जिस प्रकार हाथी चिंघाड़ता है ठीक उसी प्रकार इस तान को स्वरों को गाया जाता है । इस तान को गले नाक व तालु पर जोर देकर गाया जाता है । यह बहुत ही कठिन तान है जिसे हम हाथी चिंघाड़ तान कहते हैं ।

**16. तीनों सप्तकों की तान :**

इस तान में तीनों सप्तकों जैसे कि मन्द्र, मध्य तथा तार के स्वरों को बारी–बारी से गाया जाता है, जिसे हम तीनों सप्तकों की तान कहते हैं ।[3]

**संदर्भ :**


1. दिल्ली घराने के **'खलीफा गायक'** स्व॰ उस्ताद इकबाल अहमद खाँ द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर ।
2. दिल्ली घराने के गायक फरीद हसन द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर
3. वही ।



**प्रस्तुतकर्ता**

**डॉ॰ जगदीश कुमार**

एम॰ ए॰, नेट, पीएच॰ डी॰ (संगीत गायन)

देशबन्धु गुप्ता राजनीय स्नातकोत्तर

महाविद्यालय

पानीपत–132103 (हरियाणा)

44

# Perspective for India: Post Reform Employment Experiences

**Dr. Vinai Kumar Sharma, Dr. Pankaj Gambhir, Dr. Meenu Chaudhary**

**Abstract**

Employment is an instrument of prosperity and correction of Income inequalities for every economy of the -world. Some other instruments are also available for short term change in income inequalities like target group policies and programme by government. But to get desired results need is of indepth study of employment generation but the herculious task is the identification of nature of unemployment and trends of unemployment in the economy. Formulation of policies and programms needs an extensive study and analysis of trends of past, current and future aspects of employment considering technological change as well because technology has impacted employment pattern in many different ways. It is essential to have an broad understanding of employement scenario as it exist today. It will be a torch bearer for future directions and efforts. This paper is an effort to peep into India's concern and prospect of regarding employment and its post reform Employment experiences.

Keywords-.-Employment, post reforms, employment experiences, employment reforms**Introduction**

India is a developing country. Hence, the nature of unemployment differs from that of industrially advanced countries of the world. John Maynard Keynes in his epoch-making book "the General Theory of Employment, Interest and Money", published in 1936, diagnosed unemployment, prevalent in advanced economies like the U.K. and the U.S.A, which was the result of deficiency of effective demand. In such economics machines become idle and demand for labour falls because there is lack of demand of the product of industry in the market. But unemployment in under developed / developing economies like India is not the result of demand deficiency in the Keynesian sense rather a consequence of shortage of capital or other complementary resources. Besides, in a country, like India, consequent upon 'Population Explosion' there is a heavy pressure of population on land as a result of which there is the problem of under employment as well as disguised unemployment.

Recent changes in the international economy in the wake of globalization have affected both national and international markets. "Globalization has raised apprehensions and expectations, more often the former than the latter, in respect of its impact on labour. Dislocation, unemployment and reduced social protection are feared to be the short term fallouts, while widening and diversification of employment opportunities, rising real earnings and improvement in conditions of work are expected to be the benefit, labour can realize from globalization in the medium and long run. The global and the Indian experience so far have produced the negative impact more often than the positive impact on labour." (T.S. Papola, 2004)

Globalization which promised faster economic growth based on unhindered flow of goods, resoueces including human resources and capital across regions and countries based on comparative market efficiency misfit in the poorer labour surplus developing countries like India. Being the poorest among the poor, the labourer particularly rural labourer has received considerable attention in policy making in India. No doubt, with the advent of I970's the national and international thinking on development and labour underwent a fundamental change, which coincided with documentation of the results of two decades of planned development in India. The economy appears to have decidedly taken off and moved from a phase of moderate to a new phase of high growth particularly in the post reform regime but very earlier it has been realized that growth may be necessary but not a sufficient condition to bring about reduction in poverty and improvements in the welfare of the weaker and underprivileged like labourer. Labour needs to be looked at neither as an agent disinterested in 3production and development outcomes, nor as a class distinct from the poor majority but a participant in production and, quite often itself a producer.

Keeping in view these facts, the paper presents **an employment perspective for India in the post reform period.** The present study is mainly based on the availability and utilization of secondary data and literature. Secondary data have been collected from various reputed national and international Journals, Newspapers, and Business Magazines etc. The published work of various reputed scholars is also considered for the formation of this research paper.

**Economic Reforms in India**

India's experience in globalization could be divide in to two phases. The first phase of economic liberalization began in 1981, under pressure from the International Monetary fund and the World Bank. During this phase, India received the SDR 5 billion loan that was conditional on an 'adjustment programme' from the IMF. The second phase of globalization bagn in 1991 where the economic measures initiated were based on the World Bank's Structural Adjustment Programme (SAP) designed to restructure the economy (Dalip S.Swamy:1997). However, India's entry into globalization is relatively later than most of other third world countries (Neeraj:2001).

The Government of India embarked wide range of reform measures in the beginning of July 1991. Five different governments were in office during this reforms era - The Congress Government which initiated the reforms in 1991, United front coalition (1996-98) which continued the process, BJP-led coalition which took office in March 1998 and then again BJP-led National Democratic Alliance (ND A) during 1999-2004, and subsequentlythe Congress-led United Progressive Alliance Government, which came to power 2004 till date. In short, it seems that India's political system is more than ever in consensus about the basic direction of reforms.

The experience of successful coalition Governments in India has been ideal for democratic governance, balancing divergent views and accommodating regional and sectoral interest more effectively. The reforms were multidimensional and aimed to make changes on many fronts to break away from the earlier approach which was characterized by extensive government control over private sector activity, a preferred position for the public sector over the private sector, high levels of protection to encourage domestic production and a restrictive approach to foreign investment.

**Employment: Changes in Level and Structure**

**Priorities and problems:**

The need to ensure adequate growth in employment opportunities to provide productive employment for the continuing increase in the labour force is widely regarded as one of the most important problems facing the country. There is widespread concern that the acceleration in GDP growth in the post-reform period has not been accompanied by a commensurate expansion in employment. Public sector employment is expected to fall as the public sector withdraws from many areas. There are fears that the processes of internal liberalization and globalization, inevitable though they may be, are creating an environment which is not conducive to expanding employment in the organized private sector. Existingindustrial units are shedding excess labour in order to remain competitive, and new technology, which is essential to ensure competitiveness, is typically more automated and therefore not job-creating. The net result of these forces, it is feared, could be a very slow expansion in employment opportunities in the organized sector, with a rise in unemployment rates and growing frustration among the youth. The problem is perceived to be especially severe for educated youth, who have high expectations about the quality of employment opportunities that should come their way.

**Quality of employment:**

The vast majority of Indian workers are employed in the informal or unorganized sector where jobs are unprotected and uncertain and labour market competition keeps wages low. Since strict unemployment is a luxury in the absence of state-provided unemployment benefits, the poor are forced to work but there is a high degree of underemployment in terms of irregular days of work and low incomes. The NSS estimates that about 7.3 percent of India's labour force was either chronically unemployed or underemployed in 1999/2000. A further 33 per cent of workers were in casual employment, where earnings are considerably smaller than in regular employment and expected earnings smaller still2. Casual workers also experience income uncertainty, which imposes particularly large welfare costs on the poor as negative income shocks make them vulnerable to death, illness and poverty traps. Volatile incomes characterize, but are not exclusive to agriculture, which angages about 60 per cent of the workforce. A healthy supply of organized sector jobs which are regular and relatively well-paid takes on immense significance in India.

**The role of growth in generating employment:**The Planning Commission (2001) argues that the role of GDP growth in achieving India's employment objectives is overwhelming. They conduct growth simulations using several arguable assumptions . One such assumption that is particularly worthy of attention as it is made in numerous micro and macro studies of the Indian economy is that the output elasticity of employment is the ratio of past changes in employment to past changes in output. This is incorrect. In fact this is simply the inverse of the change in labour productivity. The correct elasticity is the marginal effect of output on employment, conditional on real wage rates and an index of technical progress. Awell- specified model of employment determination is estimated by Generalized Method of Moments (GMM) methods applied to a panel of industry-state data for the 1979-87 period. This gives a long-run elasticity of income that is just larger than I and a short-run elasticity of 0.41. So, in the long run, for given wage rates and days of work, a 5 per cent increase in output is expected

to generate a 5 percent increase in employment. But how long is the long run here? The speed of employment adjustment is estimated in the same paper to be 0.33. It takes 1.7 years to complete half the adjustment and 5.8 years to complete 90 per cent of the desired adjustment.

It is important to recognize that raising labour productivity is a way of creating high quality employment. The often-heard rhetoric that growth is not being accompanied by adequate employment neglects this if employment grew as rapidly as output then that would imply no growth in labour productivity. Even in a labour-surplus economy, this is undesirable. The real question here is how productivity gains are distributed. To the extent that they are shared with incumbent workers as wage premia, employment will tend to be lower than otherwise. Introducing the possibility of efficiency wages would further complicate this analysis. As discussed above, investments in human capital - in india, especially widening basic education - will yield both growth and wider participation in the benefits of growth.

**Child labour:**

Socio-economic factorsare primarily responsible orperpetuation of child labour in developing and developed countries. Widespread and chronic economic poverty in developing world forces parents to send their children for work. Casteism, gender discrimination,large family size, low level of income, geographically disadvantaged area, illiteracy, etc., do contribute significantly to the cause of childlabour practice. Further, with advantages like low remuneration, not unionized, no demand for overtime, simple and easy to be 6 moulded and punished, etc., being inherent with children, employers industrialized and scientific ear prefer child labour. In most under developed and agrarian society children are part of labour force. With the growth of industrialization, they are moving from families to factories.

**Pattern of woman employment:**The labour force includes both the employed and the unemployed and therefore, measures the total available supply of labour. The participation of woman in labour force has always been lower than that of men. Data from the 55$^{th}$ Round of NSSO seem to suggest a slight decline in the labour force participation in rural women. The picture is similar if we confine to the work force instead of labour force. In rural area, the work force participation rate for female is substantially lower than that of males.

According to the 1991 Census, 48.3 percent of 846 million population in India were women and among them 24.44 percent were engaged in economically productive activities. As per 2001 Census, 48.2 percent of 1,027 million population in India are women and among them 18.84 percent were engaged in economically productive activities.

**Unemployment and Poverty**

**Introductory:**

Unemployment and poverty are the two major challenges that are facing the world economy at present. Unemployment leads to financial crisis and reduces the overall purchasing capacity of a nation. This is turn results in poverty followed by increasing burden of debt. Now, poverty can be described in several ways. As per the World Bank Definition, poverty implies a financial condition where people are unable to maintain the minimum standard of living.

Poverty can be of different types like absolute poverty and relative poverty. There may be many other classification like urban poverty, rural poverty, primary poverty, secondary poverty and many more. Whatever be the type of poverty, the basic reason has always been lack of adequate income. Here comes the role of unemployment behind poverty. Lack of employment opportunities and the consequential income disparity bring about mass poverty in most of the developing and under developed economies of the world.

**Sources of unemployment:**

Lack of effective aggregate demand of labor is one of the principal reasons for unemployment. In the less developed economies a substantial portion of the total workforce works as surplus labor. This problem is particularly prevalent in the agricultural sector. Due to excess labor, the marginal productivity of the workforce may be zero or even negative. This excess pool of labor is the first to become unemployed during the period of economic or social crisis.

When a capitalist economy undergoes some dynamic changes in its organizational structure, it results in structural unemployment. This type of unemployment may also emerge if the lack of aggregate demand continues for a substantially long period of time. In case of frictional unemployment, workers are temporarily unemployed. There may be cases of hidden unemployment where workers restrain themselves from working due to absence of appropriate facilities.

**Unemployment and poverty (The Latest Trends):**

It is true that unemployment and poverty are mostly common in the less developed economies. However, due to the global economic recessions, the developed economies are also facing these challenges in the recent times. The US sub-prime crisis and its wide spread impacts have played a major role in worsening the situation.

In India, the problems of unemployment and poverty have always been major obstacles to economic development. Underemployment and unemployment have crippled the Indian economy from time to time. Even during the period of good harvest, the Indian farmers are not employed for the

entire year. Excessive population is another major problem as far as Indian economy is concerned. Regional disparity is also crucial in this context. A part of the urban workforce in India is subjected to sub-employment. Mass migration from rural to urban regions is adding to the problems of unemployment and poverty in India.

**Measures to prevent unemployment and poverty:**

Economic reforms, changes in the industrial policy and better utilization of available resources are expected to reduce the problem of unemployment and poverty that results from it. The economic reform measures need to have major impacts on the employment generating potential of the economy. The governmental bodies are also required to initiate long term measures for poverty alleviation. Generation of employment opportunities and equality in income distribution are the two key factors that are of utmost importance to deal with the dual problem of unemployment and poverty.

**Economic Reforms, Employment, and Poverty**

**The new international economic order and the working poor:**

Opening-up in the developing economies was primarily visualized as a mechanism where trade would function as 'an engine of growth' and the fruits of growth would 'trickle down' to the poor. However, the results had been mixed, with many countries observing widening inequality in their economies, contrary to the conventional trade theory prescriptions (Bardhan, 2001). The internationalization of trade has opened up vistas for Globalization of production creating profound changes in the labour market, such as widening wage disparity, increasing contractualization of work, skill based segregation of work etc. In this context it is essential to understand the impact of opening up of the economy to trade and Globalization of production under the new international economic order on the working poor in a developing economy like India. The research would broadly cover labour and employment issues of liberalization in trade and globalization of production such as the impact of flexible production on labour, informalization, income distribution, collective bargaining, and economic security to the poor etc.

**Economic reforms and workers in the unorganized sector:**

The unorganized sector is called so because the activities in the sector cannot be accounted statistically. And they are generally accounted as a residual of the organized sector. But this residual sector is more than 90 per cent of the total work force in India as per 1991 census. This exclusion from the numbers have reflected on the policy level too, with hardly any legal backing, any social spending, or any other form of support to this class of workers, who are also the poorest among all groups of workers. Even among the workers there are no collective bargaining institutions to project their case. For the vast majority of them there is no fixed place of work, no fixed working hours, no regular wages, and no job security. Thus they have become one of the most vulnerable to poverty. Globalization is argued to be 'informalizing' and 'casualizing' the employment opportunities in the economy thus further expanding the unorganized form of employment.

Women form a substantial and increasing share of employment in the unorganized sector. The world of work for women is characterized by unequal reward for equal work and uneven opportunities for the participation in economic decision-making. Added to this is a near stagnation in the number of female workers as a whole and an absolute decline in the number of female workers in the rural areas due to, declining work participation rates in both rural and urban areas in the post reform period (Sundaram, 2001).

Recognizing that unorganized sector is an essential feature of developing economies and reconciling the fact that economic reforms are only going to vitiate the status of the sector it is to be understood as to how certain amount of economic security can be brought into this sector which would ensure them escape from poverty. It is also essential to understand the under lying factors that have vitiated the condition of women in employment and consequently poverty.

**Recent Trends in Employment and Unemployment Situation**

There was a slight decline in population growth between the periods 19831993/94 and 1993-94 to 1999-2000 from 2.0 percent per annum to 1.9 percent. Though growth of output in the economy accelerated between these two periods- from 5.2 percent gross domestic product (GDP) growth to 6.7 percent, the pace of employment growth slowed down from 2.7 percent to 1.07 percent as per National Sample Survey Organization (NS SO) employment surveys. Slow-down in pace of employment growth, in the nineteen nineties is also borne out by demographic census data growth of main workers decreased from 2.34 percent to 0.81 percent. Similar trends in declaration of employment growth are revealed for specific segments of employment-growth of workers in establishments covered by Employment Market Information System of Ministry of Labour grew at 1.20 percent per annum during 1983-1994 but decelerated to .0.53 percent during the next five years 1994-1999. However, the latter decline was mainly due to a decrease in employment in public sector establishments, whereas the private sector showed acceleration in the paceof growth from 0.45 percent to 1.87 percent. Thus the employmentintensity of the

growth process of the Indian economy is coming down.

The decrease in employment intensity of output growth can be explained by either an increase in capital intensity or increase in labour productivity, releasing labour. Both happened partly in this period.Incremental Capital Output Ratio increased greatly and also capital substituted labour. Both suggest strategies to look for labour intensive areas and technologies.

At micro level, the increase in productivity of labour should be reflected in higher growth of real wages. Some indicator of this trend is seen when the growth of real wages of rural casual male workers is seen during 1994-2000 compared to in the preceding period 1983-1994. However, the rise in the real wages of casual labour only can not be a conclusive evidence either of an increase in the real income or of tightening of labour market when the incidence of the employment has not reduced, and has rather gone up for example, an employment rate reduced from 8.3 percent of labour force, measured on current daily status basis, in 1983 to 5.99 percent in 1993-1994, however it rose to 7.32 percent in 1999-2000. Further, youth employment has increased between 199394 and 1999-2000: among rural males in 15-29 years age group from 9.0 percent to 11.1 percent and from 7.6 percent to 10.6 percent among rural females. In addition, there are sharp variations in the unemployment rate across States. Against the all India average of 14.7 percent unemployment among the urban male youth (15-29 years) in the year 1999-2000, while Gujarat, Haryana, Rajasthan and Punjab have 8 to 9 percent unemployment, it is much higher in Assam (22.4 percent), West Bengal (23.4 percent), Bihar (24.0 percent) andKerela (26.6Percent). Moreover, the incidence of unemployment is much higher among the poor. In the lowest consumption expenditure class the unemployment rate is more than twice the level compared to the highest expenditure class.

**Employment Growth and the Distribution of Income Generating Opportunities**

The most significant link between growth an poverty reduction is employment generation, which is why patterns of employment growth are usually critical in determining both changes in income distribution and the incidence of poverty. During the 1990s, the employment growth rate in India plummeted. There was a very significant deceleration of employment generation in both rural and urban areas, with the annual growth rate of rural employment falling to only 0.67 per cent over the period 1993-1994 to 1999-2000. This is not only less than one- third the rate of the previous period 1987-1988 to 1993-1994, but it is also less than half the projected growth rate of the labour force in the same period. In fact, it turns out that this is the lowest growth rate of rural employment in postindependence history.

The decline in rural employment can be directly attributed to the stagnation of agricultural employment during the 1990s. NSSO data indicated that total employment in the agriculture sector increased from 190.72 million in 1993-1994 to 190.94 million in 1999-2000, registering an annual growth rate of only 0.02 per cent during this period. This was much lower than the population growth rate over the same period (1.67 per cent) and also lower than the corresponding figures for earlier periods. In fact, the agricultural employment growth rate plummeted to its lowest ever mark since the NSS began recording employment data in the 1950s.

One of the major reasons behind the poor employment generation during the second half of the 1990s could have been attributable to the sharp decline in the employment elasticity of output growth during this period. Among the sectors, employment elasticity fell in agriculture, mining and quarrying. manufacturing, electricity, gas and water, transport, storage and communication, finance and insurance and services sectors. In general, the employment elasticity of output growth was highest in the tertiary sector, followed by the secondary sector. In the reform period, the employment elasticity of agriculture was the lowest, and among the lowest observed in Indian agriculture since 1961. Along with the stagnation of employment generation in the agriculture sector, the real wage growth rate of agricultural labourers also stagnated during the 1990s. As deaton and Dreze (2002) showed, if one compared the growth rate of real wages for agricultural labourers with that of public sector salaries, real agricultural wages

Grew at about 2.5 per cent per year during the 1990s, whereas public sector salaries grew at about 5 per cent per year during the same period. This partly explained the increased rural-urban inequality of the 1990s in India.

Sen and Himanshu pointed out that though real wage growth of agricultural labourers was positive; its impact on rural per capita income was less significant because the number of agricultural labourers grew faster than the available days for wage employment. The authors showed that according to NSS estimates, the percentage of the rural population in agricultural labour households increased from 27.6 per cent to 31.1 percent between rounds 50 (1993-1994) and 55 (1999-2000), implying an average of 3.7 per cent annual growth of this population. Against this, it reported less than 1.5 per cent average annual growth of wage paid days of employment in agriculture. As a result, agricultural unemployment was on the rise, and the increase in real wages had not resulted in an increase in the per capita income for rural agricultural workers.

**The Future Trends**

The prospects for employment in the coming future are of

growing concern to citizens and governments of both developing and developed nations around the world. Few social issues bring out so deeply our latent anxieties about the future. In developing countries it calls to mind the immediate challenge of generating remunerative work opportunities to meet the rising expectations of one billion people who will enter the labor force during the coming decade. For many in the industrialized West, it evokes an image of a future in which technology and international competition economically disenfranchise more and more people. For the younger generation it is viewed in more individual terms as an obstacle to career advancement and personal fulfillment.

Our present concept of work as employment is a relatively recent phenomena. In earlier centuries the vast majority of people around the world were left to fend for their own economic survival working on farms and in crafts. But the transformations of economic activity and social life in this century and the increasing regulation of economic activity by government have made individuals increasing dependent for their economic survival and security on political, economic and social policies and forces beyond their control. Without access to jobs, people lack the ability to ensure their economic survival. Today employment opportunities are directly influenced by a wide range of public policies relating to taxation, monetary stability, trade, investment, immigration, defense and environmental regulation. This led the International Commission on Peace and food (ICPF) to conclude in its report, 'Uncommon Opportunities: An Agenda for Peace and Equitable Development', that employment must be guaranteed as a fundamental human right. “Recognizing the right of every citizen to employment is the essential basis and most effective strategy for generating the necessary political will to provide jobs for all.”

Although the magnitude of the task varies from region to region, generating increasing numbers of work opportunities is a common challenge facing every region of the world. The work of ILO and ICPF suggest that there is considerable scope for applying practical strategies to alleviate and perhaps even eliminate the current worldwide shortage of employment opportunities. Clearly no single remedy will suffice. A comprehensive package of measures is needed that accelerate the process of economic and social development by more fully and effectively utilizing the available material, social, organizational, technological and human resources. Nor can nations hope to resolve this problem in isolation from each other. Coordinated and cooperative efforts will be needed at the international level.

A plethora of technological, commercial and social factors are bringing about a shift in a conception of work. The conventional idea of eight to five employment is breaking down in several directions. More and more people are taking their jobs back to the home. Others are leaving the corporate environment to become self-employed. Although employment has ceased to be a necessity for many, the social and psychological role of work in defining and developing personality remains very strong. Thus, a new generation of healthy retired people are seeking ways to remain constructively active and engaged in work. Perhaps, what is needed is a shift in focus from full employment to full engagement.

**Conclusions and Suggestions**

The foregoing analysis revealed that the impact of globalization on employment in India is more of warning signals. The structural reforms programme initiated in India in mid-1991 had a multi-faceted impact on employment and labour market and in most cases impact is adverse. The experiences in many parts of India as also in many developing countries have clearly shown that collective voice and action constitute an important mechanism to empower the poor and enhance their earnings and capabilities as collectively is the only source of power for the working poor and there is need for making pressure on our government collectively to enact labour laws in favour of workers and make provisions of protection and security to workers in organized as well as unorganized sectors.

The unorganized workers would expand further due to globalization. Under the present deprived conditions of unorganized sector, this would lead to imbalance in the labour market leading to more supply of labours, low wages and low level of income. This situation would affect the social and economic conditions of the unorganized working population. The unorganized workers will be in the highly disadvantageous position as there would be a shift in the technology from labour to capital intensive and use of unskilled to skilled workers.

There is need for enactments of such labour laws and policy framework which prove effective in generating productive employment and thus decent work in the wake of globalization and making labour policies effective and purposeful, proper institutional and good governance structures are highly desirable. Of course, only a well and pro labourer designed labour policy may prove instrumental to withstand the onslaughts of globalization and promote decent work and equitable and poverty alleviating through employment generation growth in India.

To conclude, it can be argued that the benefits of economic reforms on the Indian economy would get achieved, only if the negative impacts on employment are settled or neutralized. Hence, along with globalization and restructuring the economy, efforts should be initiated to

absorb the potential labour force and provide required security for work, income and life so that they would also benefit in that process on the one hand, and on the other, contribute towards the success of globalization.

**References**


- Approach paper to the tenth five year plan (2002-2007) Planning Commission Government Of India New Delhi (1st September, 2001) Bardhan, Pranab (2001);"Social Justice in the Global Economy"; Economic and Political Weekly; Feb3-10.
- Chadha, G.K., and P.P.Saliu (2002) Setbacks in Rural Employment: Issues for Further Scrutiny, Economic and Political Weekly; May 25-31.
- Chakrovarty, Sanjoy (1996); Too Little in the Wrong Places? Mega City Programme and Efficiency and Equity Programme in Indian Urbanisation, Economic and Political Weekly; September, Special issue.
- Chand, Ramesh (1999); Emerging Crisis in Punjab Agriculture: Severity and Options for Future, Economic and Political Weekly; March 27
- Deputy Chairman's Address at the 49th National Development Council Meeting on 1st September, 2001 at Vigyan Bhavan, New Delhi as published in the planning commission website http://planningcommission.nic.in
  Dev, Mahendra and Jos Mooij, (2002) Social Sector Expenditures in the 1990s: Analysis of Centre and State Budgets, Economic and Political Weekly; March 2-8• Economic Refonns And Labour Policies In India (1996) South Asia Multidisciplinary Advisory Team (Saat) International Labour Organization, New Delhi
- Gaiha Raghav (1988) 'On measuring the risk of rural poverty in India' in Srinivasan and Bardshan (ed) Rural Poverty in South Asia, OUP.
- Kundu, Amitabh (1997) Trends and Structure of Employment Growth in the 1990s Tmplications for Urban Growth, Economic and Political Weekly; Junel4
- Opening Address of Prime Minister Shri Atal Bihari Vajpayee at the 49th Meeting of National Development Council 1st September 2001, New Delhi as published in the planning commission website http://planningcommission.nic.in
- Shaw, Annapurna (1999) Emerging Patterns of Urban Growth in India, Economic and Political Weekly; April 17-24.
- Sundaram, K (2001) Employment-Unemployment Situation in the Nineties: Some Results from the NSS 55th Round Survey, Economic and Political Weekly; March 17.
- Vaidynathan, A;(2001) 'Poverty and Development Policy'; Economic and Political Weekly; May 26.



**Dr. Vinai Kumar Sharma**
Associate Professor
Govt. Raza P.G. College
Rampur, Uttar Pradesh
E-mail ID: vinaishanna0244@gmail.com
**Dr. Pankaj Gambhir**
Assistant Professor
Govt. Raza P.G. College
Rampur, Uttar Pradesh
E-mail ID: pankajgambhir31 @gmail.com
**Dr. Meenu Chaudhary**
Assistant Professor
Govt. Raza P.G. College
Rampur, Uttar Pradesh
E-mail ID: meenu.sarthak@gmail.com

45

# ''बौद्ध धर्म दर्शन एवं वर्तमान में उसकी प्रासंगिकता''

डॉ0 रजत गंगवार

**सारांश**–

छठी शताब्दी ई0पू0 भारतीय इतिहारा में एक व्यापाक धार्मिक और आध्यात्मिक क्रान्ति का युग था। इस समय अनेकानेक धर्माचार्य और विचारक धार्मिक और दार्शनिक प्रश्नों पर नाना प्रकार के मत प्रतिपादित कर रहे थे। इनमे पर्याप्त संख्या में ऐसे श्रमण और तपस्वी भी थे जिनका धार्मिक आदर्श एवं विश्वास और वैदिक पिचार निवृत्तिपरक थे। घारा के प्राय विल्कल प्रतिकूल थे। सिन्धू घाटी सभ्यता के अवशेषों के प्रकाश में आने के वाद इस वात की राम्भावनाये और बढ गयी है कि वैदिक धार्मिक और दार्शनिक विचारों से अलग अवैदिक और आर्येतर विचारधारा भी थी जिसका आदर्श मूलतः निवृत्तिपरक आस्थाओं पर आधारित था और जिसे भारतवर्ष के मूल निवासियों अथवा अनार्यो की आध्यात्मिक और दार्शनिक उपलब्धि कहा जा सकता है। बौद्ध धर्म भी इसी प्रकार के वैदिक और अवैदिक विचारों के बीच हुये संघर्ष और उससे उत्पन्न समन्वय का परिणाम है। भारत में ऐसी अवस्था न तो पहले कभी हुयी थी और न पीछे फिर कभी हुई।

बौद्ध धर्म प्रवर्तक गौतम बुद्ध नेपाल की तराई में स्थित कपिलवस्तु के शाक्य गणराज्य के प्रमुख राजा शुद्धोधन के पुत्र थे। बचपन से ही चिन्तनशील गौतम ने 29 वर्ष की आयु में दुखी एवं विषादग्रस्त संसार के स्वरूप को देखकर सम्पूर्ण राजकीय वैभव और परिवार का त्याग कर सन्यास ग्रहण कर लिया। आधुनिक वोधगया के निकट उरूवेला जंगल में उन्होने तपस्या और साधना के मार्ग का अनुशरण किया। अन्त में 35 वर्ष की आयु में ध्यानमग्न गौतम को सत्य के दर्शन हुये और उन्होनें सम्वोधि अथवा बुद्धत्व प्राप्त किया। उन्होने अपना सर्वप्रथम उपदेश सारनाथ में दिया। 80 वर्ष की अवस्था में आधुनिक उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले में कुशीनगर नामक स्थान पर उनका महापरिनिर्वाण हुआ।

**दर्शन**

महात्मा बुद्ध का दर्शन सर्वथा सरल, प्रायोगिक और व्यवहारिक था। आध्यात्मिक और दार्शनिक प्रश्नों जैसे आत्मा, परमात्मा, सृष्टि आदि के सूक्ष्म विवेचन को उन्होने प्रोत्साहित नही किया क्योंकि इस प्रकार के वाद–विवाद को वे अनावश्यक और मनुष्य की मूल समस्या के समाधान के लिये अनुपयोगी समझते थें। बुद्ध की शिक्षाओं में नैतिकता के ऊपर विशेष आग्रह था जिससे मानव का चरमोत्कर्श हो सके। माहात्मा बुद्ध के दर्शन की आधारशिला चार आर्य सत्यों में निहित है।

**1. दुःख**– महात्मा बुद्ध के अनुसार मानव जीवन दुःखमय है। जन्म, जरा, व्याधि, मृत्यु ये सभी दुखपूर्ण हैं। वास्तव में केवल दुःखों की अनुभूति मात्र ही दुःख नही है वरन् सुख भी क्षणिक होते हैं और उनके नष्ट हो जाने पर भी दुःख का अनुभव होता है।

**2. दुःख समुदय**– दुःख की व्यापकता अकारण नही है। दुःख का मूल कारण अविद्या है जिसका तात्पर्य है अपने वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में मिथ्या धारणा। तृष्णा के वशीभूत होकर मनुष्य अहं भाव से प्रेरित होकर नाना प्रकार के स्वार्थपूर्ण कर्म करता है और कर्मों के फल के अनुसार उसे सुख दुःख मिलते रहते हैं तथा वह संसार के आगवागमन के चक्र में पड़ जाता है।

**3. दुःख निरोध मार्ग**– अविद्या और तृष्णा के निरोध से दुःख का निरोध सम्भव है। यही निर्वाण की अवस्था है जिसमें अहं भाव का उपशमन हो जाता है और सभी प्रकार के दुःखों और पुर्नजन्म के चक्र से मुक्ति मिल जाती है।

**4. दुःख निरोध मार्ग** – अविद्या और तृष्णा से उत्पन्न दूषित मनोवृत्तियों और संस्कारों के निरोध के लिए दुख निरोध गामिनी प्रतिपदा का विधान किया गया है। शील, समाधि और प्रज्ञा इन त्रिरत्नों को दुख निरोध का मार्ग बताया। शील अर्थात आचार विचार के नियमों से मनुष्य के कर्म नियन्त्रित हो जाते हैं और वह अनैतिक तथा स्वार्थमय कार्यों से अलग रहता है। समाधि से तात्पर्य है चित्त की एकग्रता जिसमें तृष्णा का उपशमन हो जाता है। तत् पश्चात मनुष्य के चित्त में प्रज्ञा अर्थात् अलौकिक ज्ञान का उदय होता है और अविधा रूपी अन्धकार समाप्त हो जाता है। यही चरम लक्ष्य निर्वाण की स्थिति है। कालान्तर में इन त्रिरत्नों का आष्टांगिक मार्ग में विस्तार कर दिया गया।

1. सम्यक दृष्टि अर्थात सत्य विश्वास
2. सम्यक संकल्प अर्थात् सत्य संकल्प का विचार
3. सम्यक वाक अर्थात् सत्य वचन जिससे दूसरों को कष्ट न हो
4. सम्यक कर्मान्त अर्थात् दया, दान, करूणा, मैत्री आदि सदाचारपूर्ण आचरण।
5. सम्यक आजीव अर्थात जीविका के लिये ऐसे संसाधनों का उपयोग जो सदाचारपूर्ण है।

6. सम्यक व्यायाम अर्थात नैतिक, मानसिक, आध्यात्मिक उन्नति के लिये निरन्तर श्रम करना।

7. सम्यक स्मृति अर्थात शरीर और मन की दुर्बलताओं की निरन्तर स्मृति जिससे मनुष्य के कार्य विवेकपूर्ण हों।

8. सम्यक समाधि अर्थात् चित्त की एकाग्रता

बौद्ध धर्म में आष्टांगिक मार्ग को मध्यम प्रतिपदा भी कहा गया है। यह दो अतियों के बीच का मार्ग है। जिसमें न तो अत्यधिक तपस्या के लिये आग्रह है और न ही अत्यधिक शारीरिक सुख एवं विलासिता के लिये अवकाश।

**निर्वाण**– बौद्ध धर्म का चरम लक्ष्य है निर्वाण जो मनुष्य के वर्तमान जीवन में सम्भव है। निर्वाण का शाब्दिक अर्थ है– बुझ जाना या शान्त हो जाना। निर्वाण एक स्थायी शान्ति और सुख की स्थिति है जो दुःख और तृष्णा, विनाश और रोग तथा जीवन ओर मरण से परे है। निर्वाण की अवस्था में सामान्य जीवन की संकीर्ण रूचियां समाप्त हो जाती है और व्यक्ति पूर्ण शान्ति एवं समत्व का जीवन व्यतीत करता है।

**प्रतीत्य समुत्पाद**– महात्मा बुद्ध ने प्रतीत्य समुत्पाद के नियमन से दुःख की उत्पत्ति की व्याख्या की। जिसका शाब्दिक अर्थ है– प्रतीत 'इसके होने से' समुत्पाद 'यह उत्पन्न होता है'। इस प्रकार बौद्ध धर्म नितान्त कारणवादी है। इसमें अविद्या से प्रारम्भ होकर दुःख तक एक वर्गीकृत कार्यकारण श्रृंखला है जिसके अन्तर्गत बारह प्रधान कड़िया है। जिन्हें द्वादश निदान कहते है–

1. दुःख का कारण है–जन्म
2. जन्म का कारण है– भव (जन्म लेने की इच्छा)
3. भव का कारण है– उपादान (सांसारिक बस्तुओं के प्रति मोह ).
4. उपादान का कारण है– तृष्णा (आसक्ति )
5. तृश्णा का कारण है– वेदना (अनुभूति)
6. वेदना का कारण – स्पर्श
7. स्पर्श का कारण है– शडायतन
8. ाडायतन का कारण है– नामरूप (चेतना)
9. नामरूप का कारण है– विज्ञान
10. विज्ञान का कारण है– संस्कार (पूर्व जन्मों का कर्मफल)
11. संस्कार का कारण है– अविद्या
12. अविद्या का कारण है– दुःख

इस प्रकार प्रतीत्य समुत्पाद के अनुसार वाहय जगत अथवा आन्तरिक मानस में जो भी घटनाएं होती है उनके पीछे कुछ न कुछ कारण अवश्य रहता है।

**कर्म**– इस सिद्धान्त के अनुसार वर्तमान जीवन पूर्ववर्ती जीवन के कर्मो का फल है। महात्मा बुद्ध ने कहा था कि "कर्म ही जीवों का अपना है, कर्म ही उनकी विरासत है, कर्म ही उनका बन्धु और कर्म ही उनका सहारा है।" चेतनापूर्वक की गई मनुष्य की समस्त कायिक, वाचिक और मानसिक चेष्टायें ही उसका कर्म है।

**पुर्नजन्म**– बुद्ध का कंथन था कि अपने कर्मो के फल से ही मनुष्य अच्छा या बुरा जन्म पाता है। ईश्वर और आत्मा के सिद्धान्त को न मानते हुये भी बुद्ध पुर्नजन्म में विश्वास करते थें। पुर्नजन्म आत्मा का नहीं अपितु अनित्य अहंकार का होता है। पुर्नजन्म का प्रवाह निरन्तर चलता रहता है। पुर्नजन्म कर्म और कारण के विधान से संचालित होता है। इस अक्षत पुर्नजन्म का नाश वासना और अहंकार के नाश से किया जा सकता है।

**अनात्मवाद**– महात्मा बुद्ध ने आत्मा की स्थायी सत्ता की स्वीकार नही किया। मनुष्य दैहिक अथवा और चैतसिक तत्वों का केवल समष्टि या संघात मात्र है। अतः इस संघात के अतिरिक्त वहां आत्मा जैसी कोई सत्ता नही है।

**नैतिकता**– महात्मा बुद्ध ने नैतिक शील पर पर्याप्त बल देते हुये आचरण की दस वातें प्रतिपादित की। इन आचरणों का पालन करना प्रत्येक प्राणी का कर्तव्य है–

1. अहिंसा का पालन करना।
2. झूठ का परित्याग करना।
3. चोरी न करना।
4. वस्तुओं का संग्रह न करना।
5. भोग विलासी न बनना।
6. नृत्य, गान का त्याग करना।
7. सुगन्धित पदार्थों का त्याग करना।
8. असमय भोजन न करना।
9. कोमल शय्या का त्याग।
10. कामिनी कंचन का त्याग।

**विचार विमर्श**

समग्रतः महात्मा बुद्ध ने सदाचार और नैतिकता की जो शिक्षा दी वह अत्यन्त बोधगम्य है। कोई ईश्वर अथवा देवता नहीं बल्कि मनुश्य स्वयं अपने भाग्य का विधायक है। यदि वह इस जीवन में सत् कर्म करता है तो उसका पुर्नजन्म उच्चतर जीवन में होगा और इसी प्रकार वह ऊँचा उठता जायेगा और अन्ततोगत्वा निर्वाण अथवा जीवन मरण से मुक्ति प्राप्त कर लेगा इसके विपरीत दुश्कर्मों का दंड अवश्य मिलता है। उनसे न केवल मनुश्य निर्वाण से वंचित होगा वरन् वह निम्न और निम्नतर जीवन में जन्म लेता जायेगा। मनुष्य को सब प्रकार की अति से बचना चाहिये अर्थात् न तो अधिक भोग विलास का जीवन व्यतीत करना चाहिये और न कठोर तप साधना का। उसके लिये मध्यम मार्ग श्रेयस्कर है। सदाचार की साधारण

बातों यथा– सत्य, दान, शौच और भावनिग्रह के अतिरिक्त महात्मा बुद्ध ने प्रेम, दया, समानता और वाणी अथवा कर्म से जीवमात्र को कष्ट न पहुँचाने पर बहुत जोर दिया है। निषेधात्मक रूप में बौद्ध धर्म वैदिक यज्ञों और कर्मकाण्डों को निर्वाण का साधन नहीं मानता और ब्राह्मणों की सत्ता को चुनौती देता है।

महात्मा बुद्ध का धर्म किसी यान्त्रिक कर्मकाण्ड, सूक्ष्म दार्शनिकता और पौराणिक अन्धमान्यता के ऊपर आधारित न था। उसका आधार तो विराग, अंसग्रह, सन्तोष और अध्यवसाय जैसे उदात्त सिद्धान्त ही थे जो जनसाधारण के लिये भी सुबोध थे। तथागत का धर्म किसी वर्ग विशेष की सम्पत्ति न था। उसके द्वार सबके लिये खुले थे। जड़ मतवादों से परे वह विश्वधर्म था। वह बहुजनहितार्थ, बहुजनसुखार्थ, लोकानुकम्पा के लिये और सुख के लिये था। वर्तमान सामाजिक सन्दर्भ में इस बौद्ध दर्शन की महती प्रांसगिकता है। मध्यम प्रतिपदा के मार्ग पर चलकर ही समाज में लुप्त हो रही संवेदना को रोका जा सकता है क्योंकि संवेदना के अभाव में सामाजिक मूल्यों, पारिवारिक मूल्यों एवं नैतिक मूल्यों का निरन्तर क्षय हो रहा है जिससे समाज में कोई भी मनुष्य सुरक्षित नहीं है। अविद्या एवं तृश्णा के कारण मानव समाज भौतिकवादी संस्कृति से पूर्णतया आबद्ध हो चुका है जहां अनेक समस्यायें हाथ फैलाये उसका स्वागत कर रही हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में यदि देखा जाये तो आज की सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण समस्या हथियारों की होड़, परमाणु प्रसार और अन्तरिक्ष युद्ध तथा प्रक्षेपास्त्र क्षमता का निरन्तर विकास है। अब तक के ज्ञात 2056 परमाणु परीक्षणों का परिणाम यह है कि पूरी दुनिया को पल भर में बारह बार नष्ट करने की क्षमता मानव समाज के पास हो गयी है। ज्ञान–विज्ञान के चरमोत्कर्ष पर आसीन मनुष्य स्वयं का अस्तित्व मिटाने पर तुला है। ऐसे में विश्व के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती विश्व शान्ति बनाये रखना और हथियारों की होड़ समाप्त कर विश्व शान्ति स्थापित करना और विश्व बन्धुत्व की भावना से विश्व संघ की परिकल्पना को साकार करना है। इस सन्दर्भ में बुद्ध का दर्शन ही सर्वाधिक प्रांसंगिक है। अहिंसा पर आधारित महात्मा बुद्ध के नैतिकतावादी ज्ञान से भौतिकतावादी ज्ञान के दुष्परिणामों को समाप्त किया जा सकता हैं।

यदि सभी मनुष्य स्वयं को समाज की एक महत्वपूर्ण इकाई मानकर बुद्ध के 'शील' को स्वयं पर लागू करें तो उनके कर्म नियन्त्रित हो जायेगें और अनैतिक तथा स्वार्थमय कार्य से विरत हो जायेगें। 'समाधि' अर्थात् एकाग्रता के द्वारा समष्टि भाव उत्पन्न कर सामाजिक प्रज्ञा विकसित की जा सकती है।

महात्मा बुद्ध के त्रिरत्नों के समान आश्टांगिक मार्ग की भी राश्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय प्रयोजन में महती प्रासंगिकता है। राश्ट्रों के मध्य सम्यक् दृष्टि, सम्यक, संकल्प, सम्यक, वाक, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक आजीव की आज नितान्त आवश्यकता है। दया, दान, करूणा, मैत्री, अहिंसा, आदि सदाचार पूर्ण आचरण का स्वांग तो सभी राष्ट्र रचते हैं परन्तु व्यवहारतः वे इससे सरोकार नहीं रखते। राश्ट्रीय हितों को पूर्ति के उद्देश्य से किया गया प्राकृतिक संसाधनों का दुरूपयोग पर्यावरण असंतुलन व प्राकृतिक आपदा को आमंत्रित कर रहा है। तृष्णा के परिणामस्वरूप उत्पन्न भ्रष्टाचार ने और अविद्या के कारण उत्पन्न आतंकवाद ने सम्पूर्ण विश्व को एक बारूद का ढेर बना दिया है और किसी भी पल कोई तात्कालिक कारण चिंगारी बनकर इस विश्व का विनाश कर सकता है। अतः महात्मा बुद्ध के आष्टांगिक मार्ग पर चलकर मानव समाज के समक्ष उत्पन्न अनेक भयावह समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

बौद्ध धर्म का चरम लक्ष्य है निर्वाण जिसका शाब्दिक अर्थ है बुझ जाना या शान्त हो जाना। निर्वाण की अवस्था में सामान्य जीवन की संकीर्ण रूचियां समाप्त हो जाती है और व्यक्ति पूर्ण शान्त व समत्व जीवन व्यतीत करता है। अपने कल्याण, शांति, सुरक्षा व सर्वागीण विकास के लिये मनुष्य ने समाज, कानून व सरकार का निर्माण किया है किन्तु वर्तमान में मनुष्य का यह बौद्धिक प्रयास आत्मघाती सिद्ध हो रहा है। एक राष्ट्र/राज्य अपने नागरिकों का सर्वोच्च अभिभावक, शुभचिंतक व कल्याणक होता है, किन्तु वह अशांत व तृष्णायुक्त रहकर अपने मूल कर्तव्य जनकल्याण को करने में असमर्थ हो जाता है। उसके संकीर्ण विचार व गतिविधियां सम्पूर्ण वैश्विक भूमण्डल को प्रभावित करती हैं। ऐसी दुरूह परिस्थितियों में निर्वाण की अन्तर्राष्ट्रीय परिकल्पना विकसित होनी चाहिये। राष्ट्रों का निर्वाण बौद्ध भिक्षुओं की भांति शांत व सम जीवन को प्राप्त करने से होगा, उनका अहंभाव अपशमित होना चाहिये। निर्वाण को प्राप्त सभी राष्ट्र विश्व शान्ति की स्थापना करने में सक्षम होगें और विश्व शांति के द्वारा ही प्रत्येक जन का कल्याण व समुन्नत जीवन सम्भव है ।

**निष्कर्ष**–

महात्मा बुद्ध के मूल उपदेशों का सार जगतव्यापी दुःख और दुःख का निराकरण है। वैश्वीकरण एवं उदारीकरण के इस दौर में एक ऐसी वैश्विक संस्कृति उदीयमान हो रही है जिससे आमजन की मानसिकता प्रदूषित हो रही है तथा सामाजिक विघटन, पारिवारिक विघटन और वैयक्तिक विघटन तेजी से हो रहा है। मनुष्य का नैतिक अद्यः पतन तीव्र गति से हो रहा है और अपसंस्कृति के कारण जन से जगत तक दुःखों को आत्मसात कर रहे हैं तथा उसे विधि का विधान मानकर प्रतिरोध का प्रयास करने में असमर्थ है। अतः इन दुस्सह परिस्थितियों में यह नितान्त आवश्यक हो गया है

कि नैतिक सामाजिक आदर्श स्थापित करने के लिए अन्तः शुद्धि और सम्यक् कर्म की जो शिक्षा महात्मा बुद्ध ने छठी शताब्दी ई०पू० में दी थी उसे वर्तमान में पूर्णत आत्मसात कर लिया जाये। निस्सन्देह बौद्ध धर्म मौलिक रूप में मानवता की उच्चतम प्रतिष्ठा का संस्थापक है वह आदि में कल्याणकारी है, मध्य में कल्याणकारी है और अन्त में भी कल्याणकारी है। भेदभाव रहित समाज, एकीकृत राश्ट्र और विश्व बन्धुत्व की स्थापना के लिये निसन्देह महात्मा बुद्ध का दर्शन वर्तमान में अत्यधिक प्रासंगिक है।

**सन्दर्भ**


1. **पाण्डे, गोविन्द्र चन्द्र** – बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, लखनऊ, 1989
2. **राकटल, डब्ल्यू0 डब्ल्यू** – दि लाइफ ऑफ बुद्ध लन्दन, द्वितीय संस्करण
3. **अलेक्जेण्डर** – दि लाइफ एण्ड टीचिंग्स ऑफ बुद्ध, कलकत्ता 1957
4. **वार्डर, ऐ0क0** – इण्डियन बुद्धिज्म, दिल्ली, 1970
5. **आचार्य नरेन्द्रदेव** – बौद्ध धर्म दर्शन,
6. **पाण्डे, जी0सी0** – स्टडीज इन दि ऑरिजिन्स ऑफ बुद्धिज्म, दिल्ली, 1980
7. **गोखले, वी0पी0** – गौतम्स विजन ऑफ ट्रुथ दिल्ली, 1970



**शोधपत्र लेखक :**

**डॉ0 रजत गंगवार**

असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास)

राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय

बीसलपुर, बरेली।

46

# Ecotourism Industry In The World For Resources Conflicts And Environmental Preservation

**Dr. Vinai Kumar Shanna and Dr. Amit Agrawal**

**Abstract**

According to the World Bank, Tourism is the fastest and biggest growing industry in the world. It has become the popular global leisure activity that relies mainly on physical environment. Ecotourism is considered as successful when it reduces the environmental impacts of tourism pace while benefits for local community culturally and economically as well as foster environmental education. Despite many efforts of ecotourism developers heading to sustainable development with natural and cultural preservation, the mass tourism brought many negative impacts beside the significant positive impacts on local environments. Ecotourism has contributed greatly on local economics, socio-culture and environment in term of its effects. Among other aspects, the importance of environment was always emphasized in ecotourism activities and development. The most valuable contribution of ecotourism into local environment is preservation of biodiversity. At the heart of this transformation stands the paradox of ecotourism: it exploits natural environments while at the same time depending on their preservation. They have also served to restrict competing forms of resource use. Local populations in particular have seen their access to natural resources diminished. In the era of heightened environmental consciousness and accessibility to remote areas, Eco-tourism has emerged as one of the fast growing markets in tourism industry that essentially based on natural environment. Ecotourism has profound social impacts through the transformations it generates in the distribution of access to natural resources. This paper explores interest conflicts between local and external user groups in an ecotourism destination in Uttarakhand and Uttar Pradesh. Its focus is on strategies through which external groups related to ecotourism and environmental preservation have sought to appropriate control over natural resources.

**Keywords:** Ecotourism, natural resources, social conflicts, and environmental preservation. **INTRODUCTION**

Ecotourism is entirely a new approach in environmental preservation tourism. Ecotourism, also known as ecological tourism, is a form of tourism that appeals to the socially conscious individuals and ecologically. Ecotourism is a preserving travel to natural sites to appreciate the heritage, cultural and natural history of the environment, taking care not to disturb the integrity of the ecosystem, while creating economic and naturally opportunities that make conservation and protection of natural resources advantageous to the local people. Ecotourism helps increase knowledge and awareness of environmental degradation and promotes cultural awareness. This influx of tourists can aid economic and social growth. Generally speaking, ecotourism focuses on personal growth, volunteering, and learning new ways to live on the earth planet; typically involving travel to destinations where cultural heritage, wildlife, flora and fauna are the primary attractions. Responsible and sensitive ecotourism includes programs that minimize the negative aspects of conventional tourism on the environment, and enhance the cultural integrity of local people and also prevent conflicts. Therefore, in addition to evaluating environmental and cultural factors, an integral part of ecotourism is in the promotion of water conservation, recycling, energy efficiency, and creation of economic opportunities for the local communities. Ecotourism is a sustainable form of natural resource-based tourism. It focuses primarily on experiencing and learning about nature, its landscape, flora, fauna and their habitats, as well as cultural artifacts from the locality.

India, the land of varied geography offers several tourist destinations that not just de-stress but also rejuvenate you. There are several ways to enjoy Mother Nature in most pristine way. The Indian tradition has always taught that, humankind is a part of nature and one should look upon all creation with the eyes of a love and respect. Traces go back to ancient civilisations of India, when people used to nurture the philosophy of the oneness of life. There are about 80 national parks and 441 sanctuaries in India, which works for the protection and conservation of wildlife resource in India. The India topography boasts an abundant source of flora & fauna. India has numerous rare and endangered species in its surroundings. Tourism competes with other forms of development and human activity for natural resources, especially land and water. The use of natural resources subsequently leads to the transformation of ecological habitats and loss of flora and fauna. Land transformation for tourism development can directly destroy ecological habitats. Natural and cultural landscape values form a basis for ecotourism. These values are geographical position, microclimatic conditions, existence of water, natural beauties, existence of natural vegetation, existence of wildlife, surface features, geomorphologic structure, local food, festivals and pageants, traditional agricultural

structure, local handicrafts, regionaldress culture, historical events and people, heritage appeals, architectural variety, traditional music and folk dance, artistic activities and so on (Gerry, 2001; Lane, 1993, Lanquar, 1995; Soykan, 1999; Bnassoulis, 2002, Catibog-Sinha & Wen, 2008; Mlynarczyk, 2002; Drzewiecki, 2001; Kiper, 2006).

**Activities of Ecotourism**

Table No.01

| Activities of Ecotourism | |
|---|---|
| Agrotourism | Hiking Trails |
| Angling / Fishing | Horse Safari |
| Backwaters | Island Tourism |
| Bird Watching | Jeep Safari |
| Camel Safari | Mountain Biking |
| Camping Adventure | Mountain Expeditions |
| Canoeing | Naturally (Ayurveda) Meditation |
| Coastal Tourism | Polar/ Glassier Tourism |
| Cruise Holidays | Rainforests |
| Disaster tourism | Space Tourism |
| Education Tourism | Sports Tourism |
| Elephant Safari | Trekking |
| Heritage Tourism | White Water Rafting |

Today, the entire world is facing a deep crisis and is in the danger of being doomed. The rich forest areas and biological diversities have been relentlessly divested to erect concrete walls. It is tragic that since last few decades, the mad quest for the material end and economical progress in India and abroad has become identical with the exploitation of nature in all its appearances. There are numerous Botanical and Zoological Gardens in India, which are working towards the enhancement of the Ecosystem. Poaching has stopped to large extent. There are severe punishments for poachers, hunters and illegal traders of animals and trees. Tree plantation are taking place in several places. There are several animal & plant rights organisation, who fight for the rights of the animals and plants. Numerous organisations and NGOs are coming forward to provide environmental education to the common people at the grass root level. Ecotourism is a broad term encompassing many types of travel that share the goals of cultural and environmental awareness and respect, minimal environmental impact, and the preservation and betterment of local populations worldwide. Many opportunities exist for both vacationing and volunteering. **PURPOSE /AIMS-**

1. To make us understand what is ecotourism.
2. To understand the main benefits of ecotourism.
3. To understand the role of ecotourism in conflicts over resources and environmental preservation.
4. To contribute to an environmental preservation and conflicts agenda through ecotourism. **RESEARCH METHODOLOGY** - Exploratory research gives valuable insight, generates ideas and valuable aspect in more explorative manner. Primary data gives first hand information for specific purposes in hand, whereas secondary data consist of information important to describe and highlight valuable insights in the research. Secondary data have been obtained from the books, published reports, internet, libraries, journals /magazines, and reports of certain government agencies. Data was collected by preparing schedules and questionnaires. 200 people were made subjects. The respondents have been chosen randomly and requested to grant interviews. The questions have then been asked in a pre-determined sequence. These data are analyzed/sorted with the help of computer.

**Benefits of Ecotourism**

Ecotourism should provide a quality tourism experience. Ecotourism contributes to conservation or preservation of the natural resources and promotes stewardship of natural and cultural resources. Ecotourism should be effectively managed for the long-term through minimal negative impacts on the host environment. Ecotourism functions as a clear catalyst of change, in the sense that it incorporates new environments into market economies. Ecotourism is largely perceived to safeguard natural areas and thereby to contribute to the conservation of biodiversity. It focuses primarily on experiencing and learning about nature, its landscape, flora, fauna and their habitats, as well as cultural artifacts from the locality. In ecotourism planning the first issue that emerges is the environment and its conservation (Munn, 1992; Ceballos-Lascurain, 1996; Gossling, 1999; Tisdell & Wilson, 2002; Lindsey etal., 2005; Lopez-Espinosa de los Monteros, 2002; Fung & Wong, 2007). It entails a commodification and symbolic reshaping of a variety of natural characteristics, in order to extract use or exchange value from them. Ecotourism is tourism which is conducted responsibly to conserve the environment and sustain the well-being

of local people. Ecotourism occurs in natural areas or places of unique ecological or cultural interest. It

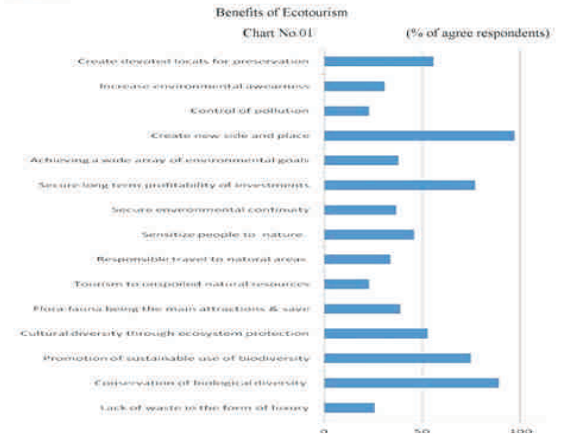


Sources: Self Survey

**Reasons Of Resource Conflicts In Ecotourism**

Power grants stakeholders access to valuable resources and enables them to divert responsibility for the deterioration of these resources to less powerful stakeholders. The ways in which the attribution of responsibility for environmental problems is used politically, becomes important in the definition of solutions. The question, however, is whether tourism can be a viable livelihood alternative in a context in which the most fundamental social problems continue unresolved. The unequal distribution of power not only restricts the local population's access to natural resources.

It also reduces their opportunities to substantially benefit from tourism. Their easy and renewed access to natural resources fails to provide an incentive for using them in a sustainable manner. Both processes are interrelated. The same policies and practices that increase the access of powerful players, contribute to the marginalisation and resulting impoverishment of smallholders. In the name of environmental necessity, this dual argument enables the ecotourism industry to claim access to natural resources and to curtail local competition in the use of these resources. This is not uncommon. There is a tendency among environmental organisations and policy makers to regard local populations as the main threat to the natural environment (Monbiot apud Mowforth; Munt, 1998, p. 264; Troost, 1995).

**Reasons of Resource conflicts in Ecotourism**

Chart No 02 (% of agree respondents)

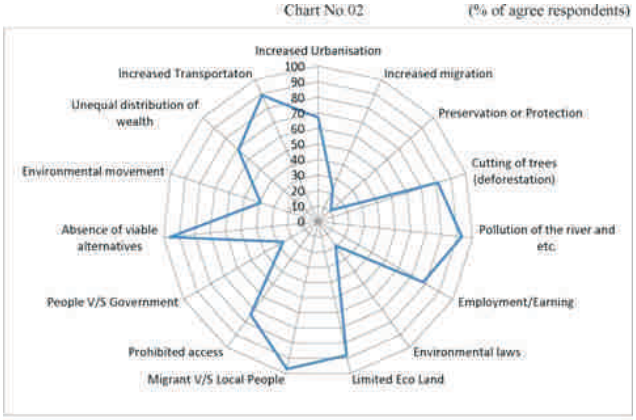


Sources: Self Survey

**Ecotourism And Environmental Preservation Relationship**

Ecotourism activities generally can create various negative impacts on the surrounding environment. Increased human interference in ecologically fragile areas can cause irreversible change in the existing ecological processes. These problems can be reflected in degrading natural resources, vegetation structure and the size of the habitat patch, increasing deforestation anddecreasing upstream water flow. Ecotourism is often perceived as a tool for promoting environmental preservation development in developing countries. Ecotourism helps in community development by providing the alternate source of livelihood to local coirv which is more sustainable. Many view ecotourism as a viable way to protect the natural environment and create social and economic benefits for local communities. Ecotourism encompasses a spectrum of nature-based activities that foster visitor appreciation and understanding of natural and cultural heritage and are managed to be ecologically, economically and socially sustainable. Therefore, ecotourism is accepted as an alternative type of environmental preservation.

**Relationship Between Ecotourism And Privation Of Conflicts Factors**

Ecotourism in India is gradually qualifying for attention of the tourists, the government and entrepreneurs for obvious reasons. India has enough potential in ecotourism to cater to the interests of the tourists. Ecotourism industry is one of the leading employment generating sectors of India and it generates directly or indirectly approximately 3.8% employment out of the total employment generation every year in India. Development and improvement of infrastructure facilities are another important benefit offered by the ecotourism industry. If ecotourism

Chart No.03 (% of agree respondents)

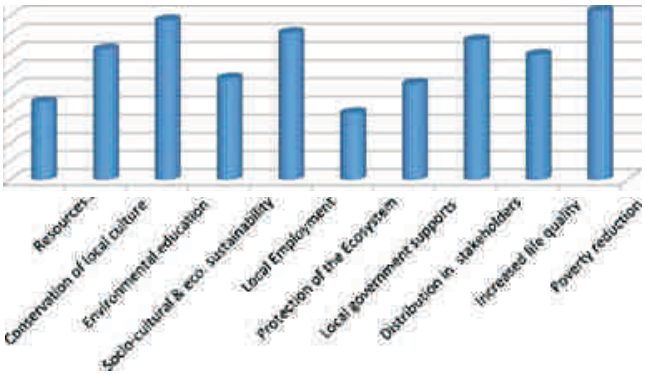


increase than conflicts are prevent.

**RELATIONSHIP BETWEEN ECOTOURISM AND CONFLICTS Factors**

Environmentalists and tourism entrepreneurs struggle to have the settlement displaced.

Environmental conflicts have emerged as key issues challenging local, regional, national ecotourism. Environmental crises and problems throughout the world are widespread and increasing rapidly. The association between the ecotourism and conflicts is varied and complex. The factors or causes of ecotourism conflicts vary across the globe and their manifestations differ considerably. The struggle for control over natural resources has also led to interest conflicts between federal institutions. Inequalities in access to natural resources have increased the conflicts.

Local people complain about the absence of viable alternatives. Environmentalists promote the cultivation of a variety of fruits as a suitable alternative to current agricultural practices. This alternative, however, is reject by rural leaderships as not viable. The conflict centres around the question who has the right to claim, occupy and exploit physical spaces of strategic interest. The establishment of protected areas often entails an abrupt change in local rural economies previously based on exploitation of various natural resources.

Chart No.04 (% of agree respondents)

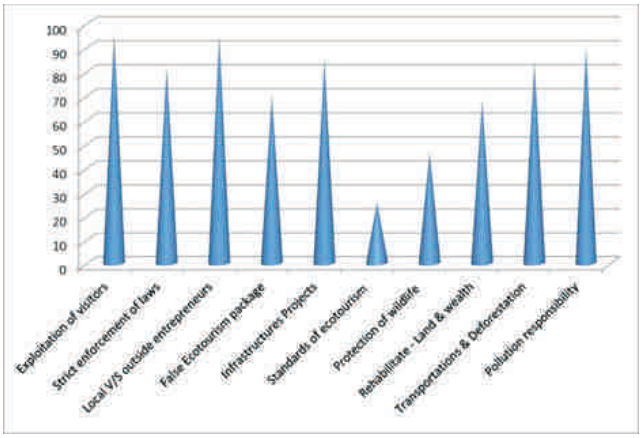


**Concluding Remarks**

Worldwide, the ecotourism industry makes new and increasingly powerful claims on local natural resources. Such claims are secured through public environmental policies, the most visible of which are the creation of protected areas. Ecotourism has profound social impacts through the transformation it generates in the distribution of access to and control over natural resources. The establishment of such areas is legitimised by the necessity for environmental preservation. The driving force behind environmental preservation comes from the ecotourism industry, government agencies and the environmental movement. All these are external actors. Local people, on the contrary, have had their access to natural resources restricted. It is by no means the intention to depict the local population as passive victims of events. Interventions have also mostly benefited external groups, in particular the ecotourism industry and the environmental movement, through an increase of control over natural resources. The resistance strategies of the local population and their leadership, however, are beyond the scope of this paper. Ecotourism exploits environments while at the same time depending on their preservation. This paradox leads to the restriction of competing forms of natural resource use, in the case of India through the implementation of environmental regulation. A crucial question for understanding environmental policies and their consequences is: what is being preserved, by whom and for whom? The implementation of preservation policies and the rapid pace of tourism development have resulted in the emergence of new, external power groups in India. Gradually, power is shifting away from local to external hands. This results in conflicts over the access to valuable resources. Ecotourism exploits environments while at the same time depending on their preservation. This paradox leads to the restriction of competing forms of natural resource use, in the case of Canoas through the implementation of environmental regulation. The small sample size of this study is restrictive, and the results' generalizability is limited to the particular population in a specific region of a specific country. Although the data's narrow scope might have limited the results, the latter brought to light empirical evidence of environmental awareness. We figured out that local administration plays a vital role to set rules and regulation for controlling the behaviour of visitors, local people and other stakeholders of the ecotourism attraction at the destination. An inactive management body can ruin the collaboration and image of the destination along with the natural resources available in the attraction.

The study provided us a wider understanding on tourism, its operation, stakeholders, and importance of stakeholder collaboration, the role of local communities in building the eco friendly destination as well as the impact of ecotourism in the environment of tourism attraction. The majority of visitors are always at the attraction for different purposes and motives such as research, amusement, visit, relaxation etc therefore, they may not be aware of their behaviour during the trip to the attraction. Since development of effective awareness education programme along with thorough supplied information is essential, it needs to be provided and managed properly.

SOME IMPORTANT ACTION POINTS TO CONFLICTS OVER RESOURCES AND ENVIRONMENTAL PRESERVATION

The benefits of locals cannot be ignored hence proper strategies for integration of local communities in the development of ecotourism attraction is required. Those strategies should include awareness, environment education and self-employment opportunities and vocational trainings or skills education programme for environmental preservation and natural resources and environment conservation has to be provided to local communities.

The Local people or community seeks for empowerment after being aware of the negative impacts of the tourism activities in their location; hence, engagement of local communities in empowerment plan may remain fruitful for community, attraction and environment. Empowerment regarding conservation and preservation of the environment

should be given to local communities up to some extents by the authorities since they are rooted to the location.

We realised that local people are always interested to receive benefit from the happenings in the location by participating in it. If the participation is not provided, they try to void the rules in order to participate since they have a strong sense of possessions to the location. Such activities bring environmental damages by locals. Therefore, understanding on feeling, interest and participation of local communities is vital while developing a destination as a tourism attraction.

**REFERENCES**


Aggarwal Prateek.(1991). International Tourism. Reference Press, Delhi, PP 60-74. Aneja Puneet.(2005). "Tourism Growth in India". Kurukshetra, Vol. 17, No.9, June 05, PP 11-14. Bansal, S.P. & Kumar, J. (2011). Ecotourism for Community Development: A Stakeholder's Perspective in Great Himalayan National Park. International Journal of Social Ecology and Sustainable Development, 2(2), 31-40.

Bhattacharya, D., Chowdhury, B. and Sarkar,R. (2011). Irresponsible Ecotourism Practices Flanking The Best National Park In India: A Multivariate Analysis. 2nd International Conference On Business And Economic Research (2nd Icber 2011) Proceeding, 1901-1928.

Chaturvedi Devesh.(2010). "Tourism in India: Ensuring Buoyancy and Sustainability". Yojana, Vol.13, No.8, May 10, PP 16-18.

D.S. Bharadwaj, & O.P. Kandari.(1999). Domestic Tourism in India, Indus Publishing Company, Delhi, PP 59-66.

Das Niranjan, H.J. Syiemlieh (2004) "Ecotourism in Assam". Yojana, Vol.8, No.4, PP 29- 31. Hariharan Iyer Kailash.(1995). Tourism Development in India. Vista International Publishing House, New Delhi, PP 90-113.

Joshi, R.L.(2011). Eco-tourism Planning and Management On Eco-tourism Destinations of Bajhang District, Nepal. M. Sc. Forestry (2010-2012), p.ll. Online [Available]: http://www.forestrynepal.org/images/ publications/ Ecotourism %20 destination %20baj hang.pdf.

KHAN, M. M.(1997). Tourism development and dependency theory: mass tourism vs. ecotourism. Annals of Tourism Research, v. 24, p. 988-991.

Kohli, M.S.(2002) "Ecotourism and Himalayas". Yojana, Vol.24, No.15, August 02, PP 25- 28. Leela Shelly.(1995) Tourism Development in India. Arihant Publishers, Jaipur, PP 120-186. Mohan Rao, V.(2007). "India - Tourists Delight". Kurushetra, June07, Vol.22, No. 14, PP 21- 22.

Motiram.(2007). "Globalisation: Potentials and Prospects of Mass Tourism in India". South Asian Journal of Socio-Political Studies (SAJOSPS), Vol.7, No.2 (July-Dec 2007) PP 104-107. Rabindra Seth, Gupta, O.M. (1996). Tourism in India-An Overview, Vol-2. Kalpaz Publications, New Delhi, PP 130-167.

Ratandeep Singh. (2000) Handbook of Environmental Guidelines for Indian Tourism. Kanishka Publishers and Distributors, New Delhi, PP 22-79.

Santhi, V., Shanthi, G., Benon, S., & Arunkumar, J.(2011). "Tourism in India-Emerging Trends". South Asian Journal of Socio-Political Studies (SAJOSPS), Vol.11, No.2 (Jan-June 11) PP 130-133.

www. indiatouri smstate. com

www.tourisminindia.com

www. ecotouri smindia. com



**Dr. Vinai Kumar Sharma and Dr. Amit Agrawal**
Faculty of Commerce
Government Raza P. G. College,
Rampur - 244901 (Rampur),
Uttar Pradesh, India

47

# ''फर्रुखाबाद के वंगश नबाब एवं 1857 की क्रान्ति में उनकी भूमिका''

डॉ0 रजत गंगवार

**सारांश–**

फर्रुखाबाद उत्तर प्रदेश राज्य में गंगा–यमुना के दोआव के मध्य स्थित है और इसका जन्म मुगल साम्राज्य के विघटन के परिणामस्वरूप एक स्वतन्त्र रियासत के रूप में हुआ था। चूंकि मेरा जन्म इसी फर्रुखाबाद जनपद की कायमगंज तहसील में हुआ है अतः यहां के इतिहास को जानने के लिये मैं हमेशा उत्सुक रहती थी। सामान्य रूप में फर्रुखाबाद में निवास करते हुये ऐसे अनेक स्थानों पर दृष्टि पड़ी जिनके विषय में कौतूहल होना स्वाभाविक है। इतिहास ग्रन्थों एवं विद्वानों से जानकारी हुई कि फर्रुखाबाद एक नबावी शहर है और वहां के नबावों ने सम्पूर्ण फर्रुखाबाद जनपद को इतिहास का विषय बना दिया।

इतिहास औरंगजेब की मृत्यु के उपरान्त उत्तर प्रदेश में जो अराजकता उत्पन्न हो गई थी उसके परिणामस्वरूप दोआब में अभिमानप्रिय व्यक्तियों को सत्ता प्राप्त करने का अवसर प्राप्त हुआ। इन व्यक्तियों में गंगा नदी के दक्षिणवर्ती प्रदेश के बंगश पठानों में मुहम्मद खां बंगश ने एक विशाल राज्य कायम करने में सफलता प्राप्त की। फर्रुखाबाद के बंगश नवाबों का इतिहास इसी पराक्रमी बंगश पठान से शुरू होता है किन्तु मुगल साम्राज्य के विघटन काल में प्रमुख भूमिका निर्वाह करने वाले फर्रुखाबाद के वंगश नवाबों के प्रामाणिक इतिहास का देश की राष्ट्रभाषा में सर्वथा अभाव है अतः इतिहास के इस अंधकारमय किन्तु महत्वपूर्ण अध्याय को आलोक में लाने की नितान्त आवश्यकता है।

यह सत्य है कि 1714 ई0 से पूर्व फर्रुखाबाद इस नाम से नहीं जाना जाता था। यह प्राचीनतम पांचाल जनपद का एक भाग था। वैदिक काल, रामायणकाल तथा महाभारत काल से ही फर्रुखाबाद का इतिहास गौरवशाली रहा है। जैन धर्म और बौद्ध धर्म की कीर्ति पताकायें इसी क्षेत्र में फहराई गईं। फर्रुखाबाद की एक–एक जगह की सोंधी माटी की महक में किसी न किसी महत्वपूर्ण घटना की गाथा समाहित है। कम्पिल, श्रृंगी, च्यवन, अगस्त्य और धौम्य ऋषियों की इस पतित भूमि में लगभग 2600 वर्ष पूर्व संकिसा में भगवान गौतम बुद्ध ने चार माह के वर्षावास में अपने कल्याणकारी उपदेशों से मानवता का संहेश दिया था। लगभग 5000 वर्श पूर्व राजा कुशध्वज ने संकिसा में, 1400 वर्ष पूर्व सम्राट हर्श ने कन्नौज में, 900 वर्ष पूर्व राजा जयचन्द्र ने कन्नौज राज्य में, 800 वर्श पूर्व गुर्जर प्रतिहार वंशी राजा भोज ने बिचपुरी–भोजपुर में, 600 वर्श पूर्व राजा खोर ने शमशाबाद में और 300 वर्ष पूर्व नबाव मोहम्मद खां बंगश ने फर्रुखाबाद में अपने शासन की कीर्ति ध्वजा फहराई थी।

बंगश या बंगिश फारसी भाषा का शब्द है जो पठानों की एक जाति विशेष को इंगित करता है। मुहम्मद खां बंगश का जन्म 26 अक्टूबर सन् 1665 ई0 को मऊ रशीदाबाद में हुआ था। वह बचपन से ही हौसलामन्द और बहादुर थे और अपने संगठन एवं नायकत्व के गुणों के आधार पर मुहम्मद खां बंगश ने मुगल साम्राज्य में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था। मुगल साम्राज्य के प्रति आस्थावान मुहम्मद खां ने मुगल सूबेदारों की सैनिक सहायता का कार्य किया। 28 वर्श की की अवस्था में वह कन्नौज के अमलदार बने। सन् 1712 ई0 में बहादुरशाह की मृत्यु के बाद उत्तराधिकार के युद्ध में मोहम्मद खां बंगश ने 11000 सैनिकों के साथ फर्रुखशियर की सहायता की और इस युद्ध में फर्रुखाबाद को विजयश्री दिलाने में उनका बड़ा योगदान रहा। मोहम्द खां बंगश की सेवाओं से अनुग्रहीत होकर बादशाह फर्रुवशियर ने उन्हें नबाव की पदवी से अलंकृत किया और बुन्देलखण्ड एवं कन्नौज की जागीरें पुरुस्कार स्वरूप दीं।

पर्याप्त धन एवं यश अर्जित करने के पश्चात् मुहम्मद खां बंगश ने अपने यश को सुरक्षित करने की ओर भी पर्याप्त ध्यान दिया और इस हेतु रक्षा के लिये दुर्ग, अभियान के लिये मार्ग एवं उद्योग, व्यापार तथा समृद्धि के लिये नगर बसाये। सर्वप्रथम उन्होंने अपने बड़े बेटे कायमखां के नाम से अपनी जन्मभूमि मऊ रशीदाबाद से दक्षिण पूर्व की ओर कायमगंज नगर बसाया। इसी वर्श एक अन्य नगर का निर्माण किया जिसका नाम मुहम्मदाबाद रखा। वे दोनों नगर बसाने का समाचार जब दिल्ली पहुंचा तो बंगश नबाव के विरोधियों ने बादशाह फर्रुखशियर के कान भरे किन्तु समय रहते मुगल सम्राट के सन्देह का निराकरण करने के लिये बंगश नबाव ने फर्रुखशियर के नाम से फर्रुखाबाद नगर बसाने की घोशणा की।

मुगल बादशाह की इच्छानुसार 27 दिसम्बर सन् 1714 ई0 को फर्रुखाबाद नगर की स्थापना की गई। इस नगर की स्थापना के लिये नेकनाम चेले को नियुक्त किया गया। इस गोलाकार नगर का बसाव बहुत ही सुरक्षित दंग से किया गया था। नगर के चारों ओर

15 गज चौड़ी और 30 फुट गहरी खाई बनवाई गई। नगर की प्राचीर के 12 द्वार थे जिन पर तोपें चढ़ी रहती थीं। इन दरवाजों के नाम गंगा दरवाजा, अमेठी दरवाजा, कुतुब दरवाजा, हुसैनी दरवाजा, कादरी दरवाजा, लाल दरवाजा, मदार दरवाजा, ढिलावल दरवाजा, खण्डिया दरवाजा, जसमई दरवाजा, तराई दरवाजा और मऊ दरवाजा थे। मुगल बादशाह फर्रुखीशयर ने अपनी सल्तनत के अन्तिम दिनों में नबाव मोहम्मद खां बंगश के हक में खुद मुख्तारी का फरमान जारी किया था जो नेशनल म्यूजियम दिल्ली में सुरक्षित है।

9 दिसम्बर, 1743 ई0 में मुहम्मद खां बंगश का देहान्त हो गया। नबाव का शव हयात बाग में उनके बनवाये गये मकबरे में दफनाया गया। यह मकबरा शहर के मऊ दरवाजे से लगभग आधा मील पश्चिम में नेकपुर खुर्द में है। मकबरे का विशाल गुम्बद दूर–दूर से दिखाई देता है मगर आज यह मकबरा उपेक्षित पड़ा हुआ है और कोई आश्चर्य नहीं कि यदि इसके संरक्षण का प्रयत्न नहीं किया गया तो यह बिल्कुल ही नश्ट हो जाये।

मुहम्मद खां बंगश की मृत्यु के उपरान्त उसका ज्येश्ठ पुत्र कायम खां फर्रुखाबाद का नबाव बना। वह अपने पिता का सुयोग्य पुत्र था। सन् 1746–47 में कायम खां के संरक्षण में ही मुंशी साहिब राय ने 'खुजिस्ता कलाम' के नाम से नबाव मुहम्मद खां बंगश के पत्रों का सम्पादन किया था। कायम खां बंगश का राज्यकाल 5 वर्श रहा। कायम खां के बाद इमाम खां, इमाम खां के बाद अहमद खां, अहमद खां के बाद मुजफ्फर जंग और मुजफ्फर जंग के बाद इमदाद हुसैन खां नबाव बने।

सन् 1752 ई0 में अवध के नबाव वजीर सफस्दरजंग ने फर्रुखाबाद पर अधिकार कर लिया और इसे अवध की सामन्ती रियासत बना दिया और यहां के नबाव 4 लाख रूपये बतौर खिराज अवध के नबाव को देने लगे।

सन् 1801 ई0 में सहायक सन्धि के द्वारा अवध पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकार होने के बाद फर्रुखाबाद भी अवध के प्रभुत्व से हटकर अंग्रेजों के अधिकार में आ गया और यहां के नबाव अवध के बजाय अंग्रेजों को खिराज देने लगे। अंग्रेजों ने फर्रुखाबाद में अपना एक रेजीडेण्ट भी रखना प्रारम्भ कर दिया। फर्रुखाबाद के तत्कालीन नबाव इमदाद हुसैन खां को यह बात मानने के लिये बाध्य किया गया कि वह एक लाख रूपये सालाना पेन्शन स्वीकार कर अपनी सम्पूर्ण रियासत कम्पनी के सुपुर्द कर दे। चोरी, जालसाजी और साजिश के द्वारा अन्ततः फर्रुखाबाद पर भी 4 जून 1802 ई0 को ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अधिकार हो गया और हेनरी वेलजली को फर्रुखाबाद क्रान्ति की पृष्ठभूमि का पहला शासक नियुक्त किया गया।

**क्रान्ति की पृष्ठभूमि**

इतिहास साक्षी है कि विश्व में समय–समय पर अनेक क्रातियां हुई हैं। इन क्रातियों के अन्तस्थल में जनता के हृदय में चिरकाल से छिपी हुई भीषण असन्तोश की अग्नि होती है जिसका विस्फोट क्रान्ति के रूप में मूर्तिमान होकर अत्याचारी शासकों के शासन दुर्ग को भस्मीभूत कर देता है। सन् 1857 ई0 की क्रान्ति के अन्तस्थल में भी यह तथ्य साकार हुआ था इस क्रान्ति के पीछे लगभग 100 वर्ष के अंग्रेजों के अत्याचारों की करुण, मार्मिक एवं हृदयद्रावक घटनाएं थीं जिन्होंने क्रान्ति का विस्फोट किया। 10 मई, 1857 ई0 को मेरठ में प्रारम्भ इस प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की पृश्ठभूमि फर्रुखाबाद जनपद में भी तैयार हो चुकी थी। स्वामी बिरजानन्द सरस्वती ने उत्कट देशभक्ति की भावना से प्रेरित होकर कम्पिल से लेकर सोरों तक फैले हुये जंगल में उत्तरी भारत के राजा महाराजाओं एवं नबावों को एकत्र कर उन्हें अंग्रेजी दासता से मुक्त होने की प्रेरणा दी थी। अपने गुरु बिरजानन्द से प्रेरित होकर स्वामी दयानन्द सरस्वती ने उत्तरी भारत की छावनियों के प्रमुख केन्द्रों में राश्ट्रीय भावना एवं स्वदेश प्रेम का अलख जगाया परिणामस्वरूप फर्रुखाबाद संभाग में अंग्रेजों के विदेशी शासन के विरूद्ध आक्रोश बढ़ने लगा था। धर्मशालाओं और चौराहों के पास लावनियों के गायन में जनमानस में विदेशी शासन के विरूद्ध आक्रोश प्रकट होने लगा था। 1857 ई0 की क्रान्ति के विस्फोट के पूर्व नाना साहब की सेना बिठूर तक सीमित न रहकर फर्रुखाबाद जनपद में भी फैल गई थी। इसके अतिरिक्त फर्रुखाबाद के पूर्वी भाग में कैप्टन गंगासिंह, शिवगुलाम दीक्षित और गंगाभक्त सिंह ने स्थान–स्थान पर चौकियां स्थापित कर क्रान्ति की तैयारी कर ली थी और फतेहगंज, फर्रुखाबाद, कायमगंज एवं परियाली में हथियार तैयार करने की फैक्ट्ररियां भी जोरों से व्यस्त थीं। सामान्य, जनता में बहुधा कुल्हाड़ी, बल्लभ, भाले तलवार, धनुश वाण, लाठी, हंसिया और देशी बन्दूकें वितरित कर दी गईं थी।

1857 की क्रान्ति के समय फर्रुखाबाद 6 तहसीलों और 11 थानों में विभक्त था। उस समय फर्रुखाबाद का शासन दो भागों से किया जाता था। पूर्वी एवं पश्चिमी भाग। पूर्वी भाग में कन्नौज से कानपुर, तिर्वा, ठठिया और इन्दरगढ़ थे जबकि पश्चिमी भाग में कायमगंज, शमशाबाद, रूदायन, अलीगंज, पटियाली और कासगंज सम्मिलित थे। पूर्वी भाग का शासन मोहीसन अली खां और पश्चिमी भाग का शासन अहमद यार खां को सौंपा गया था।

इस समय फर्रुखाबाद नबाव के पास सैन्य शक्ति भी पर्याप्त थी। कुल 24 प्रकार की तोपें थीं। सेना में 5 सवारों की 5 रेजीमेन्टें थीं। पहली रेजीमेन्ट के साहब सिंह, दूसरी के अहमद यार

खां अफरीदी, तीसरी के शाहनूर खां अफरीदी, चौथी के बलिदाद खां और पांचवीं रेजीमेन्ट के इन्चार्ज मोहीसन अली खां थे। सभी सेनाओं के अध्यक्ष सैयद असगर हुसैन थे।

1857 ई0 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा स्वीकृत पेंशन पर जीवनयापन करने वाले फर्रुखाबाद के नबाव तफज्जुल हुसैन खां सत्ता से वंचित होकर अपमानजनक जीवन व्यतीत कर रहे थे। इससे नबाव और जनता अंग्रेजी शासन के विरूद्ध थे। फर्रुखाबाद जनपद के भारतीय सैनिकों में विस्फोट होने के पूर्व से ही इस अफवाह से असन्तोश था कि रूपयों में कुछ अंश चमड़े की मिलावट का होता है और भारतीय सैनिकों के लिये प्रयुक्त आटे में हड्डियों का चूर्ण भी मिश्रित रहता है। इस उत्तेजित मानसिक स्थिति में अलीगढ़ में भी विद्रोह होने की खबर ने उन्हें और उत्तेजित कर दिया। वे कुछ कर गुजरने को वेचैन होने लगे।

**घटनायें**

29 मई 1857 को 10वीं देशी रेजीमेन्ट के विद्रोही हो जाने पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने नबाव तफज्जुल हुसैन खां की पेन्शन बन्द करने का हुकम जारी कर दिया। 3 जून को सीतापुर के विद्रोहियों की 41 वीं देशी फौज के गंगा पार कर फर्रुखाबाद आने पर राश्ट्र मुक्ति संघर्श आरम्भ हो गया। अंग्रेज अधिकारी शाम को भाग खड़े हुये। 10वीं पटलन के सूबेदार अमीर खां और दूसरे सैनिक अधिकारियों ने नबाव से गद्दी पर बैठने को कहा और इसके लिये आग्रह ही नहीं किया बल्कि धमकाया भी। अन्त में नबाव ने स्वीकृति दे दी। 16 जून, 1857 को डुगडुगी द्वारा ऐलान किया गया कि ''खल्क अल्ला का, मुल्क बादशाह का, हुक्म नबाव रईस बहादुर का''। 18 जून को 41वीं देशी पलटन ने जेल तोड़ दी और कैदियों को मुक्त कर दिया, और यूरोपियनों के बंगले लूट लिये गये। 25 जून, 1857 को क्रान्तिकारियो ने फतेहगंज के किले पर आक्रमण किया। अन्त में 4 जुलाई, 1857 को अंग्रेजों ने किला तोड़ दिया और कुछके अफसरों के अतिरिक्त सभी यूरोपियन नावों द्वारा कानपुर की ओर चल दिये। जब पहली नाव बिठूर पहुंची तो सभी अंग्रेजों को कानपुर के क्रान्तिकारियों ने मौत के घाट उतार दिया। भागते हुये विदेशियों को पकड़ने में महादेवा, गंगासिंह और छत्तासिंह ने अपनी देशभक्ति का परिचय दिया।

16 जून से लेकर 23 अक्टूबर 1857 तक फर्रुखाबाद पर नबाव तफज्जुल हुसैन खां का स्वतन्त्र शासन रहा। नबाव ने 41वीं देशी पलटन की सलाह से गुलाम अली खां को फर्रुखाबाद का कोतवाल नियुक्त किया और उनके नाम का तारूब अली खां ने एक परवाना लिखा जिस पर नबाव ने फारसी भाशा में पहली बार हस्ताक्षर किये। अहमद यार खां को फर्रुखाबाद के पश्चिमी भाग का और मोहसिन अली खान को पूर्वी भाग का नाजिम बनाया गया। ठाकुर पाण्डे को फतेहगंज का कलेक्टर नियुक्त किया गया।

नबाव की स्वतन्त्रत सरकार स्थापित होने पर अंग्रेजी शासन के अनेक कर्मचाारियों ने स्वतन्त्र नबाव की सेवाएं स्वीकार कर ली थीं। 1 जुलाई, 1857 तक एक भी अंग्रेज फर्रुखाबाद में नही रहा और फर्रुखाबाद की आजादी का झण्डा लहराने लगा। नबावी शासन में अनेक प्रमुख क्रान्तिकारियों का फर्रुखाबाद आगमन हुआ। इनमें प्रमुख रूप से दिल्ली बादशाह के प्रमुख सेनापति बख्त खां, शहजादा फिरोजशाह, मालागढ़ के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी बलिदाद खां, मैनपुरी के राजा तेजसिंह नबाव की सहायता के लिये आये थे और कुछ समय तक यहीं रहे।

**दमन**

2 जनवरी, 1857 को अंग्रेजी फौज ने काली नदी को पार किया और 3 जनवरी, 1857 को फतेहगढ़ के किले पर अंग्रेजों का अधिकार स्थापित होने पर कोलिन कैम्पबेल ने सभी विद्रोही मुसलमान रईसों को सामने उपस्थित होने का नादिरशाही आदेश दिया। दूसरे दिन नबाव के प्रधानमन्त्री मोहसिन अली खां को चारपाई से बांधकर लाया गया, उनके सम्पूर्ण शरीर पर सुअर की चर्बी मली गई और अपने मुल्क की आजादी के लिये संघर्श करने के आरोप में फांसी पर लटका दिया गया।

27 जनवरी, 1858 ई0 को अंग्रेजी सेना और क्रान्तिकारी सैनिकों के बीच शमशाबाद का निर्णायक युद्ध हुआ। उस समय रूहेलखण्ड के क्रान्तिकारी सैनिक भी अंग्रेजी सेना से लोहा लेने के लिये शमशाबाद में इकट्ठे हो गये थे। दोनों सेनाओं के मध्य भीशण सघर्श हुआ जिससे अंग्रेजी सेना का लेफ्टीनेन्ट मैकडोनल बुरी तरह घायल हुआ और उसकी मृत्यु हो गई। क्रान्तिकारी सेना में बरेली की दो सैनिक रेजीमेन्ट, मऊ के पठान, शमशाबाद और कायमगंज के पठान सम्मिलित थे। दुर्भाग्य से अधिक साधन सम्पन्न अंग्रेजी सेना के सामने क्रान्तिकारी सेना टिक न सकी। इस ऐतिहासिक युद्ध में लगभग 300 क्रातिकारी सैनिक शहीद हुये।

क्रान्तिकारी नेता नियाज मुहम्मद ने जो शमशाबाद के युद्ध में घायल हो गये थे, 400 घुड़सवार क्रातिकारियों को लेकर 18 मार्च 1858 ई0 को रामगंगा पर बने नावों के पुल को पारकर कम्पिल पर आक्रमण करने का प्रयास किया लेकिन फतेहगंज से अंग्रेजों की कुमुक आने के कारण उनका यह प्रयास सफल न हो सका। सुमरी क्षेत्र में मुलतान खां के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों का एक समूह अंग्रेजी शासन के विरूद्ध कार्यवाही करने में संलग्न रहा।

अप्रैल, 1858 ई0 में विग्रेडियर सीटन ने 82वीं पलटन के साथ बनगांव के पास कमरूर में क्रान्तिकारी सेना पर आक्रमण कर दिया जिसमें बड़ी संख्या में क्रान्तिकारी सैनिक मारे गये। इस क्रान्तिकारी सेना का नेतृत्व इस्माइल खां और मोहसिन अली खां कर रहे थे। कुछ दिनों बाद युद्ध के एक घाव के कारण मोहसिन अली खां की मृत्यु हो गई।

22 अप्रैल 1858 ई0 को जनरल वालमोल ने फर्रुखाबाद में स्थित अल्लागंज में क्रान्तिकारी निजाम अली की सेना को पराजित किया और निजाम अली खां इसी युद्ध में शहीद हुये।

देश की आजादी के दीवाने अपने प्राणों की चिन्ता न करते हुये अंग्रेजी सेना से लड़ते रहे और अपने प्राण न्योछावर करते रहे। लेकिन अंग्रेजों के श्रेश्ठतर सैन्य बल के सामने अन्त में क्रान्तिकारियों को पराजय का मुंह देखना पड़ा। अंग्रेजो की दृश्टि में देशभक्त नबाव तफज्जुल हुसैन को राजद्रोही घोशित कर दिया गया। 29 जनवरी, 1859 को नबाव को गिरफ्तार कर फतेहगढ़ लाया गया। 3 जजों के कमीशन ने उन पर मुकदमा चलाया। अंग्रेजी शासन के विरूद्ध विद्रोह करने एवं यूरोपियनों की हत्या करने के अपराध में नबाव को फांसी की सजा सुनाई गई लेकिन उनकी इच्छानुसार उन्हें मक्का जाने की स्वीकृति दे दी गई और 1882 ई0 में मक्का में ही नबाव ने अपने जीवन की अन्तिम सांस ली।

सन् 1857 के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम में स्वाधीनता प्राप्ति की इच्छा की बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। क्रान्तिकारी नेता निजाम अली खां, इस्माइल खां, नियाज मुहम्मद, मोहसिन अली खां आदि ने देश की स्वतन्त्रता के संग्राम में वीरगति का अमर गौरव प्राप्त किया। बड़ी संख्या में देशभक्त क्रान्तिकारी पकड़ गये उन्हें या तो फांसी पर लटका दिया गया या गोलियों से उड़ा दिया गया। मऊ दरवाजे से फतेहगंज की कचहरी तक सड़क के किनारे के दोनों तरफ पीपल, आम, जामुन, बरगद आदि के पेड़ों पर फांसी देने के लिये रस्सियां लटकाई गई थीं। तत्कालीन रिपोर्ट के आधार पर क्रान्ति के बाद भी फतेहगंज और फर्रुखाबाद से ही 432 लोगों को मौत के घाट उतारा गया। अंग्रेज शासकों के अत्याचार केवल फतेहगंज और फर्रुखाबाद तक सीमित नहीं रहे। ग्रामीण जनता के साथ भी अमानुशिक अत्याचार किये गये। भोजपुर के लोगों को जिन्होंने अंग्रेजों की नावों पर आक्रमण किया था। वे भी कालेखां की मुखबरी के फलस्वरूप दण्डित हुये। थानेदार की हत्या करने के आरोप में फतेहसिंह, अयोध्यासिंह, उमराव सिंह, मुन्नासिंह, लोवनसिंह, गंगासिंह आदि पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें फांसी या कालेपानी का दण्ड दिया गया था।

इतिहास की अनेक पुस्तकों से ज्ञात हुआ है गदर के मुकदमों में विद्राहियें को फांसी एवं सजायें देने के लिये एक्ट 17 ऑफ 1857– 20 जून, 1857 को पारित हुआ था जिसके द्वारा 61 लोगों को फांसी की सजा, 248 लोगों को काला पानी की सजा और 23 लोगों को कठोर कारावास की सजा दी गई।

निसन्देह 1857 ई0 की क्रान्ति में फर्रुखाबाद का योगदान अविस्मरणीय है। राजा से लेकर आम जनता तक सभी इसमें शामिल हो गये थे और सड़कों के दोनों ओर स्थित कोई भी वृक्ष ऐसा नहीं था जिस पर आजादी के दीवानों को फांसी न दी गई हो।

**निष्कर्ष**

सारांशतः अपने इस शोधपत्र के निश्कर्श को मैं निम्न तीन बिन्दुओं में प्रस्तुत करना चाहूँगी।

**प्रथमत** :– मुगल साम्राज्य के विघटन काल में प्रमुख भूमिका निर्वाह करने वाले फर्रुखाबाद के बंगश नबावों के प्रामाणिक इतिहास का देश की राश्ट्रभाशा मे सर्वथा अभाव है अतः इतिहास के इस अंधकारमय किन्तु महत्वपूर्ण अध्याय को आलोक में लाने की नितान्त आवश्यकता है। साथ ही साथ यह भी आवश्यक है कि क्रान्ति काल में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करने वाले ज्ञात एवं अज्ञात शहीदों एवं देशभक्तों को देश के इतिहास में उनका उचित स्थान दिलाया जाये। यही हमारी उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजली है।

**दूसरे**–फर्रूखाबाद के नवाबों की कहानियाँ मूकभाशा में वे स्थान एवं ध्वशांवशेश बतलाते हैं जो उपेक्षित रहने के कारण धीरे–धीरे नश्ट होते चले जा रहे हैं। अतः इन स्थानों एवं इमारतों को पर्याप्त संरक्षण प्रदान करने की आवश्यकता है। इसके लिये न केवल क्षेत्रीय बल्कि राज्य एवं केन्द्रीय स्तर पर पहल करने की जरूरत है और इस कार्य को पूरा करने के लिये हम सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों से अपील कर सकते हैं ताकि इतिहास की इस धरोहर को अक्षुण्ण बनाया जा सके।

**तीसरे**–हमारी इस भव्य विरासत के कई अनहुए पहलू है जिन पर शोध करने की नितान्त आवश्यकता हैं ताकि इस विरासत को अतीत से वर्तमान और वर्तमान से भविश्य की ओर ले जाया जा सके और इसे अक्षुण्ण एवं अतुलनीय बनाया जा सके।

**सन्दर्भ**

बंगश नबावों के इतिहास को जानने में कम्पनी राज्य का इतिहास पर्याप्त सहायक सामग्री उपलब्ध कराता है। इस दृश्टि से सी0एल0 वैलिस के दो ग्रन्थ'' फतेहगढ़ एण्ड द म्यूटनी'' और ''फतेहगढ़'' काफी महत्व रखते हैं। उर्दू के कुछ ग्रन्थ इस सम्बन्ध में अत्यन्त उपयोगी सूत्र हैं। सैय्यद सबाउद्दीन, मुहम्मद खां बंगश के समय में ग्वालियर से फर्रुखाबाद आये थे, उन्होंने जो संम्समरण

लिखे उनसे तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों और बंगश के विशय में रोचक सामग्री मिली है। मुनब्बर अली एवं बहादुर अली की ''खानदान–ए–बंगश'' प्रामाणिक पुस्तक है। कालेराम द्वारा लिखित ''फतेहगढ़नामा'' में फतेहगढ़ एवं फर्रुखाबा सम्बन्धी अनेक किवदन्तियां संग्रहीत है। प्रत्यक्षतः प्रामाणिक सामग्री में मुन्शी साहिबराम का ''खजिस्ता कलाम'' नामक काव्य संग्रहि अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं इसमें मुहम्मद खां बंगश के समय–समय पर लिखे गये दो सौ पत्रों का संग्रह है। प्रथम तीन नबावों से सम्बन्धित सामग्री के लिये इलियट व हड्सन द्वारा सम्पादित ''हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड वाइ इट्स हिस्टोरियन'' का आठवां भाग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार 1857 की क्रान्ति में फर्रुखाबाद के नबावों की भूमिका के लिये उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रकाशित ''फ्रीडम स्ट्रगल इन उत्तर प्रदेश'' अत्यन्त महत्वपूर्ण सूचना एवं सामग्री उपलब्ध कराता है। इसके अतिरिक्त क्रान्तिकारी इतिहास को जानने के लिये हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन म्यूटनी वाई0जी0डब्ल्यू0 फारेस्ट, हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन म्यूटनी वाई की एण्ड म्यूलर, हिस्ट्री ऑफ दि इण्डियन म्यूटनी वाई0सी0 वाल, रिकार्ड्स ऑफ दि इंटेलीजेंस डिपार्टमेन्ट वाई सर डब्ल्यू0 म्योर, नैरेटिव्स ऑफ दि इवेन्टस इन फर्रुखाबाद डिस्ट्रिक्ट ऑफ 1857–58 आदि भी विशेश रूप से उल्लेखनीय हैं।

**शोधपत्र लेखक :**
**डॉ0 रजत गंगवार**
असिस्टेंट प्रोफेसर (इतिहास)
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बीसलपुर, बरेली।

48

# Construction of Integrated Indian Market By Goods And Services Tax (gst)

**Dr. Vinai Kumar Shanna and Dr. Amit Agrawal**

**Abstract**

An important tax reform has been made as the GST (Goods and Service Tax) as applicable from 1 July 2017. GST by eliminating 17 indirect taxes, one nation - one market - uniform taxes has been given importance. Taxes have been imposed in India since ancient times. The Indian tax system is very intriguing. Various types of taxes are levied by the center, states and local bodies on the public. Value-Added Tax (VAT), Service Tax and Corporate Tax, which is levied on public or businessmen in exchange for goods and services. Government has made several improvements in indirect taxes from time to time. An important and profitable move has been taken by the Government of India as tax reform. Many experts have expected GDP growth of 1.2 percent to 2 percent increase after GST is implemented. The center, states, industrialists, producers and common man, they will benefit greatly in the country through GST. GST is a matter of discussion in current time. That is why we have to understand various aspects of GST. In this research paper, the problems related to the methods and procedures of GST and the effects and implementation of GST will also be studied.

***Key Words: GST, One Nation - One Market***

**Introduction**

The government of any country requires money to nurture and develop its nation, the government levies tax from the public to earn that money. King of ancient times also used to raise the nation by raising taxes. Intelligent kings like Ashoka and Akbar formed systematic policies of taxation and tax collection. By which revenue can be earned to run the nation without disturbing the general public. The surcharge or money taken by the state or the legal institution by the state is called tax or tax. In the modern era's economy, the rule of law is regulated in many rules, on which the representatives of the people are seen, in what form is the tax being given by the public, where and how much the development work being done by the government is. Tax is divided into two parts - 1 .Direct tax 2.Indirect tax

Direct tax - a tax that is given to the government directly by a person or organization. Indirect tax - a tax whose burden can be moved on the shoulders of other persons through business transactions.

Recently a history has been created in the improvement of Indian indirect taxes system. It is in the form of reforms and service tax (GST). Efforts have been made to repair and reform the tax system through GST. Under which one will have to pay the same for the supply of goods and services. Under this 17 Taxes of the Center and the state have been abolished. G.S.T. in India has been implemented since 1 July 2017. Changes were made from time to time due to the complexity of the Indian tax system in order to make the tax system easy and convenient. In an effort to follow the changes in the global economy, the Indian tax system has made commendable improvements in the last decade. By whom tax-related laws have been made rational and simple.

**Background of Gst**

The foundation of GST is laid out in many countries of the world before India. Thereby benefiting many nations in profits and some had to face normal situations. So far around 160 countries have introduced VAT and G.S.T. in the world. 7 of these countries are in ASEAN. 19 in Asia, 53 in Europe, 7 in Osania, 44 in Africa, 11 in South America, 19 in the Caribbean, Central and North America, Clearly VAT and GST were implemented in most countries in Europe, is. In France (1954) GST was first introduced. Later in Germany (1968) and in the United Kingdom (1973). India is the 166th country in the world where GST has been implemented. The theme of GST in India was first done in 2000. A committee was formed by the government in 2000 and with the help of IT; the framework of GST was also prepared. After some time, in 2006, Mr. P. Chidambaram proposed GST in the budget speech. For this, the date of April 1, 2010 is kept for implementation. In the year 2009, the first paper presented by the Finance Minister was presented on GST, in this paper the details of the implementation and benefits of taxes were presented. After a long discussion, G.S.T. Applied from 1 July 2017.

A. Khurana (2016) GST will provide relief to the producers and consumers by providing detailed and comprehensive coverage of the import tax credit set-off, service tax set-off and involving many taxes. He also explained that a skilled form of GST will be moving forward to widening the tax base for both the central and the state governments and through resource improvement in tax compliance and improvement in tax compliance.

Anushuya and Narwal (2014) in his lesson G.S.T. presented their conclusions on the CGE model. GST and CGE have been used in many countries'. Both of these are very popular all over the world but GST. There is a powerful concept in the field of indirect taxes.

Girish Garg (2014) since independence, GST is the logical step towards compteive indirect tax reform in our country. The impact of GST will be on all the regions and all categories of importers, exporters and traders. In the largest taxation reforms in India, a goods and services tax (GST) is ready to integrate state economies and promote overall development. GST will build a single, integrated Indian market to strengthen the economy.

Objective

1. To study the object and service tax (GST)
2. To study the GST procedures
3. To study the effects of GST
4. To study the confusion of GST

**Research Methodology**

The research paper has been prepared using the primary and second equivalents. 10-10 customers and businessmen from 10 districts of Uttar Pradesh were selected for research. The samples have been collected through questionnaires / schedules. Computer program / MS Data have been analyzed with the help of Excel. The compilation of poems has been done through magazines, websites and newspapers too. Descriptive method has also been used for the study.

**Procedure**

GST is a single tax on manufacture of goods and services from manufacturer to consumer to consumer. The tax rates given in each stage will be available after the increase, which will be taxed at the GST facility at the cost of value addition. In this way, GST will be installed by the final consumer only by the final seller of the supply chain. GST in most coutes There is an integrated system. But in India there has been a double arrangement like Canada and Brazil. In different countries, the standard GST rate is between 16-20% and in India it has been kept at 4 slabs 12, 18 and 28 percent.

**GST Procedure Figure 1**

| | Manufacturing | Wholesalers | Retailers | Customers (Last) |
|---|---|---|---|---|
| 1 .Purchase Cost | Rs.4000 | Rs.6000 | Rs.7000 | Rs. 9000 |
| 2 + CGST @ 6 % | Rs. 360 | Rs. 420 | Rs. 540 | X |
| 3.+ SGST@6% | Rs. 360 | Rs. 420 | Rs. 540 | X |
| 4.Selling Price | Rs.6000 | Rs.7000 | Rs.9000 | X |
| 5. | Return Claim of GST | Return Claim of GST | Return Claim of GST | * GST due/Paid by Customers |
| 6. GST Due (8-7=5) | Rs.240 | Rs. 120 | Rs.240 | Rs.1080 |
| 7. GST Purchase Credit | Rs.480 | Rs.840 | Rs. 840 | X |
| 8.GST on Sales | Rs.720 | Rs.720 | Rs. 1080 | X |

Taxes to be replaced by GST Table-1

| Taxes levied and collected by the Central | Taxes levied and collected by the state |
|---|---|
| 1. Central Excise<br>2. Excise duty<br>3. Extra excise duty<br>4. Extra excise duty<br>5. Additional Customs<br>6. Additional Special Customs (SAD) 7.Service tax<br>8.Central surcharge and favor | 1. State VAT (Value Added Tax)<br>2. Central sales tax<br>3. Luxury tax<br>4. Entering (in all forms)<br>5. Entertaining and entertainment Tax<br>6. Tax on advertisements<br>7. Purchase tax<br>8. Tax on lottery betting and gambling<br>9. State surcharge and favor |

Sources: GOI

**POSITIVE EFFECT OF GST'S :**

G.S.T. the positive impact (profits) of the business are following - expansion of business, development of indigenous multinational corporations, transformation of trade, transformation of business, increasing flow of resources, while under the social and economic impact, development of infrastructure, Increase in savings appropriation and income, massive appropriation in social sector, advanced living standards, an increase in international cooperation, growth in job creation and so on.

Monica Saharawat (2015) GST is a historic reform move in the Indian tax system. Implementation of GST is standing for a consistent tax system which will be the most corrupt in the current indirect taxes and in the long run it will increase towards higher production, will create employment opportunities more and the GDP will increase from 1 to 1.5 percent Will increase by 5 percent. Apart from this, he stressed that GST will give a world-class tax system to India by catching various treatments for the manufacturing and services sector.

**GST positive effect Table 2**

| Description of the factors of positive effect | Ranking By Customers | Ranking By Businessman |
|---|---|---|
| Increasing the resources available for poverty alleviation and development of the country | 01 | 08 |
| The goods will be available at the same price / e-commerce in the country | 02 | 01 |
| Due to low tax rates in the manufacturing sector, there will be a reduction in manufacturing costs. | 03 | 02 |
| The common man will help reduce the burden of tax on | 04 | 07 |
| Increased demand due to increase in demand of goods will increase | 05 | 04 |
| Many business associations will be taxed by online registration | 06 | 06 |
| Increase in demand will increase the supply which will generate demand | 07 | 03 |
| Employment opportunities will be created which will reduce the unemployment | 08 | 09 |
| International investment will also have simplicity of investment | 09 | 05 |
| GST also curbed the theft of taxes | 10 | 10 |

Source - Self Survey, Selected 10 factors have been done in the table.

**NEGATIVE IMPACT OF GST'S:** The negative effects of GST (business) are in the context of business - Increase in competition, imports being expensive, threat of the existence of small and cottage industries, etc. While social and economic side effects have become visible in the following form: The things of daily life are expensive, changes in priorities of plans, increase in unemployment, increased inequalities, impact on the local language, poverty, national universal impact, impact of Western culture etc. Prabhakar Sahu, Ashwini Vishnoi (2016) On the one hand, the nature of GST is as clear, on the other hand, its misery is in its expanse.

**GST's negative impact**
**Table-3**

| Description of the factors of negative effect | Ranking By Customers | Ranking By Businessman |
|---|---|---|
| GST will increase in poverty | 01 | 06 |
| The tax burden on the common man will be from buying expensive products. | 02 | 05 |
| Service tax will increase for service costs | 03 | 04 |
| The entire burden of GST will be on the consumer. | 04 | 08 |
| Exploitation activities, information to small and uneducated professionals /consumers | 05 | 03 |
| The confusion and complexity of the object and service tax | 06 | 02 |
| Do not rein on the theft of taxes by GST | 07 | 0 |
| No effect on unemployment | 08 | 08 |
| Depression between Center and State Relations | 09 | 07 |
| Confusion and complexity of information technology integration | 10 | 01 |

Source - Self Survey; Selected 10 factors have been done in the table. **ENGAGING IN GST**

The change in the indirect tax system by the implementation of 1 GST will change the working of the tax society for which information technology integration should be there.

2 There is a possibility of cracks in the relations between the Center and the State as the petrol, tobacco is excluded from the GST.

3 Since it is consumption-based. In the case of services where the service has been provided. The same should be determined and strict exploitation should be done to ensure that the ultimate consumer enjoys the real benefits of GST.

4 Efforts to eliminate obstacles to provide information to small business and uneducated consumers.

**Conclusion**

In 1991, the economic reform program was implemented in India in a new form. G.S.T. The Indian economy is an indicator of growth. G.T. on India The effect of this has been mixed in different areas. Negative and negative dominance has taken place in each region. But now it is a mandatory concept in the global scenario. According to Group City, India will be the world's largest economy by 2050 on the basis of purchasing power. This will increase tax revenue as well as tax breaks will also take almost a break. The exact result will be seen only after a long time. GST is the most logical steps towards the comprehensive indirect tax reform in our country since independence. GST is livable on all supply of goods and provision of services as well combination thereof. All sectors of economy whether the industry, business including Govt, departments and service sector shall have to bear impact of GST. All sections of economy viz., big, medium, small scale units, intermediaries, importers, exporters, traders, professionals and consumers shall be directly affected by GST... One of the biggest taxation reforms in India — the Goods and Service Tax (GST) - is all set to integrate State economies and boost overall growth.

**RECOMMENDATIONS:**

- GST is the future tax. GST law should, therefore be forward looking and open for futuristic businesses such as e-commerce, technology based, IT etc and recognize internet, digital economy, start ups etc.
- Smooth, transparent and simple transition provisions are needed rather than revenue centric provisions. These ought to be practical too. Transitional provisions should bear this objective.
- It should be ensured that all states have verbatim same provisions for rates, levy, administration and procedures.
- Only negative list or exemptions may vary based on regional issues.
- Cost of compliance will be major issue which may take away the benefits of GST.
- GST effect is a multi- dimensional which change the following: increase in revenue, poverty deduction, one nation market, group equality, regional balance, social equality and empowerment, create employment, financial inclusion etc.
- GST positive effect which can be maintained in the long run and including more people in growth process.
- The benefits of GST should reach all sections of population. For this government should adopt policies that will ensure the GST is broad based, benefiting all part of country.
- A large section of the population lack access to basic GST system and address their need for Tax system through informal mean which are costly and unsecure. GST aims to reduce such risks and provide safer options.
- GST System becomes more relevant for the rural economy because of its population size, market potential and changing income levels and consumption pattern.
- GST increase the tax collection, so money is provide for schemes covering risk of life, accidental disability and income in old age is a model to serve millions of poor and is a major step forward toward creation of a sound and sustainable social security net in India.
- The employment intensive pro-poor growth strategy and the improved and reoriented employment generation programmers will go a long way in achieving social inclusion.
- Business and Social enterprise can play a key role in India's agenda of inclusive developments.

**References**

1. Dipti Dr.(2017). "Vastu evam seva kar: Ek rasthra ek bazar - ek kar" Pratiyogita Darpan; July.
2. Garg Girish (2016). "Basic Concept and Features of

Goods and Service Tax in India", Vol. 2, Issue.2, P. 542-549
3. Kaur Milandeep, Chaudhary Kajal, Singh Surjan, Kaur Baljinder (2016)."A study on impact of GST after its implementation" Vol:l Issue:2/Nov 2016
4. Khurana Akanksha (2016). "Goods and Services Tax in India- A Positive Reform for Indirect Tax System", Vol. 4, Iss. 3 , Pp.500 -505
5. Sah Prabhakar and Vishnoi Ashwini (2017), "GST; Antrarastiya Anubhav" Yojana November
6. Sehrawat Monika et.al.,(2015). "GST in India: A Key Tax Reform", International Journal of research-granthalayah, Vol:3, Issue, 12, December 2015 pp.133-141
7. https://cleartax-in/s/gst-rates

**Dr. Vinai Kumar Shanna and Dr. Amit Agrawal**
Faculty of Commerce
Government Raza P. G. College,
Rampur - 244901 (Rampur),
Uttar Pradesh, India

49

# काव्य में सौंदर्य विषयक दृष्टिकोण

डॉ0 अर्चना शर्मा

**सारांश–**

सौंदर्य सृष्टि का वह तत्व है जिसके द्वारा चेतन आनंद को मूर्त रूप में ग्रहण करता है। सौंदर्य काव्य का महान एवं आवश्यक तत्व है। सौंदर्य को हिंदी कवियों ने पूर्णतः स्थान दिया है। सत्य शिव एवं सुंदर के त्रिक् में काव्य मूलतरू सुंदर से ही संबद्ध है। जीवन का सत्य सौंदर्य से समन्वित होकर ही कला को सरस एवं रुचिकर बनाता है और कला को सत्यम, शिवम तथा सुंदरम से युक्त बनाने में समर्थ होता है। सौंदर्य का संबंध संपूर्ण सृष्टि से है। काव्य सृष्टि का पूर्ण विकास सौंदर्य के द्वारा ही संपन्न हो सकता है। जिस कवि में सौंदर्यानुभूति की जितनी गहनता और सघनता होगी, उसकी काव्य कला में उतने ही लोकोत्तर आनंद की सजग अनुभूति तथा व्यापक प्रभावोत्पादकता की क्षमता होगी। सौंदर्य की वस्तुगत सत्ता है। यह सत्ता प्रकृति में है, मानव जीवन और मनुष्य की चेतना में है, इसीलिए काव्य सौंदर्य चेतना को ग्रहण करता है। काव्य सौंदर्य चेतना को ग्रहण करके अपनी सृष्टि करता है। सौंदर्य एक ऐसा भाव है जो सार्वदेशिक और सर्वकालिक है। महर्षि व्यास से लेकर आधुनिक कवियों तक का काव्य इसका प्रमाण है कि यह सभी कवि सौंदर्य के अमर पुजारी रहे हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार– कवि की दृष्टि ही सौंदर्य की ओर जाती है, चाहे वह जहां हो। वस्तुओं के रंग रूप में तथा मनुष्यों के मन, वचन और कर्म में।1 कला, साहित्य और संस्कृति में सौंदर्य का महत्वपूर्ण स्थान है। सौंदर्य आस्वादन एवं अनुभूति की वस्तु है। सौंदर्य की परिधि में प्रकृति और कला दोनों का सौंदर्य समाविष्ट हो जाता है। काव्य सौंदर्य के आस्वादन का रंजनकारी साधन है। सौंदर्य–बोध मानस की एक ऐसी विशिष्ट अनुभूति है जिसमें आनंद, ज्ञान और क्रियात्मक वृत्तियों का सामंजस्य रहता है। सौंदर्य की प्राप्ति आंतरिक और बाह्य दोनों ही कारणों से संभव है। साधारणतः रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या परिणाम आदि के माध्यम से मनुष्य अपने हृदय में जिस सुख का अनुभव करता है, वस्तुतः वही सौंदर्य की अनुभूति कहलाती है। यह अनुभूति शब्द और कला के क्षेत्र में अभिव्यक्ति और प्रभावात्मकता के विभिन्न रूपों में स्वीकृत की गई है। प्रायः सौंदर्य काव्य का प्रमुख वर्ण्य विषय है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक सभी प्रकार के धार्मिक तथा लौकिक साहित्य में इसकी अभिव्यक्ति की गई है। वास्तव में साहित्य का संपूर्ण संसार सौंदर्य का ही संसार है। सौंदर्य शब्द में व्यापक अर्थ निहित है।2

सौंदर्य शब्द सुंदर की भाववाचक संज्ञा से बना है। जहां सुंदरता का भाव होता है वही सौंदर्य कहलाता है। ऋग्वेद में सुंदर शब्द के लिए सुनर, सुनरम, सुनरी आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है।3 सुंदर शब्द मानवीय सौंदर्य को प्रकट करता है जबकि सुनर शब्द मानव एवं मानवेतर जगत के अतिरिक्त कलात्मक तथा मानवकृत अन्य प्रकार के सौंदर्य को भी लक्षित करने की क्षमता रखता है। सौंदर्य शब्द की निष्पत्ति श्सुंदरश विशेषण से भाव अर्थ में ण्यत्ं प्रत्यय जोड़ने से हुई है। वाचस्पत्य कोष के अनुसार श्सुंदरश शब्द श्सुश उपसर्ग उन्द धातु में अरन् प्रत्यय जोड़कर निर्मित हुआ है। सु उपसर्ग का अर्थ भली प्रकार एवं सुष्ठ होता है एवं उन्द शब्द का अर्थ श्सरसश अथवा आर्द्र करना होता है और अरन् प्रत्यय कर्ता वाचक होता है।4 अतः पूरे सुंदर शब्द का अर्थ हुआ जो दर्शक को भली प्रकार सरस तथा प्रसन्नचित्त कर दे। उणादि सूत्रानुसार सुंदर शब्द सुंद़अ र्के संयोजन से निष्पन्न हुआ है।5 जो अच्छी प्रकार से प्रसन्न करें, वह सुंदर कहा जाता है। इस दृष्टि से सौंदर्य में आनंद प्रदान करने की क्षमता होती है। इसलिए सौंदर्य सृष्टि का वह तत्व है जिसके द्वारा चेतन आनंद को मूर्त रूप में ग्रहण करता है।6 भारतीय आचार्यों ने सौंदर्य का संबंध रसानुभूति से बताया है। इसलिए प्रायरू सौंदर्य का तात्पर्य कलागत सौंदर्य अथवा काव्यगत सौंदर्य से ग्रहण किया जाता है। सौंदर्य एक अत्यधिक व्यापक अर्थ रखने वाला शब्द है। सौंदर्य इस विश्व का अति व्यापक तत्व है। जिधर भी दृष्टिपात करें वहां तक अतुलित सौंदर्य ही सौंदर्य दृष्टिगोचर होता है। कल–कल नाद करती हुई धाराएं, चहचहाते हुए पशु–पक्षी, मुस्कुराते हुए पुष्प, वर्षा ऋतु में झर– झर झरता अमृत रस, गगन– गामिनी मधुर ध्वनि किसके मन को मोहित नहीं करते। प्रकृति की ये अनुपम छटायें वास्तव में सौंदर्य का विशाल पुंज है, मानव के आवश्यक अंग नर – नारी, बाल, युवा एवं वृद्ध अपने मूल रूप में सौंदर्य के विशाल रूप हैं। सौंदर्य शब्द की वेदों में अपार चर्चा है।7 सौंदर्य अतुलित शक्तिमान है। सौंदर्य तत्व बड़ा ही आकर्षक एवं सर्वशक्तिमान तत्व है। सौंदर्य अपार होता है, उसे किसी सीमा में बांधा नहीं जा सकता, जो सौन्दर्य देश– काल की सीमाओं में बद्ध हो गया, वह सौन्दर्य ही क्या? सुंदरता की महान अगाध प्रकृति – नदी ऋतु परिवर्तन के साथ ही साथ पट परिवर्तन करती रहती है और इसी परिवर्तन को सौंदर्य के

पारखियों ने मूल – सौंदर्य माना है।8 सौंदर्य प्रकृति का महत्वपूर्ण एवं आकर्षक तत्व है जिसने भारतीय एवं पाश्चात्य समीक्षकों को विवेचन हेतु बाध्य किया है।

कला शास्त्र में सौंदर्य का चित्रण विस्तार से किया गया है। कला का मूल अर्थ वास्तव में किसी काम को करने के सुंदर ढंग से लगाया गया है। अतः सौंदर्य चित्रण भी एक कला है, जो संगीत कला, नृत्य कला, चित्र कला, शिल्प कला, आदि सभी में प्रस्तुत किया गया है।9 हिंदी साहित्य का सौंदर्य चित्रण अपनी विविधता, उदात्तता एवं मनोहारिता के लिए प्रसिद्ध है। सौंदर्य के विभिन्न पक्षों को कवियों ने अपनी मौलिकता के साथ प्रस्तुत किया है। सौंदर्य की नवीनता हिंदी कवियों में दिखाई देती है। नित नवीनता सौंदर्य के स्वरूप का एक अनिवार्य लक्षण है, जिसे संस्कृत तथा हिंदी कवियों ने एकमत हो स्वीकार किया है। सौंदर्य मनुष्य के मन में सद्वृत्ति का संचार करता है। सौंदर्य के विषय में भारतीय परंपरा के कवियों और आचार्यों में बाल्मीकि, कालिदास, माघ, जगन्नाथ, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, रामविलास शर्मा, डॉ हरिद्वारी लाल शर्मा, सुमित्रानंदन पंत, पंडित सदगुरूशरण अवस्थी, डॉ फतह सिंह, निराला, महादेवी वर्मा तथा रामकुमार वर्मा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। पाश्चात्य सौंदर्य विचारकों में प्लेटो, प्लाटीनस, लाक, गेटे कूजिया, नार्टन, टालस्टॉय, शीलिंग, ह्यूम, कीट्स, काण्ट, हीगेल, क्रोचे, कैरिट काइवेल आदि प्रमुख हैं। सौंदर्य के विषय में सभी विद्वान एकमत नहीं हैं। कला और काव्य का संबंध वस्तु जगत के साथ सृष्टा की आत्मा से होने के कारण भारतीय एवं पाश्चात्य सभी विद्वानों के सौंदर्य विवेचन के संबंध में प्रमुख रूप से दो दृष्टिकोण हैं–

1. वस्तुगत या भौतिकवादी दृष्टिकोण, 2. आत्मगत या अध्यात्मवादी दृष्टिकोण । दोनों ही मतों के विचारकों ने अपने दृष्टिकोण से अपने मत का समर्थन किया है। कुछ विचारकों ने सौंदर्य को भौतिकवादी माना है तथा कुछ ने अध्यात्मवादी और कुछ समन्वयवादी दृष्टिकोण को लेकर चले हैं। सभी विचारकों ने सौंदर्य को अपनी–अपनी दृष्टि से देखकर परिभाषित किया है।

वस्तुगत या भौतिकतावादी दृष्टिकोण– में विश्वास करने वाले सौंदर्यशास्त्री सौंदर्य का विवेचन विभाव की दृष्टि से अथवा प्रमेय की दृष्टि से करते हैं। इसमें वस्तु की विशेषताओं एवं गुणों में सौंदर्य होता है। इनकी दृष्टि में सौंदर्य आत्मनिरपेक्ष होता है। इस दृष्टिकोण के विचारक वस्तु या विभाव पक्ष को सर्वाधिक महत्व प्रदान करते हैं, प्रमाता को नहीं। अतः वे उसी में सौंदर्य का अन्वेषण करते हैं। भौतिकवादी दृष्टिकोण को अपनाने वाले सभी भारतीय एवं पाश्चात्य सौंदर्यशास्त्रियों ने सौंदर्य को वस्तु, व्यक्ति, दृश्य अथवा किसी विभाव के रूप, रंग, आकार, व्यवस्थित क्रम, नियमितता, एकान्विति, स्पष्टता, अनुपात मसृणता, समन्वय औचित्य, स्निगधता आदि बाह्य गुणों में ही स्वीकार किया है।10 वस्तु से पृथक उनकी कोई सत्ता नहीं है। जो वस्तु अपने आप में सुंदर है, दृष्टा के अभाव में उसमें कोई अंतर नहीं पड़ता। वस्तुवादी विचारक सौंदर्य का संबंध उपयोगिता से ही जोड़ते हैं।

आत्मगत या अध्यात्मवादी दृष्टिकोण– में विश्वास करने वाले सौंदर्यशास्त्रियों के विवेचन का मूलाधार व्यक्ति अथवा प्रमाता होता है। आदर्शवादी दार्शनिक विद्वानों ने सौंदर्य का आत्मगत दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। इन्होंने प्रमाता की दृष्टि से सौंदर्य की व्याख्या की है ये सौंदर्य की सत्ता व्यक्ति के मन में मानते हैं। इसलिये एक ही वस्तु विभिन्न व्यक्तियों को सुंदर अथवा असुंदर लगती है। सौंदर्य दृष्टि में भिन्नता स्वाभाविक है। बिहारी ने भी कहा है–

समै समै सुंदर समै, रूप कुरूप न कोय।
मन की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होय।।11

अनेक सौंदर्य मर्मज्ञों ने सौंदर्य की विभिन्न प्रकार से व्याख्या की है। कोई इसे आत्मपरक तथा कोई वस्तुपरक स्वीकार करता है। सौंदर्य को वस्तुगत या रूपगत मानने वाले विचारक सौंदर्य को वस्तु या गुण या धर्म मानते हैं जो उसके आकार में समाविष्ट हैं। आत्मगत या आंतरिक रुप में सौंदर्य की सत्ता स्वीकार करने वाले विद्वानों की दृष्टि से सौंदर्य परम सत्ता का आत्मिक रूप है जो परमार्थिक एकता का प्रत्यक्ष प्रतीक है, लेकिन ये दोनों ही दृष्टिकोण एकांगी हैं। सौंदर्यवादी दृष्टिकोण ही वास्तव में जीवन है, सौंदर्य की धारणा को काव्योचित बनाने हेतु समन्वयवादी दृष्टि ही उपयुक्त है। रसानुभूति के लिए आश्रय (भाव) आलंबन (विभाव) दोनों ही पक्षों का महत्व असंदिग्ध है। डॉ रामानंद तिवारी के अनुसार– व्यक्तित्व के एकांत की स्थिति में कलात्मक सौंदर्य और आनंद का उदय नहीं होता। व्यक्तियों की अनेकता में समत्व भाव उत्पन्न होने पर ही सौंदर्य और आनंद का विस्फोट होता है।12

कुछ सौंदर्यशास्त्री समन्वयात्मक दृष्टिकोण भी लेकर चले हैं। वे सौंदर्य को न तो पूर्णतरू आंतरिक ही मानते हैं और न उसे पूर्णतरू बाह्य। वे तो व्यक्ति और वस्तु दोनों में ही सौंदर्य की सत्ता स्वीकार करते हैं। वस्तुवादी अथवा भौतिकवादी सौंदर्यशास्त्री सौंदर्य को पूर्णतरू बाह्य मानते हैं। उनके मतानुसार किसी वस्तु, व्यक्ति, दृश्य अथवा विभाव के बाह्य गुण में विद्यमान होता है। यह दोनों मत अतिवादी हैं। सौंदर्य का समन्वयवादी दृष्टिकोण ही अधिक उचित एवं सार्थक प्रतीत होता है। डॉ गुलाब राय, रामानंद तिवारी, द्वारिका प्रसाद, रामेश्वर लाल खंडेलवाल आदि अनेक सौंदर्यविदों ने इसका समर्थन किया है।

हिंदी के सौंदर्यवेत्ता, सौंदर्य के प्रति आत्मगत दृष्टिकोण रखने वाले पाश्चात्य एवं संस्कृत मनीषियों के मतों को उद्धृत करते हैं लेकिन वे इस संबंध में कोई मौलिक चिंतन नहीं करते और न दृष्टिकोण से सहमति ही प्रकट करते हैं। वास्तव में हिंदी के सभी सौंदर्य चिंतक सौंदर्य के प्रति समन्वयात्मक दृष्टिकोण रखते हैं।13 आलंबन रस –निष्पत्ति का एक अति आवश्यक अवयव है। अतएव कवि उसकी अवहेलना कदापि नहीं कर सकता। बाबू संपूर्णानंद ने लिखा है– काव्य दृश्य हो अथवा श्रव्य, कवि को विभाव और स्थाई भाव से काम लेना पड़ता है, अनुभाव और सात्विक को दिखाना पड़ता है, परंतु उसका लक्ष्य रस ही रहता है।14 बहुत से विचारक सौंदर्य की उभयगत सत्ता स्वीकार करते हैं। सौंदर्य के संदर्भ में विचारकों में मत भिन्नता है। एक वर्ग सौंदर्य को वस्तुगत मानता है तो दूसरा वर्ग आत्मगत। एक तीसरा वर्ग सौंदर्य को समन्वयात्मक मानता है। अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय विद्वानों ने भी समन्वयात्मक दृष्टिकोण का समर्थन किया है। इनमें प्लेटो, बोजा, हीगले, रविंद्र नाथ टैगोर, डॉ संपूर्णानंद, रामचंद्र शुक्ल ,श्रीमुख, फतेह सिंह, हरिवंश सिंह आदि के नाम प्रमुख है। इन्होंने प्रमाता और प्रमेय में अथवा विषय और वस्तु दोनों में ही सौंदर्य की सत्ता स्वीकार की है। डॉ नगेंद्र ने समन्वयवादी मत को स्वीकार करते हुए सौंदर्य के सामान्यतः रूप और प्रतीति को दो पक्षों में स्वीकार किया है।15 हिंदी के अधिकतर विचारक समन्वयवादी हैं।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार– सौंदर्य बाहर की वस्तु नहीं है। मन के भीतर की वस्तु है। यूरोपीय कला समीक्षा की यह एक बड़ी ऊंची उड़ान या बड़ी दूर की कौड़ी समझी गई है, पर वास्तव में यह भाषा के गड़बड़ झाले के सिवा और कुछ नहीं है। जैसे वीर कर्म से पृथक वीरत्व कोई पदार्थ नहीं, वैसे ही सुंदर वस्तु से पृथक सौंदर्य कोई पदार्थ नहीं है। जितनी ही अधिक होगी, उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुंदर कही जाएगी। इस विवेचन से स्पष्ट है कि भीतर– बाहर का भेद व्यर्थ है, जो भीतर है वही बाहर है।16 डॉ रामेश्वर लाल खंडेलवाल सौंदर्य सत्ता को दृष्टा और दृश्य दोनों में ही निहित मानते हैं। न तो किसी व्यक्ति या वस्तु के बाह्य गुण – धर्म मात्र दृष्टा की भावना से निरपेक्ष रहकर अपना सौंदर्यमय अस्तित्व कर सकने में समर्थ है और न ह्रदय की सूक्ष्म और निराकार सौंदर्यावृत्ति मात्र किसी बाह्य वस्तु, व्यक्ति या अन्य सत्ता के आधार के बिना अपना अस्तित्व प्रमाणित कर सकने में सक्षम है। दोनों अपने अस्तित्व की यथार्थता के लिए एक दूसरे पर आश्रित हैं। इस सत्य को भुलाकर दोनों पक्षों में अतिवाद से काम लिया है। और वे अपने अपने पक्ष को बहुत दूर तक घसीट ले गए हैं। ह्रदय के रस या आत्मा के प्रकाश से अछूता सौंदर्य पूर्णतरू युक्त होकर भी निर्जीव व जड़ है और वस्तु के आधार से स्वतंत्र और मनोजगत में ही सूक्ष्म अव्यक्त तथा अचिंत्य रूप से शयन करने वाली वायावी सौंदर्य भावना भी निरर्थक व निष्फल है। वास्तव में सौंदर्य की सत्ता दोनों में समुचित सामंजस्य में है।17 डॉ सुरेश चंद त्यागी के अनुसार– वस्तु के पक्ष में सौंदर्य यदि बाह्य रूपाकार की समुचित योजना है तो व्यक्ति के पक्ष में वह एक आनंदमयी अनुभूति है।18 डॉ फतेह सिंह सौंदर्य को समन्वयवादी दृष्टिकोण से देखते हुए कहते हैं– सौंदर्य के व्यापार में प्रमाता और विभाव दोनों का कुछ ना कुछ हाथ है। उक्त एकांगीपन इस को भूल जाता है और वह यह भी भूल जाता है कि मनुष्य न तो केवल तन हीं है और न केवल मन ही, वह तन– मन दोनों का संघात है। यदि एक शब्द से व्यक्त करना चाहें, तो हम उसे तन– मन अथवा आगे जाएं तो जड़– चेतन्य अथवा शरीर आत्मा भी कह सकते हैं। प्रमाता एवं विभाग के महत्त्व तथा मनुष्य के अस्तित्व को सम्यक रूप से समझे बिना सौंदर्य मीमांसा सदा एकांगी और अधूरी रहेगी।19 डॉ आनंद प्रकाश दीक्षित ने क्रोचे के मत का खंडन करते हुए कला के संबंध में अपने समन्वयवादी विचार प्रकट किए हैं। कला की आध्यात्मिकता पर जोर देकर ही क्रोचे ने भूल की है। सत्य तो यह है कि कला जितनी आध्यात्मिक है, उतनी ही भौतिक भी है। वह न तो इस जगत से दूर रह सकती है और न किसी अलौकिक आध्यात्मिक प्रदेश से ही नितांत संलग्न है। बिना जागतिक विषयाधार के उसकी रचना संभव नहीं है और बिना आध्यात्मिक कल्पना व्यापार के उसका पुनर्नवीनीकरण न हो सकेगा।20

**निष्कर्ष**–

सभी सौंदर्य विचारकों ने सौंदर्य को अपनी–अपनी दृष्टि से देखकर परिभाषित किया है कुछ सौंदर्यशास्त्र तो सौंदर्य की वस्तुगत सत्ता में विश्वास करते हैं और कुछ उसकी आत्मागत सत्ता में। वस्तुगत सत्ता में विश्वास करने वाले सौंदर्यशास्त्री सौंदर्य का विवेचन विभाव की दृष्टि से अथवा प्रमेय की दृष्टि से करते हैं। आत्मगत सत्ता में विश्वास करने वाले सौंदर्य शास्त्रियों के विवेचन का मूलाधार व्यक्ति अथवा प्रमाता होता है। वास्तव में सौंदर्य आत्मा का धर्म है। वस्तु के साथ मन का रागात्मक संबंध स्थापित हो जाने पर उस वस्तु के सौंदर्य की प्रतीति होने लगती है। अतएव सौंदर्य की अनुभूति एकांगी न होकर समन्वयात्मक है। वास्तव में सौंदर्य दृष्टा और दृश्य दोनों में विद्यमान है। अतः समन्वयात्मक दृष्टिकोण ही उपयुक्त प्रतीत होता है। । सौंदर्य दृष्टा और दृश्य, प्रमाता और प्रमेय आश्रय और विभाव दोनों में विद्यमान होता है। अतः सौंदर्य के विषय में अधिकांश भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों का दृष्टिकोण समन्वयात्मक ही रहा है। भारतीय साहित्य, कला, दर्शन विज्ञान एवं संस्कृति के क्षेत्र में मूल

विशिष्टता समन्वय की ही रही है जो सौंदर्य के विषय में भी सिद्ध होती है। सामंजस्य में जीवन और कला की पूर्णता को स्वीकार करने वाले विद्वानों ने सौंदर्य में भी समन्वय को महत्व प्रदान किया है क्योंकि समन्वय में ही कला का विकास संभव है। सौंदर्य का समन्वयवादी दृष्टिकोण ही अधिक उचित एवं सार्थक प्रतीत होता है।

संदर्भः


1. कला और साहित्य का सुंदर और असुंदर लेख –– डॉ. रामकुमार वर्मा, पृ.18
2. साहित्य दर्पण –– विश्वनाथ, तृतीय परिच्छेद पृ. 108,118
3. ऋग्वेद संहिता, 8ध्29ध्1,1ध्40ध्4,1ध्48ध्10
4. वाचस्पत्य कोश ––पृ. 5314
5. संस्कृत हिंदी कोश ––पी. एस. आप्टे, पृ.1115
6. भाव कण–– डॉ. सरनाम सिंह अरुण पृ. 99
7. ऋग्वेद संहिता–– सूचीखंड, वैदिक संशोधन मंडल पुणे,1ध्48ध्8, 7/81/1
8. शिशुपाल वधम्–– महाकवि माघ, 4ध्17
9. अभिज्ञान शाकुंतलम्–– महाकवि कालिदास, द्वितीय अंक, श्लोक 9, पृ.131
10. उज्जवल नीलमणि – श्री रूप गोस्वामी, उद्दीपन प्रकरण, पृ. 19
11. बिहारी रत्नाकर, दोहा 432
12. कला और सौंदर्य –– डॉ. रामानंद तिवारी, पृ. 39
13. चिदविलास– बाबू संपूर्णानंद, पृ. 212
14. सौंदर्यबोध शास्त्रीय अध्ययन–ऐतिहासिक परंपरा, जगदीश मन्हास पृ. 18
15. भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका –– डॉ नगेंद्र, पृ. 26
16.चिंतामणि भाग 2–– रामचंद्र शुक्ल, पृ. 229
17. आधुनिक हिंदी कविता में प्रेम और सौंदर्य ––डॉ रामेश्वर लाल खंडेलवाल, पृ. 160–161
18. छायावादी काव्य में सौंदर्य– दर्शन –– सुरेश चंद्र त्यागी पृ. 26
19. भारतीय सौंदर्यशास्त्र की भूमिका–– डॉ. फतह सिंह, पृ. 16–17
20. सौन्दर्यतत्व की भूमिका–– आनंद प्रकाश दीक्षित, पृ. 18



**डॉ0 अर्चना शर्मा**

एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग

लाजपत राय कॉलेज, साहिबाबाद (गाजियाबाद)

50

# इस्माईल मेरठी की नज़्मों में आचार्य कौटिलय के नैतिक तत्त्वों का वर्णन

डॉ0 हुमा मसूद

**सारांश–**

ज़िन्दगी का मज़हर ''शब्द'' है, ज़िन्दगी के इज़हार का ज़रिया ''शब्द'' है, ज़िन्दगी की इन्तिहा ''शब्द'' है और ''शब्द'' एक निर्माता है। ज़िन्दगी आगे बढ़ी तो इन्सान की सूरत में पैदा हुई। ज्ञान ज़रिया बना इन्सान और हैवान में फ़र्क़ करने का। यह ज्ञान सीना–ब–सीना होता हुआ जब नस्लों तक पहुँचा तो तहरीर की शक्ल इख़्तियार की। सीना–ब–सीना पहुँने वाली मालूमात के मुकाबले में तहरीर ने न सिर्फ़ अमूल्य वृद्धि की बल्कि ज्ञान जीवन की वो सच्चाई बनकर उभरा जिसकी बदौलत काग़ज और कलम की महत्ता बढ़ी। लिखा हुआ शब्द बोले हुए शब्द से ज़्यादा ज्ञान के ख़ज़ाने में वृद्धि का सब्ब बना जो लिखा न जा सका वो मौजूद भी न रह सका। शब्द कल भी अमूल्य थे और हमारा मार्ग दर्शन कर रहे थे। और आज भी हमारी राहों को तारीकी से दूर कर रहे हैं। शब्द एक ऐसा इतिहास रचते हैं जिसकी रोशनी में हम आसानी से आगे का मार्ग तय कर सकते हैं।

जैसे–जैसे ज्ञान बढ़ा कारामद मालूमात हासिल करना आसान हुआ। यह काम धर्म का हो या दुनिया का दोनों को हासिल करने अनुभवों के साथ–साथ शोध करने के लिए हिम्मत, हौसला, मेहनत और लगन का होना ज़रूरी है। इन सबके साथ–साथ ख़ुलुस शामिल ना हो तो ज्ञान में वृद्धि नहीं हो सकती। इस हक़ीकत से इन्कार मुमकिन नहीं जब जब ज्ञान बढ़ा और फैला समाज में बदलाव आया।

''मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है।'' इस पुरानी कहावत की महत्ता और अर्थ से हम आज भी इन्कार नहीं कर सकते। क्योंकि मनुश्य जिस समाज में जीवन व्यतीत करता है उसी से हर चीज़ सीखता है और कभी भी ख़ुद को समाज से अलग नहीं कर सकता। यह समाज ही चरित्र को बनाता, निखारता और संवारता है तो वह सही शब्दों में इन्सान बनाता है। राजनीतिज्ञ हो या दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक हो या इतिहासकार कवि हो या लेखक आदि हर एक का जीवन उसकी परवरिश इसी समाज में सम्भव है। यह अलग बात है कि इन्होंने अलग अलग ढंग से मनुष्य के ज्ञान में वृद्धि की है। जीवन के उतार चढ़ाव से प्रभावित होकर जीवन की सच्चाईयां परत दर परत उनपर खुलती जाती हैं। उनकी ज़िन्दगी में प्रतिदिन हमेशा और हर लम्हा बदलाव आते रहते हैं। जब हम सृष्टि के इतिहास पर नज़र डालते हैं तो यह बात खुलकर सामने आ जाती है कि यूनान, मिस्त्र, रोम इरान व अरब की सभ्यता हो या सिन्ध आर्य, बुद्धमत, हड़प्पा और मोहन जोदड़ों की सभ्यता आदि। यह सब उन्नति पाकर इन्सानी ज़िन्दगियों में इस हद तक रच बस गई कि उनका रूख़ ही बदल डाला। हिन्दुस्तान एक ऐसा मुल्क है जहां इन सभी सभ्यताओं का संगम नजर आता है। कौसर मज़हरी के अनुसार–

'दूसरे मुल्कों की तहज़ीबों की तरह हिन्दुस्तानी तहज़ीब में बदलाव होते रहे हैं और मुख़्तलिफ तहज़ीबों के धारे इसमें आकर मिलते रहे हैं। हर समाज में कई माशरती तहें होती हैं जो अपने अन्दर अपनी ख़ासी तहज़ीबें लिए होती हैं।''[1]

इन तहज़ीबों के प्रभाव हम उन पलों में खोज सकते हैं जो एक इतिहास सृजित कर गये। यह गौरवपूर्ण इतिहास हमारा आर्दश, मार्गदर्शक ही नहीं बल्कि प्रेरणा का स्रोत्र था और आज भी भारतीय समाज के लिये एक महत्व रखता है। ऐसा ही एक बहुआयामी व्यक्तित्व आचार्य चाणक्य का है। उन्होनें जो कहा वह इतिहास तो बना ही, आज भी उसकी महत्ता में कमी नहीं। उनका कहा हुआ एक एक शब्द आज भी हमारा मार्ग दर्शक है, उनकी ''चाणक्य नीति'' उनके राजनीति के सिद्धान्त एक महान राष्ट्र के निर्माण में आज भी उपयोगी हैं। जिसे जानकर कोई भी जीवन के क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकता है। आचार्य चाणक्य ने विभिन्न विषयों पर जो कुछ कहा वह सामाजिक हो या राजनीतिक, आर्थिक व कुटनीतिक, धार्मिक हो या लोक व्यवहार से संबंधित अपने अनुभवों की रौशनी में कहा। जिनकी प्रसगिंता से इन्कार नहीं। वह कल भी महत्वपूर्ण व उपयोगी थे और आज भी हम उनसे अमूल्य फ़ायदा उठाकर सफ़लता प्राप्त कर सकते हैं। आपके मुंह से निकले शब्द किस तरह चरित्र निर्माण में सहायक सिद्ध होते हैं। इस बात का अन्दाज़ा आचार्य के प्रेरणाप्रद सूत्रों से बाआसानी लगाया जा सकता है। यह सूत्र चरित्र बनाते हैं। चरित्र बनता है अमल से, अमल आता है ज्ञान से, ज्ञान मिलता है ज्ञानी लोगों या गुरू की अच्छी शिक्षा व अच्छी सोहबत से। गुरू के हृदय में स्थित विद्या को सेवाकर एक शिश्य किस प्रकार प्राप्त कर सकता है। इस पर आचार्या ने निम्न शब्दों में प्रकाश डाला है–

''खनित्वा हि खनित्रेण भूतले वारि विन्दति
तथा गुरूगतां विद्यां शुश्रूशुरिधगच्छति''[2]

जिस प्रकार खुदाई करने वाला व्यक्ति पृथ्वी के

नीचे विद्यमान जल को निकाल लेता है, उसी प्रकार गुरू की सेवा करने वाला शिष्य भी गुरू के हृदय में स्थित विद्या को प्राप्त कर लेता है।

विद्या प्राप्त कर व्यक्ति एक सोसाइटी का निर्माण करता है। सोसाइटी बनती है मानवता से, मानवता आती है गुरू की शिक्षा से। एक बेहतरीन गुरू ही शिष्य में छिपी हुई, सोई हुई, दबी हुई सलाहीयतों को समझता है। उन्हें उभारता है, निखारता है तब समुद्र की गहराई से मोती निकलता है।

यहाँ कौटिल्य के अर्थशास्त्र और शुक्रनीति की राज्य व्यवस्थाओं के अध्ययन के साथ–साथ विषय संबंधी तथ्यों को प्राप्त करने का प्रयास किया गया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य अपने में खुद साहित्य का महासागर है उसमें भी कौटिल्य के विचारों की झलक दिखाई देती है। कमलेश अग्रवाल के अनुसार–

> ''संस्कृत साहित्य की अनेक कृतियों में कौटिल्य के विचारों की झलक दृष्टिगोचर होती है। प्रथम शताब्दी ई0पू0 के महाकवि कालिदास से लेकर दण्डी, याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन, विष्णु शर्मा, विशाखदत्त दण्डी तथा बाणप्रभृति महाकवियों, स्मृतिकारों, गद्यकारों और नाटककारों की सातवीं शताब्दी ई0 तक की कृतियां अर्थशास्त्र से प्रभावित हैं।''[3]

कौटिल्य अर्थशास्त्र ने जहां संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि में योगदान किया वहीं सदियों तक शासक एवं साहित्यकार भी उनके विचारों से प्रभावित हुए। इसी प्रकार कौटिल्य के व्यक्तित्व और विचारों का प्रभाव उर्दू साहित्य पर भी पड़ता नजर आता है। इनकी विचारधाराओं ने उर्दू शायरों का मार्गदर्शन किया। उर्दू शायरों में से इस्माईल मेरठी का शुमार अपने दौर के मशहूर शायरों में होता है। आपकी शायरी में कौटिल्य के विचारों की छाप बखूबी देखी जा सकती है। इस्माईल मेरठी की शायरी का वही भाग सबसे ज़्यादा प्रभावित करता है जिसमें श्रेष्ठ आचरण एवं श्रेष्ठ गुणों को अपने अंदर पैदा करने की शिक्षा दी है। आपने जो कहा वह न केवल अपने ज़माने के लिए है बल्कि आज भी अनमोल है। जिसकी प्रासंगिकता उस समय भी थी, आज भी है। उनका एक एक शेर अगर नैतिक मूल्यों की कसौटी पर कसें तो वह सोने जैसा है। जिस तरह कौटिल्य का अनुपालन करके हम सकारात्मक परिणाम देख सकते है बिल्कुल वैसे ही इस्माईल मेरठी की शायरी एक सकारात्मक उर्जा प्रदान करती है। चाणक्य के शब्द जिस प्रकार एक नये समाज के निर्माण की तरफ हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं वह विचारणीय है। सं0 महेश शर्मा के अनुसार–

> ''चाणक्य एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहते थे, जो भौतिक आनन्द से आत्मिक आनंद को अधिक महत्व देता हो। उनका कहना था कि आंतरिक शक्ति और चारित्रिक विकास के लिए आत्मिक विकास आवश्यक है। देश और समाज के आत्मिक विकास की तुलना में भौतिक आनंद और उपलब्धियां हमेशा द्वितीयक हैं।''[4]

इसी तरह इस्माईल मेरठी के विचार मार्ग दर्शन करते हुए नज़र आते हैं। इन पर थोड़ा भी ध्यान दिया जाए और अपने जीवन में थोड़ा सा भी उनका पालन किया जाए तो कोई वजह नहीं कि हमारा राष्ट्र महान न बन सके। चाणक्य नीति का अध्ययन करने वाला पूर्ण विद्वान बन सकता है। इसी प्रकार इस्माईल मेरठी की कविताओं में दी हुई शिक्षा ग्रहण करने वाला सकारात्मक उर्जा से भर जाता है। कौटिल्य द्वारा दिया गया ग्रंथ प्राचीन भारतीय राजनैतिक विचारधाराओं में सबसे अधिक ध्यान देने योग्य ग्रंथ है जिसने सदियों तक शासकों और इन्सानों का मार्गदर्शन किया। सम्पादकीय में ओम प्रकाश शर्मा ''चाणक्य नीति'' के उपयोगी पहलू पर इस प्रकार प्रकाश डालते हुए कहते हैं–

> ''संस्कृत भाषा में लिखा गया यह ऐसा महत्वपूर्ण ग्रंथ है जिसमें लोकव्यवहार, धर्म तथा राजनीति से संबंधित ऐसी अनेक शिक्षाप्रद व उपयोगी जानकारी का समावेश है, जिसे जानकर कोई भी व्यक्ति, जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर सकता है। वास्तव में चाणक्य नीति भारतीय चिन्तन पद्धति का विश्वकोश है। जिसने सभी पाश्चात्य विद्वानों की बोलती बंद कर दी है तथा जिसकी तुलना का ग्रंथ पूरे विश्व में कहीं भी नहीं मिलता।''[5]

आज हम जब एक ऐसे समाज की कल्पना करते हैं जिसमें लोग

> नैतिक मूल्यों को मानते हुए अपने दुखों से छुटकारा पा सकें तो उन्हें निम्न नैतिक मूल्यों को अपने जीवन में उतारना होगा। कौटिल्य के विचारों से हम उनके सामाजिक दृष्टिकोण को पूरी तरह समझ सकते हैं। हमारे जीवन में शिक्षा का एक महत्व है जिसकी वजह से व्यक्तियों के सब गुणों का विकास होता है। अतः कौटिल्य ने सम्पूर्ण शिक्षा के लिए स्पश्ट निर्देश दिए हैं। उनका मानना है कि

♣ ''भूषणानां भूषणं सविनया विद्या

♣ विद्या तथा विन्यशीलता सब आभूषणों का आभूषण है।[6]

♣ ''संसार में विद्या की ही पूजा की जाती है, उसके समान बहुमूल्य कुछ और नहीं हैं।''[7]

♣ ''ज्ञान मनष्य की मूर्खता और अज्ञानता को समाप्त कर देता है।''[8]

♣ ''समस्त विकारों का नाश हेतु ज्ञान सर्वोत्तम है।''[9]

♣ ''विद्या गुप्त धन है, जिसे कोई नहीं चुरा सकता'' अपितु इसे जितना अधिक खर्च किया जाएगा उतनी ही यह बढ़ती जाएगी।''[10]

इस्माईल मेरठी ने इन्सानी फितरत को सामने रखते हुए हर इल्म, हर पेशे, हर तिजारत का ज़िक्र करके यह सलाहियत व्यक्ति ये पैदा करनी चाही है कि वह भले बुरे, सच और झूठ, फायदा या नुक़सान हर पहलू पर नज़र रखे और अपने कामों में कमाल पैदा करने की कोशिश करें। आप की कई कविताएं इसी बात को ज़हन में रखकर लिखी गयी हैं। कहते हैं–

♣ कोई पेशा हो ज़राअत या तिजारत या कि इल्म चाहिए इन्सान को पैदा करे इसमें कमाल

♣ कामिलों की उम्र बढ़ जाती है खुद कर लो हिसाब बाहुनर का एक दिन और बेहुनर का एक साल[11]

इस्माईल मेरठी के अनुसार– चौपाए की तरह किताबों का बोझ व लाद बल्कि कुछ कमाल पैदा कर के दिखा उनके शेर नई नस्लों के दिमागों तक यह पैग़ाम पहुंचा देना चाहते हैं ताकि वह अपनी इस्लाह कर लें।

♣ ''चौपाए की तरह तू किताबों से न लद,
हासिल है किताबों का फक़त इल्मो खिरद
कीड़ों ने हज़ारों किताबें खालीं,
पाई न मगर कभी फ़ज़ीलत की सनद।[12]

कौटिल्य जानते थे कि शिक्षा से सब गुणों का न सिर्फ विकास होता है बल्कि अशिक्षित व्यक्ति विनाश का कारण बनता है। वह मानते हैं कि

♣ ''ज्ञानहीन व्यक्ति पशु के समान है।''[13]

♣ ''विद्या विहीन मनुष्य मान सम्मान प्राप्त नहीं कर सकता।''[14]

♣ ''जो विद्यार्थी मोहमाया और सुखों में लीन होकर विद्या प्राप्ति की बात सोचते हैं, उन्हें अपने उद्देश्य में कभी सफलता नहीं मिलती''[15]

इस्माईल मेरठी के अनुसार सफलता हिम्मत वालों को मिलती है।

♣ ''इन्सान को चाहिए न हिम्मत हारे–– मैदाने तलब में हाथ बढ़ कर मारे।
जो इल्मों हुनर में ले गए है बाज़ी––हर काम में हैं उन्हीं के वारे न्यारे।।[16]

कौटिल्य और इस्माईल मेरठी दोनों ने व्यक्तिगत गुणों पर बहुत ज़ोर दिया है। हक़ीकत तो यह है कि ज़िन्दगी में स्थिरता और उत्थान के लिए इन्सान का सर्वगुण सम्पन्न होना ज़रूरी है यहाँ तक कि प्रकृती इन्सान की ग़ुलाम बन जाती है।

♣ ''फितरत के मुताबिक अगर इन्सान ले काम – हैवां तो हैवां जमादात हों राम
मिट्टी, पानी, हवा, हरारत बिजली – दानिश मन्दों के है मुति एहकाम।[17]

♣ जिन्हें दी है ख़ुदा ने अक़ल दाना– है उनको आज ही से फिक्र कल की मुसाफिर चल पड़ा जो आख़िर–ए–शब– तो हो जाती है मंजिल उसकी हल्की।[18]

''कोशिश किये जाओं'' कविता में व्यक्ति का हौसला भी बढ़ा रहे हैं और उपदेश भी दे रहे हैं। जीवन में सफलता चाहते हो तो लगातार प्रयास करते रहो क्योंकि

♣ जो पत्थर पर पानी पड़े मुत्तासिल –तो बेशुबहा घिस जाए पत्थर की सिल रहोगे अगर तुम यूं ही मुस्तक़िल – तो एक दिन नतीजा भी जायेगा मिल
किये जाओं कोशिश मेरे दोस्तों।[19]

आलसी व्यक्ति जीवन में कभी कुछ नहीं पा सकता। अपने आलस से मिली हुई वस्तुएं भी खो देता है। इस संदर्भ में कौटिल्य कहते हैं
''उपलब्ध लाभों नालस्य।
(आलसी व्यक्ति कभी अप्राप्त वस्तु को प्राप्त नहीं कर सकता)''।[20]
अलसस्य लब्धमपिरक्षित न शक्यते।
(आलसी व्यक्ति अप्राप्त वस्तु को संयोगवश प्राप्त कर लेने पर भी उसकी सुरक्षा नहीं कर सकता)[21]

इस संदर्भ में इस्माईल मेरठी भी कुछ इस तरह अपने विचार व्यक्त करते हैं–

♣ ऐ बेख़बरी की नींद सोने वालों – राहत तलबी में वक़्त खोने वालों
कुछ अपने बचाव की भी सोची तदबीर – ऐ डूबती नाव के डूबोने वालों[22]

♣ बेकार न वक़्त को गुज़ारो यारों – यूं सुस्त पड़े पड़े न हिम्मत हारो
बरसात की फ़सल में है वरज़िश लाज़िम–कुछ भी न करो तो मक्खियाँ ही मारो।[23]

इस्माईल मेरठी ने सिर्फ एक मिसरे से अपनी बात में जान डाल दी ''तल्ब में जियो जुस्तुजू में मरो'' जीवन में कुछ बनना है या किसी काम में सफलता प्राप्त करनी है तो आलसी व्यक्ति कभी सफल हो भी गया तो उसे सुरक्षित नहीं रख पायेगा।

• घुड़ दौड़ में कुदाई की बाज़ी थी एक दिन– ताज़ी पे कोई तुर्की पे अपने सवार था
जो हिचकिचा के रह गया सो रह गया इधर–जिस ने लगाई ऐड़ वो ख़न्दक़ के पार था।[24]

शब्दों और भाशा का प्रयोग सोच समझ कर ही करना चाहिए क्योंकि मनुश्य की उन्नति का राज़ इसी में नीहित है। कौटिल्य उन्नति के

पथ पर चलने वालों को इन शब्दों में सीख देते हैं–

♣ जिह्वायतौ वृद्धविनाशौ!
(उन्नति अपनी वाणी पर ही निर्भर करती है)[25]

♣ ''निहन्ति दुर्वचनं कुलम्!
(अपशब्द कुल को कलंकित कर देते हैं)[26]

♣ ''म्लेच्छभाशणं न शिक्षेत!
(म्लेच्छ भाशा का प्रयोग नहीं करना चाहिए)[27]

♣ ''विशामृतयोराकारी जिह्वा!
(वाणी, विश और अमृत का कोश है)[28]

इस्माईल मेरठी भी इसी तरफ अपने शेरों में इशारा करते नज़र आते हैं–

♣ ''जो बात कहो साफ़ कहो सुथरी हो भली हो
कड़वी न हो, खट्टी न हो मिसरी की डली हो।[29]''

♣ ''न हलवा बन कि चट कर जाएं भूखे।
न कड़वा बन कि जो चखे सो थूके।[30]''

बलवान व्यक्ति कौन है इस पर रोशनी कुछ इस तरह डाली है कि मुनष्य अपने जीवन का एक लक्ष्य अपनाकर उसे प्राप्त करने का प्रयास करने में लग जाएं।

''बलवानलब्धलाभे प्रयतते!''
(अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करने वाला ही बलवान कहलाता है।)[31]

इस्माईल मेरठी कहते हैं कि हर मुश्किल काम हिम्मत से आसान हो जाता है।

♣ ''अपनी हिम्मत से काम करना– मुश्किल हो तो चाहिए न डरना।''[32]

चाणक्य के निम्न विचार देखिए जो एक सज्जन और दुर्जन व्यक्ति की संगति को दर्शाते हैं–

♣ ''उपलब्ध साधनों में संतुष्ट रहने वाला तथा नित्य ईश्वर का मनन चिंतन करने वाला मनुष्य ही सज्जन कहलाता है।''[33]

♣ ''सज्जन पुरूशों की संगति से बहुत अच्छा सीखने को मिल जाता है।''[34]

♣ ''आमोदं कुसुमभंव मृदेव धते,–मृद्गन्धं न हि कुसुमानि धारयन्ति।''[35]

जिस प्रकार मिट्टी में तो फूलों की सुगन्ध आ जाती है, किन्तु फूलों में मिट्टी की गन्ध नहीं आती, उस प्रकार सज्जनों के संग–साथ से दुर्जन कभी–कभी सुधर जाते हैं, परन्तु दुर्जनों की संगति में सज्जनों को कोई हानि नहीं होती।

इसी संदर्भ में इस्माईल मेरठी का मानना है कि एक क्षण के लिए भी किसी सज्जन व्यक्ति की संगति मनुष्य को मिल जाये तो उसका जीवन बदल देती है और उसे ईश्वर के समीप करने का कारण बनती है इसके विपरीत किसी दुर्जन व्यक्ति की संगति यदि उसे बुरा न भी बना सके तो बदनाम अवश्य कर देती है।

♣ दुनिया को न तू किबलाए हाजात समझ
जुज़ ज़िक्रे ख़ुदा सबको खिराफ़ात समझ
एक लम्हे किसी मर्दे खुदा की सोहबत
आजाए मैयस्सर तो बड़ी बात समझ[36]

♣ ''बद की सोहबत में मत बैठो, उसका है अन्जाम बुरा
बद न बने तो बद कहलाए बद अच्छा बदनाम बुरा।''[37]
इस्माईल मेरठी कहते हैं

♣ नाक़िस भी कामिलों से कुछ कम नहीं कि उनसे
सीखा है कामिलों ने कस्बे कमाल करना।[38]
चाणक्य के अनुसार मनुष्य का जीवन अच्छे और बुरे कर्मों के अनुरूप फल प्रदान करता है–

♣ ''मनुष्य का कार्य केवल कर्म करना है लेकिन कर्मों के अनुसार उसका फल ईश्वर ही प्रदान करता है।''[39]

♣ ''बुरे कर्म करके सुखों की कामना करना व्यर्थ है। मनुष्य जो कर्म करता है उसका भाग्य उसी के अनुरूप उसे फल प्रदान करता है।''[40]

एक सज्जन व्यक्ति को हमेशा अच्छे कर्म करते रहना चाहिए। इस संदर्भ में इस्माईल मेरठी कहते हैं–

♣ ''तुम न चूको कभी निकोई से
करने दो गर ख़ता करे कोई।''[41]

♣ जो हो जाए ख़ता कोई कि आख़िर आदमी हो तुम
तो जितना जल्द मुमकिन हो करो उसका बदल अच्छा।[42]
क्योंकि

♣ जो खूऐ बद की दलदल में – जा फंसा फिर कभी रिहा ना हुआ।[43]

♣ अगर तुमसे हो जाए सरज़द कुसूर – तो इक़रार व तौबा करो बिज़ ज़रूर।[44]

♣ बदी की हो जिसने तुम्हारे ख़िलाफ – जो चाहे माफी तो कर दो माफ।[45]

♣ नहीं बल्कि तुम और अहसां करो – भलाई से उसको पशेमां करो।[46]

♣ ''गर नेक दिली से कुछ भलाई की है – या बद मंशी से कुछ बुराई की है
अपने ही लिए है सब न औरों के लिए है– अपने हाथों ने जो कमाई की है।''[47]

♣ करे दुश्मनी कोई तुमसे अगर – जहां तक बने तुम करो दरगुज़र
करो तुम न हासिद की बातों पे ग़ौर – जले जो कोई उसको जलने दो और।[48]

कौटिल्य के अनुसार समय रहते हर काम समय से पूरा करना चाहिए क्योंकि गुज़रा हुआ समय वापस नहीं आता। कौटिल्य और इस्माईल मेरठी दोनों ही समय की अहमियत पर ज़ोर देते हैं–

♣ ''श्वः कार्यमय कुर्वीत्। कल करने वाले काम को आज ही निबटा देना चाहिए।''[49]

♣ ''संसार में केवल काल अर्थात समय ही सबसे शक्तिशाली है।''[50]

इस्माईल मेरठी के अनुसार समय हवा की तरह उढ़ता है इसलिए काम को पूरा किये बिना अधूरा नहीं छोड़ना चाहिए–

♣ ''खबर लो वक़्त की अपने ख़बर लो – उड़ा जाता है जो करना हो कर लो।''[51]

♣ मत छोडयों काम को अधूरा – बेकार है जो हुआ ना पूरा[52]

♣ अगर थोड़ा थोड़ा करो सुबह व शाम – बड़े से बड़ा काम भी हो तमाम।[53]

इस्माईल मेरठी का कहना है कि

''हर वक्त में सिर्फ एक ही काम– पा सकता है बेहतरी से अंजाम

आचार्य चाणक्य ने जिन उद्देश्याो को लेकर ग्रन्थ रत्न की रचना की जिस भाषा में लिखा जिन शब्दों को प्रयोग किया,वह सब लोक व्यवहार, धर्म, राजनीति, शिक्षा, समाज या किसी विशेष वर्गः के लिए ही नहीं सभी के लिए आवश्यक है। इन्हे जानकर कोई भी व्यक्ति जीवन के किसी क्षेत्र में असफल नहीं हो सकता। इनके द्वारा दी गई जानकारी इतनी उपयोगी है की लोग उनको मानकर गलत रास्ते पर भटक नहीं सकते। आज सदियाँ गुजर गयी हैं लेकिन जिसकी तुलना नहीं की जा सकती। इस्माइल मेरठी की नज्मों में भी ऐसे ही शिक्षाप्रद व उपयोगी जानकारी का न सिर्फ समावेश है। अपितु जीवन के हर क्षेत्र को उनके शेर रौशनी प्रदान क्र रहे है।

**निष्कर्ष**–

शिक्षा का क्षेत्र हो या नैतिकता की बात हो हर ख्याल हर जज्बा सब को अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत किया है की उन्हें ढूंढ़ने के लिए भटकना नहीं पड़ेगा। आचार्य कौटिल्य के नैतिक तत्वों का वर्णन उनकी नज्मों में इस प्रकार निहित है कि आज भी इस्माईल मेरठी द्वारा लिखी गई किताबे नई नस्लों को सँवारने का , हर दौर के मिजाज को बदलने का महत्वपूर्ण कार्य कर रही है।

**संदर्भ ग्रंथ**


1. दीद नज्म हाली से मीरा जी तक – लेखक कौसर मज़हरी, प्र० स० 18, ऐजुकेशनल पब्लिशिंग हाउस , दिल्ली, 2008।
2. आचार्य चाणक्य सम्पूर्ण चाणक्य नीति ,वं चाणक्य सू=– प्र० स० 84, अनुवादक आचार्य वादरायण, प्रथम संस्करण 2011, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. कौटिल्य अर्थसास्= ,वंशुक्रनीति की राज्य व्यवस्था,, प्र० स० 23, लेखक कमलेश अग्रवाल, राधा पुब्लिकेशन्स , नई दिल्ली – संस्करण 2008, ैठछ 81–7487–103–9।
4. मैं चाणक्य बोल रहा हूं , सं महेश शर्मा– प्र० स० 22 संस्करण 2016 प्र० प्रतिभा प्रतिष्ठान , नई दिल्ली – पृ. स. 978–93–83111–13–8।
5. आचार्य चाणक्य पशति सम्पूर्ण चा.क्य नीति ,वं चाणक्य सू= अनुवादक–आचार्य वादरायण प्र० स० 6 प्रथम संस्करण 2011, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
6. आचार्य चा.क्य प्रशति सम्पूर्ण चाणक्य नीति ,वं चाणक्य सू= अनुवादक–आचार्य वादरायण प्र० स० 143 प्रथम सस्करण 2011, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली।
7. मैं चाणक्य बोल रहा हूं –प्र० स० 93
8. मैं चाणक्य बोल रहा हूं –प्र० स० 93
9. मैं चाणक्य बोल रहा हूं –प्र० स० 93
10 मैं चाणक्य बोल रहा हूं –प्र० स० 93
11. स्माईल मेरठी हयात और खिदमात– डा० सैफी प्रेमी –प्र० स० 141, मक्तबा जामिया लिमिटेड – नई दिल्ली – अक्टूबर 1976।
12 स्माईल मेरठी हयात और खिदमात –डा० सैफी प्रेमी –प्र० स० 105, मक्तबा जामिया लिमिटेड – नई दिल्ली – अक्टूबर 1976।
13. मैं चाणक्य बोल रहा हूं –प्र० स० 94
14. मैं चाणक्य बोल रहा हूं –प्र० स० 93
15. मैं चाणक्य बोल रहा हूं –प्र० स० 94
16. यात इस्माईल लेखक मोहम्मद असलम सैफी मय कुल्लियाते इस्माईल– मौलाना मोहम्मद इस्माईल मक्तबा जामिया मिलिया इस्लामिया , दिल्ली 1936 प्र० स० 338।
17. यात इस्माईल लेखक मोहम्मद असलम सैफी मय कुल्लियाते इस्माईल– मौलाना मोहम्मद इस्माईल मक्तबा जामिया मिलिया इस्लामिया , दिल्ली 1936 प्र० स० 337।
18. यात इस्माईल लेखक मोहम्मद असलम सैफी मय कुल्लियाते इस्माईल– मौलाना मोहम्मद इस्माईल मक्तबा जामिया मिलिया इस्लामिया , दिल्ली 1936 प्र० स० 337।
19. इस्माईल मेरठी हयात और खिदमात प्र० स० 187।
20. आचार्य चा.क्य सम्पूर्ण चाणक्य नीति ,वं चा.क्य सू= –प्र० स० 115।
21. आचार्य चाणक्य सम्पूर्ण चाणक्य नीति ,वं चाणक्य सू= –प्र० स० 115।
22. कुल्लियाते इस्माईल –प्र० स० 341।
23. कुल्लियाते इस्माईल –प्र० स० 339।
24. स्माईल मेरठी हयात और खिदमात –प्र० स० 105।
25. आचार्य चा.क्य सम्पर्ण चाणक्य नीति ,वं चाणक्य सू= –प्र० स० 149।
26. आचार्य चाणक्य सम्पर्ण चाणक्य नीति ,वं चाणक्य सू= –प्र० स० 153।
27. आचार्य चाणक्य सम्पूर्ण चाणक्य नीति ,वं चाणक्य सू= –प्र० स० 138।
28. आचार्य चाणक्य सम्पूर्ण चाणक्य नीति ,वं चाणक्य सू= –प्र० स० 149।
29. इस्माईल मेरठी हयात और खिदमात –प्र० स० 196।
30. इस्माईल मेरठी हयात और खिदमात –प्र० स० 197।
31. आचार्य चाणक्य सम्पर्ण चाणक्य नीति ,वं चाणक्य सू=– प्र० स० 115।

32. कुल्लियाते इस्माईल प्र० स० 136।
33. मैं चाणक्य बोल रहा हूं –प्र० स० 103।
34. मैं चाणक्य बोल रहा हूं –प्र० स० 103।
35. आचार्य चाणक्य सम्पूर्ण चा.क्य नीति ,वं चाणक्य सू=– प्र० स० 75।
36. कुल्लियाते इस्माईल –प्र० स० 337।
37. स्माईल मेरठी हयात और खिदमात –प्र० स० 196।
38. कुल्लियाते इस्माईल –प्र० स० 136।
39. मैं चा.क्य बोल रहा हूं –प्र० स० 38।
40. मैं चा.क्य बोल रहा हूं –प्र० स० 39।
41. कुल्लियाते इस्माईल –प्र० स० 348।
42. कुल्लियाते इस्माईल –प्र० स० 136।
43. कुल्लियाते इस्माईल –प्र० स० 282।
44. कुल्लियाते इस्माईल –प्र० स० 39।
45. कुल्लियाते इस्माईल, हजरत मौलाना मौलवी मोहम्मद इस्माईल साहब दी ओरिएंटेड पब्लिशिंग कंपनी मेरठ ,1910 –प्र० स० 39।
46. कुल्लियाते इस्माईल, हजरत मौलाना मौलवी मोहम्मद इस्माईल साहब दी ओरिएंटेड पब्लिशिंग कंपनी मेरठ ,1910– प्र० स० 39।
47. कुल्लियाते इस्माईल –प्र० स० 339।
48. कुल्लियाते इस्माईल, हजरत मौलाना मौलवी मोहम्मद इस्माईल साहब दी ओरिएंटेड पब्लिशिंग कंपनी मेरठ ,1910 –प्र० स० 39।
49. आचार्य चाणक्य सम्पूर्ण चाणक्यय नीति ,वं चाणक्य सू=– प्र० स० 156।
50. मैं चाणक्य बोल रहा हूं –प्र० स० 39।
51. इस्माईल मेरठी हयात और खिदमात –प्र० स० 197।
52. इस्माईल मेरठी हयात और खिदमात– प्र० स० 238।
53. इस्माईल मेरठी हयात और खिदमात –प्र० स० 238।
54. इस्माईल मेरठी हयात और खिदमात– प्र० स० 238।

**डॉ0 हुमा मसूद**
उर्दू विभागाध्यक्षा
इस्माईल नशनल महिला
पी0 जी0 कालिज,
मेरठ
94116433814

51

# Human Rights, Its Evolutions And Role of Human Rights Commission of India

**Dr. Renu Chaudhary**

**Abstract**

This document discusses about the Human right and the role of Human Rights Commission of India. An effort has been made by the researcher to trace down the evolution of Human Rights in India. The researcher also attempts to jot down the incidents where the commission intervened for the protection of Human Rights and also to comment on the working of the commission.

**Introduction**

Human beings are rational beings. By virtue of being humans they possess certain basic and inalienable rights which are commonly known as human rights. They are inherent in all the individuals irrespective of their caste, creed, religion, sex and nationality. These rights are essential for all the individuals as they are consonant with their freedom and dignity and are conducive to physical, moral, social and spiritual welfare. More or less people are aware about their rights but the question is how these rights will be protected. A human being is a living creature, and in the same manner, humanity is a living and constantly evolving concept. They by virtue of their being human possess certain basic and inalienable rights which are commonly known as human rights. On 10th Dec. 1948, UN adopted the Universal Declaration of Human Rights and subsequently adopted two more covenants i.e. (a) Economic, Social and Cultural Rights and (b) Civil and Political Rights.

On 10th Dec. 1948, UN adopted the **Universal Declaration of Human Rights** and subsequently adopted two more covenants (one on **Economic, Social and Cultural Rights and Other on Civil and Political Rights**) on 16th Dec 1966 and they came into force on 3rd Ian 1976 and 23rd March 1976 respectively.

**Evolution Of Human Rights In India**

The concept of Human Rights is not of recent origin. It exists through the times of 'Vedas'. Kautilya pleaded to protect the rights and the dignity of the people. Arthashastra not only dealt with civil and political rights formulated by Manu but also included several economic rights for the people. The ancient jurisprudence considered the whole world as a family irrespective of race, colour, language, religion etc. In Medieval period, which is also known as the Muslim period, Hindus were forced to adopt Muslim culture and religious practices. But, Akbar during his reign brought many changes towards the Hindus such as: to practice their own religion, the right of accused to be released on bail, acquittal on benefit of doubt, bhakti movement etc.

On 3rd March 1978 heinous crime happened in Patna, the Patna police brutally lathi-charged a demonstration of backward classes in front of the Assembly House. On 31st March 1978, police opened fire without warning in Raghunathpur Bazaar, Bhojpur District, killing four persons on the spot. On July 13, 1991, in Pilibhit District of U.P. 10 Sikh pilgrims were killed by U.P. police in false encounters.

In the context of violence in Punjab, Jammu & Kashmir, North-East and Andhra Pradesh, the pressure from the foreign countries and the awareness among the people for the protection of human rights led to the creation of a National Human Rights Commission. All these factors made the government to decide and to enact a law on human rights.

The world conference on Human Right in 1993 realizing the importance of such an institution or commission stated that "the world conference on Human Right urges Government to strengthen the national structure, institutions, and organs of society which play a role in protecting and safeguarding Human Rights."

On May 14th, 1992, the **Human Right Commission Bill** was introduced in the Lok Sabha and the bill will refer to the Standing Committee of the Parliament on Home Affairs. The pressure from the foreign countries and the domestic front created and urgency for the commission.

On Sep 27th, 1993 the president of India promulgated an ordinance for the creation of the National Commission on Human Rights (NCHR) and commissions a state level. After certain amendments, the protection of **Human Rights Bill** was passed by both the houses of the Parliament to replace the ordinance. On January 8th, 1994 the bill became an Act after receiving the assent of the President, which is known as the **Protection of Human Right Act.**

**Section 2(d)** of the Act defined the expression human rights by stating that **"human right means the rights relating to life, liberty, equality and dignity of the individuals guaranteed by the Constitution or embodied in the International Covenants and enforceable by courts in India".**

The above definition limits the scope of the functioning of NHRC and the act set up a National Human Rights Commission and the state Human Rights Commission in the state and the Human Rights Courts in the districts.

**Section 3**

of the Act lays down the composition of the NHRC i.e. National Human Rights Commission. The Commission shall consist of—

(a) A Chairperson who has been a Chief Justice of the Supreme Court.
(b) One Member who is, or has been, a Judge of the Supreme Court.
(c) One Member who is, or has been, the Chief Justice of a High Court.
(d) Two Members to be appointed from amongst persons having knowledge of, or practical experience in, matters relating to human rights.

**Functions And Role of Human Rights Commission OF**

**INDIA**

The National Human Rights Commission (NHRC) performs various functions such as:

(i) Inquire, suo moto or on a petition presented to it by a victim or any person on his behalf, into a complaint of: (a) violation of human rights or abetment thereof or (b) negligence in the prevention of such violation, by a public servant.

(ii) Intervene in any proceeding involving any allegation of violation of human rights pending before a court with the approval of such court.

(iii) Visit, under intimation to the State Government, any jail or any other institution under the control of the State Government, where persons are detained or lodged for purposes of treatment, reformation or protection to study the living conditions of the inmates and make recommendations thereon.

(iv)Review the safeguards provided by or under the Consitution or any law for the time being in force for the protection of human rights and recommend measures for their effective implementation.

(v) Review the factors, including acts of terrorism that inhibit the enjoyment of human rights and recommend appropriate remedial measures.

(vi)Study treaties and other international instruments on human rights and make recommendations for their effective implementation.

(vii) Undertake and promote research in the field of human rights.

(viii)Spread human rights literacy among various sections of society and promote awareness of the safeguards available for the protection of these rights through publications, the media, seminars, and other available means.

(ix)Encourage the efforts of non-governmental organizations and institutions working in the field of human rights.

(x) Such other functions as it may consider necessary for the protection of human rights.

**Conclusion**

NHRC is a fully independent body and based on two conceptual pillars, i.e., autonomy and transparency. From the establishment of the NHRC, it played a very important role to protect Human Rights in the functions of Criminal Administration of Justice. It is concluded that the commission many times took action on the various complaints by the affected person, on the information received from the state mechanism, took action on the demand of NGO's, conduct investigation on the direction of the Supreme Court and many times took suo moto action on the News published in the various Newspapers. Therefore, being a recommendatory and investigatory body, the recommendations of the commission are of great importance to the Government in order to make up its mind as to what legislative or administrative measures should be adopted to eradicate the evil found or to implement the beneficial object it has in view. The creation of NHRC in India can be an important mechanism to strengthen Human Rights protection but can never replace nor should it in any way diminish the safeguards inherent in comprehensive and effective legal structure enforced by an independent, impartial and accessible judiciary.

**Suggestions:**

The several suggestions can be made regarding NHRC for protection of Human Rights:

- Human Rights Commission should be authorized to take action against the persons who are found guilty of making a false complaint against security personnel, armed forces, Paramilitary forces, and other law enforcement agencies.
- Accused should be made aware of the human rights available to them under the International human rights instruments as well as National Laws.
- Print and electronic media owe the responsibility and the duty towards the society, in controlling the crime effectively.
- Like the National Human Rights Commissions at the national level, the Human Rights Commission are also required to be created in all the states as envisaged in the Protection of Human Right Act, 1993.

**Bibliography Books:**

The Indian Police Act, 1861
The Constitution of India, 1950
The Protection of Human Rights Act, 1993
Dr. H.O. Agarwal: Human Rights (23rd Ed), Allahabad Central Law Agency, 2020

**Reports/Articles:**

NHRC Annual Report, 2020 Role of National Human Rights Commission in administration of Criminal Justice system, 2015

**JOURNALS:**

AIR: All India Reporters
ILJ: Indian Law Journal
IPJ: Indian Police Journal
SSC: Supreme Court Cases

**Dr. Renu Chaudhary**
Faculty of law,
Gurugram University,
Gurugram,
Email:-rcadvocate167@gmail.com

52

# वील्होजी की सामाजिक चेतना

सुषमा भारद्वाज

**सारांश–**

वील्होजी एक कुशल उपदेशक एवं प्रशासक थे। उन्होंने स्वयं लेखन कार्य प्रारम्भ किया था। अपने शिष्यों सुरजनजी, केशोजी को भी आशीर्वाद दिया जिससे ये दोनों ही अपने पूज्य गुरू की तरह महान कवि लेखक एवं समाज उद्धारक हुए। संत सिरोमणी वील्होजी निश्चय ही बिश्नोई पंथ के संत कवियों व परमगुरु जम्भेश्वर की शिष्य परम्परा में विशिष्ट स्थान रखते थे। उनका व्यक्तित्व सन्तमार्ग के लिये वरदान सिद्ध हुआ, इनके गुरु जोभोजी महाराज ने उनके बारे में जो भविष्य वाणी की थी वह अक्षरसः सत्य निकली थी। उन्होंने सामाजिक चेतना को ऐसी ऊंचाई प्रदान की कि मरूभूमि के सामान्य जन दिव्य हो गए इन्होंने बताया कि लोक एवं वेद का मार्ग एक ही होता है। कभी लोक, वेद से चेतना प्राप्त प्रस्फुटित होता है। वे संदेश देते है कि भक्ति का मार्ग अपनाकर हम सुधरे तो समाज भी सुधरेगा। वील्होजी की वाणी जीवन के लिए हैं। उनकी वाणी की सहजता जीवन को सहजता से जोड़ती है।

वील्होजी ने साहित्य कार्य तो किया इसके साथ अनेक सामाजिक कार्य भी किए। मुकाम में आसोज बदी अमावस्या का मेला (वि० सं0 1648 में) वील्होजी ने प्रारम्भ किया था। इसी समय इन्होंने

गुरु तारि बाबा बोह सह्म सरण्य विण्य तेरी, करि–करि करम कु फेरा ।[1]

नामक साथी जाम्भोजी को निवेदन करते हुए गई थी। उसी समय उनकी आँखों में पुनः ज्योति आ गई मानो उनके ज्ञान चक्षु खुल गये।

**समाजिक चेतना का विकास**

समाज के उत्थान के लिए कवि ने अनेक सराहने योग्य कार्य किये जो इस प्रकार है–

**जाति–पाति का विरोध**

कवि कहता है कि आपका कोई स्वरूप नही है नही आपकी कोई जाति है न आपके माता–पिता है।

न तै रूप न जात्य कुल, न तै माया न बाप।
जुग अनंता वरतीया, रहयौ निरालंभ आप

**बुरे लोगों पर सीधे काटाक्ष**

समाज में फैली विभिन्न कुरतियों का कवि ने विरोध किया। जो भूत–प्रेतों की सेवा करते है बिना जानकारी के देवों की पूजा करते है। भ्रमवश काठ पत्थर की पूजा करते हैं, ऐसे लोगो को प्रत्येक स्थान पर हानि होगी।

अधरम हूतां औसरी परिति न छिपै पाप
सुगर सुवाणी दाखनी अभखल वरज्जो आप।[2]

**निंदा जैसी बुराइयों का त्याग**

कवि वील्होजी कहते है कि हमें किसी की निंदा नहीं करनी चाहिए। अगर किसी का दुष्कर्म भूलकर देखा या सुना जाए तो उसे अपने मन में ही रखो, प्रकट न करो।

गरब गुमानी हो हो करै, मछरी राग दोष मन्य धरै।
कण भीतरी घुण घाते हाण्य, करतब तोट जैसी परिजाण्य।

इन पंक्तियों में कवि यह समझाना चाहता है कि जो मनुष्य अधिक अभिमान करके मन में द्वेष भावना रखते है वो तो उसी प्रकार नष्ट हो जाते है जिस प्रकार अनाज को घून नष्ट कर देता है।

चोरी निद्या जूठ जे बरजिया वाद न करणो कोय।[3]

**सत्य वचन, दान व तप पर बल**

कवि विल्होजी का मानना है कि भगवान के घर सत्य ही प्रिय है। सतगुरु की पहचान ही सत्य से होती है।

दान, शील, तप, भावना, अे इम्रत फल च्यार
वील्ह कहै गुण उपजै, जीवड़ा पहुंचे पार।[4]

झुठे तथा नष्वर शरीर को छोड़कर हमें सत्य के मार्ग पर चलना चाहिए

झूठो ई संसार है, सत मति मानो कोय
सतलोक पह्च्या चहो, तो सत बोल्या गति होय[5]

**गुरु की महिमा का महत्त्व**

जो मनुष्य अपने गुरु के वचनों को मानता है और उनका ध्यान करता है उनके घर कभी दरिद्रताए कुरूपता नहीं आती है।

गुर को कहयो न खोजै, ग्यान कुप्डा दियौ कुपाता दान।[6]

गुण तीस धर्म की आखड़ी में अपने गुरु की महिमा का वर्णन करता हुआ कवि कहता है कि–

गुण तीस धर्म की आखड़ी, हिरदे धरियो जोय।
जाम्भजी किरपा करी, नाव बिश्नोई होय।[7]

**दया धर्म की भावना पर बल व क्रोध का त्याग**

इस प्रसिद्ध संत कवि का मानना है कि हमें जीवों का वध नही करना चाहिए वील्होजी ने अनेक मनुष्यों को जो कल्पित देवादि के निमित बकरा आदि जीवों का वध किया करते थे, उस घोर हत्या से बचाया। वृतो की रक्षा के लिए लोगों को

प्रेरणा दी, पानी को छानकर पीना बताया। वे मरूधरा के जन कवि के रूप में प्रसिद्ध हुए।

क्रोध माण माया कु लोभ, अै च्यारौ विष फल च्यार
वील्ह कहै गुण उपजै, जीवड़ा पहुंचौ पार।[8]

**अमावस्या के नियमों का पालन :**
अमावस्या के दिन जीवों की हत्या हो वे कार्य कभी नही करने चाहिए।

अमावस्या के दिन भूलकर भी दूध नही बिलोना चाहिए क्योंकि ऐसा दूध रक्त के समान अपवित्र होता हैं।

व्रत अमावस के किये, मल विक्षेप को नाज
मल विक्षेप के नाजन तै, होत है बुद्धि प्रकास।[9]

**निष्कर्ष–**
अन्त में वील्होजी की सामाजिक चेतना का अध्ययन करने के बाद निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि सन्त साहित्य में वील्होजी का नाम बडे आदर के साथ लिया जाता है, उन्होंने समाज में प्रचलित समस्त अंधविश्वासों रूढियों तथा मिथ्या, सिद्धांतो द्वारा प्रचलित सामाजिक विषमताओं को दूर करने का बीड़ा उठाया और अपनी वाणी के द्वारा इन सभी पाखण्डों पर प्रहार किया।

**सन्दर्भ ग्रन्थ**


1. "संत कवि विल्होजी और उनकी वाणी" पर लेखक द्वारा राजस्थान का संत साहित्य, राष्ट्रीय संगोष्ठी, 24 से 26 मार्च, 1993 जोधपुर में पत्र वाचन।
2. अधरम हूंता औसरी, परतिन छिपै पाप सुगर सुवाणी दाखवी, अभखल वरज्जो आप केसो जी, कथा विगतावली
3. चोरी निद्या झूठ ज बरजिया, वाद ने करणौ कोय । श्री जम्भसागर अंतिम पृष्ठ
4. दान शील तप भावना, अै इम्रत फल च्यार। वील्ह कहै गुण उपजै जीवड़ा पहुंचे पार वील्होजी की धड़ाबन्ध चौहजुगी
5. झूठो ई सैंसार है, सत मति मानो कोय स्तलोक पहूच्या चहौ, तो सत बोल्या गति होय साहब राम जी, जम्भसार
6. गुर को कहो न खौजें ग्र्यान कुपहा दियौ कृपाता दान। जाम्भोजी का सबद
7. गुण तीज धर्म की आखड़ी, हिरे घटियो जोय जाम्भजी किरपा करी, नाव बिश्नोई होय। (जाम्भाजी, 29 धर्म नियम)
8. क्रोध माण माया कुलोभ, अे च्यारो विषफल जोय। याथी अवगुणण उपजै, जी नै दोर होय। (परमानन्द जी की साखी)
9. सबद वाणी जम्भसागर – रामदाज वि. स. 1993, पृ 64–711



**सुषमा भारद्वाज**
सहायक प्रवक्कता (अ.)
राजकीय महाविद्यालय
नाहड़

53

# सादा जीवन उच्च विचार के विग्रह : देशरत्न डॉ0 राजेंद्र प्रसाद

डॉ0 पुष्पा रानी

**सारांश–**

Lives of great men all remind us,
We can make our lives sublime,
And, departing leave behind us,
Footprints on the sands of time.
Longfellow Ladder of St. Augustine

महापुरुषों की जीवनियाँ हमें याद दिलाती हैं। कि हम भी अपना जीवन महान बना सकते हैं और मरते समय अपने पद चिन्ह समय की रेत पर छोड़ सकते हैं। जिन तपस्वियों की अमर साधना से हमारी मातृभूमि अंततरू विदेशी शासन के पंजों से मुक्त हुईय उनमें देशरत्न डॉ राजेंद्र प्रसाद का नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित करने योग्य है। अपनी सादगी, सरलता, निस्पृहता, चारित्रिक उत्ष्टता तथा अपूर्व देशभक्ति के कारण ये हमारे देश के रत्न तथा बिहार के गांधी कहे जाते थे। राजेंद्र बाबू की सर्वाधिक प्रमुख विशेषता यह थी कि कठिन से कठिन परीक्षा की घड़ियों में भी इनके मुख मंडल पर उद्वेग की रेखा नहीं देखी गई तथा अपूर्व धीरता के साथ ही उनका सामना करते रहे। इनकी इन्हीं चारित्रिक विशेषताओं के कारण देश की जनता ने एकमत होकर इन्हें स्वतंत्र भारत का प्रथम राष्ट्रपति चुना। राजेंद्र बाबू का जन्म अशोक, चाणक्य और चंद्रगुप्त की पुण्य भूमि बिहार में 3 दिसंबर 1884 ई0 में छपरा जिले के जीरादेई नामक ग्राम में हुआ था। उनकी पारिवारिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति अच्छी थी। इनके पूर्वज हथुआ महाराज के दीवान थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा उर्दू फारसी के माध्यम से शुरू हुई। वे पढ़ने में अत्यंत कुशाग्र बुद्धि के थे स्कूल से लेकर उच्च कक्षा तक की परीक्षाओं में उन्होंने हमेशा प्रथम स्थान प्राप्त किया ।आज भी विद्यार्थी यह याद कर आहलादित हो जाते हैं कि उनकी ही कॉपी पर यह टिप्पणी की गई थी कि 'म्मांउपदमम पे इमजजमत जींद म्मांउपदमत अर्थात् परीक्षार्थी परीक्षक से अधिक योग्य (बेहतर) है। उन्होंने एल.एल. एम. तथा एल.एल.बी. की परीक्षाओं में भी प्रथम स्थान प्राप्त किया। हमेशा सर्वोच्च अंक प्राप्त करने वाले राजेंद्र बाबू जब राजनीति में आए, तो देश का सर्वोच्च पद उन्हीं को सौंपा गया।

राजेंद्र बाबू का राजनीतिक जीवन अहिंसा की छत्रछाया में सुशोभित रहा वैसे उन पर गोपाल .ष्ण गोखले का भी प्रभाव रहा, लेकिन प्रत्यक्ष रूप में वे महात्मा गांधी से अत्यधिक प्रभावित थे। विद्वता, योग्यता और समाज सेवा उनके जीवन में इस तरह से संबद्ध थे कि महानता को उनके पास आना ही था। देशभक्ति की लहर तो उनमे बचपन से ही कूट–कूट कर भरी हुई थी। अपने विद्यार्थी जीवन में ही उन्होंने कोलकाता में बिहारी छात्रों को मिलाकर विहार क्लब बनाया था। उनमें नेतृत्व करने अपार क्षमता थी। गांधीजी के अहिंसात्मक आंदोलन में राजेंद्र बाबू ने सक्रिय सहयोग प्रदान कर अपनी देश भक्ति और राजनीतिक दूरदर्शिता का जो परिचय दिया, वह अद्वितीय है। विनम्रता, विद्वता ,नेतृत्व क्षमता और अलौकिक सूझबूझ ने उन्हें संगठन के कई ऊंचे ऊंचे पदों पर प्रतिष्ठित किया। 1923 में कांग्रेस ने उन्हें अपना महामंत्री बनाया। 1942 के अगस्त क्रांति के समय राजेंद्र बाबू की कर्मठता, .ढ़ता और संगठन शक्ति का जो परिचय मिलता है, उससे ऐसा प्रतीत होता है कि मानो अहिंसा के भीतर तूफानी ताकत बैठ कर उसे चट्टान का रूप दे रही है। इस क्रांति में राजेंद्र बाबू को 3 वर्षों के लिए कारावास जाना पड़ा। उसके पश्चात जब वे बाहर आए, तो मानो अंग्रेजों की आंच ने उन्हें और भी मजबूत बना दिया था। संस्त के महान नीतिकार भर्तृहरि ने नीतिशतकम् में लिखा है–

विपदि धैर्यमभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्यपटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचि व्यसनं श्रुतौ प्र.तिसिद्धमिदं हि महात्मानम्।।

अर्थात विपत्ति में धैर्य, अभ्युदय में क्षमा ,सभा में भाषण चातुर्य ,युद्ध में विक्रम, यश में अभिरुचि तथा वेद शास्त्र के अध्ययन का व्यसन ये महान पुरुषों के स्वाभाविक गुण हैं। राजेंद्र बाबू में ये गुण अनिवार्यतरू समाविष्ट थे। धैर्य तो उनका आभूषण था। कई बार जेल यात्राओं को सहकर उन्होंने अहिंसात्मक आंदोलन की ज्योति जलाई ।उनकी सरलता, निश्चलता और सत्य अहिंसा को देखकर महात्मा गांधी उन्हें बिहार का गांधी कह कर पुकारते थे ।देश के सर्वोच्च पद पर रहने के बाद भी उनके मन में अहंकार उत्पन्न नहीं हुआ। आए हुए संकट को बड़े ही धैर्य लेकिन साहस के साथ खेल जाते थे। अंग्रेजी की कहावत है कि–

some persons are born great,
Some persons earn greatness by their works.
And greatness thrown upon some persons.

अर्थात् कुछ जन्म से महान होते हैं ,कुछ अपने कर्मों से महानता अर्जित करते हैं और कुछ पर महानता थोप दी जाती है।

राजेंद्र बाबू ऐसे इंसान थे जिन्होंने अपने कर्मों से महानता

अर्जित कर मानवता को महिमामंडित किया था। स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति के रूप में राजेंद्र बाबू ने अपने पद और प्रतिष्ठा कि जो गरिमा प्रदान की उससे राष्ट्रपति की कुर्सी स्वयम् महिमामंडित हो गई। भारतीय संविधान सभा के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने जिस विद्वता और योग्यता का परिचय दिया उसे कौन नहीं जानता। लगातार दो बार राष्ट्रपति पद पर आसीन होने वाले राजेंद्र बाबू अपनी कार्य कुशलता के लिए एक प्रतिमान के रूप में जाने जाते हैं। उनकी कार्यकुशलता एवं सादगी और सहनशीलता की चर्चा करते हुए राष्ट्रकवि दिनकर ने संस्मरण और श्रद्धांजलि शीर्षक पुस्तक में लिखा है कि ''जब राजेंद्र बाबू राष्ट्रपति हुए डॉ सच्चिदानंद सिन्हा ने उन पर एक लेख लिखा था, जिसमें उन्होंने कहा था कि राजनीति के झगड़े भयानक होते हैं, उनमें चलने वाली बहसें गर्म होती हैं और राजनीतिक संघर्ष कभी–कभी घातक भी होते हैं, किंतु राजेंद्र प्रसाद ऐसे व्यक्ति हैं जिसने तमाम विवादों में पडकर भी किसी पर खरोच नहीं डाली, ना जो खुद किसी खरोच का शिकार हुआ। उनमें कटुता नाम की कोई चीज नहीं है, ना राजनीतिक प्रहार ओं ने उन पर कोई घाव छोड़ा है।''

दिनकर ने आगे लिखा है कि– राजेंद्र बाबू को देश रत्न की उपाधि स्वयं गांधी जी ने दी थी। वे राजेंद्र बाबू को सर्वश्रेष्ठ सहकर्मी कहा करते थे ।राजेंद्र बाबू के सादगी विनम्रता और निश्चलता का आदर देश के सभी नेता आरंभ से ही करते आए हैं। सन 1934 ई0 में जवाहरलाल जी ने कहा था– ''राजेंद्र बाबू की आंखों में स्वयम् सत्य झांका करता है। सन 1938 ई0 में जब राजेंद्र बाबू दूसरी बार कांग्रेस के सभापति हुए, तब सरोजिनी नायडू ने लिखा था कि ष्राजेंद्र बाबू के व्यक्तित्व का सही वर्णन तभी हो सकता है जब लेखक के हाथ में सोने की कलम हो और वह उसे स्याही के बदले मधु में बोर कर रचना करता हो। उनके पास जो मेघा है ,वह दुर्लभ कोटि की है और उनके स्वभाव की मधुरता उससे भी अधिक अलभ्य है ।उनका चरित्र उदात्त है। अपने आप को मिटाने तथा अपने आपको उत्सर्ग करने की क्षमता भी उन्होंने असाधारण पाई है। यही कारण है कि हमारे सभी नेताओं में एक राजेंद्र बाबू ही ऐसे हैं जिन्हें लोग सबसे अधिक प्यार करते हैं।' राजेंद्र बाबू धर्म प्रिय इंसान थे और धर्म के प्रति उनकी गहरी आस्था थी। वे कर्म को ही धर्म मानते थे। इसकी चर्चा करते हुए दिनकर ने लिखा है कि– 'इन 12 वर्षों में धर्म को मुख्य प्रश्रय राष्ट्रपति भवन में मिला है और विज्ञान को प्रधानमंत्री के आवास में। भारत का भविष्य बुरा नहीं है, जहां हमारा चरित्र हमें धोखा देता हैय वहां हमारी रक्षा हमारा इतिहास करता है। इतिहास ने अपनी दिशा को स्पष्ट बनाने के लिए राजेंद्र और जवाहर की जोड़ी को सिंहासन पर बिठाया था।''

मानवता का सम्मान करना राजेंद्र बाबू के लिए पूजा के समान था। उनके निवास में आम और खास पर अंतर नहीं होता था। देश का साधारण व्यक्ति भी राष्ट्रपति राजेंद्र बाबू के साथ दुआ सलाम करने में तनिक हिचकता नहीं था। सम्मान के इतने बड़े पद पर रहने के बाद भी उनके लिए इंसानियत ही सबसे बड़ी दौलत थी। लोगों के दुख दर्द को सुनकर वे द्रवित हो जाया करते थे और समाधान के उपाय भी ढूंढते थे। अपने बिहार और बिहार वासियों के प्रति उनके मन में असीम करुणा का भाव था। किसी भी व्यक्ति के लिए सुलभ थे ।राजनीतिक व्यस्तताओं के बीच भी सामान्य लोगों के लिए अपना समय निकाल लेना उनकी बहुत बड़ी विशेषता थी।

राष्ट्रपति भवन की विलासिता उन्हें छू नहीं सकी थी और इतना ऊंचा पद जिनमें अहंकार का लेश मात्र भी नहीं दे सका। इसके पीछे उनकी सादगी और विद्वता का हाथ है। विनय शीलता की मूर्ति राजेंद्र बाबू के भीतर मानवीय गुणों का भंडार था। 14 मई 1962 तक वे भारत के राष्ट्रपति रहे और तत्पश्चात उन्होंने डॉ राधा. ष्णन को अपना दायित्व सौंप दिया ।दिल्ली का राष्ट्रपति भवन उनकी विदाई में आंसू बहाने लगा ,जिस दिन वे वापस बिहार लौट रहे थे उस दिन उनकी विदाई के लिए तो मानो संपूर्ण दिल्ली ही उमड़ पड़ी थी। सरलता और सादगी के प्रतीक राजेंद्र बाबू जब वापस विहार लौटे, तब अपने रहने के लिए उन्होंने वही पुराना आश्रम सदाकत आश्रम चुना।1962 में जब चीन का आक्रमण हुआ तो पटना के गांधी मैदान में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था अहिंसा हो या हिंसा चीनी आक्रमण का सामना हमें करना है ।1962 में उनका आकस्मिक निधन हुआ ,हम भारतवासी आंसू बहाते रह गए एक सामान्य परिवार में पैदा लेकर राष्ट्रपति के ऊंचे पद तक की यात्रा करने वाले डॉक्टर राजेंद्र प्रसाद सरलता व सादगी ,विनम्रता और मानवता के साक्षात विग्रह थे। विद्या ददाति विनयम् के वे साक्षात उदाहरण थे। उनके जीवन का लक्ष्य था–

अपनी बोली अपना भेष, अपनी संस्ति अपना देश।
सारे सहज सुखों का सार, सादा जीवन उच्च विचार।।

संदर्भ–

1. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद की आत्मकथा– सस्ता साहित्य मण्डल वाराणसी, 1985
2. संस्कहति के चार अध्याय : दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद 1990

**डॉ0 पुष्पा रानी**
प्रोफेसर एवम् पूर्व अध्यक्षा,
हिन्दी विभाग
कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय,

54

# कालिदास के काव्यों में राजनीतिक संबंधी मंत्रिपरिषद् संगठन

सरोज

**सारांश–**

मनु के अनुसार मंत्रिपरिषद् में स्थान उन्हीं लोगों को देना चाहिए जिनके विश्वास की परीक्षा हो गयी हो जिनका राजपरिवार से नैसर्गिक सम्बन्ध हो। उनके अनुसार केवल सात या आठ मंत्रियों की नियुक्ति होनी चाहिए मुख्य मंत्री सभी विधानों में पारंगत एक ब्राह्मण होना चाहिए।

मंत्रिपरिषद् के कार्य

कालिदास के रूपकों में मंत्रिपरिषद् को अत्यधिक महत्व दिया गया है। राजा अपने महत्त्वपूर्ण कार्यों में मंत्रिपरिषद् से विचार–विमर्श करता था। राज्य के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रकरण मंत्रिपरिषद् से विचार–विमर्श करता था। राज्य के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रकारण मंत्रिपरिषद् की उपस्थिति में ही निर्णीत होते थे। उनका निर्णय मंत्री राजा के पास पहुँचा देता था जिसमें राजा की सम्मति आवश्यक थी। मालविकाग्निमित्रं में मंत्रिमण्डल की नीतियों को निर्धारित कर स्वीकृति के लिए राजा के पास गया प्रतीत होता है। अनेक उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि राजा मंत्रिपरिषद् के विचार को स्वीकृति देता है तथा मंत्रिपरिषद् राजा के कार्यों को राजा की अनुपस्थिति में राज्य का सम्पूर्ण शासन तंत्र मंत्रियों के द्वारा ही संचालित होता था। दुष्यन्त अपने मित्र इन्द्र की सहायता के लिए स्वर्ग जाते समय अपने मंत्री पिशुन को राज्यभार दे गये।

मंत्रियों के अधिकार

राजा की एक सहायिका संस्था के रूप में मंत्रिपरिषद् कार्य करता था। मंत्रिपरिषद् का निर्णय स्वीकार करने या न करने के लिए राजा पूर्ण स्वतंत्र था। रूपकों से स्पश्ट है कि एक विद्वान् ब्राह्मण मुख्यमंत्री होता था जो पुरोहित कहलाता था। शकुन्तला प्रत्यावर्तन के समय दुष्यन्त इस गम्भीर समस्या का अन्तिम निर्णय पुरोहित पर छोड़ता है। राजा के शासन कार्यों में सहमति देने सम्बन्धी मंत्रियों के अधिकार की चर्चा मनु आदि धर्मशास्त्रकारों ने दी है। मनु ने कुछ कार्यों की सूची दी है जिसमें मंत्रिपरिषद् की सलाह आवश्यक है। याज्ञवत्क्य ने भी इसका समर्थन किया है। राजा उसे मानने के लिए स्वतंत्र था। इसी प्रकार राज्य के विभिन्न विभागों को देखने के लिए विभिन्न मंत्री बनाये जाते थे यहाँ विस्तार भय से उन पर विस्तृत चर्चा नहीं की जा रही है।

मित्र

राजनीति शास्त्र के सभी प्राचीन आचार्यों ने सुहद को राज्य के सप्तांगों में स्थान दिया है। इसे राज्य का कर्ण माना गया है। निश्चय ही शरीर में जो महत्वपूर्ण स्थान कर्ण का है राज्य के लिए वही स्थान मित्र का है। पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के विषय ग्राह्यता पर यदि विचार किया जाये तो निष्कर्ष यह निकलता है कि कर्णेन्द्रिय का क्षेत्र अन्य इन्द्रियों की अपेक्षा बहुत ही व्यापक है इसी प्रकार किसी राज्य के मित्र का सहयोग समृद्धि एवं शान्ति क्षेत्र की व्यापकता को बढ़ा देता है। राज्य की लगी हुई सीमा में यदि मित्र का राज्य है वो राज्य की शान्ति एवं सुरक्षा का क्षेत्र स्वभावतः उतना ही और बढ़ जायेगा जितना कि उसका राज्य है। कालिदास ने अपने रूपकों में धर्मशास्त्रकारों के इन मतों का समर्थन किया है। अपने प्रथम रूपक मालविकागिमित्र में सुद्ध की महिमा का गुणगान नायक अग्निमित्र द्वारा स्वयं कराया है। वह कहता है कठिन कार्यों में जब कोई सहायक मित्र जाये तो समझ लेना चाहिए कि कार्य सफल हो गया। क्योंकि आँखों वाला पुरुष भी अंधेरे में बिना दीपक के कुछ नहीं कर सकता। यही बात मनुस्मृति में भी कही गयी है। कामन्दकीय नीतिसार में सुद्धद को शुद्ध हृदय वाला परिश्रमी उदार वीर सुख–दुःख में हाथ बटाने वाला हितकारी सत्यवादी तथा अपने मित्र की इच्छित वस्तु की ओर ध्यान देने वाला बताया गया है। यह मित्र धर्म अर्थ तथा काम इन पुरुषार्थों की प्राप्ति का साधन है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में महाराज दुश्यन्त देवराज इन्द्र के लिए सुहृद के इन गुणों से विभूषित है। वह उदार एवं वीर होने के साथ ही इतना हितकारी है कि जब माता कि इन्द्र की सहायता के लिए उसे लेने आते है तो वे ''अनतिक्रमणीया दिवस्पतेराज्ञा'' यह कहकर तुरन्त ही मावलि के साथ देवलोक चले जाते है। राक्षसों का वध करके वे देवराज इन्द्र का महान कार्य सम्पादित करते है। देवराज इन्द्र भी मित्र का जो सम्मान करते है उससे वे कृतार्थ हो जाते है। दुश्यन्त एक सच्चे मित्र के रूप में अपनी सफलता का श्रेय इन्द्र को ही देता है। विक्रमोर्वषीय में महाराज पुरुरवा (मद्योनः प्रियमनुष्ठितम) इन्द्र का प्रिय कार्य करना अपने कर्त्तव्य समझता है। इस प्रकार एक दूसरे की इच्छित वस्तु का ध्यान करते हुए मित्र के कार्यों को करने में

इन्द्र और पुरुखा दोनों ही आदर्श है।

शत्रुता और मित्रता का निर्णय राज्यों के पारस्परिक सम्बन्धों पर होता है। मनु ने इस सम्बन्ध में राज्यों को चार प्रमुख श्रेणियों में विभाजित किया है। अरि, मित्र मध्यम और उदासीन।

कौटिल्य ने भी मित्र राज्यों का दो भेद बताया है। प्रकृतिमित्रराज्य और कृतिम मित्र राज्य। अपने राज्य की सीमा से लगे हुए शत्रु राज्य की दूसरी सीमा पर स्थित राज्य को कौटिल्य ने प्रकृतिमित्रराज्य की संज्ञा दी। राजा के माता अथवा पिता से सम्बन्धित राज्य (फूफा, मामा आदि के राज्य) सहजमित्र राज्य कहलाते है। धन और जीवन हुतु जब कोई राजा दूसरे राजा का आश्रय ग्रहण करता है या आश्रय देता है। इस प्रकार का राजा कृतिम मित्र कहलाता है। मालविकाग्नि में वर्णित विदर्भराज और माधवसेन चचेरे भाई है। उन दोनों के बीच विदर्भ के राज्याभिषेक के प्रश्न का कलह था। माधवसेन अपनी बहन मालविका का विवाह अग्निमित्र से करने का निश्चय किया था। इसी बीच यासेन ने माधवसेन को बन्दी बना लिया। माधवसेल के मंत्री सुमति ने मालविका और अपनी वहन कोशिकी को लेकर अग्निमित्र की शरण लेनी चाही। लेकिन वे भी मारे गये। विदर्भराज यज्ञसेन अग्निमित्र का अरि राज्य था। अरि राज्य का शत्रु होने के कारण माधवसेन उसका प्रकृति मित्र हुआ। यह प्रकृतिमित्र अग्निमित्र को शरण लेने और उसके साथ अपनी बहन का विवाह करने की इच्छा होने से कृतिम और सहज मित्र की कोटि में आता है। विदर्भराज को पराजित करने के बाद महाराज अग्निमित्र में वरदा नदी के उत्तर एवं दक्षिण का भाग अलग–अलग राज्य बनाकर शासन करने का निर्देश दिये।

राष्ट्र

राजनीतिशास्त्र के आचार्यों ने पुर अथवा राष्ट्र को राज्य के सप्तांगों में गिना है। वस्तुतः ये राज्य के दो विभाग है जो शासन की सुचारूता की दृष्टि से अलग–अलग कर लिये गये है। आचार्य मनु ने इन्हें दुर्ग वा राष्ट्र कहते है। भीष्मपितामह ने पुर और जनपद नाम से अभिहित किया है।

**निष्कर्ष–**

वास्तव में राज्य की राजधानी ही पुर अथवा दुर्ग के नाम से सम्बोधित की जाती थी। राजधानी के क्षेत्र के अतिरिक्त जो भाग शेष रह जाता था। उसे जनपद अथवा राष्ट्र के नाम से सम्बोधित किया जाता था। मालविकाग्नि मित्र में कवि ने साम्राज्य या राजा को कई प्रान्तों में विभाजित करने का उल्लेख किया है। ऐसा प्रत्येक प्रान्त राज्य प्रतिनिधि के अधीन होता था जो राजपरिवार से सम्बन्धित था। अग्निमित्र का पुत्र वसुमित्र ऐसा ही प्रतिनिधियों जो राज्य के एक प्रान्त की व्यवस्था करता था। अग्निमित्र के दूसरे प्रान्त की व्यवस्था राजश्याल वीरसेन के द्वारा की जाती थी जो रानी धारिणी का वर्णावर भ्राता था। इसके अतिरिक्त कालिदास ने ग्राम रचना का भी उल्लेख किया है। अधिक जनसंख्या के कारण नये ग्रामों या उपनिवेषों की रचना होती थी। ऐसा एक पद्य में वर्णन है। महाकवि कालिदास द्वारा जो ग्राम का उल्लेख किया गया है वह निश्चित ही राज्य की सबसे छोटी इकाई है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भी एक प्रसंग है जिसके अनुसार किसी सम्बन्ध में राजा से न्याय की आकांक्षा रखने वाली प्रजा राजधानी में ही आकर उनसे साक्षात्कार करती थी। उदाहरण के रूप में शकुन्तला को लेकर आये हुए कण्वे ऋशि के शिष्य है। जो राजा से राजभवन की यज्ञशाला में भेट करते है।

संदर्भ सूची


1. राजा – योऽसौ राजयज्ञदीक्षितेन मया राजपुत्रशत्परिवृत्रं वसुमित्र, गोप्तारमादिश्य वत्सरोपात्तनियमो निरर्गलस्तुरंगो विसृष्टः, स सिन्धोर्दक्षिणरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनेन प्रार्थितः। ततः उभयोः सेनयोर्मध्येमहानासीत्संमर्द।
2. द्विधा विभक्तां श्रियंभुदवहन्तौ धुरं रथाश्वाविव संग्रहीतुः। तौ स्थास्यतस्ते नृपतर्निदेशे परस्परौपग्रहनिर्विकारौ।। माल 5/14
3. स्वाम्यामात्यसुहतकोशराश्ट्रदुर्गलानि च। अमरकोश राज्याङ्गनि प्रकृतयः।।
4. स्वाम्यामात्यपुरं राश्ट्र कोशदण्ड तथा सुहृत्। एतैतानि समस्तानि लोकेऽस्मन् राज्य उच्यते।। मनु 1/284
5. न वाल इत्यवमन्तव्यो मनुश्य इति भूमिपः। महती देवता ह्येशा नररूपेण तिश्ठाति। मनु०
6. सप्तांगमुच्यते राज्यं तत्र मूर्थनृपः स्मृतः। दृगमात्यः सृहच्छोत्रं मुख कोशो बलं मनः।। कौटिल्य
7. विक्रम अंक 1 एवं 2। माल अंक 2, शाकु० अंक 1



**सरोज**
**शोधछात्रा**
ओम स्ट्रलिंग विश्वविद्यालय
हिसार

55

# 'विवेकानन्द का जीवन–दर्शन एव संदेश

डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय

**सारांश–**

**''मेरे धर्म का सार शक्ति है। जो घर्म हृदय में शक्ति का संचार नहीं करता, वह मेरी दृष्टि में धर्म नहीं है। शक्ति धर्म से भी बड़ी वस्तु है और शक्ति से बढकर कुछ नहीं है।''** यह उक्ति किसी और की नहीं बल्कि भारत के **'आध्यात्मिक नेपोलियन'** कहे जाने वाले स्वामी विवेकानन्द की है।

स्वामी विवकानन्द ऐसे इतिहास पुरूष थे जिन्होंने वर्तमान भारत की नींव डाली, प्राणहीन आचार के कंकाल मात्र भारतीय समाज में प्राण स्पंदित किये और भारत की प्राचीन वेदांतिक परम्परा को आधुनिक युगोपयोगी रूप प्रदान किया। विश्व उन्हें एक ऐसे व्यक्ति के रूप में जानता है जिसकी वुद्धि प्रकाण्ड थी और जिसने अपनी प्रचण्ड इच्छा शक्ति को भारत के पुनरूद्धार के कार्य मे लगा दिया था।

विवेकानन्द के बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। उनका जन्म कलकत्ता की सिमुलिया' नामक पल्ली में 12 जनवरी सन् 1863 को मकर संक्राति के उषा काल में प्रख्यात अटर्नी जेनरल श्री विश्वनाथ दत्त के घर में हुआ था।

विवेकानन्द पर अपनी माता के सद्गुणों का विशेष प्रभाव पड़ा। उनके पितामह ने 25 वर्ष की अल्प आयु में ही समस्त धन दौलत का त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लिया था। किन्तु इन पारिवारिक प्रभावों से भी बढ़कर स्वामी विवेकानन्द को सर्वाधिक प्रभावित करने वाला कारण उनकी श्री रामकृष्ण परमहंस का शिष्यत्व था। बंगाल के इस महान सन्त का शिष्यत्व प्राप्त कर नरेन्द्रनाथ दत्त – स्वामी विवेकानन्द बन गये। नवम्बर 1881 में स्वामी रामकृष्ण परमहंस से उनकी भेंट उनके जीवन में एक क्रान्तिकारी मोड़ लायी। **''थोड़े दिनों तक मानसिक प्रतिरोध की स्थिति के बाद उन्होंने गुरू के आगे पूरी तरह समर्पण कर दिया''** और अगस्त 1886 में रामकृष्ण परमहंस की मृत्यु के समय विवेकानन्द ही उनके सर्वप्रमुख शिष्य थे। इस समय लगभग 24 वर्ष की आयु में ही उन्होंने यह प्रण किया कि वे अपना सारा जीवन गुरू के सन्देश के प्रचार में लगा देंगे। विवेकानन्द ने अब गृहस्थाश्रम का त्याग कर दिया और परिव्राजक बनकर हिमालय के जंगलों में साधना करने लगे। परिव्राजक रूप में उन्होंने भारत का जो भ्रमण किया उससे उन्हें साधारण जनता के कष्टों और तकलीफों को समझने का अवसर मिला। देश की जनता की दयनीय दशा, उसके अज्ञान, कुसंस्कार और हताशा ने स्वामी जी के विशाल हृदय को मथित कर दिया। उन्होंने सोचा कि भारत की जनता को आज दंड, कमंडलधारी, एकांत निवासी योगी तथा संन्यासी के व्रत की सीख नहीं देनी है। भारतवासी को उच्च शिक्षित, स्वावलंबी, स्वाभिमानी, अपनी सांस्कृतिक सम्पत्ति से समृद्धशाली, एक महान राष्ट्र बनाना है जिसका अभाव हमारे दुर्भाग्य के लिए स्वयं उत्तरदायी है, हमारे उच्चवंशीय पूर्वजों ने जनताजनार्दन को पददलित किया। सवर्णों ने अवर्णों पर दमन चक्र चलाया। क्रमशः ऐसी स्थिति आई कि दलित असहाय वर्ग अपने जन्मसिद्ध अधिकारों को भूल गया। **'वर्ण'** जन्मना नहीं **'कर्मणा'** होना चाहिए। ऐसा उन्होंने अनुभव किया और इस अनुभव के फलस्वरूप उन्हें भारत में व्याप्त आश्चर्यचकित करने वाली विविधता के पीछे अन्तर्निहित एकता का ज्ञान हुआ। उन्होंने भारतीय जनता की शक्ति को और उसकी कमजोरियों को समझा।

**देशभ्रमण और आत्मज्ञान** : उन्होंने अपनी शक्ति की परख के लिए पर्यटन का विचार किया और एक रमतायोगी की तरह बनारस, अयोध्या, लखनऊ, आगरा, वृन्दावन, हाथरस और हिमालय की यात्रा की। धीरे–धीरे उनका आत्मविश्वास बढ़ता गया और एक बार बनारस में उन्होंने अपने मित्र प्रमददास से कहा – **''मै दूर जा रहा हूँ, मैं तबतक नही लौटूंगा जबतक समाज पर बम की तरह फूट न पड़ूं और वह मेरा श्वान की तरह अनुगमन न करे।''**

अपने इस तूफानी दौरे में वे रजपूताने के अलवर राज्य में पहुंचे वहां के कुमार मंगल सिंह ने स्वामी जी से पूछा – ''**मूझे मूर्तिपूजा में विश्वास नहीं है मैं औरों की तरह काठ, मिट्टी, पत्थर धातु की प्रतिमाओं को नहीं पूजता तो क्या मैं मरने के बाद नरक चला जाऊँगा ?''** सहसा स्वामी जी की दृष्टि दीवार पर टंगे महाराजा के चित्र पर पड़ी। उनकी इच्छा से वह चित्र उतारकर उनके हाथ में रखा गया। स्वामीजी ने पूछा, ''यह किसकी तस्वीर है?'' दीवान ने उत्तर दिया ''हमारे महाराज की।'' स्वामी जी ने कहा , '' आप इस चित्र पर थूक दें।'' दीवान को जैसे काठ मार गया। स्वामी जीने जोर दिया इस पर थूको, थूकते क्यों नही?'' दीवान ने कहा, ''स्वामी जी, आप कैसी बात करते हैं?यह तो हमारे महराजा के चित्र है!'' स्वामीजी ने बतलाया कि यही बात मूर्तिपूजा के साथ भी है जिस तरह आपको महाराजा के चित्र के पीछे उनके रूप की

प्रतिच्छाया दिखलाई पड़ती है, उसी तरह भक्तों को काठ–पत्थर की मूर्तियों के पीछे ईश्वर का रूप दिखाई पड़ता है। पत्थर में क्या रखा है ?लेकिन इन पत्थरों के सहारे ही उस भग्वान तक हम पहुँचते हैं।

स्वामी जी की तर्कयुक्त वाणी सुनकर कुमार दंग रह गये और तबसे उनके बिन–मोल दास बन बैठे। ऐसी अनेक कहानियाँ जो स्वामीजी की निर्भीकता और उनके ज्ञान का प्रमाण प्रस्तुत करती है। ऐसे निष्णात योगी में किसी प्रकार का घमण्ड नहीं था। वे छोटी से छोटी वस्तु से भी परमभागवत दत्तात्रेय की भाँति शिक्षा लेने को तैयार रहते थे। एक बार जयपुर गये। उनके साथ खेतड़ी के महाराजा भी थे। खेतड़ी के महाराजा के स्वागत में जयपुरनरेश ने नृत्य का आयोजन किया। खेतड़ी के महाराज ने स्वामीजी को भी उस नृत्यसमारोह में समुपस्थित होने को कहा। किन्तु स्वामीजी ने साफ इनकार किया। जब स्वामी जी नहीं आये तो नर्त्तकी सूरदास का पद गाने लगी –

**प्रभुजी, मेरो अवगुन चित न धरो,**
**एक लोहा पूजा में राखत एक घर बधिक परो।**
**यह दुविधा पारस नहीं जानत, कंचन करत खरो।**

स्वामीजी इस पद को सुनकर आनन्दविह्वल हो उठे। ईश्वर तो ऊँच–नीच, धनी–गरीब सबमें बसता है अतः नर्त्तकी से घृणा करना कैसा ?क्या गीता 'पण्डिताः समदर्शिनः' नही कहती ?और, तबसे स्वामीजी के मन से किसी को नीच समझकर इसके प्रति उपेक्षाभाव सदा के लिए तिरोहित हो गया।

**विश्व धर्म सम्मेलन में स्वामी जी** : 31 मई 1893 को स्वामी जी ने अमेरीका के लिए प्रस्थान किया। लंका, सिंगापुर, हांगकांग, केन्टन, नागासाकी, टोकियो, बैकाक होते हुए वे जुलाई के प्रथम सप्ताह में शिकागों पहुंचे। 11 सितंबर 1893 को शिकागों में उन्होंने विश्व सर्वधर्म सम्मेलन में भाषण दिया। उन्होंने जब अमेरिका के बहनों और भाइंयो जैसा संबोधन किया तो लगा कि प्रशंसा की शब्द ध्वनि से हॉल की छत ही उड़ जायेगी। उन्होंने बताया कि हिन्दू धर्म ही संसार के सारे धर्मो का जनक है। यह वह धर्म है, जिसने संसार को सहिष्णुता और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का पाठ पढाया जैसे सारी नदियां एक ही महासागर की गोद में विश्राम करती हैं, वैसे ही सारे धर्म एक ही ईश्वर तक पहुंचते हैं, फिर उन्होंने वेदान्त का रहस्य बतलाया और कहा कि यही विश्व मानवता का धर्म हो सकता है।

इस भाषण ने उन्हें '**यश के हिमालय**' शिखर पर आसीन कर दिया और दुनिया के लोगों के सामने एक बार फिर भारत का सांस्कृतिक गौरव का सूर्य देदीप्यमान हो उठा। 'न्यूयार्क हेराल्ड' ने लिखा – **''स्वामी विवेकानन्द के भाषण को सुनकर हम महसूस करते है, भारत जैसे ज्ञानी राष्ट्र में मिश्नरियों को भेजना निरी मूर्खता है।''** अन्य सभी धर्मों के प्रतिनिधियों की तुलना में स्वामी जी के व्याख्यान से सभी श्रोता अधिक आकृष्ट हुए। वे उत्सुक हो गये, भारतीय दर्शन की उस अमूल्य निधि **'वेदांत–रत्न'** को प्राप्त करने के लिए।

**वेदान्त का आदर्श** : स्वामी जी के द्वारा भारतीय जनजीवन का जो पुनर्गठन हुआ; उसका आदर्श वेदांतिक था। उन्होंने वेदांत के महान् तत्वों को एकांत चर्चा का विषय नहीं बनाये रखा। वह अरण्य और गुफा, कंदराओं का विषय न होकर हमारी कर्मभूमियों में अवतरित हो गया। सदियों से दासता की श्रृंखला से पीड़ित इस आत्म विस्मृत जाति को उन्होंने झकझोर कर जगाया। उनकी प्राणप्रद, शक्ति–संचरिणी वाणी को नव्यभारत ने नये सिरे से आत्मसात् किया। विवेकानन्द की प्रेरण से जाग्रत भारतवासियों को भविष्य में चलकर लोकमान्य तिलक व महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वतंत्रा आन्दोलन का अमृतमय संदेश मिला।

**रामकृष्ण मिशन की स्थापना** : स्वामी विवेकानन्द ने सन् 1899 में कलकत्ता के पास बेलूर नामक गंगा–तटवर्ती ग्राम में रामकृष्ण मिशन का मुख्य केन्द्र स्थापित किया। उनके व्यक्तित्व से प्रेरण पाकर देश–विदेश के अनेक भक्तों ने आकर उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। उनके द्वारा प्रदत्त धनराशि से एक ट्रस्ट की स्थापना हुई और धीरे–धीरे भारत के सभी प्रमुख नगरों में **'रामकृष्ण मिशन'** के केन्द्र स्थापित हो गये। रांची में भी रामकृष्ण मिश्न का एक बहुत बड़ा आश्रम टैगोर हिल के पास मोराबादी में स्थित है, जिसमें अनेक प्रकार के सामाजिक आर्थिक, सांस्कृतिक सुधार संबंधी कार्यक्रम आये दिन होते रहते हैं।

**विवेकानन्द द्वारा रूपायित नव्य–वेदांत** : स्वामी जी को पलयानवादी मार्ग कभी भी उचित नहीं लगा था। उन्होंने अपना समग्र जीवन 'शिव ज्ञान में जीव की सेवा में' समर्पित किया था। उनकी अविस्मरणीय उक्ति थी कि, 'एक व्यक्ति की मुक्ति के लिए यदि हमें कोटि जन्म, कुत्ते का शरीर भी धारण करना पड़े तो मैं प्रस्तुत हूँ। यह अपूर्व उदारता उनके गुरू युगावतार परमहंस श्री कृष्ण के अमूल्य उपदेश का ही फल था।

यह कहा जाता है कि अद्वैत–वेदांत नें 'ब्रह्म' को एकमात्र सत्य घोषित करके, मानव मूल्यों का अवमूल्यन किया है। विवेकानन्द ने वेदान्त की इस व्याख्या का अनुमोदन नहीं किया। उन्होंने कहा कि वेदांत हमारे आत्मबल को जाग्रत करता है। बलहीन के द्वारा आत्मा की प्राप्ति संभव नहीं है, यह उपनिषदों की शिक्षा है।

स्वामी विवेकानन्द की शिक्षा मानव केन्द्रित कर्मयोग है। वास्तव में उन्होंने भगवद्गीता के निष्काम कर्म के आदर्श का ही हमारे जीवन में अनुसरण करने का उपदेश दिया है।

जिस समय हिन्दू विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय शिक्षा परिषद आदि की कल्पना भी कोई नहीं कर पाया था, उस समय स्वामी जी ने एक द्रष्टा और दार्शनिक की भविष्य–दृष्टि से प्रेरित होकर एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा–व्यवस्था स्थापित करने की अभिलाषा व्यक्त की, जिस पर विदेशी शासन तंत्र का हस्तक्षेप न हों उन्होंने लौकिक शिक्षा को भारतीय आदर्श के अनुकूल बनाने का प्रयास किया। उनकी शिक्षा भारतीय आदर्शों ओर मार्यादाओं के अनुकूल है।

**विवेकानन्द का जीवन तथा आदर्श** : उनका जीवन एवं आदर्श स्वदेशी आंदोलन का प्रेरणा–स्रोत बना। स्वामी विवेकानन्द 4 जुलाई, 1902 को चिर समाधि मग्न हो गये, उनके जीवन और वाणी का अमिट प्रभाव भारत के युवा वर्ग पर पड़ा। 1905 में लार्ड कर्जन ने बंगाल को विभक्त कर दिया। यह आघात बंगवासी सहन न कर सके। हिन्दू–मुसलमानों ने भ्रातृत्व भावना से एक–दूसरे को राखी बांधी सारे बंगाल में उस दिन किसी भी परिवार में भोजन नही बनाया गया। देश में एक युगांतकारी अकल्पनीय परिवर्तन आया। ब्रिटिश अत्याचार के विरूद्ध, बंगाल में नवयुवक एकजुट हो गये। वे गर्जना कर उठे। बंग–माता का अंग विच्छेद हमें सहन नहीं होगा और इस महत्वपूर्ण एकता ने ब्रिटिश शासन को भयभीत कर दिया। बंगाल का विभाजन आगे चलकर रद्द करना पड़ा।

स्वामी जी ने अन्ततः भारत को विश्व मानचित्र में दोबारा उन्नत करने का संकल्प किया था। वह एक मंत्र–द्रष्टा, उन्नत कल्पनाशील, कवि–हृदय मनीषी थे, जिनकी इच्छा थी। एक ऐसे धर्म का प्रचार करना जिससे '**मनुष्य**' तैयार हों (I want to preach a man-making religion ) । उन्होंने शिक्षा–विहीन जड़ता और कुसंस्कार से अंध भारतवासियों को पुकार कर कहा – **'उतिष्ठतः जाग्रतः प्राप्य वरान्निवोधतः'। कठोपनिषद के इस महामंत्र का आशय है कि उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरूषों से ज्ञान प्राप्त करो।** स्वामी जी के उद्बोधन मंत्र से ही भारत की सुप्त–आत्मा पुनः प्रबुद्ध हुई।

**वर्तमान भारत और स्वामी विवेकानन्द** : उन्नसवीं सदी के भारतवासी एक परतंत्र, दरिद्र, हृदयसर्वस्य हीनमय राष्ट्र के रूप में पर्यवसित हुए थे, उन्हें स्वामी जी ने वेदान्त का नवीन रूप **'शिव ज्ञान में जीव सेवा'** का पाठ पढ़ाया।

स्वामी जी का मुख्य उद्देश्य था; अपने गुरूदेव समन्वयाचार्य परमहंस श्री रामकृष्ण के समन्वय का संदेश घोषित करन। उन्होंने इस आदर्श के संबंध में कहा था – 'प्रत्येक जाति या प्रत्येक धर्म दूसरी जाति ओर दूसरे धर्मों के साथ आपस में भावों का आदान–प्रदान करेगा, परन्तु प्रत्येक अपनी–अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करेगा और अपनी–अपनी अंतर्निहित शक्ति के अनुसार उन्नति की ओर अग्रसर होगा।

इस प्रकार युवा संन्यासी विवेकानन्द ने भारत को वह गरिमा और ऊँचाई दी। इसके पीछे माता–पिता के अतिरिक्त उनके गुरू संत श्री रामकृष्ण परमहंस का महत्वपूर्ण योगदान था। पर आज उनकी भारत माता उनके बिना अनाथ हो गई है। वह प्रत्येक मां से यह अपील कर रही है कि वह विवेकानन्द जैसी संताने पैदा करें। तमाम गुरूओं से कह रही है कि विवेकाननद जैसे शिष्यों को धरती पर उतारे। अगर ऐसा हो पाता है तो भारत फिर दुनिया में सिरमौर बन बैठेगा।

**डॉ0 जंगबहादुर पाण्डेय**
हिन्दी विभाग
राँची विश्वविद्यालय, राँची
चलभाष : 9431595318, 9386336807
Email - pandey_ru05@yahoo.co.in

56

# अभिज्ञानशाकुन्तलम और रघुवंश में विवाह

सरोज

**सारांश–**

विवाह का उद्देश्य ही सन्तान की प्राप्ति होता है। क्योंकि सन्तान से ही व्यक्ति का कुल तथा वंश आगे बढ़ता है। पितृ ऋण से मुक्ति व्यक्ति को तभी मिलती है जब वह सन्तान पैदा करता है। बिना सन्तान के यह मुक्ति सम्भव नहीं होती है। अयोध्या से निर्वासित गर्भवती सीता ने भी अपने पति के वंश की रक्षा के लिये अपने प्राण नहीं देती है। इसी प्रकार रघुवंश में राजा दिलीप कहते है कि बिना सन्तान के कई द्वीपों में फैली हुई अपने राज्य की यह पृथ्वी मुझे अच्छी नहीं लगती है। अतः विवाह का मुख्य उद्देश्य सन्तान को उत्पन्न करना होता है।

गर्भवती स्त्री बहुत अधिक सम्मान की दृष्टि से देखी जाती थी। गर्भवती रानी सुदक्षिणा को राजा दिलीप वैसी ही महत्त्वपूर्ण समझते थे, जैसे अमूल्य रत्नों से भरी पृथ्वी, अपने भीतर अग्नि छिपाये रखने वाली शमी का वृक्ष या भीतर ही भीतर जल बहने वाली सरस्वती नदी। अनेक पत्नियों के होने पर भी जिस पत्नी को राजा अधिक मानता था, उसी से वह पुत्र की अभिलाषा करता था। यही कारण है कि राजा दिलीप की भी बड़ी इच्छा थी कि उन्हें सुदक्षिणा से अपने जैसा पुत्र हो, परन्तु जब कई वर्षों के व्यतीत होने पर भी जब कोई सन्तान नहीं हुआ। तब राजा तथा रानी नन्दिनी गाय की सेवा किये। जब नन्दिनी गाय ने प्रसन्न होकर वर माँगने को कहा तब उन्होंने माँग सुदक्षिणा के गर्भ से ऐसे यशस्वी पुत्र की कामना की जिससे सूर्यवंश का उत्कर्ष हो सके।

राजा जो ऐश्वर्य, विलास, समृद्धि, प्रभुता सबसे युक्त है उनके लिए भी 'आत्मानुरूप पुत्र' की प्राप्ति महत्त्वपूर्ण आशीर्वाद हुआ करता था। इसीलिये कौत्स ने रघु को आशीर्वाद देते हुये कहा है कि सांसारिक समस्त सुख तो उन्हें पहले से ही उपलब्ध है अतः इसके सन्दर्भ में दिया गया आशीर्वाद व्यर्थ ही होगा, तथापि जिस प्रकार प्रशंसा के योग्य पिता ने उन्हें प्राप्त किया था उसी प्रकार वे भी अपने गुणों के अनुरूप पुत्र प्राप्त करें। इसी प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वैखानस ने दुश्यन्त को भी उनके जैसे गुणों से युक्त चक्रवर्ती पुत्र के लिय आशीर्वाद दिया।

दहेज

दहेज की प्रथा उस समय भी विद्यमान थी। इसके लिए कालिदास ने 'हरणम्' शब्द का उल्लेख किया है। विवाह संस्कार की समाप्ति पर वर को कन्या के अभिभावक अपनी सामर्थ्य और उत्साह के अनुसार दहेज देते थे। कन्या को आभूषणों से अलंकृत कर दिया जाता था और ये आभूषण तथा विवाह के अवसर पर बन्धु– बान्धवों से मिली भेंट उसका स्त्री–धन होता था। अभिज्ञानशाकुन्तलम् से यह ज्ञात होता है कि शकुन्तला की विदाई के समय महर्षि कण्व का दुश्यन्त के लिये भेजा जाने वाला सन्देश इस बात की अभिव्यंजना करता है कि रनिवास में स्थित अन्य रानियों की तुलना में शकुन्तला जिनके घर से विदा हो रही है उनके पास मात्र 'संयमरूपी धन' ही विद्यमान है। अतः राजा ने स्वयं यह स्नेहपूर्ण सम्बन्ध जोड़ा है इसीलिये अन्य रानियों की तुलना में इसे हीन न देखा जाये। रघुवंश में अज को अपनी पत्नी इन्दुमती के यहाँ से बहुत सा धन अर्थात् हरणम् प्राप्त होता है। कालिदास की कृतियों से अनेक उदाहरण प्राप्त होते हैं कि जब कन्या पक्ष की ओर से वर को धन सम्पत्ति प्रदान की जाती थी। आधुनिक समय में यही दहेज प्रथा एक प्रकार से अभिशाप बन जाती है कि इसके बिना किसी भी कन्या का विवाह हो पाना कठिन होता है।

बहु–विवाह

कालिदास के काव्य के मुख्य पात्र राजा थे अतः उनके जीवन के अनेक पक्षों का चित्रण इनके काव्य में प्राप्त होता है। सामान्य प्रजा में बहु–विवाह का प्रचलन था या नहीं यह ठीक प्रकार से नहीं कहा जा सकता है। किन्तु राजा और धनी व्यक्ति अनेकों विवाह करते थे। व्यापारी धनमित्र की मृत्यु की सूचना के पश्चात् राजा दुश्यन्त यह कहता है कि बहुत धनवाला होने के कारण उसके पास बहुत पत्नियाँ होगी। इससे यह ज्ञात होता है कि उस समय धनवान् व्यक्ति बहुत सी स्त्रियों से विवाह करते थे।

राजा की अनेक पत्नियाँ हुआ करती थीं। दुश्यन्त, दिलीप, कुश आदि कई राजाओं ने कई स्त्रियों से विवाह किये थे। बहु–विवाह को इंगित करने के लिये दक्षकन्याओं के चन्द्रमा से विवाह का दष्टान्त देते हुये कालिदास ने कहा है कि जैसे दक्ष की कन्यायें चन्द्रमा जैसे पति को पाकर प्रसन्न थी, वैसे ही राजकुमारियाँ भी रघु जैसा प्रतापी पाकर प्रसन्न हुई। राजा का बहु–विवाह करने

के पीछे राजनीतिक कारण भी होता था। जिन देशों की कन्याओं से राजा का विवाह होता था, उन देशों से राजा का घनिष्ठ सम्बन्ध हो जाता था तथा वे देश उस राजा पर आक्रमण नहीं करते थे।

जब राजा किसी एक पत्नी में आसक्त होता था तो पुरानी रानियों को विस्मृत कर जाता था। कभी–कभी तो उपभोगानन्तर विस्मृत रानी का भी उल्लेख मिल जाता है। रानी वसुमती के प्रेम में संलग्न रानी हंसपादिका के उपालम्भयुक्त गति को सुनकर स्वयं दुश्यन्त ने स्वीकार किया है, मैं सब समझता हूँ यद्यपि सैंकड़ों रानियों की चर्चा की है। परन्तु यहाँ राजा कुश का अपनी सभी रानियों के साथ समान रूप से क्रीड़ा का वर्णन मिलता है। जैसे इन्द्र आकाश गंगा में अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करती हुई सुशोभित होते है वैसे ही उस कान्तिमान राजा के साथ क्रीड़ा करती हुई ये रानियाँ उसी प्रकार और सुशोभित होते हैं जैसे मोती तो स्वयं ही सुन्दर होता है किन्तु यदि वह इन्द्रनीलमाणि के साथ गूँथ दिया जाये तो उसकी सुन्दरता का कहना ही क्या।

कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वर्णन किया है कि शकुन्तला की सखियाँ दुश्यन्त से कहती हैं कि हमने सुना है कि राजाओं के अनेक पत्नियाँ होती हैं अतः हमारी प्रिय सखी शकुन्तला के साथ आपके यहाँ ऐसा व्यवहार किया जाये। जिससे उसकी स्थिति दयनीय हो जाये। इसके उत्तर में दुश्यन्त ने कहा कि अनेक स्त्रियों के होते हुए भी दो ही हमारे कुल का गौरव है। एक समुद्र से परिरक्षिप्त पृथ्वी और दूसरा तुम्हारी सखी शकुन्तला। इसी ग्रन्थ में कण्व ऋशि एक ओर दुश्यन्त के लिए संदेश भेजते है कि वह अपनी अन्य रानियों के समान ही शकुन्तला के साथ व्यवहार करें। दूसरी ओर आश्रम में शकुन्तला को विदा करते समय उसे अन्य पत्नियों के साथ प्रिय सखी जैसा व्यवहार करने का निर्देश देते है। इसी प्रकार जब मालविकाग्निमित्रम् में महारानी धारिणी मालविका से राजा न मिल सकें इसके लिये वह अथक प्रयास करके हार गयी तो उसने स्वयं ही मालविका को वधू रूप में सजाकर राजा को सौंप देने का निर्णय किया। राजा भी मालविका को विवाह के वेश–भूशा में सजाकर जाता हुआ सुनकर यह सम्भावना करता है कि रानी धारिणी ने जैसे पहले बहुत से उपकार किये हैं वैसे ही हो सकता है कि यह उपकार भी कर दे। विक्रमोर्वशीयम् में काशीराज की पुत्री पुरुवा की पटरानी को राजा के प्रेम के बारे में ज्ञान होने पर भी वह कठोर व्यवहार करने का साहस नहीं कर पाती है, क्योंकि उन्हें भय है कि आवेग में उनसे कोई अनुचित व्यवहार न हो जाये जिसका बाद में पश्चाताप् करना पड़े। अतः वे प्रिय को प्रसन्न करने वाले व्रतों का अनुश्ठान करती है और उस व्रत में चन्द्रमा और रोहिणी के जोड़ों को साक्षी बनाकर अपने प्रिय को प्रसन्न करने के लिये संकल्प लेती हैं कि आर्यपुत्र की पत्नी बनना चाहेगी तो वे उसके साथ बड़े प्रेम से रहेंगी।

अन्तर्जातीय विवाह

हिन्दू समाज में प्राचीन काल से ही अन्तर्जातीय विवाह होते थे। अनुलोम और प्रतिलोम विवाह का प्रचलन इसी के अन्तर्गत था। अनुलोम विवाह में ऊँचे वर्ण का पुरुश होता था और निम्न वर्ण की स्त्री से विवाह होता था। अनुलोम विवाह के अनेक उदाहरण मिलते है। मलविकाग्निमित्रम् के अनुसार पुश्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र का विवाह क्षत्रिय नरेश यज्ञसेन की पुत्री मालविका से हुआ था। इस प्रकार अन्तर्जातीय विवाह के द्वारा एक जाति का दूसरी जाति में रक्त का समिश्रण होना संबंधों को दृढ़ बनाने तथा राश्ट्रीयता का पोशण करने से सबसे प्रभावशाली साधन सिद्ध हुआ था।

**सन्दर्भ सूची**


1. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 14/82
2. वही, 1/65
3. निधानगर्भामिव सागराम्बरां शमीमिवाभ्यन्तरलीनपावकाम्।
   नदीमिवान्तः सलिंला सरस्वती नृपः समत्वां महिशीममन्यता।
   रघुवंश, 3/9
4. तस्यामात्मानुरूपायामात्मजन्मसमुत्सुकः।
   विलाम्बितफलैः कालं स निनाय मनोरथैः।। वही, 1/33
5. वही, 2/64
6. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 1/12
7. रघुवंश, 12/16
8. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, 4/17
9. रघुवंश, 7/18, 12/16
10. बहुधनत्वाद् बहुपत्नीकेन तत्रभवता भवितव्यम्।
11. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, अंक 6, पृ० 110
12. बहुवल्लभा राजानः श्रूयते यथ नौ प्रिय सखो बधुंजन
    शोचनीय न भवति तथा निर्वाहय। अभिज्ञानशाकुन्तल्, अंक 3, पृ० 180



**शोध छात्रा**
**सरोज**
ओम स्ट्रलिंग विश्वविद्यालय
हिसार

57

# कोशिश कहने की' गज़ल संग्रह की समीक्षा

डॉ० प्रवेश कुमारी

हर जुबान से सबसे मीठी बातें होती हैं प्यार–मोहब्बत की, मगर जब यही बातें उर्दू जुबान में कही जाऐं तो इन्हें 'गज़ल' कहा जाता है। गज़ल एक खास किस्म की विधा है, जिसकी शुरुआत अरबी साहित्य में पायी जाती है। हिन्दुस्तान की सरज़मीं पर आते–आते गज़ल की जुबान उर्दू हो गयी। हिन्दुस्तान में कहाँ पर गज़ल की शुरुआत हुई यह विवादास्पद है। शुरुआत कहीं भी हुई हो, लेकिन हिन्दुस्तानियों ने गज़ल को पूरी तरह अपना लिया और इसी का परिणाम है कि आज गज़ल देवनागरी व खड़ी बोली में भी लिखी जा रही हैं। प्रतीकों और संकेतों के माध्यम से भावपूर्ण अभिव्यक्ति करने वाली गज़ल में प्रेम और श्रृंगार के अतिरिक्त अध्यात्म, नैतिकता, राश्ट्रीयता, समकालीनता आदि विशयों पर भी लिखा जा रहा है।

आम जीवन की बेबाकी से ज़िक्र करना, उसकी विसंगतियों, उसकी समस्याओं, उसकी मजबूरियो की सारी परतों को बड़े ही सहज अंदाज में खोल देना; यह विवेक और चिंतन की गहराईयों का परिणाम होता है। आज जो साहित्य लिखा जा रहा है वह लेखन की कई शर्तों को अपने साथ लेकर चल रहा है। लेखन की इन्हीं सब शर्तों को अपने लेखन में पिरोने का साहस डॉ० राजेन्द्र सिंह ने किया है। यह सच है कि गज़ल का लहजा, इसका बोलने का ढंग, पेश करने का तरीका इतना निराला–विलक्षण व अद्भुत होता है कि इसके असर से बचा नहीं जा सकता। डॉ० राजेन्द्र सिंह ने भी गज़ल को इसी नज़र से देखा, समझा और परखा है। यूं तो डॉ० राजेन्द्र सिंह जी साहित्य की अन्य विधाओं में भी लेखन कार्य करते हैं, मगर जो महारत इन्होंने गज़ल लेखन में पायी है वो अन्यत्र दिखाई नहीं देती। हाल में प्रकाशित उनका गज़ल संग्रह 'कोशिक कहने की' में जीवन, प्रेम, तन्हाइयों की बात की गई है, वहीं दूसरी ओर वर्तमान जीवन की विसंगतियों से रुबरु करवाते हुए उनसे लड़ने की ताकत भी देता है।

'कोशिश कहने की' संग्रह की गज़लों के रंग इन्द्रधनुशी हैं, लेकिन सभी गज़लें जीवन में घटने वाली घटनाओं का जीवंत चित्रण करती हुई प्रतीत होती है। इनकी गज़लों को पढ़कर सकारात्मकता का आभास होता है। जीवन में सुख व दुःख दोनों ही आते हैं, मगर देखने वाले की दृष्टि पर निर्भर करता है कि वह किसे ज्यादा महत्व देता है। डॉ० राजेन्द्र सिंह जी का जीवन के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण इस गज़ल संग्रह में स्थान–स्थान पर दिखाई देता है–

''जिंदगी को मुश्किलों से बचाना सीखिए, दर्द कम हो जाएंगे बस मुस्कुराना सीखिए।''

''लहरें तो हठखेलियाँ करेंगी ही समंदर में, लहरों से बच समंदर से पार जाना सीखिए।''

डॉ० राजेन्द्र सिंह की गज़लें कुछ अलग सी हैं, नई हैं, ताज़ा हैं। इन्होंने गज़ल को प्यार–मुहब्बत की विधा न मानते हुए, समकालीन समय की विश्वव्यापी समस्याओं से भी जोड़ने की कोशिश की है। समाज के स्वार्थी स्वरूप को दिखाने की कोशिश करते हुए डॉ० साहब कहते हैं–

''तुम पत्थरों के बीच आईना ढूँढोगे कैसे, बेरहमों में दिलों की भावना ढूँढोगे कैसे,

''बाज़ार में दुनिया की हर चीज़ बिक रही है, मतलब परस्त इस दौर में वफा ढूँढोगे कैसे।''

इन पंक्तियों के माध्यम से समाज की संवेदनहीनता को दिखाने का प्रयास किया गया है। किस कद़र लोगों के दिलों से इंसानियत खत्म हो रही है; इसको बयां करते हुए राजेन्द्र जी लिखते हैं–

''जिनको बनाने में अपना ज़माने लगे, बातें अब वह हमीं को बताने लगे,

''हक़ीकत आ गई सामने वो जब बोला, जिन्हें बोलना सिखाया वह गुर्राने लगे''

जीवन की कड़वी सच्चाई से रुबरु करवाने के साथ–साथ गज़लकार सकारात्मकता का दामन नहीं छोड़ता। जीवन के किसी भी बुरे क्षण को सकारात्मकता के साथ अच्छे क्षण में परिवर्तित किया जा सकता है।

''नफ़रत मिटा के प्यार भर तू दिलों में, इंसाँ की औकात क्या पत्थर भी पिघल गए''

डॉ० राजेन्द्र सिंह की गज़लों को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि आप खुद के भोगे हुए यथार्थ से गुज़र रहे हैं। इनकी ज्यादातर गज़लें मज़दूर, किसान व आम आदमी के जीवन की सच्चाई को उजागर करती हुई दिखाई देती हैं।

''तस्वीर में रोज़ रंग मेहनत का भरते हैं, देश को मज़दूर किसानों ने ज़िंदा रखा है''

माँ–बाप के प्रति कर्त्तव्य, देश के प्रति निश्ठा व अपने संस्कारों के प्रति सम्मान की भावना को हम इनकी गज़लों में देख सकते हैं–

खुशी मत पूछिए उन माँ–बाप की, वक्त में बच्चे जिनके काबि़ल हो गए

देखने–भर का वक्त नहीं माँ–बाप को, बच्चे इस दौर के चंचल हो

गए

जिन्दगी के सफर को सुहाना बनाने के लिए, रोया है बहुत वह दुःखों को हँसाने के लिए आसाँ नहीं है हर किरदार को निभाना, पड़ता है टूटना रिश्ते निभाने के लिए।।''

बदलते रिश्ते–नातों, टूटते मूल्यों और बाज़ारवाद को बहुत ही सहज तरीके से गज़लों के माध्यम से कहने की कोशिश की है। इनकी गज़लों में भावपक्ष की अपेक्षा विचार पक्ष ज्यादा दिखाई देता है। इनकी गज़लें मानवीय मूल्यों जैसे नैतिकता, कर्त्तव्य, संस्कार, ईमानदारी, रिश्ते–नातों की समझ आदि के पक्षधर हैं। गज़लकार भी समाज का ही अंग होता है। वह प्यार–मुहब्बत की बातें करता है, रिश्ते–नातों की बातें करता है, मगर वह जिस समाज में रह रहा है उससे भी अछूता नहीं रह सकता। उसके आस–पास जो धोखे का बाज़ार सजाया गया है, जिसके आस–पास संवेदनाएँ तड़प–तड़प कर दम तोड़ देती हैं तो ऐसे में एक विचारवान शायर, खुले दिमाग वाला शायर हमें हमारे आस–पास होने वाले छलों, दिखावों व बाज़ारवाद से सचेत रहने के लिए ही कहेगा और डॉ० राजेन्द्र सिंह ने भी वही किया है–

दिन रात बदले मेरी हरकतें बदल गईं, बदला माहौल सारी जरूरतें बदल गईं बाज़ार मशीनों का बचपन खा गया, बच्चा उलझा यूँ सारी शरारतें बदल गईं सहूलियतें हैं बहुत अब माँ–बाप के लिए, घरों में दी जाने वाली हिदायतें बदल गईं डॉ० राजेन्द्र सिंह के गज़ल संग्रह 'कोशिश कहने की' वर्तमान राजनीति, किसानों का संघर्श, कृशि कानूनों पर करारा प्रहार करता हुआ दिखाई देता है–

सीधे सच्चे शब्दो में सीधी सच्ची बात लिखूँ कोई किसी की नहीं सुने, कैसे हैं हालात लिखूँ,खौफ़जदा हूँ इसलिए खुल जाएँ न गांठें बंधी हुई भौंकते हैं सब साथ में करके ये उत्पात लिखूँ,गलियारों में भी हलचल तो खेतों में हरियाली है जीते दिल कौन देखो होगी किसकी मात लिखूँ,वर्तमान सियास पर चोट करते हुए लिखते हैं–

''खुलेआम सियासी गलियों में भी तो सरेआम नफ़रत का ही प्रचार हुआ,गिद्धों की सी चमक छिपी नज़रों में सोच ही बदली, न कोई सुधार हुआ।''

देश के लिए किसान और मज़दूर वर्ग का क्या महत्तव है, इसको स्पश्ट करते हुए लिखते हैं–

''तस्वीर में रोज़ रंग मेहनत का भरते हैं, देश को मज़दूर–किसानों ने जिंदा रखा है।''

'कोशिश कहने की' संग्रह पढ़कर पता चलता है कि डॉ० राजेन्द्र सिंह की गज़ल की दुनिया आम जीवन के आसपास घूमती है, मगर ऐसा नहीं है ये आम जन–जीवन से बाहर नहीं निकलना चाहते। इनका दृश्टिकोण काफी विस्तृत व हटकर है। इनका संग्रह नए उत्साह व सकारात्मकता के साथ जीवन जीने की सलाह देता है।

''अँधेरा घना है तो क्या उजियारा मार देगा, नफ़रत को तो बस प्यार हमारा मार देगा।''

डॉ० राजेन्द्र सिंह का गज़ल संग्रह 'कोशिश कहने की' पढ़ते हुए मैंने पाया कि इनकी गज़लों में जीवन का कोई भी पहलू अछूता नहीं रहा। प्रेम, रिश्ते–नाते, संस्कार, मानवीय जीवन मूल्य, बाजारवाद, शहर, गाँव, सियासत, किसान, मज़दूर आदि को इन्होंने बड़े ही दिलचस्प ढंग से बयाँ किया है। इनकी गज़लों में कहीं भी ऊब महसूस नहीं हुई। हर गज़ल अपने आप में एक ताज़गी लिए हुए है। इसी ताज़गी, इसी नए अंदाज़ का असर है कि ये गज़लें हमारे दिलो–दिमाग पर और हमारे आस–पास अच्छा समाँ बांधती है। संघर्षों के सागर से निकले हुए इस शायर से हम उम्मीद करते हैं कि यह समय के थपेड़ों की परवाह ने करते हुए आम जनजीवन के खट्टे–मीठे क्षणों को यूँ ही अपनी गज़लों में पिरोते रहेंगे और उदासी भरे रास्तों में उम्मीदों भरा गलीचा बिछाते रहेंगे।

गज़ल संग्रह – कोशिश कहने की शायर – डॉ० राजेन्द्र सिंह

**समीक्षक – डॉ० प्रवेश कुमारी**
सहायक आचार्य, बाबा मस्तनाथ
विश्वविद्यालय, अस्थल बोहर,
रोहतक (हरियाणा)
9466429844
parveshruhil4@gmail.com

58

# प्रवासी शाखों से झरते तुषार बिंदु...

## किताब समीक्षा

डॉ0 निधि अग्रवाल–समीक्षक

लेखिका–डॉ0 आरती लोकेश

कथा वाचकों की इस दुनिया में कथा कहने वाले के परिवेश का प्रभाव कथा पर होना अवश्यम्भावी है। कहानी के उद्देश्य व संदेश से अधिक कहानीकार का दृष्टिकोण, मान्यताएँ पाठकों को आकर्षित करती हैं। लेखक के निजी अनुभव, उसकी आत्मा में मथकर उसकी रचनाओं में आकार पाते हैं। प्रत्येक मनुष्य का प्रतिदिन टनों कहानियों से सामना होता है। केवल लेखक ही होता है जो उनमें से कुछ को अपने उर के तहखाने में जमा कर लेने में सफल हो जाता है। जैसे एक बीज धरती में गढ़ जाने के बाद स्वतः पत्थरों का सीना चीर प्रस्फुटित हो जाता है वैसे ही लेखक कहानी नहीं लिखता अपितु कहानी स्वयं को लेखक से लिखवाती है। अतः कहानी कहने के लिए लेखक को उस बीज को उर्वरक–नमी नहीं देनी होती, उसे मात्र अपने बोध, अपनी सहजवृत्ति को अंतःमन में पैठने की आज्ञा देनी होती है।

एक पौधे को जब एक स्थान से उखाड़कर सुदूर धरा पर आरोपित किया जाता है, अपनी जड़ें आरोपित करने में उसे गहन पीड़ा की प्रक्रिया से गुजरना पड़ता है। एक बार उस मृदा को आत्मसात कर वह नई भूमि की सुगंध को मूल जड़ों से सिंचित अपने पुष्पों के माध्यम से बिखेरने लगता है। उस पौध से द्विगुणित गुणों की वृष्टि होती है। ऐसे वृक्षों की शाखाएँ दो धरा के संस्कारों को ग्रहण करती हैं और लेखनी बनकर नव चेतना का संचार करती हैं। अपने भीतर विषमताओं–जटिलताओं में डटे रहने की ऊर्जा विकसित करते हुए नई कोंपलें सृजित करती हैं।

डॉ. आरती 'लोकेश' का साहित्य ऐसे ही प्रवासी साहित्य का दर्पण है। उनकी अपनी संवेदनाएँ, संस्कार, संस्कृति प्रवासी परिवेश से प्रभावित हुई है। उन्होंने अपने अनुभवों को ज्यों का त्यों स्याही में ढाला है, शास्त्रों या चलन से उसे दूषित होने से बचाने में उन्होंने सफलता प्राप्त की है। यू.ए.ई. की संस्कृति के मर्म को स्पर्श करती हुई उनकी कहानियों में निर्मम सत्य उजागर हुए हैं। कहानी 'प्रशस्ति–पत्र' में एक ग्रामीण शिक्षित युवती का दुबई में संघर्ष समझ आता है तो उसके गाँव का संघर्ष भी अनावृत होता चलता है। कहानी 'आकार' में दुबई शहर धार्मिक एकता और सद्भाव का दृष्टांत बनकर उभरता है। इन कहानियों को पढ़कर पाठकों को यू.ए.ई. देश को जानने–समझने में मदद मिलेगी बल्कि प्रवासी मन में झाँकने का अवसर भी मिलेगा। प्रवासी शाखों से झरते तुषार बिंदु के समान कथा–संग्रह 'साँच की आँच' में संकलित कहानियाँ पाठक को भीतर तक नम कर जाएँगीं।

अपनों को खोने का गम सबको एक समान तोड़ता है। अपनी मिट्टी से कटकर रहने की विवशता में यह कष्ट कितनी चुभन देता है, पेड़ से जुदा शाख ही जानती है। शारीरिक यंत्रणा से अधिक यह आंतरिक दंड दर्द देता है, कहानी 'साँच की आँच' उसी अंतर्वेदना की परिणति है। लेखन रूप में अभिव्यक्ति ही लेखक को संत्रास से मुक्त होने का साहस प्रदान करती है। विदेश की धरती पर अपने साहित्य को समृद्ध करती हुई लेखिका इसी साहस व संकल्प का परिचय देती हैं।

कहानीकारों की बढ़ती भीड़ में अपनी कहानियों को सुने जाने योग्य बना लेने के लिए रूढ़ियों से हटकर सोचना होता है। लीक से हटकर नए परिप्रेक्ष्यों को नए आयाम में घड़ना होता है तब ही पाठकों का अविरल स्नेह किसी कहानी की नियति बनता है जो रचना के जीवन की अवधि तय करता है। कथा शोर मचाने से नहीं, उसमें निहित सत्व से सुनी और मानी जाती है। सत्व और तत्व से अटी हुई कहानियों के लिए डॉ. आरती बधाई की पात्र हैं जो उनकी कलम से निर्बाध फूटी हैं। आशा है वे इसी तरह साहित्य सेवा में लीन रहेंगी। उनका कथा–संग्रह 'साँच की आँच' आपके साहित्यिक पुस्तकालय का अभिन्न अंग बनने योग्य है।

**लेखिका**

**डॉ0 आरती लोकेश**

P. O. Box 99846 दुबई,

U.A.E

97150-4270752

**समीक्षक**

**डॉ0 निधि अग्रवाल**

लेखिका एवं कवयित्री

झाँसी, उत्तर प्रदेश